प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

(नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति से लिखी गई संस्कृत-व्याकरण,
अनुवाद और निबन्ध की पुस्तक)

लेखक—

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य,

एम ए (संस्कृत, हिन्दी) एम. ओ एल , डी फिल् (प्रयाग), पी ई एस.,
विद्याभास्कर, साहित्यरत्न व्याकरणाचार्य,
अध्यक्ष संस्कृत विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल ।

प्रणेता—'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन'
(उ प्र सरकार द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत पुस्तक), रचनानुवादकौमुदी आदि

———



गोरखपुर

मूल्य—सात रुपए पचास नये पैसे

प्रथम संस्करण २१   प्रति

सन् १९६१ ई

प्रकाशक—विश्वविद्यालय प्रकाशन, नखास चौक, गोरखपुर

मुद्रक—ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५६७१-१७



राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

समर्पण

संस्कृत भाषा के परम भक्त, विद्वन्मूर्धन्य
भारतराष्ट्र-मान्य परम संमाननीय,

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी

की सेवा में
सादर सविनय समर्पित ।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

विषय-सूची

विवरण

परिशिष्ट

भूमिका

डा० कपिलदेव द्विवेदी ने प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी का निर्माण करके उस काम की पूर्ति की है जो रचनानुवादकौमुदी से आरम्भ हुआ था। मैं स्वयं संस्कृत व्याकरण और साहित्य का इतना ज्ञान नहीं रखता कि पुस्तक के गुण-दोषों की यथार्थ समीक्षा कर सकूँ। परन्तु उसका स्वरूप ऐसा है जिससे मुझको यह प्रतीत होता है कि यह उन लोगों को निश्चय ही उपयोगी प्रतीत होगी जिनके लिए उसकी रचना हुई है। मैं संस्कृत ग्रंथों को पढ़ता रहता हूँ। कभी-कभी संस्कृत में कुछ लिखने का भी प्रयास करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इस पुस्तक से मेरे जैसे व्यक्ति को सहायता मिलेगी और कई भद्दी भूलों से त्राण हो जायेगा। यों तो संस्कृत के प्रामाणिक व्याकरणों का स्थान दूसरी पुस्तकें नहीं ले सकतीं, फिर भी जिन लोगों को किन्हीं कारणों से उनके अध्ययन का अवसर नहीं मिला है उनके लिए प्रौढ रचनानुवादकौमुदी जैसी पुस्तकें वस्तुतः बहुमूल्य हैं।

नैनीताल,
जुलाई ७, १९६०।

सम्पूर्णानन्द

आत्म निवेदन

(१) पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—यह पुस्तक कतिपय विशेष उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है। उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं—(क) संस्कृत के प्रौढ विद्यार्थियों को प्रौढ संस्कृत सिखाना। (ख) अति सरल और सुबोध ढंग से अनुवाद और निबन्ध सिखाना। (ग) ६ मास में प्रौढ संस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास कराना। (घ) अनुवाद के द्वारा सम्पूर्ण व्याकरण सिखाना। (ङ) संस्कृत के मुहावरों का वाक्य-रचना के द्वारा प्रयोग सिखाना। (च) प्रौढ संस्कृत-रचना के लिए उपयोगी समस्त व्याकरण का अभ्यास कराना। (छ) इस पुस्तक के प्रथम दो भाग प्रारम्भिक छात्रों के लिए हैं, यह प्रौढ विद्यार्थियों के लिए है। अतः यह उपयुक्त है कि इस पुस्तक का अभ्यास करने से पूर्व छात्र 'रचनानुवादकौमुदी' का अवश्य अभ्यास कर लें।

(२) पुस्तक की शैली—यह पुस्तक कतिपय नवीनतम विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गई है। (क) इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच और रूसी आदि भाषाओं में अपनाई गई वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनाई गई है। (ख) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द तथा कुछ व्याकरण के नियम दिए गए हैं। (ग) शब्दकोश और व्याकरण से सम्बद्ध सभी मुहावरे प्रत्येक अभ्यास में सिखाए गए हैं।

(३) अभ्यास—इस पुस्तक में ६ अभ्यास हैं। प्रत्येक अभ्यास दो पृष्ठों में है। बाईं ओर शब्दकोष और व्याकरण है, दाईं ओर संस्कृत में अनुवादार्थ गद्य तथा संकेत हैं।

(४) शब्दकोष—(क) प्रत्येक अभ्यास में २५ नये शब्द हैं। शब्दकोष में ४८ वर्ग भी दिए गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि सभी उपयोगी शब्दों का संग्रह हो। अमरकोष के प्रायः सभी उपयोगी शब्द विभिन्न वर्गों में दिए गए हैं। यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रौढ रचना को ध्यान में रखते हुए उच्च संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को विशेष रूप से अपनाया जाए। प्रत्येक वर्ग में उस वर्ग से सम्बद्ध सभी उपयोगी शब्द दिए गए हैं। (ख) यह भी प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक प्रचलित शब्दों और भावों के लिए भी उपयोगी संस्कृत शब्द दिए जाएँ। इसके लिए दो बातें मुख्यतया ध्यान में रखी गई हैं—१. जिन भावों के लिए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कोई शब्द मिल सकता है, वहाँ उन संस्कृत-शब्दों को अपनाया गया है। जो प्राचीन संस्कृत शब्द नवीन अर्थों का बोध करा सकते हैं, उनका नवीन अर्थों में प्रयोग किया गया है। २. जिन शब्दों के लिए संस्कृत में प्राचीन शब्द नहीं हैं, उनके लिए नए शब्द बनाए गए हैं। कहीं पर ध्वन्यनुकरण के आधार पर और कहीं पर भावानुकरण के आधार पर। जैसे—मिष्टान्नवर्ग और पानादिवर्ग में सभी मिठाइयों, नमकीन, चाय, टोस्ट और पेस्ट्री आदि के लिए शब्द हैं। नवशब्द-निर्माण वाले स्थलों पर अपने विवेक के अनुसार कार्य किया गया है। ऐसे स्थलों पर मतभेद सम्भव है। जो विद्वान् नवीन भावों के लिए अधिक

उपयुक्त शब्दों का सुझाव देंगे, उनके सुझावों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। (ग) शब्दकोष को चार भागों में विभक्त किया गया है। इसके लिए इन संकेतों को स्मरण कर लें। शब्दकोष में (क) का अर्थ है संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) का अर्थ है धातु या क्रिया शब्द। (ग) = अव्यय। (घ) = विशेषण। (क) भाग में दिए अधिकांश शब्द राम, रमा या गृह के तुल्य चलते हैं। शब्दों के स्वरूप से इस बात का बोध हो जाता है। जहाँ पर सन्देह हो वहाँ पर पुस्तक के अन्त में दिए हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष से सहायता लें। वहाँ पर लिंग-निर्देश विशेष रूप से किया गया है। (ख) भाग में दी गई धातुओं के गण और पद के विषय में जहाँ पर सन्देह हो वहाँ पर धातुरूप-कोष में दिए हुए धातु के विवरण से सन्देह का निराकरण करें। (ग) भाग में दिए हुए शब्द अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते हैं। (घ) भाग में दिए शब्द विशेषण हैं, इनके लिंग आदि विशेष्य के तुल्य होंगे। विशेषण-शब्द तीनों लिंगों में आते हैं। (घ) शब्दकोष में यह भी ध्यान रखा गया है कि जिस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में सिखाया गया है उस प्रकार के अन्य शब्दों या धातुओं का भी अभ्यास उसी पाठ में कराया जाए। इसके लिए दो प्रकार अपनाए गए हैं। १. उस प्रकार के शब्द या धातुएँ शब्दकोष में दी गई हैं। २. उस प्रकार के शब्दों या धातुओं का प्रयोग उसी पाठ के 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में सिखाया गया है। कोष में ऐसे शब्दों का संकेत कर दिया गया है। (ङ) शब्दकोष के विषय में इन संकेतों का उपयोग किया गया है। १ 'वत्' अर्थात् इसके तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—रामवत्, राम के तुल्य रूप चलेंगे। भवतिवत्, भू धातु के तुल्य रूप चलेंगे। २.—से यहाँ से लेकर यहाँ तक के शब्द या धातु। ३ > अर्थात् 'का रूप बनता है'। भू > भवति अर्थात् भू का भवति रूप बनता है। (च) शब्दकोष में शब्द विभिन्न वर्गों के अनुसार रक्खे गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि उस वर्ग के समस्त शब्द उसी अभ्यास में दिए जाएँ। अतः प्रत्येक वर्ग के समस्त शब्दों को उसी अभ्यास में देखें। प्रत्येक अभ्यास के शब्दकोष में (क) (ख) आदि के बाद निर्देश कर दिया गया है कि (क) या (ख) आदि में कितने शब्द दिए गए हैं। (छ) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। प्रत्येक अभ्यास के प्रारम्भ में निर्देश किया गया है कि अबतक कितने शब्द पढ़ चुके हैं। १० अभ्यासों में १५ शब्दों का अभ्यास कराया गया है। लगभग इतने ही नए शब्दों और मुहावरों का प्रयोग 'संधि' में सिखाया गया है। इस प्रकार लगभग ३ हजार शब्दों का ज्ञान विद्यार्थी को हो जाता है। शब्दकोष के शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार से है —

(क) अर्थात् संज्ञा या सर्वनाम शब्द	११५५
(ख) अर्थात् धातु या क्रिया शब्द	२२५
(ग) अर्थात् अव्यय शब्द	६०
(घ) अर्थात् विशेषण शब्द	८१
पठित एवं अभ्यस्त शब्दों का योग	१५०० (शब्दकोश)

(५) व्याकरण—(क) प्रत्येक अभ्यास में कुछ शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है। अतः आवश्यक है कि उन शब्दों और धातुओं को प्रत्येक अभ्यास में अवश्य स्मरण कर लें। (ख) सम्पूर्ण संस्कृत व्याकरण को केवल १ नियमों में समाप्त किया गया है। इन १ ० नियमों को विषयों के अनुसार ६ अभ्यासों में बाँटा गया है। प्रत्येक अभ्यासमें कुछ नियमों का अभ्यास कराया गया है। इन नियमों को ठीक स्मरण कर लें। इनको ठीक स्मरण कर लेने पर ही संस्कृत में अनुवाद शुद्ध एवं सरलता से हो सकेगा। (ग) नियमों के साथ पाणिनि के प्रामाणिक सूत्र भी कोष्ठ में दिए गए हैं। (घ) यह भी प्रयत्न किया गया है कि ह्विट्नी, काले, आप्टे आदि विद्वानों के द्वारा निर्दिष्ट नियम या विवरण भी न छूटने पावें। ऐसे नियमों या विवरणों के साथ पाणिनि के नियमों का भी संकेत कर दिया गया है। (ङ) इस पुस्तक में यह भी प्रयत्न किया गया है कि संस्कृत व्याकरण के सभी उपयोगी एवं प्रचलित नियमों का संग्रह हो। जो नियम अप्रचलित एवं विशेष उपयोगी नहीं हैं, वे छोड़ दिए गए हैं।

(६) अनुवाद—(क) शब्दकोष में दिए शब्दों और व्याकरण के नियमों से सम्बद्ध वाक्य अनुवादार्थ दिए गए हैं। (ख) प्रत्येक पाठ में जिन शब्दों और धातुओं का अभ्यास कराया गया है उनसे सम्बद्ध वाक्य तथा उनसे सम्बद्ध मुहावरे भी उसी अभ्यास में दिए गए हैं। (ग) कठिन वाक्य और मुहावरेवाले वाक्य काले टाइप में छपे हैं। उनकी संस्कृत नीचे 'संकेत' वाले अंश में दी गई है। वहाँ देखें। कुछ विशेष मुहावरे सिखाने के लिए कतिपय सरल वाक्य भी काले टाइप में दिए गए हैं। उन सभी मुहावरों को सावधानी से स्मरण कर लें। (घ) व्याकरण के नियमों के जो उदाहरण संस्कृत में दिए हैं, उनका हिन्दी-रूप अनुवादार्थ दिया गया है। ऐसे वाक्यों की संस्कृत नियमों के उदाहरणों में देखें। इनकी संस्कृत 'संकेत' में नहीं दी है। (ङ) प्रत्येक अभ्यास में प्रयुक्त शब्दों और धातुओं के तुल्य जिन शब्दों और धातुओं के रूप चलते हैं, उनका भी उसी पाठ में अभ्यास कराया गया है। कोष्ठ में ऐसे शब्द या धातुएँ दी गई हैं।

(७) संकेत—(क) 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में जितना अंश काले टाइप में छपा है, उसकी संस्कृत 'संकेत' में उसी क्रम और उन्हीं वाक्य-संख्याओं के साथ दी गई है। (ख) संस्कृत में प्रचलित मुहावरे इस अंश में विशेष रूप से दिए गए हैं। (ग) कठिन शब्दों की संस्कृत, सूक्तियाँ, व्याकरण के विशिष्ट प्रयोग तथा अन्य उपयोगी संकेत इस अंश में दिए गए हैं।

(८) परिशिष्ट—पुस्तक के अन्त में अत्यन्त उपयोगी १६ परिशिष्ट दिए गए हैं। इनका विशेष विवरण विषय-सूची तथा विषयानुक्रमणिका में देखें। यहाँ पर कुछ विशेष उल्लेखनीय बातों का ही निर्देश किया गया है।

(९) शब्दरूप-संग्रह—संस्कृत में विशेष प्रचलित सभी शब्दों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के शब्द प्रत्येक लिंग में अन्त्याक्षर के क्रम से दिए गए हैं। अन्य शब्दों के रूप लिंग तथा अन्त्याक्षर को देखकर इन शब्दों के तुल्य चलावें।

(१०) संख्याएँ—१ से १० तक की संस्कृत में गिनती तथा महाशंख तक के शब्द इस परिशिष्ट में दिए गए हैं।

(११) धातुरूप-संग्रह—संस्कृत में अधिक प्रयुक्त १ धातुओं के दसों लकारों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। अन्य धातुओं के रूप गण तथा पद को देखकर इनके तुल्य चलावें।

(१२) धातुरूप-कोष—इस परिशिष्ट में संस्कृत में विशेष रूप से प्रयुक्त ४४५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। सभी धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

(१३) प्रत्यय-विचार—२५ विशेष कृत्-प्रत्ययों से बनने वाले सभी विशेष रूप इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१४) सन्धि विचार—इस परिशिष्ट में प्रयोग में आने वाले सभी सन्धि नियम ७५ नियमों में दिए गए हैं।

(१५) पत्रादि-लेखन-प्रकार—इस परिशिष्ट में संस्कृत में पत्र लिखना, प्रार्थना-पत्र देना, निमन्त्रण देना, परिषद्-सूचना और पुरस्कार-वितरण आदि का प्रकार बताया गया है।

(१६) निबन्ध माला—इसमें उदाहरण के रूप में २ अनुपयोगी विषयों पर संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं। इसमें प्रयत्न किया गया है कि भाषा न अतिकठिन हो और न अति सरल। भाषा में प्रौढ़ता के साथ ही प्रवाह और मुहावरे आदि भी हों। शास्त्रीय और साहित्यिक विषयों पर उद्धरणों की संख्या अधिक दी गई है। इसका कारण यह है कि छात्र स्वयोग्यतानुसार उन उद्धरणों की व्याख्या आदि करें। छात्र इन निबन्धों के आधार पर संस्कृत में अन्य निबन्ध स्वयं लिखने का अभ्यास करें।

(१७) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह—इस परिशिष्ट में ४ सन्दर्भ अनुवादार्थ दिए गए हैं। इनमें से अधिकांश प्रौढ़ संस्कृत-ग्रन्थों से लिए गए हैं और उनका हिन्दी रूपान्तर अनुवादार्थ दिया गया है। 'संकेत' में मुहावरे आदि भी मूल रूप में दिए गए हैं। ऐसे सन्दर्भ भी अनुवादार्थ दिए गए हैं, जिनके अभ्यास से संस्कृत साहित्य और भाषाशास्त्र आदि का ज्ञान हो।

(१८) सुभाषित-मुक्तावली—इसमें १४६७ सुभाषित १७ प्रमुख शीर्षकों तथा ८८ उपशीर्षकों में दिए गए हैं। सुभाषित अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। यथा सम्भव उनके मूल आकर-ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है। ये सुभाषित निबन्ध, व्याख्यान आदि के लिए अत्युपयोगी हैं।

(१९) पारिभाषिक शब्दकोश—इसमें १६५ व्याकरण के पारिभाषिक शब्द अकारादि-क्रम से पूर्ण विवरण के साथ दिए गए हैं। साथ में पाणिनि के सूत्रादि भी दे गए हैं। व्याकरण ठीक समझने के लिए इनका ज्ञान अनिवार्य है।

(२०) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष—इस पुस्तक में प्रयुक्त सभी शब्दों का इसमें संग्रह किया गया है। अकारादि-क्रम से हिन्दी-शब्द दिए गए हैं। इनके आगे उनकी संस्कृत दी गई है। शब्दों के आगे लिंग-निर्देश आदि भी किया है।

(२१) विषयानुक्रमणिका—पुस्तक के वर्णित सभी विषयों का इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से उल्लेख है। प्रत्येक विषय के आगे पृष्ठ-संख्या के द्वारा निर्देश किया गया है कि वह विषय अमुक पृष्ठ पर मिलेगा।

(२२) मुद्रण—मुद्रण में ह्रस्व और दीर्घ ऋ में यह अन्तर रक्खा गया है। इसे स्मरण रक्खें। ऋ = ह्रस्व ऋ। ॠ = दीर्घ ॠ।

पुस्तक की विशेषतायें

(१) इंग्लिश्, जर्मन फ्रेंच और रूसी भाषाओं में अपनाई गई नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनाई गई है।

(२) प्रौढ संस्कृत-ज्ञान के लिए उपयुक्त समस्त व्याकरण अनुवाद और प्रौढ वाक्य-रचना के द्वारा अति सरल और सुबोध रूप में समझाया गया है।

(३) केवल ६० अभ्यासों में ३ नियमों के द्वारा समस्त आवश्यक व्याकरण समाप्त किया गया है। नियमों के साथ पाणिनि के सूत्र भी दिए गए हैं।

(४) ४८ वर्गों और १२ विविध शब्द-संग्रहों के द्वारा सभी उपयोगी और आवश्यक शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। १५ उपयोगी शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है।

(५) लगभग एक सहस्र संस्कृत की लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनुवाद के द्वारा सिखाया गया है।

(६) परिशिष्ट में लगभग १५ सुभाषितों की 'सुभाषित-मुक्तावली' विभिन्न ८८ विषयों पर अकारादि-क्रम से दी गई है।

(७) संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के ग्रन्थों से अनुवादार्थ सन्दर्भों का चयन किया गया है। इनके लिए उपयुक्त संकेत भी दिए गए हैं।

(८) सभी प्रचलित शब्दों के रूपों का संग्रह किया गया है।

(९) १० विशेष प्रचलित धातुओं के दसों लकारों के रूपों का संकलन 'धातुरूप-संग्रह' में किया गया है। 'धातुरूप-कोष' में अल्पोपयोगी ४९५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

(१०) सभी उपयोगी व्याकरण का संग्रह किया गया है। जैसे—सन्धि विचार, कारक-विचार, समास विचार, क्रिया विचार, कृत्प्रत्यय-विचार, तद्धित-प्रत्यय-विचार, स्त्री-प्रत्यय-विचार आदि।

(११) व्याकरण-ज्ञान के लिए अनिवार्य १६५ शब्दों का एक 'पारिभाषिक शब्दकोश' अकारादि-क्रम से परिशिष्ट में दिया गया है।

(१२) अत्युपयोगी २ विषयों पर प्रौढ संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं।

(१३) प्रत्येक अभ्यास में व्याकरण के कुछ विशेष नियमों का अभ्यास कराया गया है और अनुवादार्थ अत्युपयोगी संकेत दिए गए हैं।

(१४) परिशिष्ट के अन्त में बृहत् हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष भी दिया गया है।

(१५) पुस्तक के अन्त में विस्तृत विषयानुक्रमणिका भी दी गई है।

कृतज्ञता-प्रकाशन

सर्वप्रथम परम सम्माननीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने पुस्तक की मूलप्रति को देखने तथा पुस्तक को समर्पण करने की स्वीकृति प्रदान करके असीम अनुकम्पा की है। माननीय श्री डा० सम्पूर्णानन्दजी, मुख्य-मंत्री, उत्तर प्रदेश ने पुस्तक की भूमिका लिखकर जो मुझे गौरवान्वित किया है, तदर्थ उनका हार्दिक कृतज्ञ हूँ। निम्नलिखित सज्जनों ने पुस्तक-लेखन में कतिपय अत्यन्त उपयोगी परामर्श और सुझाव दिए हैं। तदर्थ इनका कृतज्ञ हूँ। सर्वश्री डा० च० कि० बल्वीर (नैनीताल), पं० प्रेमीप्रसाद व्याकरणाचार्य (गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर), स्वा० अमृतानन्द सरस्वती (रामगढ़, नैनीताल), डा० हरिदत्त शास्त्री सप्ततीर्थ (कानपुर)। श्रीमती ओमशान्ति द्विवेदी और मेरे विद्यार्थी हरगोविन्द जोशी ने सामग्री-संकलन और प्रूफ-संशोधन में विशेष सहयोग दिया है। तदर्थ उन्हें धन्यवाद है। चि० भारती, भारतेन्दु और धर्मेन्दु ने कार्य को निर्विघ्न समाप्त होने में पर्याप्त कष्ट उठाया है, तदर्थ उन्हें आशीर्वाद है। प्रकाशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी और मुद्रक श्री ओमप्रकाश कपूर ने पुस्तक को सुन्दर, रोचक और शीघ्र छापने में जो तत्परता दिखाई है, तदर्थ उन्हें विशेष धन्यवाद है।

अन्त में विद्वज्जन से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि का विचार भेजेंगे, वह सहर्ष कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार किया जायगा।

गवर्नमेण्ट कालेज, नैनीताल
ता० १-२-५६

कपिलदेव द्विवेदी

आवश्यक-निर्देश

१ 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—शुद्ध, परिमार्जित, परिष्कृत। अतः संस्कृत भाषा का अर्थ है—शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा।

२ निम्नलिखित १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनमें पूरी वर्णमाला इस प्रकार दी हुई है—क्रमशः स्वर, अन्तःस्थ, वर्ग के पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्ण, ऊष्म।

१ अइउण्। २ ऋऌक्। ३ एओङ्। ४ ऐऔच्। ५ हयवरट्। ६ लण्। ७ ञमङणनम्। ८ झभञ्। ९ घढधष्। १० जबगडदश्। ११ खफछठथचटतव्। १२ कपय्। १३ शषसर्। १४ हल्।

३ पाणिनि के सूत्रों में प्रत्याहारों का प्रयोग है। प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कहना। उपर्युक्त सूत्रों से प्रत्याहार बनाने के लिए ये नियम हैं—(क) प्रत्याहार बनाने के लिए पहला अक्षर सूत्र में जहाँ हो वहाँ से ले और दूसरा अक्षर सूत्रों के अन्तिम अक्षरों में से। (ख) सूत्रों के अन्तिम अक्षर (ण्, क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। ये प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। जैसे—अल् प्रत्याहार—प्रथम अ से लेकर हल् के ल् तक। इक्—इ उ ऋ ऌ। अच्—अ से औ तक पूरे स्वर। हल्—सारे व्यञ्जन।

४ संस्कृत में ३ वचन होते हैं—एकवचन (एक०) द्विवचन (द्वि०) बहुवचन (बहु०)। तीन पुरुष होते हैं—प्रथम या अन्य पुरुष (प्र० पु०), मध्यम पुरुष (म० पु०), उत्तम पुरुष (उ० पु०)। संबोधन को लेकर आठ कारक (विभक्तियाँ) होते हैं। इनके नाम और चिह्न ये हैं :—

विभक्ति	कारक	चिह्न	विभक्ति	कारक	चिह्न
(१) प्रथमा (प्र०)	कर्ता	— ने	(५) पंचमी (पं०)	अपादान	से
(२) द्वितीया (द्वि०)	कर्म	को	(६) षष्ठी (ष०)	सम्बन्ध	का के की
(३) तृतीया (तृ०)	करण	ने से, द्वारा	(७) सप्तमी (स०)	अधिकरण	में पर
(४) चतुर्थी (च०)	संप्रदान	के लिए	(८) संबोधन (सं०)	संबोधन	हे, अरे भो

५. संस्कृत में क्रिया के १० लकार (वृत्तियाँ) होते हैं। इनके नाम तथा अर्थ ये हैं—(१) लट् (वर्तमान काल), (२) लोट् (आज्ञा अर्थ) (३) लङ् (भूतकाल), (४) विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ), (५) लृट् (भविष्यत् काल) (६) लिट् (परोक्ष भूत), (७) लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), (८) आशीर्लिङ् (आशीर्वाद), (९) लुङ् (सामान्य भूत) (१०) लृङ् (हेतु हेतुमद् भविष्यत्)।

६ धातुओं के रूप तीन प्रकार के चलते हैं अतः धातुएँ तीन प्रकार की हैं—परस्मैपदी (प०; ति तः अन्ति)। आत्मनेपदी (आ०, ते एते अन्ते)। उभयपदी (उ० दोनों प्रकार के रूप)।

७ संस्कृत में १० गण (धातुओं के विभाग) होते हैं। प्रत्येक धातु किसी एक गण में आती है। इनके लिए कोष्ठगत संकेत हैं। भ्वादिगण (१), अदादि (२), जुहोत्यादि (३), दिवादि (४), स्वादि (५), तुदादि (६), रुधादि (७), तनादि (८), क्र्यादि (९), चुरादि (१०)।

८ शब्दकोष में इन संकेतों का प्रयोग किया गया है। इन्हें स्मरण रखें। (क) = संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) = धातु या क्रिया-शब्द। (ग) = अव्यय या क्रिया विशेषण। (घ) = विशेषण शब्द।

शब्दकोष—२५] **अभ्यास १** (व्याकरण)

(क) रामः (राम), पातोत्पातः (उत्थान-पतन), सद्वृत्तः (सदाचारी) दुराचारः (दुराचारी) वैधेयः (मूर्ख) बुभुक्षितः (भूखा), मल्लः (पहलवान) । (७) । (ख) भू (होना), अनुभू (अनुभव करना), प्रभू (१ निकलना, २ समर्थ होना, ३ अधिकार होना, ४ पर्याप्त होना, ५ समाना) पराभू (हराना), परिभू (तिरस्कृत करना), अभिभू (हराना, दबाना), सम्भू (उत्पन्न होना) उद्भू (पैदा होना), आविर्भू (प्रकट होना), तिरोभू (छिप जाना) प्रादुर्भू (जन्म लेना), अर्ह् (योग्य होना), परिहस् (हँसी करना) प्रलप् (बकवास करना) । (१४) । (ग) यथार्थतः (सच, ठीक), नाम (निश्चय से) । (२) । (घ) मधुरम् (मीठा), तीक्ष्णम् (तेज) । (२)

व्याकरण (राम, भू, प्रथमा, द्वितीया)

१ राम शब्द के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो शब्दरूप संख्या १)

२ भू तथा हस् धातु के रूप स्मरण करो । (देखो धातुरूप सं० १, २)

३ भू धातु के उपसर्ग लगाने से हुए विशेष अर्थों को स्मरण करो और उनका प्रयोग करो ।

नियम १—कर्तृवाच्य में कर्ता (व्यक्तिनाम, वस्तुनाम आदि) में प्रथमा होती है और कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा होती है । जैसे—रामः पठति । अश्वो धावति । रामेण पाठः पठ्यते ।

नियम २—किसी को सम्बोधन करने में सम्बोधन विभक्ति होती है । जैसे—हे राम, हे कृष्ण ।

नियम ३—(कर्तुरीप्सिततमं कर्म) कर्ता जिसको (व्यक्ति, वस्तु या क्रिया को) विशेष रूप से चाहता है, उसे कर्म कहते हैं ।

नियम ४—(कर्मणि द्वितीया) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे—स पुस्तकं पठति । स रामं पश्यति । ते प्रश्नं पृच्छन्ति ।

नियम ५—(अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के साथ द्वितीया होती है । जैसे—नृपम् अभितः परितः वा । ग्रामं समया निकषा वा (गाँव के समीप) । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ।

नियम ६—(उभसर्वतसोः कार्या) उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि के साथ द्वितीया होती है । जैसे—कृष्णमुभयतो गोपाः । नृपं सर्वतो जनाः । धिक् नास्तिकम् ।

नियम ७—गति (चलना, हिलना, जाना) अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है । गत्यर्थ का आलंकारिक प्रयोग होगा तो भी द्वितीया होगी । जैसे—गृहं गच्छति । वनं विचरति । तृप्तिं ययौ । मम स्मृतिं याता । उपाध्यायं जगाम । निद्रां ययौ ।

नियम ८—अकर्मक धातुएँ उपसर्ग पहले लगाने से प्रायः अर्थानुसार सकर्मक हो जाती हैं, उनके साथ द्वितीया होगी । जैसे—हर्षमनुभवति । स एकम् अभिभवति । स शत्रुं परिभवति पराभवति वा । वृक्षमारोहति । दिवमुत्पतति । स्वामिचित्तमनुवर्तते ।

नियम ९—स्मृ धातु के साथ साधारण स्मरण में द्वितीया होती है । खेदपूर्वक स्मरण में षष्ठी होती है । जैसे—स पाठं स्मरति (पाठ याद करता है) । बालः मातुः स्मरति ।

अभ्यास १

१ संस्कृत बनाओ—(क) (राम, अद्) १ राम मीठे स्वर से पढ़ता है। २ देवता तेरा चरित लिख रहे हैं। ३ नम्र होकर भी हँसती है। ४ जीवन में उत्थान और पतन सबके ही होते हैं। ५ वह शिशु का ताड़ बनाता है। ६ उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। ७ वह सदाचारी है, अतः उसका सर्वत्र सम्मान होना चाहिए। ८ वह दुराचारी है, अतः आदर के योग्य नहीं है। ९ दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों के बराबर भी छोटे दोषों को देखता है और अपने बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है। १० मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ। ११ मनुष्य का भाग्य रथ-चक्र के समान कभी नीचे जाता है और कभी ऊपर। १२ यह मूर्ख बकवाद करता है। (ख) (भू धातु) १ क्रोध से मोह होता है (भू)। २ भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है। ३ ऐसा कैसे हो सकता है? ४ जो भी हो मैं यह काम अवश्य करूँगा। ५ उस बालक का क्या हाल हुआ? ६ यदि तुम्हें सन्देह हो तो पिताजी से पूछना। ७ दुष्ट, यदि प्रहार करेगा तो जीवित नहीं बचेगा। ८. यह जल आपके पैर धोने का काम देगा। ९. जो पिता पढ़ता है, वह दुःख का अनुभव करता है। १० सज्जन सुख का अनुभव करता है। ११ वृक्ष अपने ऊपर तीक्ष्ण गर्मी को सहन करता है। १२ तुम अपने किए हुए पुण्य कर्मों का फल भोग रहे हो (अनुभू)। १३ लोभ से क्रोध होता है (प्रभू)। १४ गंगा हिमालय से निकलती है (प्रभू)। १५ भाग्य बलवान् है। १६ आप के अतिरिक्त और कौन बचा सकता है। (ग) (द्वितीया) १ उसने प्रश्न पूछा। २ नदी के दोनों ओर खेत (क्षेत्राणि) हैं। ३ नगर के चारों ओर वन है। ४ नगर के पास ही एक सुन्दर उपवन है। ५ भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता है। ६ संसार के ऊपर, अन्दर और नीचे ईश्वर है। ७ शिव वन में घूमता है (विचर्)। ८ यह बात मेरी समझ में आई। ९. वह पेड़ पर चढ़ता है। १० छात्र पाठ याद कर रहा है। ११ उसका नाम राम रक्खा गया। १२. उसे नींद आ गई।

संकेत—(क) १ मधुरम्। २. त्वच्चरितम्। ३ नतिमत्यपि हसति भवत्सु सर्वत्र। ४ पतनोत्थाने। ५. शिशुं ताडं रचयति। ६. पुरस्कारमर्हति। ७. सम्मानमर्हति। ८. समादरं नार्हति। ९. खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति। १० नाहं परिहसामि यथार्थम्। ११ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। १२ प्रलपत्येव मूर्खः। (ख) २. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। ३ कथमेवं भवेत्। ४ यद्भावि तद्भवतु। ५. किमभवत्। ६. यदि ते संशयो भवेत्। ७ प्रहरिष्यति—न भविष्यति। ८. इदं ते पादोदकं भविष्यति। ९. दुःखमनुभवति। ११ अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्। १५. प्रभवति विधिः। १६. कोऽन्यो भवतः वस्तु प्रभवति।

शब्दकोष—२५ + २५७५] **अभ्यास २** (व्याकरण)

(क) पदम् (पद) नियोगः (निर्धारित कार्य), शिष्यपदः (शिष्य), अर्थप्रतिपत्तिः (अर्थज्ञान) (४)। (ख) अनुष्ठा (करना), अधिवस् (रहना), उपवस् (उपवास करना, रहना), दण्ड् (दण्ड देना), अवचि (चुनना), मुष् (चुराना) (६)। (ग) तावत् (तो तब), मुहूर्तम् (थोड़ी देर), जोषम् (चुप), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में), किं नु (क्या), अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप), दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में) (१२)। (घ) वाचंयम (मौन), अब्रह्मण्यम् (अनर्थ), सकुसुमास्तरणम् (फूल के बिस्तर से युक्त) (३)।

व्याकरण (पथ, कोद्, द्वितीया)

१ पथ शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या ११)

२ पठ् तथा रक्ष् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु १, ४)

नियम १०—(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण के साथ द्वितीया होती है। बिना के साथ भी द्वितीया होती है। *गंगां यमुनां चान्तरा प्रयागः। ज्ञानमन्तरेण न सुखम्। भवन्तमन्तरेण* (आपके बारे में) *कीदृशोऽस्या अनुरागः। धर्मं बिना न सिद्धिः।*

नियम ११—(अधिशीङ्स्थासां कर्म) अधिशी, अधिस्था और अध्यास् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—*आसनमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।*

नियम १२—(अभिनिविशश्च) अभिनिविश् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—*अभिनिविशते सन्मार्गम्* (सन्मार्ग पर चलता है)। परन्तु *पापेऽभिनिवेशः* भी होता है।

नियम १३—(उपान्वध्याङ्वसः) उप अनु अधि और आ उपसर्ग के साथ वस् धातु होगी तो उसके आधार में द्वितीया होगी, किन्तु उपवास करना अर्थ में सप्तमी होगी। जैसे—*हरिः वैकुण्ठम् उपवसति अनुवसति अधिवसति* (रहता है)। *वने उपवसति* (उपवास करता है)।

नियम १४—(कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) समय और मार्ग की दूरीवाची शब्दों में द्वितीया होती है जब काम निरन्तर हुआ हो। *मासं पठति। क्रोशं गच्छति। क्रोशं कुटिला नदी।*

नियम १५—इन उपसर्गों के साथ इन अर्थों में द्वितीया होती है—अनु (बाद में, घटिया, किनारे) उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप)। जैसे—*जपमनु प्रावर्षत्। अनु हरिं सुराः। नदीमनु सेना। उप हरिं सुराः। अति देवान् कृष्णः। भक्तो हरिमभि वर्तते।*

नियम १६—(दुह्याच्पच्दण्ड्०) ये धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन अर्थोंवाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। जैसे—*गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। अजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति वहति वा।*

अभ्यास २

संस्कृत बनाओ—(क) (गुप्, लोट्) १ जरा रुकिये। २ जरा यह बात बन्द कीजिये। ३ चुप रहो। ४ उस मूर्ख को बकवाद करने दो, तुम धवन या अथवा मौन रहो। ५ अपना काम करो। ६ अपने काम पर आओ। ७ आगे कहिये, वहाँ क्या अनर्थ हो गया। ८ भला या बुरा चाहे जो हो मैं अपने वचन का पालन करूँगा। (ख) (भू) १ मैं कठिन परिश्रम के बिना (विना, अन्तरेण) सफलता नहीं प्राप्त कर सकता हूँ। २ आपका कार्यों पर अधिकार है। ३ यदि आपने आपको सँभाल सकी तो यहाँ से जाऊँगी। ४ यह पहलवान उस पहलवान से जब सकता है। ५ वह व्यक्ति प्रसन्नता से फूला नहीं समाया। ६ अर्थ या कोर्य यह आपका अधिकार है। ७ राजा शत्रु को हराता है (पराभू)। ८ भरत सिंह-शावक को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। ९ कौन तुझे दबा सकता है (अभिभू)। १० आप जैसे विरले ही संसार में जन्म लेते हैं (सम्भू)। ११ दरिद्रता से दुःख उत्पन्न होते हैं (उद्भू)। १२ रात्रि में चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। १३ सुख में सुख उत्पन्न होते हैं (प्रादुर्भू) और दुःख में दुःख। १४ दिन में तारे छिप जाते हैं (तिरोभू) और रात में निकलते हैं (प्रादुर्भू)। १५ यह विचार मेरे मन में आया (प्रादुर्भू)। (ग) (द्वितीया) १ यूनवुक यौवन अमृत है प्रिय का मिलन अमृत है, राजसम्मान अमृत है, जाड़े में आग अमृत है। २ द्युलोक और पृथ्वी के बीच में अन्तरिक्ष है। ३ परिश्रम के बिना सुख नहीं है। ४ धर्म जाने बिना प्राप्ति की योग्यता नहीं होती। ५ मैं आज विद्यालय नहीं गया आचार्य मेरे बारे में क्या सोचेंगे यह चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है। ६ शकुन्तला फूलों के विस्तरवाली शिला पर लेटी है। ७ राम दुर्गम वन में रहे। ८ बालक पलँग पर बैठा है (अध्यास्)। ९ राम सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। १० उसकी पाप में प्रवृत्ति है। ११ राम पंचवटी में बहुत दिन रहे (अधिवस्)। १२ गांधीजी ने अपने आश्रम में २१ दिन का उपवास किया। १३ वह बारह वर्ष गुरुकुल में पढ़ा। १४ वह प्रातः कोसभर घूमने जाता है। १५ यज्ञ के बाद वर्षा हुई। १६ सब कवि कालिदास से घटिया हैं। १७ गंगा के किनारे हरिद्वार है। १८ सब राजा राम से घटिया हैं। १९ कपिल सब मुनियों से बढ़कर हैं। २० राम के पास भक्त हैं। २१ वह गाय का दूध दुहता है। २२ वह राजा से धन माँगता है। २३ वह चावलों से भात पकाये। २४ राजा ने अपराधी पर सौ रुपया जुर्माना किया। २५ वह बकरी को बाड़े में बन्द करता है।

संकेत :—(क) १. तिष्ठतु तावत्। २ मुहूर्तं तावत्…। ३ आस्स्व। ४ अनुतिष्ठ… स्वमौनं नियोजय। ६ …। ७ ततः परं कथय। ८ शुभं वाऽशुभं वा। (ख) १ …। २ प्रभवति भवान् …। ३ यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४ प्रभवति मल्लो मल्लाय। ५ तुष्टः प्रहर्षः प्रभूत… । ६ प्रभवति भवान् … च। १० भवादृशा विरला एव। ११ दारिद्र्यात्। (ग) १. …। ३ …। ५ … माम्… व्याकुलयति। ७ अध्यास्त। ८ पर्यङ्कम्। ११ अध्युवास। १२ … अवसत्। १५ अनु। १६ अनु। १७ गंगामनु। १८ उप। १९ अति मुनीन्। २

शब्दकोष—५० + २५ = ७५] **अभ्यास ३** (व्याकरण)

(क) पिटका (पोटी), संचिका (कापी), लेखनी (होल्डर), कौमुदी (चाँदनी), प्राघुणिकः (अतिथि), आतिथेयः (अतिथि-सत्कारकर्ता), कूर्चम् (दाढ़ी)। (७) (ख) गम् (जाना, सीखना, प्राप्त होना), आगम् (आना), अनुगम् (पीछे जाना), अवगम् (जानना), अधिगम् (प्राप्त करना, जानना), अभ्युपगम् (स्वीकार करना), अभ्यागम् (आना) प्रत्यागम् (लौटकर आना), निगम् (निकलना), संगम् (मिलना) उद्गम् (निकलना उगना), अपगम् (नष्ट होना), उपगम् (पास जाना) परागम् (लौटना), प्रत्युद्गम् (स्वागतार्थ जाना), समधिगम् (पाना, जानना), ताडि (मारना)। (१७)। (घ) असंस्तुतम् (अपरिचित)। (१)

व्याकरण (रमा, मति, नदी, लृट्, तृतीया)

१ रमा, मति, नदी के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४२, ४३)
२. भू तथा अन्य लसम धातुओं के लृट् के रूप स्मरण करो।
३ गम् और पच् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५, ६)

नियम १७—(साधकतमं करणम्) क्रिया की सिद्धि में सहायक को करण कहते हैं।

नियम १८—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करण में तृतीया होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर्ता में। तृतीया मुख्यतः दो अर्थों को बताती है—(१) कर्ता (२) साधन। जैसे—कन्दुकेन क्रीडति, दण्डेन ताडयति, चापेन हन्ति। रामेण पत्रं गम्यते, रामेण पाठः पठितः।

नियम १९—(प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्) प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया होती है। ये शब्द साधारणतया क्रिया-विशेषण या क्रिया-विशेषण-वाक्यांश होते हैं। जैसे—प्रकृत्या साधुः। सुखेन जीवति। दुःखेन जीवति। नाम्ना रामोऽयम्। गोत्रेण काश्यपः। समेनैति।

नियम २०—(अपवर्गे तृतीया) समय और मार्ग की दूरीवाची शब्दों में तृतीया होती है, यदि कार्य की समाप्ति बताई जाए तो। मासेन ग्रन्थोऽधीतः। क्रोशेन पाठोऽधीतः। दशभिर्दिनैरायोध्यां गतवान्।

नियम २१—(सहयुक्तेऽप्रधाने) सह, साकम्, सार्धम्, समम् के साथ तृतीया होती है, साथ अर्थ हो तो। पिता पुत्रेण सह साकं सार्धं समं वा गृहं गच्छति। मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति।

नियम २२—(येनाङ्गविकारः) शरीर के जिस अंग में विकार से विकृत दिखाई पड़े, उसमें तृतीया होती है। नेत्रेण काणः। पादेन खञ्जः। कर्णेन बधिरः। शिरसा खल्वाटः।

नियम २३—(इत्थंभूतलक्षणे) जिस चिह्न से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया होती है। जटाभिस्तापसः। कूर्चेन यवनः। शिखया हिन्दुः।

नियम २४—(हेतौ) कारण बोधक शब्दों में तृतीया होती है। अध्ययनेन वसति। पुण्येन दृष्टो हरिः। श्रमेण धनं विद्या वा भवति। विद्यया यशो लभते।

नियम २५—लङ्, लुङ्, लृङ् में अ या आ शुद्ध धातु से पहले ही लगेगा, उपसर्ग से पूर्व नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग मिलावें। (सन्धिकार्य भी करें)। जैसे—अनुगम्> अन्वगच्छत्, उद्गम्> उदगच्छत्।

शब्दकोष—६७२ + २८ = ७००] अभ्यास २८ (व्याकरण)

(क) मिष्टान्नम् (मिठाई), कान्दविक: (हलवाई), मोदक: (लड्डू), पूप: (पूआ), अपूप: (मालपूआ) कुण्डली (जलेबी), अमृती (इमरती) हैमी (बर्फी), पिष्टक: (पेड़ा), कौष्माण्डम् (पेठे की मिठाई), गुल्फपूपिका (गुलाबजामुन), रसगोल: (रसगुल्ला), शर्करपाक: (शक्करपारा), मधुमस्तक: (बालूशाही) संयाव: (गुझिया), उत्तानिका (मठाई), कूर्चिका (रबड़ी), फलाकन्द: (कलाकन्द), पर्पटी (पपड़ी), घृतपूर: (घेवर), मधुशीर्ष: (मगज), मिश्राक: (मुरब्बा), वाताद: (बताशा), मोहनमोद: (मोहनभोग), यवक्षा: (गजक)। (२५)

व्याकरण (भगवत्, धीमत् शब्द, वद्, स्वप् धातु, कर्तृवाच्य, पदक्रम)

१ भगवत् और धीमत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २, २१)

२ वद् और स्वप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु १४, १५)

नियम १५५—(कर्तृवाच्य) कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्ता के अनुसार ही क्रिया का लिंग, वचन विभक्ति या पुरुष होगा। कर्ता एक० होगा तो क्रिया एक०, द्वि० होगा तो द्वि०, बहु० होगा तो बहु०। बालका: पुस्तकानि पठिष्यन्ति, बालिका: पठिष्यन्ति। कर्तृवाच्य में इन बातों का ध्यान रक्खो—(१) यदि 'च' लगाकर कर्ता अनेक हों तो तदनुसार क्रिया द्वि० या बहु० होगी। यथा रामश्च गच्छत:। नियम १५७ भी देखें। (२) यदि 'वा' लगा हो और प्रत्येक एक० हो तो क्रिया एक०, यदि अन्तिम बहु० हो तो क्रिया बहु०। राम: कृष्णो वा पठतु। (३) कर्ता और कर्म के विशेषणों में कर्ता और कर्म के लिंग, वचनादि लगेंगे। रूपवती स्त्री। (४) कभी 'च' लगाने पर क्रिया अन्तिम कर्ता के अनुसार होती है। उमेश: कमला च पश्यति। (५) विद्यार्थिन्, छत्रम्, अक्षतम् आदि निश्चित लिंग और वचन हैं, इनमें अन्तर नहीं होगा। दारा: कलत्रम्, अक्षता: स्त्रिया, विग्रह: काया।

नियम १५६—(सापेक्ष सर्वनाम) यत् और तत् सापेक्ष सर्वनाम हैं (जो, वह)। जो यत् का लिंग विभक्ति, वचन होगा वही तत् का होगा। गुणिनस्य बले तस्य।

नियम १५७—यदि प्रथम और द्वितीय वाक्य में लिंग भेद होगा तो तत् शब्द का लिंग प्राय: द्वितीय वाक्यवत् होगा। शैत्यं हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य।

नियम १५८—'यत्' शब्द 'कि' अर्थ में भी आता है, तब यह नपुं० एक० ही रहेगा। यह सत्य है कि—सत्यमेतत् यत् सम्यक् सत्यमनुष्ठातीति।

नियम १५९—(पदक्रम) संस्कृत-वाक्यों में शब्दों के क्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। कर्ता कर्म क्रिया आगे पीछे भी रक्खे जा सकते हैं। स पुस्तकं पठति, पुस्तकं पठति स आदि। परन्तु साधारणतया नियम यह है कि :—(१) पहले कर्ता फिर कर्म बाद में क्रिया। कर्ता और कर्म के विशेषण कर्ता और कर्म से पहले रक्खे जायेंगे। (२) सम्बोधन सबसे पहले रक्खा जाता है। (३) कर्मप्रवचनीय अनु प्रति आदि कर्म के बाद आते हैं। (४) सह, ऋते, विना आदि सम्बद्ध शब्द के बाद में आते हैं। (५) च वा तु हि, चेत् वाक्य के प्रारम्भ में नहीं आते। (६) प्रश्नवाचक अपि, किम्, कथम्, किमर्थम् आदि तथा विस्मयादिबोधक अव्यय हा, हन्त आदि प्रारम्भ में आते हैं।

अभ्यास २८

संस्कृत बनाओ—(क) (भगवत्, धीमत्) १ भगवान् काश्यप सकुशल तो हैं। २ भगवन्! मैं पराधीन हूँ। ३ सिद्धि-सम्पन्न महात्माओं की कुशलता अपने हाथ में होती है। ४ विद्वानों के लिए कोई भी चीज अज्ञात नहीं होती। ५ गुणवान् को कन्या देनी चाहिए, यह माता-पिता का मुख्य विचार होता है। ६ सूर्य (भानुमत्) जिस दिशा में उदय होता है, वही पूर्व दिशा होती है। सूर्य दिशा के अधीन होकर उदय नहीं होता। ७ पहाड़ (सानुमत्) की चोटी पर बर्फ दिखाई दे रही है। (ख) (रुद्, स्वप्) १ मैं निराधार हूँ, कहाँ किसके सामने रोऊँ। २ सीता के वियोग में राम की दयनीय स्थिति को देखकर पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। ३ यशोमती आँचल से मुँह ढककर फूट फूट कर बहुत देर रोई। ४ हर पिता के पैर पकड़कर चीख-चीखकर बहुत देर रोया। ५ सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं (विश्वस्)। ६ मुझे इस लँगड़ी का विश्वास नहीं है। ७ इसने पैर उठा कर रखा। (ग) (कर्तृवाच्य) १ जिसके पास पैसा होता है उसके मित्र हो जाते हैं उसके ही बन्धु हो जाते हैं। २ जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है। ३ जो कि शीतलता है वह जल का स्वभाव है। ४ जो कि दूसरे के गुणों की असहिष्णुता है वह दुर्जनों का स्वभाव है। ५ जो जिसके योग्य हो विद्वान् उसे उसको सिखा दे। ६ यह कहावत सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है और विपत्ति के पीछे विपत्ति। ७ दो बालक सौ स्त्रियाँ और एक हजार लोग इस उत्सव में हैं। (घ) (मिश्रप्रयोग) होली का पवित्र पर्व है। सभी ओर आनन्द और उत्साह का संचार है। घरों में स्त्रियाँ लड्डू, पूए, मालपूए, रसगुल्ले, गुझिया, शकरपारे आदि मिठाइयाँ बना रही हैं। हलवाई अपनी दुकानों पर लड्डू, पेड़ा, जलेबी, इमरती, बर्फी, पेठे की मिठाई, गुलाबजामुन, रसगुल्ला, चमचम, बालूशाही, रबड़ी, कलाकन्द, घेवर, मोहनभोग, छेनाभोग, गुझिया बनाते और उनको बेच रहे हैं। लोग अपने लिए और अपने मित्रों के लिए खरीद रहे हैं। मित्रों के घर मिठाइयाँ भेंट के रूप में भेजते हैं।

संकेत—(क) १ अपि कुशली। २. परवशोऽस्मि। ३ स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। ४ न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम। ५. गुणवते कन्या प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् पित्रोः प्रथमः संकल्पः। ६. ककुभि दिशि भास्वान् भानुमान् तां पूर्वाम्। न हि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः। ७. शिखरे हिमं पश्यत। (ख) १ कस्य पुरतो रोदिमि। २. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। ३ अञ्चलेन मुखं प्रच्छाद्य मुक्तकण्ठम् अतिचिरं अरोदीत्। ४ पादौ गृहीत्वा विक्रुश्य चिरं अरोदीत्। ५. सर्वे स्वसखेषु विश्वसिति। ६. नास्यां पङ्गौ विश्वसिमि। ७. धृतमवलम्बितम्। (ग) १. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः। ४ यत्तु परगुणासहिष्णुत्वं स दुर्जनानां स्वभावः। ५. यदेव युज्यते यस्मै बुधस्तेन तं शिक्षयेत्। ६ सत्योऽयं जनप्रवादो यत् सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति विपद् विपदम्। ७. द्वौ बालकौ, शतं स्त्रियः सहस्रं लोकाः। (घ) रचयन्ति, चमचम्, विक्रीणते क्रीणन्ति, पाककारेण प्रेषयन्ति।

शब्दकोश—७०० + २५ = ७२५] अभ्यास २९ (व्याकरण)

(क) चायम् (चाय, टी), चायपानम् (चायपान), चायधानम् (चायदानी), चायपात्रम् (टी पाट), काफी (कॉफी), कन्दु (केतली), सम्पूप (डबलरोटी), भृष्ट पूपः (टोस्ट), पिष्टान्नम् (पेस्ट्री), पिष्टक (बिस्कुट), गुल्मा (टॉफी मीठी गोली), चपीतिः (टी पार्टी), सग्धिः (सहभोज) सहभोजः (डिनर पार्टी)। लवणान्नम् (नमकीन), चणचटः (चाट), समोषः (समोसा), दालमुद्गः (दालमोठ) सेवकाः (नमकीन सेव), पक्ववटिका (पकौड़ी), दधिवटकः (दही-बड़ा), कचालु (कचालू, आलू की टिकिया) कुल्फी (कुल्फी), पुलाकः (पुलाव, तहरी), व्यंजनम् (१ मसाला २ मसालेदार पदार्थ)। (२५)

व्याकरण (महत्, भवत् शब्द; हन्, सु धातु, आत्मनेपद)

१ महत् और भवत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० १२,२१)

२ हन् और सु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु १८, १९)

नियम १७०—(नेर्विशः) नि + विश् आत्मनेपदी होती है। निविशते।

नियम १७१—(परिव्यवेभ्यः क्रियः) परि + क्री, वि + क्री, अव + क्री आत्मनेपदी होती हैं। परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते।

नियम १७२—(विपराभ्यां जेः) वि + जि, परा + जि आत्मनेपदी होती हैं। विजयते, पराजयते।

नियम १७३—(आङो दोऽनास्यविहरणे) आ + दा आत्मनेपदी होती है, मुँह खोलना अर्थ न हो तो। विद्यामादत्ते। परन्तु मुखं व्याददाति (खोलता है)।

नियम १७४—(क) (शिक्षेर्जिज्ञासायाम्) जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष् धातु आत्मनेपदी है। धनुषि शिक्षते। (ख) (हरतेर्गतताच्छील्ये) गति के अनुकरण में हृ धातु आत्मनेपदी है। पैतृकम् अश्वा अनुहरन्ते मातृकं गावः। (ग) (किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु) हर्ष, जीविका और आश्रयस्थान बनाने में कृ धातु आत्मनेपदी है। अप + कृ = अपस्कृ हो जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्टः (भूमि खोदता है), कुक्कुटो भक्षार्थी श्वा आश्रयार्थी। (घ) (आङि नुप्रच्छ्योः) आ + नु, आ + प्रच्छ् आत्मनेपदी होती हैं। आनुते। आपृच्छते (विदा लेता है)।

नियम १७५—(क) (समवप्रविभ्यः स्थः) सम् + स्था, अव + स्था, प्र + स्था, वि + स्था आत्मनेपदी होती हैं। संतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, वितिष्ठते। (ख) (आङः प्रतिज्ञायाम्) आ + स्था प्रतिज्ञा अर्थ में। शब्दं नित्यमातिष्ठते। (ग) (उदोऽनूर्ध्वकर्मणि) उत् + स्था आत्मने० उठना अर्थ न हो तो। मुक्तावुत्तिष्ठते (यत्न करता है)। परन्तु आसनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति (गाँव से सौ रु० लगान मिलता है)। (घ) (उपाद् देवपूजा) उप + स्था आत्मनेपदी होती है, देवपूजा, संगति करना, मित्र बनाना, मार्ग अर्थ में। आदित्यमुपतिष्ठते (पूजता है)। गंगा यमुनामुपतिष्ठते (मिलती है)। कृष्णमुपतिष्ठते (मित्र बनाता है)। पन्थाः प्रयागमुपतिष्ठते (रास्ता प्रयाग को जाता है)।

नियम १७६—(समो गम्यृच्छिभ्याम्) अकर्मक सम् + गम् आत्मनेपदी है। संगच्छते। (अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च) अकर्मक सम् + श्रु, सम् + दृश् आत्मनेपदी हैं। संशृणुते। संपश्यते

अभ्यास २९

संस्कृत बनाओ—(क) (महत्, भवत्) १ यह बड़ा वीर है। २ यहाँ बड़ा अँधेरा है। ३ मैंने एक बड़े शेर और बघेरे को देखा। ४ यहाँ सम्पत्ति का बड़ा ढेर है। ५ बड़े सवेरे चहेड़ियों के हल्ले से जगा दिया गया हूँ। ६ बड़ा आदमी बड़े पर ही अपना पराक्रम दिखाता है। ७ बड़ों की बात बड़ी है। ८ इस विषय में आपका क्या विचार है। ९ आप ही छात्रावासियों की कुशल-स्थिति को जानते हैं। १० आपके मित्र के बारे में कुछ पूछता हूँ। ११ आप आगे चलिए, मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। १२ आप से ही इस विषय का औचित्य-अनौचित्य पूछता हूँ। १३ आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है। १४ आपकी यह प्रार्थना शिरोधार्य है। (ख) (हन्, स्तु) १ राम शत्रु को मारता है। २ शत्रुओं को मारो। ३ राम ने रावण को मारा। ४ हे निषाद, तेरा कभी भला नहीं होगा, तूने क्रौंच के जोड़े में से एक को मारा है। ५ देवदत्त राम की स्तुति करता है। ६ राम ने ईश्वर की स्तुति की। ७ स्तुतिकार मन्त्रों को प्रस्तुत करता है (प्र + स्तु)। ८ मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ कि सभा-संघ का प्रधान राम हो। (ग) (आत्मनेपद) १ हलवाई मिठाई और नमकीन बेचता है (विक्री)। २. वह शत्रुओं को पराजित करता है (पराजि)। ३ आपकी विजय हो (विजि)। ४ यदि कील की नोक पैर में घुस जाती है (विविश्) तो विशल्य कर दो जाता है। ५ वह विद्या ग्रहण करता है (आदा)। ६ वह मुँह खोलता है (व्यादा)। ७ वह मनुष्य की शिक्षा पाता है (शिक्ष्)। ८ लोग पिता की चाल का अनुकरण करते हैं, गौएँ माँ की (अनुकृ)। ९ बैल प्रसन्न होकर जमीन खोदता है (अपकृ)। १० तुम अपने मित्र से विदाई लो (आपृच्छ्)। ११ कृष्ण ने रुक्मिणी के लिए प्रस्थान किया (प्रस्था)। (घ) (पानादिवर्ग) १ आजकल चाय का बहुत रिवाज है। अंग्रेजी ढंग से चाय पीने वाले केतली में पानी उबालकर, टी पाट में चाय डालकर, उस पर उबलता हुआ पानी डाल देते हैं और पाँच मिनट बाद उसे काम में लेते हैं। कुछ लोग काफी भी पीते हैं। उसके साथ वे डबल रोटी, मक्खन टोस्ट, पेस्ट्री और बिस्कुट भी लेते हैं। सहभोज और टी पार्टी में मिठाइयों के साथ समोसा, पकौड़ी, सेव, दालमोठ भी चलते हैं। २ आजकल विद्यार्थियों को चाट, दही-बड़ा, पकौड़ी, कुल्फी और मसालेवाली चीजें अधिक अच्छी लगती हैं।

संकेत—(क) १ महान्। २. महानन्धकारः। ३ महान्तम् व्याघ्रम्। ४ महान् द्रव्य राशिः। ५. महति प्रत्यूषे चाटुकारिकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। ६. महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्। ७. अपूर्वं महतां वृत्तम्। ८ भवता कथं भवान् मन्यते। ९. भवन्तः जानन्ति। १० भवन्मित्रम् किमपि। ११ गच्छतु पुरो भवान्, अहमनुपदमायामि एव। १२. भवन्तमेव गुरुकार्यं पृच्छामि। १३ भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्य हार्दिकः। (ख) १. हन्ति। ३ अहनत्। ४ मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः। ५. रामं स्तौति। ६. अस्तावीत्। ७ स्तोता मन्त्रान् प्रस्तौति। ८. अहम् प्रस्तौमि यत्। (ग) १ विक्रीणीते। २ पराजयते। ३ विजयतां भवान्। ४ विविशते यदि शल्यशिखा पदे तदापि तावदेव विशल्यो भवति। [illegible] आपृच्छस्व सहचरम्। ११ हरिर्रुक्मिण्यै प्रास्थित। (घ) १ अद्यत्वे चायस्य बहुप्रचारः। आङ्ग्लपद्धत्या चायपायिनः पात्रेषु जलं संतप्य चायपात्रे चायं निक्षिप्य तदुपरि तप्तजलं निक्षिपन्ति। २. मधुराम्लानि तेभ्यो रोचन्ते।

शब्दकोष—७२५ + २५ = ७५०]　　अभ्यास ३०　　(व्याकरण)

(क) करण्डः (टोकरा), स्थालिका (थाली), कंसः (गिलास) काचचषकः (काँच का गिलास), कांस्यपात्री (थार), कटोरम् (कटोरा), कटोरी (कटोरी), घटः (घड़ा), उदंचनम् (बाल्टी) पारिधिः (कड़ाह), द्रोणिः (टब), स्थाली (पतीली) स्वेदनी (कड़ाही), ऋजीषम् (तवा), पिष्टपचनम् (तई, कचौरी आदि पकाने की), हसन्ती (अँगीठी), उद्ध्मानम् (स्टोव), पिधानी (ढक्कन), चमसः (चम्मच), दर्वी (चमचा, कलछुल), चषकः (प्याला, कप), शरावः (प्लेट, तश्तरी), उखा (डाल-पैन) हस्तधावनी (चिलमची), सन्दंशः (चीमटा)। (२५)

व्याकरण (पथिन्, महत् शब्द; इ, चित् धातु, आत्मने० परस्मै०)

१ पथिन् और महत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २४, २५)

२ इ और चित् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ११, ४१)

नियम १७७—(स्पर्धायामाङः) आ + ह्वे आत्मने० है, शत्रु को ललकार करना अर्थ में। शत्रुमाह्वयते।

नियम १७८—(उपपराभ्याम्) उप + क्रम्, परा + क्रम् आत्मने० हैं। उपक्रमते, पराक्रमते। (प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्) प्र + क्रम्, उप + क्रम् प्रारम्भ अर्थ में। प्रक्रमते।

नियम १७९—(अपह्नवे ज्ञः) मुकरना अर्थ में ज्ञा आत्मने० है। शतम् अपजानीते (सौ रु० को मुकरता है)। (सम्प्रतिभ्याम्०) सम् + ज्ञा, प्रति + ज्ञा स्मरण अर्थ न हो तो आत्मने०। संजानीते, प्रतिजानीते।

नियम १८०—(उदश्चरः०) उत् + चर् आत्मने० है सकर्मक हो तो। धर्ममुच्चरते। (समस्तृतीयायुक्तात्) सम् + चर् तृतीया के साथ हो तो आत्मने०। रथेन संचरते।

नियम १८१—(ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः) जिज्ञास, शुश्रूष, सुस्मूर्ष और दिदृक्ष ये आत्मनेपदी होती हैं। जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

नियम १८२—(प्रोपाभ्यां युजेः०) प्र + युज्, उप + युज् आत्मने० हैं। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते।

नियम १८३—(भुजोऽनवने) भुज् धातु खाने तथा उपभोग अर्थ में आत्मनेपदी है और रक्षा अर्थ में परस्मैपदी है। ओदनं भुङ्क्ते। परन्तु महीं भुनक्ति।

(परस्मैपद)

नियम १८४—(अनुपराभ्यां कृञः) अनु + कृ, परा + कृ परस्मैपदी हैं। अनुकरोति, पराकरोति।

नियम १८५—(अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः) अभिक्षिप् परस्मैपदी है। अभिक्षिपति।

नियम १८६—(प्राद्वहः) प्र + वह् परस्मैपदी होती है। प्रवहति।

नियम १८७—(व्याङ्परिभ्यो रमः) वि + रम् परस्मैपदी है। विरमति।

नियम १८८—(बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः०) बुध्, युध्, नश्, जन्, इ, प्रु, द्रु, स्रु धातुएँ णिच् प्रत्यय करने पर परस्मैपदी होती हैं। बोधयति पद्मम्। योधयति जनान्। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति वेदम्। प्रावयति। स्रावयति।

नियम १८९—(निगरणचलनार्थेभ्यश्च) निगलना और चलना अर्थ की धातुएँ परस्मैपदी हैं। आशयति, भोजयति। चलयति, कम्पयति।

अभ्यास ३०

संस्कृत बनाओ—(क) (पठ्, धाव्) १ पढ़ते हुए को पाप नहीं लगता। २ मैं जब पढ़ रहा था तब वह आया। ३ गाँव को जाता हुआ किसके को छूता है। ४ कर्मशील मनुष्य उत्तम फल पाता है। ५ सूर्य की शोभा को देखता जो चलता हुआ कभी नहीं थकता। ६ जितने छात्र परीक्षा में बैठे सभी उत्तीर्ण हो गए। ७ वे युद्ध में जितने थे उनमें वह राजा उतने ही रूपों में दिखाई पड़ा। ८ जितना मिला उतना सब खा लिया। (ख) (इ, विद्) १ मूर्ख श्रम को पाता है। २ यदि इच्छा से मनुष्य कन्या को प्राप्त होता है। ३ चन्द्रमा को चाँदनी फिर मिल जाती है। ४ वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। ५ पहले फूल आता है फिर फल आता है। ६ सूर्य लाल ही उदय होता है और लाल ही अस्त होता है। ७ मुझे मित्र मान कर समझो (अव+इ)। ८ नीच यहाँ से हट (अप+इ)। ९ तेरे हृदय से प्रत्यक्ष का दुःख दूर हो (अप+इ)। १० उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है (उप+इ)। ११ जो स्पर्धा करता हुआ सामने आवे (अभि+इ), उसे नष्ट कर दो। १२ वह सत्य नहीं जो छल से युक्त हो। १३ वह गुरु के पीछे जाता है (अनु+इ)। १४ वह मुझ पर विश्वास करता है (प्रति+इ)। १५ जो किसके गुण को नहीं जानता (विद्) वह उसकी सदा निन्दा करता है। १६ जो व्यथा को हल्का समझता है, वह उसे नहीं जानता। १७ मुझे भक्तियों के तुल्य समझो। १८ इस जीवन में अच्छा को काम किया तो अच्छा है नहीं तो बड़ा नाश होगा। (ग) (परस्मैपद) १ राजा पृथ्वी का पालन करता है। २ वह भात खाता है। ३ पाप से बचो। ४ गंगा और यमुना बहती हैं (प्रवह्)। ५ विद्या पुरुष को नम्र करती है और सुख उत्पन्न करती है। (घ) (पात्रवर्ग) खाना-पीना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। भूख और प्यास के निवारणार्थ बर्तनों की आवश्यकता होती है। पानी पीने और रखने के लिए घड़ा, कलश, गागर, गगरी, सुराही, झारी, कमण्डलु, लोटा, काँच का गिलास, गिलास, इन पात्रों की आवश्यकता होती है। पानी बाल्टी, कड़ाल और टब में रक्खा जाता है। खाना बनाने और खाने के लिए थाली, कटोरा, कटोरी, पतीली, कड़ाही, कड़ाह, तवा, दर्वी, ढक्कन, चम्मच, चमचा, चीमटा इनकी आवश्यकता होती है। खाना अंगीठी और स्टोव दोनों पर बनाया जा सकता है। साग-पेन शाकादि बनाने के लिए, प्लेट खाना रखने के लिए, कप चाय पीने के लिए होते हैं।

संकेत—(क) १ पठतो नास्ति पातकम्। २ मयि पठति याति। ३ ग्रामं गच्छति। ४ परत् ते मधु विन्दति। ५ पश्य सूर्यस्य श्रेयाणं यो न तन्द्रयते चरन्। ६ यावन्तः, तावन्तः। ७ ते तु यावन्त एवाजौ, तावांश ददृशे स तैः। ८ यावल्लब्धं तावत् भुक्तम्। (ख) १ निर्बुद्धिः श्रममेति। २ यदीच्छया कन्यामेति। ३ चन्द्रिकां पुनरेति चन्द्रः। ४ ते भरद्वाजमुनेराश्रममीयुः। ५ एति पूर्वं कुसुमं ततः फलम्। ६ उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च। ७ अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः। ८ अपेहि पापे। ९ हृदयात् प्रत्यक्षदुःखमपैतु ते। १० उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। ११ स्पर्धमानोऽभ्येति तं जहि। १२ सत्यं न तच्छलमभ्युपैति। १३ गुरुमन्वेति। १४ स मयि प्रत्येति। १५ न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्। १६ न तां वेत्ति पन्नगम्। १७ विद्धि मां भक्तिभिस्तुल्यम्। १८ इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (ग) १ भुनक्ति। २ भुङ्क्ते। ३ विरम। ४ प्रवहतः। ५ नामयति, जनयति। (घ) पानाशने अवश्यानीयमस्ति (अवश्यम्+इत्यर्थम्) पात्राणाम्, कलशः, गर्गरः, भृङ्गारः, कमण्डलुः, काचपात्रं, चषकः।

शब्दकोष—७५० + २५ = ७७५] अभ्यास ११ (व्याकरण)

(क) अन्त्यजः (शूद्र), चर्मकारः (चमार), संमार्जकः (भंगी), शाकुनिकः (बहेलिया), अजाजीवः (गड़रिया), मायाकारः (जादूगर), शौण्डिकः (सुरा-विक्रेता), कर्मकरः (नौकर), भारवाहः (कुली), मालाकारः (माली), कुम्भकारः (कुम्हार), लेपकः (पुताईवाला), प्रेष्यः (चपरासी), वैतनिकः (वेतन पर नियुक्त नौकर), तस्करः (चोर), पाटच्चरः (डाकू), ग्रन्थिभेदकः (गिरहकट), मृगयुः (शिकारी), मृगया (शिकार), वागुरा (जाल), मार्जनी (झाड़ू), चर्मप्रसेविका (जूता सीने की सुई), उपानह् (जूता, बूट), पादुका (चप्पल), अनुपदीना (गम बूट)। (२५)

व्याकरण (क्षुध्, आप्, कर्म-भाव-वाच्य)

१ क्षुध् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २६)

२ आप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४४)

नियम १९०—संस्कृत में ३ वाच्य होते हैं :—१ कर्तृवाच्य २ कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में चलते हैं। अकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और भाववाच्य में चलते हैं। अकर्मक की साधारण पहचान है कि क्या किम् (क्या किसको) का प्रश्न न उठे। १ कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। २ कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है। कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरुष, वचन, लिंग होगा। कर्मवाच्य में कर्ता में तृ०, कर्म में प्र०, क्रिया कर्म के अनुसार। ३ भाववाच्य में कर्ता में तृ०, कर्म नहीं, क्रिया में प्रथम पु० एक०।

नियम १९१—(सार्वधातुके यक्) कर्मवाच्य और भाववाच्य में सार्वधातुक लकारों (अर्थात् लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में धातु के अन्त में य लगेगा। धातु का रूप आत्मनेपद में ही चलेगा, धातु चाहे किसी पद की हो। अन्य लकारों में य नहीं लगेगा। धातु के रूप य लगाकर बुध् (धातु० सं० १६) के तुल्य चलेंगे। लृट् में इष्यते या स्यते लगेगा। जैसे—गम्>गम्यते, गम्यताम्, अगम्यत, गम्येत, गमिष्यते।

नियम १९२—(क) लिट् में लिट् करके आत्मनेपदी के तुल्य रूप होंगे। जैसे—गम्>जग्मे, भू>बभूवे, नी>निन्ये, क्षिप्>चिक्षिपे। शेष लिट् के तुल्य रूप समझो। जिन धातुओं के अन्त में 'आम्' लगता है, उनमें आम् लगाकर कृ, भू, अस् के रूप आत्मनेपद में चलेंगे। जैसे—कथयाञ्चक्रे, कथयाम्बभूवे, कथयामासे। (ख) लुट्, लृट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में भी सेव् (धातु० २) के तुल्य रूप चलेंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। जैसे—गमिता, गमिष्यते, गमिषीष्ट, अगमिष्यत।

नियम १९३—लुङ् प्र० पु० एक० में धातु के अन्त में इ लगेगा। बाद के त का लोप होगा। 'इ' से पूर्व धातु के अन्तिम इ, उ, ऋ को वृद्धि होगी, उपधा में अ होगा तो उसे आ और उपधा के इ उ ऋ को गुण होगा। जैसे—अकारि, अगामि, अपाचि, अबोधि। लुङ् में धातु के बाद प्रत्यय इस प्रकार होंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में इ नहीं लगेगा। प्र० पु०—इ, इषाताम्, इषत। म० पु०—इष्ठाः, इषाथाम्, इढ्वम्। उ० पु०—इषि, इष्वहि, इष्महि।

अभ्यास ११

संस्कृत बनाओ—(क) (बुध् शब्द) १ विद्वानों की संगति से मूर्ख भी प्रवीण हो जाते हैं। २ विद्वानों के साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करें (वृत्)। ३ विद्वानों के साथ ही उठे, बैठे, वाद और विवाद करे। (ख) (आस् धातु) १ आपको जहाँ अच्छा लगे, वहाँ बैठिए। २ आप इस आसन पर बैठिए। ३ यहाँ देवता रहते हैं। ४ उसने स्वागतवचन से अतिथि का अभिनन्दन करके अपने आसन पर बैठने के लिए उसे निमन्त्रित किया। ५ बैठे हुए का ऐश्वर्य भी बैठा रहता है और खड़े हुए का ऐश्वर्य खड़ा हो जाता है। ६ राजा सिंहासन पर बैठा (अध्यास्त)। ७ उस ईश्वर की शिव नाम से उपासना करते हैं (उपासते)। ८ दोनों सखियों के द्वारा शकुन्तला की सेवा की जा रही है (अन्वास्यते)। (ग) (कर्मवाच्य) १ कल्याण के विषय में किसकी रुचि होती है? २ क्या तुम्हारी आज्ञा टाली जा सकती है? ३ मेरी ओर से सारथि से कहना। ४ यह शकुन्तला पतिगृह को जा रही है सब स्वीकृति दें। ५ जाने के समय में देर हो रही है। ६ स्त्रियों में बिना शिक्षा के भी चतुरत्व देखा जाता है। ७ तुम्हारी प्रार्थना के योग्य ही कोई नहीं दीखता है। ८ तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है। ९ धर्मवृद्धों में आयु नहीं देखी जाती। १० रत्न किसी को नहीं ढूँढता, वह स्वयं ढूँढा जाता है। ११ गेरुए वस्त्र पहनने की स्वीकृति से मुझे अनुगृहीत कीजिए। १२. पुराने कर्मफलों को कौन टाल सकता है। १३ किसको टाला जा सकता है। १४ दुर्भाग्य ने ऐसा सर्वनाश किया कि विजय की आशा तो दूर रही जीवन की आशा भी संदिग्ध दिखाई देती थी। १५ मेरे द्वारा तुम्हारा मुखकमल देखा गया। (घ) (उपसर्ग) शूद्र समाज के योग्य सेवक होते हुए भी अपनी कुछ न्यूनताओं के कारण समाज की दृष्टि में नीच गिने जाते हैं। उनमें से बहुतेरे बहुत अच्छा काम करते हैं। जैसे—चमार चमड़ा सीने की सुई से जूतें चप्पलें आदि को सीता है और उनकी मरम्मत करता है भंगी झाड़ू से मकानों और सड़कों को साफ करता है गडरिया बकरियों को पालता है, कुली भार ढोते हैं माली फूलों से मालाएँ बनाता है, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है, पुताईवाला कलई से मकानों को पोतता है चपरासी संवादों को यथास्थान पहुँचाता है। कुछ बुरा काम करते हैं अतः ये निन्दनीय हैं। जैसे—बहेलिया जाल डालकर पक्षियों को मारता है, सुराविक्रेता शराब पीता है, चोर चोरी करता है डाकू दीवार में सेंध मारता है, गिरहकट जेब कतरता है, शिकारी शिकार खेलता हुआ निरपराध जीवों की हत्या करता है।

संकेत—(क) १. प्रावीण्यमुपयान्ति। २. वर्तेत। (ख) १ रोचते। २. यत्रासनम् [illegible] आस्यताम्। ३. आसते। ४ स्वागतवचनमभिनन्द्य स्वासनेऽपवेष्टुम् [illegible] निमन्त्रयाञ्चकार। ५. आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः। (ग) १. श्रेयसि केन तृप्यते। २ विलङ्घ्यते। ३. [illegible] सारथिः। ४ [illegible]। ५. अतिपात्यते गमनवेला। ६. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वं संलक्ष्यते। ७. न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते। ८. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। ९. धर्मवृद्धेषु। १० न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। ११ काषायग्रहणानुज्ञया अनुगृह्यतामयं जनः। १२ पुराकृतानि [illegible]। [illegible] [illegible] लङ्घ्यते। १४ दैवदुर्विपाकेन [illegible] दूरे [illegible]। १५. वदनम्। (घ) [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

शब्दकोश—७७५ + २५ = ८००] अभ्यास १२ (व्याकरण)

(क) कारुः (शिल्पी), नापितः (नाई), रजकः (धोबी), निर्णेजकः (ड्राई क्लीनर) रंजकः (रंगरेज), श्रेणिः (शिल्पि-संघ), कुलिकः (शिल्पि-संघ का अध्यक्ष), तन्तुवायः (जुलाहा), सौचिकः (दर्जी), चित्रकारः (चित्रकार, पेन्टर), लोहकारः (लुहार), स्वर्णकारः (सुनार), शौल्बिकः (ताँबे के बर्तन बनानेवाला), त्वष्टृ (बढ़ई), स्थपतिः (राज), भस्मचूर्णम् (सीमेंट), इष्टका (ईंट), सूचिः (सिलाई), यन्त्रम् (मशीन), उपहासचित्रम् (कार्टून), वर्तिका (ब्रुश), कर्तरी (कैंची), तक्षणी (बसूला), अयोघनः (हथौड़ी), करपत्रम् (आरी)। (२५)

व्याकरण (आत्मन्, राजन्, धी, अधि+इ, कर्म-भाव-वाच्य)

१. आत्मन् और राजन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द २७, २८)

२. धी और अधि+इ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ४५, ४६)

नियम १९४—धातु से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में ही ये नियम लगते हैं। (क) धातु के अन्त में 'य' लगेगा। आत्मनेपद ही होगा। धातु को गुण नहीं होगा। धातु मूलरूप में रहेगी। गच्छ्, पिब्, जिघ्र् आदि नहीं होंगे। साधारणतया धातु में अन्तर नहीं होता। जैसे—भूयते, पठ्यते, लिख्यते, गम्यते। (ख) (घुमास्था गापा) आकारान्त धातुओं में इनके ही आ को ई होगा। दा, धा, मा, स्था, गा, पा (पीना) हा (छोड़ना), सा। अन्यत्र आ ही रहेगा। जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, स्थीयते, गीयते, पीयते, हीयते, सीयते। (ग) (अकृत्सार्वधातुकयोः) धातुओं के अन्त में इ को ई, उ को ऊ हो जायगा। जि> जीयते, चि> चीयते, श्रु> श्रूयते। किन्तु श्वि को सम्प्रसारण होने से शूयते होगा और धी का धीयते रूप होगा। (घ) (रिङ् शयग्लिङ्क्षु) ह्रस्व ऋ अन्तवाली धातुओं के ऋ के स्थान पर 'रि' हो जाएगा। जैसे—कृ, हृ, धृ, मृ, सृ के क्रमशः क्रियते, ह्रियते, ध्रियते, म्रियते, स्रियते। किन्तु ऋ धातु को और संयुक्ताक्षर आदिवाली ऋकारान्त धातु को गुण होता है। (गुणोऽर्ति)। जैसे—ऋ> अर्यते। स्मृ> स्मर्यते। (ङ) (ऋत इद्धातोः, उदोष्ठ्यपूर्वस्य) दीर्घ ॠ अन्तवाली धातुओं के ॠ को ईर् होगा। यदि पवर्ग पहले होगा तो ऊर् होगा। जैसे—कॄ> कीर्यते, गॄ> गीर्यते, तॄ> तीर्यते, शॄ> शीर्यते। पॄ> पूर्यते। (च) (वचिस्वपि यजादीनाम्) वच्, स्वप्, ग्रह्, यज्, वप्, वह्, वद्, वस्, प्रच्छ् आदि धातुओं को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् य् को इ, व् को उ, र् को ऋ। (सू.) वच्> उच्यते, स्वप्> सुप्यते, ग्रह्> गृह्यते, यज्> इज्यते, वप्> उप्यते, वह्> उह्यते, वद्> उद्यते, वस्> उष्यते, प्रच्छ्> पृच्छ्यते। (छ) (अनिदिताम्) धातु के बीच के न् का प्रायः लोप हो जाता है। मन्थ्> मथ्यते, बन्ध्> बध्यते, भ्रंश्> भ्रश्यते, स्रंस्> स्रस्यते। इनमें न् रहेगा—नन्द्यते, चिन्त्यते, निन्द्यते। (ज) इन धातुओं के स्थान पर ये हो जाते हैं—ब्रू> वच्, अस्> भू, अज्> वी। उच्यते, भूयते, वीयते। (झ) खन्, जन्, तन्, सन् के दो रूप होते हैं न् को आ विकल्प से होगा। जैसे—खायते खन्यते। (ञ) चुरादि० और णिच् प्रत्ययवाली धातुओं के इ (अय) का लोप हो जायगा। चोर्यते, कथ्यते, गण्यते।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ—(क) (आत्मन्, राजन्) १ अपने आपको प्रकट करने का यह मौका है। २ तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो। ३ यदि अपने आपको संभाल सका तो, यहाँ से जाऊँगा। ४ यहाँ राजा और मन्त्रिगण के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। ५ यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है। ६ यह तो अपने स्वभाव पर आ गया है। ७ आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया? ८ अति हर्ष उसके मन में नहीं समाता। ९ अपने में बड़े महत्त्व का आरोप करके राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। १० शिष्टों को भी अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं होता। ११ जैसा राजा वैसी प्रजा। १२ मैं राजा को कुछ नहीं समझता। १३ राज-रहित देश में शान्ति नहीं होती। १४ राजा को अहित की भी चिन्ता करनी चाहिए। १५ राजा को चाहिए कि आपत्ति-ग्रस्तों का दुःख दूर करे। (ख) (शी अधि+इ) १ वह हाथ का तकिया लगाकर सोई। २ इधर मोर सो रहे हैं। ३ क्यों निश्चिन्त सो रहे हो। ४ उसने वेदों को पढ़ा। (ग) (कर्मवाच्य) १ चित्र में जो कुछ ठीक नहीं है, उसे ठीक कर रहा हूँ। २ पुण्य जभी तक है, तब तक वह स्थान से हीन नहीं होता। ३ सोने की आग में ही स्वच्छता और कालिमा दीखती है। ४ विकार के कारण के विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते वे धीर हैं। ५ पर उपदेश कुशल बहुतेरे। ६ क्यों गोलमाल बात करते हो। ७ गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है। ८ इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। ९ यह बात समाप्त करो। १० आगे की बात समझ ली। ११ विपत्ति में भी उसका धैर्य नष्ट नहीं होता। १२ यह देवदत्त नाम से पुकारा जाता है। १३ बेकार कहाँ जा रहे हो? १४ और कोई रास्ता नहीं दीखता है। (घ) (णिजन्तवर्ग) शिष्य-संघ शिष्यों का संगठन करता है। उनको उचित कामों में नियुक्त करता है। धोबी कपड़ों को धोता है। ड्राईक्लीनर वस्त्रों को मशीन से धोता है और उन पर प्रेस करता है। जुलाहा सूत से वस्त्रों को बुनता है। दर्जी टेपनाप से कपड़ों पर निशान लगाता है और कैंची से काटकर उन्हें सिलाई की मशीन से सीता है। चित्रकार ब्रुश से चित्र को रंगता है और कार्टून बनाता है। बढ़ई आरी से लकड़ी चीरता है, बसूले से उसे छीलता है और हथौड़ी से कीलों को ठोकता है। राज सीमेंट से ईंटों को जोड़कर मकान बनाता है।

संकेत—(क) १ अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। २ आत्मनो दृष्टान्तेनैव पश्यसि। ३ यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४ राजामात्यगणाभ्यां समं ममान्तरात्मा प्रसीदति। ५ एष तवात्मनो मनोरथः। ६ गुप स्वात्मनः प्रकृतिम्। ७ किमिति भवताऽऽत्मा आगमनक्लेशस्य पदमुपनीतः। ८ मुदा महर्षो प्रभूत मात्मनि। ९ आत्मन्यारोपितगौरवाभिमानाः। १० आत्मन्यप्रत्ययः। ११ यथा राजा। १२ राजेति का गणना मम। १३ अराजके जनपदे। १४ अहितमपि चिन्तनीयम्। १५ आपन्नजन वेदनापहरणमेव राज्ञा कर्तव्यम्। (ख) १ अशेत सा बाहुलतोपधायिनी। ४ अध्यैत। (ग) १ क्रियते तदनुरूपता। २ पात्रमात्मानं हीयते। ३ हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। ४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। ५ सुलभमुपदिश्यते परस्य। ६ किमिति अप्रस्तुतम् अनुभाष्यते। ७ पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ८ न मे किञ्चिद् छिद्यते। ९ संक्षिप्यतामियं कथा। १० परस्तादवगम्यते। ११ न हीयते। १२ आहूयते। १३ अनिर्दिष्टकारणं गम्यते। १४ अन्यन्मार्गं नालोक्यते। (घ) धावति यन्त्रेण वैदेशिक, क्षालयति, सूचीयन्त्रेण, रंजयति, चित्रयति, तक्षति, कीलान् ठोकयति, संयोज्य।

शब्दकोश—८०० + २५ = ८२५] अभ्यास २४ (व्याकरण)

(क) क्षुरम् (उस्तरा), क्षुरकम् (ब्लेड), उपक्षुरम् (सेफ्टी रेजर), कर्तनी (बाल काटने की मशीन), धारमार्जः (धार धरनेवाला), तैलकारः (तेली), तैलयन्त्रम् (कोल्हू), मिस्त्रः (मिस्त्री), अयस् (लोहा आयरन), छेदनम् (छेनी), आविधः (बर्मा), यान्त्रिकः (मिस्त्री, मैकेनिक), सूत्रम् (धागा), सूचिका (सुई), पादुरंजकः (पालिश), वेतनम् (वेतन), भाटकम् (भाड़ा), भृतकारः (मजदूरी), मण्डा (माँड़ी), नीली (नील), शिल्पशाला (फैक्टरी)। (२१)। (ख) कृत् (काटना), अयस्+कृ (लोहा करना), मण्डा+कृ (कलफ करना), नीली+कृ (नील लगाना)। (४)।

व्याकरण (श्वन्, युवन्, कृ, भी, णिच् प्रत्यय)

१. श्वन् और युवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २६, ३)

२. कृ और भी धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ४८, ४९)

नियम १९१—(हेतुमति च) प्रेरणार्थक धातु उसे कहते हैं, जहाँ कर्ता स्वयं काम न करके दूसरे से काम कराता है। जैसे—पढ़ना>पढ़वाना, लिखना>लिखवाना, जाना>भेजना, करना>कराना। प्रेरणार्थक धातु में मूल धातु के अन्त में णिच् (अर्थात् अय) लगा जाता है। धातु के रूप दोनों पदों में चुर् धातु के तुल्य (देखो धातु १०) चलेंगे। धातु के अन्तिम ह्रस्व और दीर्घ इ, उ, ऋ को वृद्धि (अर्थात् क्रमशः ऐ, औ, आर्) हो जाता है, बाद में अयादि सन्धि भी। उपधा (अर्थात् अन्तिम अक्षर से पूर्व अक्षर) में अ को आ तथा इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। जैसे—कृ>कारयति, नी>नाययति, भू>भावयति, पठ्>पाठयति, लिख्>लेखयति। गम् का गमयति।

नियम १९२—प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है और कर्म में पूर्ववत् द्वितीया ही रहती है। क्रिया कर्ता के अनुसार रहती है। जैसे—शिष्यः लेखं लिखति>गुरुः शिष्येण लेखं लेखयति। नृपः भृत्येन कार्यं कारयति।

नियम १९३—(गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०) इन अर्थोंवाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया न होकर द्वितीया होती है—चलना, जानना, समझना, खाना (अद्, खाद्, भक्ष् को छोड़कर), पढ़ना, अकर्मक धातुएँ, बोलना, देखना (दृश्), सुनना (श्रु), प्रवेश (प्रविश्), चढ़ना (आरुह्), छिपना (वप्), ग्रहण (ग्रह्), प्राप्ति (प्राप्), पीना, ले जाना (हृ), (नी और वह् को छोड़कर)। जैसे—बालकः गृहं गच्छति>बालं गृहं गमयति। शिष्यः वेदम् अवगच्छति>शिष्यं वेदम् अवगमयति। पुत्रः अन्नं भुङ्क्ते>माता पुत्रम् अन्नं भोजयति। शिष्यः पाठं पठति>गुरुः शिष्यं पाठं पाठयति। पृथ्वी सलिले आस्ते>पृथ्वीं सलिले आसयत्। (क) (नीवह्योर्न) नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। (ख) (नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः) वाहयति रथं वाहान् सूतः। (ग) (आदिखाद्योर्न) आदयति खादयति वान्नं बटुना। (घ) (भक्षेरहिंसार्थस्य न) भक्षयत्यन्नं बटुना। (ङ) (जल्पतिप्रभृतीनाम्०) जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। (च) (दृशेश्च) दर्शयति हरिं भक्तान्। (छ) (शब्दायतेर्न) शब्दाययति देवदत्तेन।

अभ्यास ११

संस्कृत बनाओ :—(क) (श्वन्, युवन्) १ कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नहीं काटता है। २ पण्डित कुत्ते और चाण्डाल को समान मानते हैं। ३ काच मणि और कांचन को एक धागे में पिरो रही हो, हे बाले, यह उचित नहीं है। उसने कहा—सर्ववित् पाणिनि ने तो एक सूत्र में कुत्ता युवक और इन्द्र तीनों को डाला है। ४ विद्वानों ने सेवा को श्ववृत्ति माना है। ५ युवक भुलक्कड़ होते हैं। ६ अति सुन्दर रमणी जिस प्रकार युवकों के मन को हरण करती है उस प्रकार कुमारों के नहीं। ७ यौवन के प्रारम्भ में प्रायः युवकों की बुद्धि कलुषित हो जाती है। (ख) (हु, भी धातु) १ यहाँ पर अग्नि में हवन करो। २ उसने मन्त्रपूत शरीर का भी अग्नि में हवन कर दिया। ३ हे बालक, तू मृत्यु से क्यों डरता है वह भयभीत को भी नहीं छोड़ता। ४ मत डरो। ५ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदों का उद्धार करेगा। हे वीर मत डरो अभी पृथ्वी पर कुमारिल भट्ट जीवित है। (ग) (णिच् प्रत्यय) १ उसने विषय-सुखों से विरक्त हो जीवन को बिताया। २ उन्होंने अपने काम को ठीक निभाया। ३ उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। ४ ये यहाँ स्वीकृति-सूचक अर्थ बताते हैं। ५ पिता पुत्र से खेल खिलवाता है। ६ धनिक नौकर से काम कराता है। ७ पुत्र को घर भेजता है। ८ पुत्र को वेद पढ़ाता है। ९ माता पुत्र को फल खिलाती है। १० गुरु शिष्य को वेद पढ़ाता है। ११ पुस्तक मेज पर रखवाई। १२ वह नौकर से मार डलवाता है। १३ छात्रों को चित्र दिखाता है। १४ मैं यह पत्र उसके पास पहुँचा दूँगा। १५ बच्चा सिर हिला रहा है। (घ) (णिसिचर्गौ) १ नाई बाल काटने की मशीन से बाल काटता है और उस्तरे से दाढ़ी बनाता है। आजकल अधिक लोग सेफ्टीरेजर से स्वयं ही दाढ़ी बना लेते हैं। २ धोबी कपड़ों को धोकर नील लगाता है, कलफ करता है और उनपर लोहा करता है। ३ फैक्टरी में मिस्त्री मशीनों को ठीक करता है। ४ मिलों में मजदूर काम करते हैं। ५ तेली कोल्हू के द्वारा तिलों से तेल निकालता है, धार रखनेवाला पत्थरे पर धार रखता है, बढ़ई छेनी से आरे को काटता है, बर्मा से लकड़ी में छेद करता है, दर्जिन सुई-धागे से वस्त्र सीती है।

संकेत—(क) १ क्रियते, स किं नाश्नात्युपानहम्। २ शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः। ३ काचं मणिं कांचनमेकसूत्रे ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रम्। अशेषवित् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह। ४ श्ववृत्तिं विदुः। ५ युवानो विस्मरणशीलाः। ६ यथा सुलक्षणा परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्तःकरणं नैव कुरुते। ७ यौवनारम्भे प्रायः युवमतिः कलुष्यति। (ख) १ अत्राग्नौ जुहुधि। २ सो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्। ३ बालोऽबिभेषि किं मृत्योः स भीतं न विमुञ्चति। ४ मा भैषीः। ५ [illegible] करोमि क्व गच्छामि। को वेदानुद्धरिष्यति। मा बिभेहि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले। (ग) १ जीवितमत्यवाहयत्। २ तत् निरवाहयत्। ३ प्रतिज्ञामपालयत्। ४ ते कर्मी अङ्गीकारार्थं गमयन्ति। ७ गमयति। ८ अध्यापयति। ९ भोजयति। ११ स्थापयत्। १२ घातयति। [illegible] दर्शयति। १४ तत्र इदं प्रापयिष्यामि। १५ मूर्धानं चालयति। (घ) १ नापितः क्षुरेण मुण्डयति। २ धावयति। ३ संशोधयति। ४ श्रमिकाः। ५ निष्कासयति धारं तेजयति, छिनत्ति सीव्यति।

शब्दकोष—८२५ + २५ = ८५] अभ्यास ३४ (व्याकरण)

(क) शाकम् (साग), आलुः (आलू), रक्ताङ्गः (टमाटर), गोजिह्वा (गोभी), कलायः (मटर), मण्टाकी (भाँटा, बैंगन), वंगनः (बैंगन), भिण्डकः (भिंडी), टिंडिशः (टिंडा), अरुकः (अरुई), कूष्माण्डः (कद्दू), गृञ्जनम् (गाजर) मूलकम् (मूली) श्वेतकन्दः (शलजम), पालकी (पालक), वास्तुकम् (बथुआ), सिम्बा (सेम), सुसिम्बः (फ्रासबीन, फ्रेंच बीन) कर्कटिनी (तोरई), कुन्दरुः (कुन्दरु) पटोलः (परवल), कारवेल्लः (करेला), कर्कटी (ककड़ी) पनसम् (कटहल) शृङ्गः (सफाव)। (२५)

व्याकरण (बृहत्, मघवन्, हा ही णिच् प्रत्यय)

१ बृहत् और मघवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११, १२)

२ हा और ही धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५ ५१)

नियम १९८—मूलधातु से प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (क) धातु से णिच् (अय) प्रत्यय लगता है। नियम १९५ के अनुसार वृद्धि या गुण। (ख) (मितां ह्रस्वः) इन धातुओं के उपधा (उपान्त्य स्वर) के अ को आ नहीं होता। गम्, रम्, क्रम् नम्, शम् दम् जन् त्वर् घट्, व्यथ्, ज्वर्। गमयति, रमयति क्रमयति, नमयति, शमयति, दमयते, जनयति, त्वरयति, घटयति व्यथयति, ज्वरयति। अन्यत्र अ को आ होगा। पाठयति, कामयते, यापयति। (ग) (अर्त्ति ह्री० पुक् णौ) आकारान्त धातुओं के अन्त में णिच् से पहले 'प' और लगा जाता है। जैसे—दा> दापयति, धा> धापयति स्ना> स्नापयति, मा> मापयति, स्था> स्थापयति। (घ) (शाच्छासाह्वा) इन आकारान्त धातुओं में बीच में 'य्' लगेगा। शो (शा), छो (छा), सो (सा) ह्वे (ह्वा) व्ये (व्या) वे (वा), और पा। जैसे—शाययति, ह्वाययति पाययति (पिलाता है)। (पातेर्णौ लुक्) पा (रक्षा करना) का रूप पालयति होगा। (ङ) (क्रीङ्जीनां णौ) इनके ये रूप होते हैं—क्री> क्रापयति (खरीदवाना), अधि + इ> अध्यापयति (पढ़ाना) जि> जापयति (जिताना)। (च) इन धातुओं के ये रूप हो जाते हैं—रुह्> रोपयति (सींचना) हन> घातयति (वध करना), दुष्> दूषयति (दोष देना), रुह् > रोपयति रोहयति (उगाना) ऋ> अर्पयति (देना), ह्रेपयति (लज्जित करना), वि + ली> विलीनयति विलापयति (पिघलाना), भी> भापयते, भीषयते (डर की वस्तु से डराना) भाययति (केवल डराना), वि + स्मि> विस्मापयते (किसी कारण से विस्मित करना), विस्माययति (केवल विस्मित करना), सिध् > साधयति (बनाना) सेधयति (निश्चय कराना) रञ्ज् > रञ्जयति (प्रसन्न करना), रजयति (शिकार खेलना), इ (जाना)> गमयति (भेजना) अधि + इ (जानना)> अधिगमयति (समझाना, याद दिलाना), प्रति + इ> प्रत्याययति (विश्वास दिलाना), गुह् > गूहयति (छिपाना), धू> धूनयति (हिलाना), प्री> प्रीणयति (प्रसन्न करना), मृज् > मार्जयति (साफ कराना), शद्> शातयति (गिराना), शादयति (भेजना)। (छ) चुरादिगण की धातुओं के रूप णिच् में वैसे ही रहते हैं। (ज) कर्मवाच्य और भाववाच्य में णिजन्त धातु के अन्तिम इ (अय) का लोप हो जाता है। जैसे—पाठ्यते, कार्यते, हार्यते, धाप्यते भाव्यते, गम्यते।

अभ्यास १४

संस्कृत बनाओ—(क) (वृत्रहन्, मघवन्) १ इन्द्र ने वृत्र का वध किया। २ मैं इन्द्र के संमान से अनुगृहीत हूँ। ३ इन्द्र का यश प्रत्येक घर में गाया जाता है। ४ इन्द्र का वज्र दैत्य-सेना का संहार करता है (संह्)। (ख) (हा, ही) १ हे अर्जुन, जब मनुष्य सभी मनोगत कामनाओं को छोड़ देता है और अपने आप में सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। २ तृष्णा को छोड़ दो। ३ तुमने जो सीता को छोड़ दिया है, यह क्या तुम्हारे कुल के अनुकूल है। ४ विपत्ति में भी उसका धैर्य क्षीण नहीं होता। ५ पुत्रवधू श्वसुर से शर्माती है। ६ आपके साथ गुरुजनों के समीप जाने में मुझे लज्जा अनुभव होती है। ७ हमें आपसे ही शर्म लगती है औरों के सामने तो कहना ही क्या? (ग) (णिच् प्रत्यय) १ शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को कौन खिड़की से रोकता है? २ मैं सड़क पर रहूँगा वहाँ आवाज दे देना। ३ यह विवाद ही विश्वास दिलाता है कि तुम झूठ बोल रहे हो। ४ पार्वती ने अपनी करुण-कथा सुनाकर अनेकों बार सखियों को रुलाया। ५ वह मुझे पिता मानता है। ६ मैं किसके सिर दोष मढ़ूँ। ७ वह फिर अपने काम में लग गया। ८ विद्या धन से बढ़कर है। ९ अपना समाचार पत्र में लिख दो। १० वह अभी तक अपने आपको नहीं सँभाल पाया। ११ होनहार बिरवान के होत चीकने पात। १२ उसने किसी तरह आठ वर्ष बिताए। १३ उसने दासी को रानी बना दिया। १४ मौका हाथ से न जाने दे। १५ सज्जनों का मेल शीघ्र ही विश्वास दिलाता है। १६ प्रतिज्ञा केवल उत्सुकता को शान्त करती है। १७ बड़े दुःख को भी आशा का बन्धन सहन करा देता है। १८ दिन चन्द्रमा को जितना धूमिल करता है उतना कुमुदिनी को नहीं। (घ) (शाकादि-वर्ग) हरा साग और सलाद स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद है। अनेकों साग हैं किसी को कोई अच्छा लगता है, किसी को कोई। कुछ लोग बदल-बदलकर आलू, टमाटर, गोभी, मटर, बैंगन, भिण्डी, घिया, लौकी, कद्दू, गाजर, मूली, शलगम, परवल, पालक, बथुआ, सेम, [illegible], करेला और कटहल का साग खाते हैं। कुछ लोग दो-तीन साग को मिलाकर बनाते हैं या एक ही समय दो-तीन साग बनाते हैं।

संकेत—(क) ४. संहरति। (ख) १ प्रजहाति यदा कामान् आत्मन्येवात्मना तुष्टः। २ जहीहि। ३ अहासीः, सदृशं कुलस्य। ४ तस्य धैर्यं न हीयते। ५ जिह्रेति। ६ जिह्रेमि आर्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। ७. भवतोऽपि जिह्रीमः किं पुनरन्येभ्यः। (ग) १. शरीरनिर्वापयित्रीम् पटान्तेन वारयति। २. मां प्रासादे आह्वाययेः। ३ प्रत्याययति। ४ निशाम्य अरोदयत्। ५. मां पितरं मानयति। ६. कं दोषभाजं स्थापयामि। ७. भूयो स्वकर्मणि अलगत्। ८ अतिरिच्यते। ९. वृत्तं पत्रमारोपय। १० न अद्यापि पर्यवस्थापयति आत्मानम्। ११ आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रजातानि शुभानि निमित्तानि। १२ केनापि परिगमिताः समाः अष्ट। १३ महिषीपदं प्रापिता। १४. न कार्यकालमतिपातयेत्। १५. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः। १६ औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा। १७. आशाबन्धः साहयति। १८. ग्लपयति यथा। (घ) यथोपयुक्तं संमिश्र्य पाचयन्ति वा पचन्ति।

शब्दकोष—८५० + २५=८७५] अभ्यास २५ (व्याकरण)

(क) करमर्दकः (करौंदा), पलाण्डुः (प्याज), लशुनम् (लहसुन), तिन्तिडीकम् (इमली), आर्द्रकम् (अदरक), व्यंजनम् (मसाला), मरीचम् (मिर्च), जीरकः (जीरा), धान्यकम् (धनिया), शुण्ठी (सोंठ), हिंगु (हींग), हरिद्रा (हल्दी), लवणम् (नमक), सैन्धवम् (सेंधा नमक), रौमकम् (सांभर नमक), पिप्पली (पीपर), एला (इलायची), मधुरा (सौंफ), लवंगम् (लौंग), दारुसितम् (दालचीनी), त्रिपुटा (छोटी इलायची), खादिरः (कत्था), चूर्णं (चूना), पूगम् (सुपारी), ताम्बूलम् (पान)। (२५)

व्याकरण (करिन्, पथिन्, भू, मा, सन् प्रत्यय)

१. करिन् और पथिन् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११, १४)

२. भू और मा धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५२, ५३)

नियम १९९—(धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा) इच्छा करना या चाहना अर्थ में धातु से सन् (स) प्रत्यय लगता है। सन् के विषय में ये बातें स्मरण रक्खें—(क) इच्छा करने वाला वही व्यक्ति हो तभी सन् होगा। (ख) सन् प्रत्यय ऐच्छिक है, अतः सन् न लगाना चाहें तो तुमुन् (तुम्) प्रत्यय करके इष् या अभिलष् आदि धातु का प्रयोग करें। जैसे—पठितुमिच्छति। (ग) इच्छा करनेवाली क्रिया कर्म के रूप में होनी चाहिए, अन्य कारक के रूप में नहीं। करण में होने से यहाँ नहीं होगा—अहमिच्छामि पठनेन मे ज्ञानं वर्धेत। (घ) सन् का स शेष रहता है। सन् प्रत्यय करने पर धातुओं को द्वित्व होता है, जैसे लिट् लकार में। सेट् धातुओं में स से पहले इ लगाकर 'इष' हो जाएगा। अनिट् में केवल 'स' लगेगा। यह स कहीं-कहीं पर सन्धि-नियमों के कारण ष या श हो जाता है। (ङ) धातुओं को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् प्रथम अंश में धातु में अ होगा तो उसे इ हो जाएगा। (च) धातुओं के रूप इस प्रकार चलेंगे—(१) परस्मैपदी के रूप परस्मै में और आत्मने के आत्मने में, उभयपदी के उभयपद में। (२) लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में परस्मै में भवतिवत्, आत्मने में सेव् के तुल्य। (३) लिट् लकार में धातु + आम् + कृ, भू या अस्। (४) लुङ् में परस्मै में ईत्, इष्टाम्, इषुः आदि और आत्मने में इष्ट, इषाताम्, इषत आदि। (५) आशीर्लिङ् में परस्मै में यात्, यास्ताम् आदि, आत्मने में इषीष्ट आदि। (६) अन्य लकारों में भू या सेव् के तुल्य। जैसे—गम्>जिगमिषति, जिगमिषतु, अजिगमिषत्, जिगमिषेत्, जिगमिषिष्यति, जिगमिषाञ्चकार, जिगमिषिता, अजिगमिषीत्, जिगमिष्यात्, अजिगमिषिष्यत्। (छ) सन्नन्त प्रयोगवाली प्रचलित धातुएँ ये हैं—ज्ञा>जिज्ञासते, दा>दित्सति, धा>धित्सति, पा>पिपासति, चि>चिकीषति, चि>चिचीषति, श्रु>शुश्रूषते, भू>बुभूषति, मृ>मुमूर्षति, कृ>चिकीर्षति, हृ>जिहीर्षति, स्मृ>सुस्मूर्षति, तॄ>तितीर्षति, मुच्>मुमुक्षते, प्रच्छ्>पिपृच्छिषति, युध्>युयुत्सते, पठ्>पिपठिषति, लिख्>लिलिखिषति, पत्>पित्सति, पिपतिषति, पच्>पिपक्षति, यज्>यियक्षते, विद्>विविदिषति, बुध्>बुबोधिषति, मान्>मीमांसते, हन्>जिघांसति, आप्>ईप्सति, लभ्>लिप्सते, रम्>रिरंसते, क्रम्>चिक्रंसते, गम्>जिगमिषति, दृश्>दिदृक्षते, ग्रह्>जिघृक्षति।

अभ्यास ३५

संस्कृत बनाओ—(क) (करिन्, पथिन्) १ हाथी ने इस पेड़ की डाल तोड़ दी। २ साक्षी उपस्थित नहीं हुआ (साक्षिन्)। ३ अतिस्नेह में अनिष्ट की शंका बनी रहती है (पापशंकिन्)। ४ अगले रविवार को आप हमसे मिलियेगा (आगामिन्)। ५ सहाध्यायियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो (सहाध्यायिन्)। ६ शेर बादल की ध्वनि पर हुंकार करता है गीदड़ों की आवाज पर नहीं (केसरिन्)। ७ कम से कम तीन गवाह होने चाहियें (साक्षिन्)। ८ गुणवानों के गुण पूजा के योग्य हैं लिङ्ग या आयु नहीं (गुणिन्)। ९ रथी पैदल से युद्ध नहीं करता (रथिन्)। १० ऐसा परोपकारियों का स्वभाव ही होता है। ११ हाथी के मित्र गीदड़ नहीं होते (दन्तिन्)। १२ मानहीन मनुष्य की और तृण की समान गति होती है (मानिन्)। १३ वे मूर्ख तिरस्कार को प्राप्त होते हैं जो धूर्तों से धूर्तता नहीं करते (मायाविन्)। १४ स्वाभिमानियों का स्वाभिमान ही धन होता है (मानिन्)। १५ तुम्हारा मार्ग शुभ हो। १६ धीर लोग न्याय के मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होते। (ख) (भृ, मा) १ अपना पेट कौन नहीं पालता। २ उसने पृथ्वी की धुरा को धारण किया। ३ राजाओं के पास चुगलखोर रहते हैं। ४ सदा स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे। ५ व्यापारी हाथ से कपड़े को नापता है (मा)। ६ पटवारी ने जंजीर से खेत नापा। (ग) (सन् प्रत्यय) १ विद्यार्थी पाठ पढ़ना चाहता है, लेख लिखना चाहता है धर्म जानना चाहता है, दान देना चाहता है धर्म करना चाहता है जल पीना चाहता है, शत्रु को जीतना चाहता है, फल इकट्ठा करना चाहता है (चिञ्) गुरुवचन सुनना चाहता है कार्य करना चाहता है (कृ), पाप को छोड़ना चाहता है (हा), प्रश्न पूछना चाहता है (प्रच्छ्) फल खाना चाहता है (भुज्), धन पाना चाहता है (लभ्) और मित्र को देखना चाहता है। २ गुरुओं की सेवा करो। ३ वह छोटी नौका से समुद्र को पार करना चाहता है। (घ) (शाकादि) १ कुछ लोग साग और दाल में अधिक मसाला पसन्द करते हैं। वे दाल में हल्दी, धनिया, नमक के साथ ही प्याज लहसुन इमली और लाल मिर्च भी डालते हैं। साग में भी मसाला डाला जाता है। २ कुछ लोग चाय में भी काली मिर्च दालचीनी और सोंठ या अदरक डालते हैं। ३ पनवाड़ी पान में चूना और कत्था लगाता है बाद में छोटी इलायची और सुपारी डालकर देता है। पान खानेवाले पानदान में पान रखते हैं।

संकेत—(क) १ स्वगुप्तमिता। २. नोपतस्थौ। ३ अतिस्नेहः पापशङ्की। ४ आगामिनि भवता अस्माभिः सह मिलनीयम्। ६ अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी। ७. त्र्यवराः साक्षिणो देयाः। ८ गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। ९. न रथिनः पादचारम् अभियुञ्जन्ति। १० परोपकारिणाम्। ११ भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः। १२ मानिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः। १३ व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। १४ स्वाभिमानैकधना हि मानिनः। १५. शिवास्ते सन्तु पन्थानः। १६. न्याय्यात् पथः। (ख) १ बिभर्ति। २ बिभरांबभूव। ३ पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः। ४ बिभृयात्। ६. लेखपालः शृङ्खलाभिः, अमात्। (ग) १ पिपठिषति लिलिखिषति। २. शुश्रूषस्व। ३ उडुपेन तितीर्षति। (घ) १ सहैव रसमरीचम्, निक्षिपन्ति। शाकमपि मसालैः संस्क्रियते (बघार)। ३ ताम्बूलिकः किरति निक्षिप्य ताम्बूलकरङ्के।

शब्दकोष—८७५ + २५ = ९००] अभ्यास २९ (व्याकरण)

(क) कृषिः (स्त्री., खेती), कृषीवलः (किसान), वसुधा (पृथ्वी), मृत्तिका (मिट्टी), उर्वरा (उपजाऊ), ऊषरः (ऊसर), शाद्वलः (घास-श्यामल), क्षेत्रम् (खेत), सीता (जुती भूमि), लाङ्गलम् (हल), फालः (हल की फाल), खनित्रम् (फावड़ा, कुदाल), दात्रम् (दराँती), लोष्टम् (ढेला), लोष्टभेदनः (१ मुँगरी, २ पटरा, ३ मैड़ा), कोटिशः (धुर्मुस), तोत्रम् (चाबुक), कणिशः (बाल), पलालः (पयाल), बुसम् (भुस), तुषः (भूसी), खाद्यम् (खाद), खलम् (खलिहान), खनित्रयन्त्रम् (ट्रैक्टर), कृषियन्त्रम् (खेती के औजार)। (२५)

व्याकरण (वाच्, चन्द्रमस्, धा, यङ्, यङ्लुक्, नामधातु)

१. वाच् और चन्द्रमस् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १५, १८)

२. धा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५४)

नियम २००—(धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्) व्यंजन से प्रारम्भ होनेवाली एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है बार-बार या अधिक करने अर्थ में। यङ् प्रत्यय के लिए ये नियम स्मरण रक्खें—(क) यङ् का य शेष रहता है। सभी धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। (ख) (सन्यङोः) धातु को द्वित्व होता है। (ग) (गुणो यङ्लुकोः, दीर्घोऽकितः) द्वित्व होने पर अभ्यास (पूर्वपद) में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। नी>नेनीयते, भू>बोभूयते, पठ्>पापठ्यते। (घ) (नित्यं कौटिल्ये गतौ) गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता अर्थ में ही यङ् होगा। व्रज्>वाव्रज्यते (कुटिल चलता है)। (ङ) (रीगृदुपधस्य च) धातु की उपधा में ह्रस्व ऋ होगा तो उसके अभ्यास में 'री' और लगेगा। नृत्>नरीनृत्यते। (च) (घुमास्था...) दा धा, स्था गा, पा हा सा के आ को ई होगा। देदीयते, देधीयते, तेष्ठीयते, जेगीयते, पेपीयते, जेहीयते, सेषीयते। (छ) कुछ अन्य प्रसिद्ध यङन्त रूप ये हैं—कृ>चेक्रीयते, दिव्>देदीव्यते, भ्रम्>बंभ्रम्यते, चर्>चञ्चूर्यते, वृत्>वरीवृत्यते, मृज्>मरीमृज्यते।

नियम २०१—(यङ्लुक्) (यङोऽचि च) धातु के बाद य का लोप होगा। यङ्लुक् के लिए ये नियम स्मरण रक्खें—(क) धातु को द्वित्व होगा। धातु के रूप परस्मैपद में ही चलेंगे। (ख) अभ्यास में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। (ग) धातु के अन्त में ऋ होगा तो उसके अभ्यास में री या रि लगेगा। (घ) यङ्लुक् के प्रयोग साहित्य में बहुत कम मिलते हैं। (ङ) ति सि, मि से पूर्व विकल्प से ई लगेगा। जैसे—भू>बोभवीति, बोभोति। वृत्>वरीवर्ति, कृ>चरीकर्ति, गम्>जंगमीति।

नियम २०२—(नामधातु) नामधातु में ये प्रत्यय मुख्यतया होते हैं—(क) (सुप आत्मनः क्यच्) अपने लिए चाहने अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय। परस्मैपद होगा। आत्मनः पुत्रमिच्छति>पुत्रीयति। धनीयति अशनायति उदन्यति। (ख) (उपमानादाचारे) उसके तुल्य आचरण करने में क्यच् (य)। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति छात्रम्। (ग) (काम्यच्) अपने लिए चाहने में 'काम्य' लगता है। पुत्रकाम्यति। (घ) (कर्तुः क्यङ्) उसके तुल्य आचरण करने में क्यङ् (य) प्रत्यय। आत्मनेपद होगा। कृष्णवत् आचरण करता है>कृष्णायते। ओजायते अप्सरायते। (ङ) (तत्करोति तदाचष्टे) करना और कहना अर्थ में णिच्। सूत्र बनाता है—सूत्रयति।

अभ्यास २६

संस्कृत बनाओ—(क) (तादृश्, चन्द्रमस्) १ वैसे सुन्दर आकृतिवाले लोग सहृदय ही होते हैं (सुन्वेतस्)। २ ऐसे बड़े लोग सभाओं में आ जाते हैं और रंग में भंग करते हैं। ३ पुत्र-स्नेह कितना प्रबल होगा, जब कि भ्रातृ-स्नेह इतना प्रबल होता है। ४ नक्षत्र तारा और ग्रहों से युक्त भी रात्रि चन्द्रमा से ही प्रकाशित होती है। ५ मुनियों से अतिरिक्त तुमको देखकर किस सहृदय का मन दुःखित नहीं होगा (सुन्वेतस्)। ६ उसने उसके पास खड़े हुए एक वृद्ध पुरुष को देखा (प्रवयस्)। ७ यह दुर्वासा (दुर्वासस्) के शाप का ही प्रभाव है। ८ अच्छे विद्यार्थी का (सुमनस्) भले और बुरों पर समान प्रेम होता है। (ख) (दा धातु) १ पढ़ाई पर ध्यान दो। २ भगवती पृथ्वी मुझे अपने अन्दर समा ले। ३ क्या राजा ने तुम्हें यह अँगूठी इनाम में दी है। ४ थोड़ा स्थान देना। ५ ये कन्याएँ पौधों को जल दे रही हैं (दा)। ६ उसने स्वामी के लिए प्राण दे दिए। ७ आँसू चित्र में भी शकुन्तला को नहीं देखने देता। ८ वस्त्रों को धूप में सुखाता है। ९. गुरु शिष्य को आज्ञा देता है। १० यह क्रोध में मन लगाता है। ११ उसने प्रत्युत्तर दिया। १२ उसने घर में आग लगा दी। १३ उसने यह वचन कहा। १४ हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है। १५ उसने सब लोगों का मन अपनी ओर खींच लिया (आदा)। १६ उसने निर्धनों को वस्त्र दिए (प्रदा)। (ग) (यङ्, नामधातु) १ बालक बार-बार हँसता है रोता है देखता है नाचता है गाता है खाना खाता है, पानी पीता है काम करता है घूमता है, प्रश्न पूछता है। २ (यङ्लुक्) यह बार-बार काम करता है घर जाता है विद्यालय में रहता है साँप को मारता है और पुस्तक को लेता है। ३ यह पत्नी-सहित तपस्या करता है। ४ यह अपने कुल को बदनाम करता है। ५ यह शिष्य को पुत्रवत् मानता है। ६ यह कृष्णवत् आचरण करता है। (घ) (कृषिवर्ग) भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान उपजाऊ भूमि को हल से जोतता है, जुती हुई भूमि के ढेलों को मैंडा चलाकर सम कर देता है, बाद में उसमें बीज बोता है, अंकुर आने के बाद सफाई करता है और अनावश्यक घास आदि को निकाल देता है। खेती तैयार होने पर दरांती से बालों को काट लेते हैं या जड़ से ही काटते हैं। भुस और भूसी गायों बैलों को दी जाती है। आजकल ट्रैक्टरों से भी खेती की जाती है।

संकेत—(क) १ आकृतिविशेषा सचेतसः। २ तादृशास्तादृशो जनाः, रंगभंगं विदधति। ३ कीदृक् पुत्रस्नेहः, ईदृक्। ४ संयुक्तापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः। ५ सचेतसः कस्य मनो न दूयते। ६ स्थितं प्रवयसम्। ७ दुर्वाससः शाप एव प्रभवति। ८ सुमनसां प्रीतिर्भलाशुचिष्वपि समा। (ख) १ अवधानम्। २ देहि मे विवरम्। ३ प्रतिपद। ४ अवकाशम्। ५ बालपादपेभ्यः। ६ प्राणान् अदात्। ७ बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि। ८ आतपे ददाति। १० मनो ददाति। १२ पावकम् अदात्। १३ इति वाचमाददे। १४ हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः। १५ मन आददे। (ग) १ बालको जाहस्यते रोरुद्यते दान्दृश्यते नरीनृत्यते जेगीयते बोभुज्यते पेपीयते चोक्रियते जंगम्यते, प्रश्नं परीपृच्छ्यते। २ स कार्यं चर्करीति जंगमीति वरीवर्ति जंघनीति आयादीति। ३ सपत्नीकः तपस्यति। ४ मलिनयति। (घ) कर्षति लोष्टान् समीकरोति बीजानि वपति क्षेत्रपरिष्कारम् लवित्रेण लुनन्ति मूलत एव।

शब्दकोष—१०० + २५ = १२५] अभ्यास ३७ (व्याकरण)

(घ) सुकृतिन् (भाग्यवान्), सहृदयः (सहृदय), निष्णात (विद्वान्), प्रतीक्ष्य (पूज्य), वदान्यः (दानी), हृष्टमानस (प्रसन्नचित्त), विमनस् (दुःखित हृदय), उत्कः (उत्कण्ठित), विश्रुत (प्रसिद्ध), स्निग्ध (प्रेमी), आयत्तः (अधीन), आद्यून (पेटू), लुब्धः (लोभी), विनीतः (नम्र), धृष्ट (ढीठ), प्रत्याख्यात (छोड़ा हुआ), विमानितः (तिरस्कृत), विप्रलब्ध (वंचित), आपन्नः (आपत्तिग्रस्त), दुर्गतः (दीन), कान्तम् (सुन्दर), अभीष्टम् (मनोहर), निकृष्ट (नीच), पूतम् (पवित्र), सङ्ख्यातम् (गिना हुआ)। (२५)

व्याकरण (विद्वस्, पुंस्, पा धातु, क्त प्रत्यय)

१. विद्वस् और पुंस् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १६, १७)

२. पा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५५)

नियम २०३—(क्तक्तवतू निष्ठा, निष्ठा) भूतकाल अर्थ में धातु से क्त और क्तवतु कृत् प्रत्यय होते हैं। दोनों का क्रमशः त और तवत् शेष रहता है। 'त' प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में। 'त' प्रत्यय करने पर सेट् (इ–वाली) धातुओं में इ लगेगा, अनिट् (इ–नहीं वाली) धातुओं में इ नहीं लगेगा। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती। संप्रसारण होता है।

नियम २०४—(क) क्त (त) प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा, कर्ता में तृतीया और क्रिया का लिंग वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार होगी, कर्ता के अनुसार नहीं। (ख) अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया होगी। क्रिया में नपुंसक एक० ही रहेगा। (ग) त प्रत्ययान्त क्रिया-शब्द कर्म के अनुसार पुंलिंग होगा तो उसके रूप रामवत्, स्त्रीलिंग होगा तो रमावत्, नपुंसक होगा तो गृहवत् चलेंगे। जैसे—मया पुस्तकं पठितम्, पुस्तके पठिते, पुस्तकानि पठितानि। मया ग्रन्थः पठितः ग्रन्थौ पठितौ ग्रन्थाः पठिताः। मया बालकः दृष्टः बालकाः दृष्टाः। तेन हसितम्।

नियम २०५—(गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्) इन धातुओं से क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है:—जाना चलना अर्थ की धातुओं, अकर्मक धातुओं तथा श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, जॄ धातुओं से। अतः कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया। जैसे—गृहं गतः। स ग्रामं प्राप्तः। स मृतः। हरिः रमामाश्लिष्टः। स शेषमधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। वनमुषितः। राममनुजातः। गरुडमारूढः। स जीर्णः।

नियम २०६—(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च) मन्, बुध्, पूज् तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान काल अर्थ में होता है। कर्ता में षष्ठी होगी। यथा—मतः, बुद्धः, पूजितः।

नियम २०७—(नपुंसके भावे क्तः) कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसक लिंग भाव वाचक शब्द बनाने के लिए होता है। जैसे—जल्पितम् (कहना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गतम् (चलना), स्थितम् (रहना)। कस्येदमालिखितम् (किसका चित्र है।)

अभ्यास ३७

संस्कृत बनाओ—(क) (विद्वस्, पुंस्) १ विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को समझता है। २ विद्वान् को भी दुष्ट लक्ष्मी दुर्जन बना देती है। ३ विद्वानों के मुँह से बात सहसा बाहर नहीं निकलती और जो निकल जाती है वह फिर लौटती नहीं है। ४ जिसके पास पैसा है वही संसार में पुरुष है। ५ शत्रु भी जिसके नाम का अभिनन्दन करते हैं वही पुरुष पुरुष है। ६ वह पुरुषों के द्वारा वन्दनीय है। ७ दुष्ट स्त्री पुरुष पर विश्वास नहीं करती (विश्वस्)। (ख) (धा धातु) १ सहसा काम न करो। २ मुझे श्रेष्ठ लक्ष्मी दो। ३ हे माता तू दुर्जनों को भी पालती है। ४ काँच सुवर्ण के संग से मरकत की कान्ति को धारण करता है। ५ इधर ध्यान दो। ६ कान पर हाथ रखता है। ७ कानों को बन्द करता है (अपिधा)। ८ खिड़की बन्द कर दो। ९ हे अर्जुन इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है (अभिधा)। १० आप इधर ध्यान दीजिए (अवधा)। ११ अपने से बलवान् शत्रु से सन्धि कर ले (संधा)। १२ उसने धनुष पर बाण रक्खा (संधा)। १३ नए कपड़े पहनो (परिधा)। १४ वह गुरु पर श्रद्धा करता है (श्रद्धा)। १५ वह बाँह का तकिया लगाकर सोता है (उपधा)। १६ शकुन्तला को पाकर मुझे क्या मिलेगा (अभिसंधा)। १७ वैदिक वाङ्मय का अनुसन्धान करो (अनुसंधा)। १८ प्रायः भाग्य ही सबका शुभ और अशुभ करता है (विधा)। १९ मैं धनुष पर विजय की आशा को रखता हूँ (निधा)। २० मेज पर पुस्तकें रख दो (निधा)। २१ बल से भूमि पर शत्रु को गिरा दिया (निधा)। २२ मुझमें मन लगाओ (आधा)। २३ राक्षसों को छाया भय उत्पन्न करती है (आधा)। (ग) (विशेषण) १ भाग्यवान् सहृदय दानी और विद्वान् लोग तिरस्कृत वंचित, व्यापत्तिग्रस्त और दीन को दुःख नहीं देते हैं। २ निष्ठ व्यक्ति भी सुन्दर अभीष्ट वस्तुओं को पाकर प्रसन्नचित्त होता है और उन्हें न पाकर खिन्न होता है। ३ पेटू पराधीन होता है, नम्र प्रसिद्ध होता है, भीरु तिरस्कृत होता है प्रेमी विनीत होता है और उत्कण्ठित खिन्न होता है। (घ) (क्त प्रत्यय) १ मैंने रघुवंश के चार सर्ग पढ़े। २ उसने कभी ठगी की देखी। ३ वह आसन पर बैठा (अधिष्ठा)। ४ वह वृक्ष पर चढ़ा (आरुह्)। ५ यह किसका चित्र है। ६ मुझे सब जानते हैं। ७ यह नकबाह फैल गई। ८ उसका भ्रम कहीं और है। ९ उसने यह बातें बताईं। १० उसने उस समय बहुत वीरता दिखाई।

संकेत—(क) १ विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। २ जनयती दुर्जनमपि। ३ सहसा वाचः बालाग्रेण परायान्ति। ४ यस्यार्थाः स पुमान् लोके। ५ यस्य नामापि मन्दन्ति रिपवोऽपि स पुमान् पुमान्। ६ पुमान्। (ख) १ सहसा विदधीत न क्रियाम्। २ श्रियं धेहि। ३ दधासि। ४ काचो मारकती द्युतिम्। ५ चित्तं धेहि। ६ करं दधाति। ७ कर्णौ पिधत्ते। ८ गवाक्षं पिधेहि। ९ क्षेत्रमित्यभिधीयते। १० अवधत्ताम्। ११ बलीयसा रिपुणा संदध्यात्। १२ समधत्त। १३ परिधत्त। १४ श्रद्दधाति। १५ बाहुमुपधाय। १६ अभिसंधास्ये किं शकुन्तला मया। १७ अनुसंधत्त। १८ भवितव्यतैव विदधाति। १९ निदधे विजयाशंसाम्। २० सन्निधेहि। २१ निहितं रणे रिपुः। २२ आधत्स्व। २३ भयमादधाति। (घ) १ सर्गाः। २ प्रवञ्चना। ३ अधिष्ठितः। ७ बार्ता प्रसृता। ८ स इतोऽन्यत्र विहितः। ९ वार्ताः तेन समवाक् कृताः। १० वीरं विकान्तम्।

शब्दकोष—१२५ + २५ = १५०] अभ्यास ३८ (व्याकरण)

(घ) प्रौढम् (प्रौढ), ततम् (विस्तृत), इषितम् (प्रेरित), उपचितः (मोटा), अपचितः (पतला), भुग्नम् (टूटा हुआ), शातम् (तेज), पक्वम् (पका हुआ), क्षीणः (क्षयित) सुतम् (पिघला हुआ), अवगीतः (निन्दित), उद्वान्तम् (उगला हुआ), शान्तः (शान्त), दान्तः (जितेन्द्रिय), श्रान्तः (थका हुआ), अवसितम् (समाप्त), प्लुष्टम् (दग्ध) स्त्यानम् (जमा हुआ), निष्पन्नम् (तैयार), स्यूतम् (सिला हुआ) लूनम् (कटा हुआ) आसादितम् (प्राप्त), उद्भासितम् (व्यक्त), अवगतम् (ज्ञात), जग्धम् (खाया हुआ)। (२५)

व्याकरण (श्रेयस्, अनडुह्, दिव्, वृत्, क्त प्रत्यय)

१. श्रेयस् और अनडुह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ११, ४)

२. दिव् और वृत् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५६-५७)

नियम २०८—धातु से त (क्त) (तथा क्त्वा, क्तिन्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (देखो परिशिष्ट में क्त प्रत्यय से बने रूप)। (क) धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। संधि कार्य होगा। जैसे—कृ > कृतः। हृतः, धृतः, भृतः। पठितम्, लिखितम्। (ख) (रदाभ्यां निष्ठातो नः०) र् और द् के बाद के त को न होगा, धातु के द् को भी न्। अर्थात् र्+त = र्ण। द्+त = न्न। दीर्घ ॠ को ईर् होता है, पॄ को पूर्। जॄ > जीर्ण, तॄ > तीर्ण, गॄ > गीर्ण, कॄ > कीर्ण, संकीर्ण, प्रकीर्ण, विकीर्ण। पॄ > पूर्ण। भिद् > भिन्न, छिद् > छिन्न, सद् > सन्न, प्रसन्न, विषण्ण, आसन्न आदि। (ग) (घुमास्थागापा०) गा, पा और हा के आ को ई होगा। गीतम्, पीतम् (पिया), हीनम् (छोड़ा)। (घ) (द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति) दो (दा), सो (षा), मा, स्था इनके आ को इ होता है। दित, अवसित, परिमित, स्थित। (ङ) (अनुदात्तोपदेश०) यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्, वन् और तनादिगणी धातुओं के म् और न् का लोप होता है। यम् > यत, संयत, रम् > रत, विरत, नम् > नत, प्रणत, गम् > गत, आगत, हन् > हत, मन् > मत, संमत, तन् > तत, वितत। (च) (अनिदितां हल०) उपधा के न् का लोप होगा, यदि धातु का इ इत् होगा तो नहीं। बन्ध् > बद्ध, ध्वंस् > ध्वस्त, भ्रंस् > भ्रस्त, दंश् > दष्ट। (छ) (जनसनखनां०) जन्, सन्, खन् के न् को आ होगा। जात, सात, खात। (ज) (वचिस्वपियजादीनां किति) वच् आदि को संप्रसारण होता है, अर्थात् य् > इ, व् > उ, र् > ऋ। वच् > उक्त, स्वप् > सुप्त, यज् > इष्ट, वप् > उप्त, वह् > ऊढ, वस् > उषित, ग्रह् > गृहीत, व्यध् > विद्ध, प्रच्छ् > पृष्ट, आह्वे > आहूत, वद् > उदित। (झ) (संयोगादेरातो०) स्त्या, ग्ला आदि के बाद त को न। ग्लान, म्लान। (ञ) (ल्वादिभ्यः) लू आदि २१ धातुओं के बाद त को न। लू > लून, स्तॄ > स्तीर्ण, विस्तीर्ण, ज्या > जीन, दु > दून। (ट) (ओदितश्च) जिन धातुओं में से ओ इत् हो, उनके बाद त को न। उड्डी > उड्डीन, भञ्ज् > भग्न, भुज् > भुग्न, मस्ज् > मग्न, लग् > लग्न, ली > लीन, उद्विज् > उद्विग्न, श्वि > शून, हा > हीन। (ठ) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—दा > दत्त, धा > हित, विहित, निहित, मुर्छ् > मूर्त, शुष् > शुष्क, पच् > पक्व, क्षै > क्षाम। सह् > सोढ, वह् > ऊढ, मद् > मत्त, क्षि > क्षीण, निर्वा > निर्वाण, निर्वात, गुह् > गूढ, लिह् > लीढ, प्यै > पीन, प्यान।

अभ्यास ५८

संस्कृत बनाओ—(क) (श्रेयस्, अनडुह्) १ अपना धर्म घटिया भी उत्तम है। २ कल्याण के विषय में किसकी तृप्ति होती है। ३ सूर्य अनड्वान् (बैल) है, वह पृथ्वी को धारण करता है (धृ)। ४ बैलों से खेती की जाती है। (ख) (दिव्, नृत् धातु) १ पासों से जुआ खेलता है। २ आकर्षक युवतियों के साथ नाचता है। ३ बाण चंचल वृक्ष पर भी चलाते हैं (क्षिप्)। ४ एक के परिश्रम से ही घर खर्च चल जाता है। (ग) (क्त प्रत्यय) १ अच्छी बात दिखाई। २ अच्छा हमने ऐसा मान लिया। ३ व्यापारी माल डूब जाने से मर गया। ४ आपकी घोषणा का लोगों ने स्वागत किया है। ५ यह क्या बात शुरू की। ६ ऐसा अशुभ न हो। ७ राजा ने अनुचित किया। ८ शकुन्तला पेड़ों से ओझल हो गई। ९ उसको भाग्य पर छोड़ दिया। १० उसकी प्रतिज्ञा सबको विदित हो गई। ११ वह दुःख के कारण अन्यमनस्क है। १२ मैं व्यर्थ ही रोया। १३ वे दोनों एक दूसरे का मारने पर तुले हुए हैं। १४ सारी चीजें अस्त-व्यस्त हो गई हैं। १५ सीता का क्या हाल हुआ। १६ लोकापवाद मेरे लिए बलवान् है। १७ घर में आग लग गई। १८ घर में आग लगने पर कुँआ खोदना कहाँ तक उचित है। १९ राजा होश में आया। २० तुम्हारा तर्क उचित है। २१ तूने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। २२ अब मेरी हालत ठीक है। २३ बड़ी कठिनाई से जान छूटी। २४ वह सदा के लिए चला गया। २५ उन्होंने उसे अपराधी ठहराया। २६ वह बहुत प्रसन्न हुआ। २७ उसकी आँखों में आँसू भर आए। २८ मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। २९ तुमने देर कर दी। ३० मैंने तुम्हारा कभी कुछ भी बुरा नहीं किया है। ३१ यह बात आपके कान तक पहुँची ही होगी। ३२ मैंने उसे कुछ नम्र किया। (घ) (विशेषण) १ पके और कटे फल को खाओ। २ सड़े हुए, बासे हुए और छोड़े हुए भोजन को न खाओ। ३ आदमी पतला हो या मोटा, उसे शान्त और दान्त होना चाहिए। ४ प्रौढ़ व्यक्ति का ज्ञान विस्तृत, व्यवस्थित, परिपक्व, तीव्र और अनिश्चित होता है। ५ छिपे हुए वस्त्र को, तैयार भोजन को, पिघले हुए घी को, ढके हुए बर्तन को, छीले हुए फल को यहाँ रक्खो।

संकेत—(क) १ श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः। २ श्रेयसि। ३ अनड्वान् धारयति पृथ्वीम्। (ख) १ अक्षैः दीव्यति। २ नर्तकः। ३ क्षिप्यन्ति। ४ व्ययः पुष्यति। (ग) १. सम्यगनु बोधितोऽस्मि। २. अस्तुमतं तावदस्माभिरेवम्। ३ सार्थवाहो नौव्यसने विपन्नः। ४ अभिनन्दितं देवस्य शासनं जनैः। ५. किमिदमुपन्यस्तम्। ६. प्रतिहतममङ्गलम्। ७ अनुचितमाचरितम्। ८ अन्तर्हिता तरुराज्या। ९. स दैवाधीनः कृतः। १० प्रकाशतां गता। ११ [illegible]। १२ अरण्ये मया रुदितम्। १३ परस्परवधोद्यतौ स्तः। १४ सर्वं विपर्यस्तं जातम्। १५ किं वृत्तम्। १६ बलवान् [illegible] मे। १७ अनलमुपगतं गेहम्। १८ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननमुद्यमः कीदृशः। १९ प्रकृतिमापन्नः। २० उपपन्नः। २१ त्वया स्वहस्तेनाङ्गाराः कर्षिताः। २२ कल्यं मम स्वास्थ्यम्। २३ कथं कथमपि मुक्तः। २४ अनिवृत्तये गतः। २५. स्थापितः। २६. [illegible] परां प्रीतिमधिगतः। २७. तस्य नयने बाष्पपूर्णे जाते। २८. अनुपदमागत एव। २९. वेलातिक्रमः कृतः। ३० विप्रियं कृतम्। ३१ इदं भवतः श्रुतिविषयमापतितमेव। ३२. किमपि सानुक्रोशः कृतः।

शब्दकोष—१५ + २५ = १७५] अभ्यास १९ (व्याकरण)

(क) महीध्रः (पर्वत), ग्रावन् (पत्थर), शिला (चट्टान), शृङ्गम् (चोटी), प्रपातः (झरना) उत्सः (सोता), निर्झरः (नाला), दरी (दर्रा), गिरिद्रोणी (घाटी) गह्वरम् (गुफा) खनिः (खान), उपत्यका (तराई, भाबर), अधित्यका (पठार), निकुञ्जः (झाड़ी), हिमसरित् (ग्लेशियर)। (१५)। (ख) कुप् (गुस्सा करना), द्रुह् (द्रोह करना), क्षम् (क्षमा करना), दम् (दबाना) तुष् (सन्तुष्ट होना), तृप् (तृप्त होना), व्यध् (बींधना), शुष् (सूखना), खिद् (खिन्न होना), हृष् (प्रसन्न होना)। (१०)।

व्याकरण (मति, नश्, भ्रम्, क्तवतु प्रत्यय)

१ मति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४२)

२ नश्, भ्रम् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ५८, ५९)

नियम १९—क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होता है। इसका तवत् शेष रहता है। यह कर्तृवाच्य में होता है, अतः कर्ता के तुल्य क्रिया शब्द के लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के तुल्य। धातुओं के रूप क्त प्रत्यय के तुल्य ही बनेंगे। नियम १८ पूरा इसमें भी लगेगा। क्त प्रत्यय लगाकर जो रूप बनता है, उसीमें 'वत्' और जोड़ दें। जैसे—कृ > कृतः, तवत् में कृतवत् होगा। तवत् प्रत्ययान्त के रूप पुंलिंग में भगवत् (शब्द २) के तुल्य चलेंगे, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसक में जगत् (शब्द १८) के तुल्य। क्त प्रत्यय लगाने पर कर्म के लिंग, वचन, विभक्ति पर ध्यान दिया जाता है, कर्ता के लिंग आदि पर नहीं। परन्तु क्तवतु प्रत्यय लगाने पर कर्ता के लिंग आदि पर ध्यान दिया जाएगा, कर्म पर नहीं। जैसे—स पुस्तकम् अपठत् का क्तवतु में स पुस्तकं पठितवान्। ते पुस्तकानि पठितवन्तः। सा पुस्तकं पठितवती।

नियम २१—दीर्घ, गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि के लिए यह सारणी ठीक स्मरण कर लें। ऊपर मूल स्वर दिए गए हैं, उनके स्थान पर गुण, वृद्धि आदि करने पर ऊपर के मूल स्वर के नीचे गुण आदि के सामने जो स्वर आदि दिए गए हैं, वे होंगे। आगे भी जहाँ गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि कहा जाए, वहाँ इस सारणी (टेबुल) के अनुसार काम करें। (रिक्त स्थानों पर यह कार्य नहीं होता)।

१	स्वर	अ, आ	इ, ई	उ, ऊ	ऋ, ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
२	दीर्घ	आ	ई	ऊ	ॠ	—	—	—	—	—
३	गुण	अ	ए	ओ	अर्	अल्	ए	—	ओ	—
४	वृद्धि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्	ऐ	ऐ	औ	औ

५. संप्रसारण—य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ।

अभ्यास ३९

संस्कृत बनाओ—(क) (मति शब्द) १ विनाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। २ सबकी रुचि पृथक् होती है (रुचि)। ३ कुपथ पर वर्तमान मूर्ख को दोनों लोकों में दुःख देनेवाली आपत्ति आती है (दुर्मति)। ४ एकता से कार्य सिद्ध होते हैं (संहति)। ५ गुणों से गौरव प्राप्त होता है, न कि मोटापे से (आकृति)। ६ थोड़ा इष्ट वस्तु की सिद्धि में विघ्न आते हैं (सिद्धि)। ७ चेष्टा के अनुकूल ही व्यक्ति कर्मों की मनोवृत्ति होती है (वृत्ति)। ८ अधिक पैसा पास हो तो बहुत-से सम्बन्धी हो जाते हैं (ज्ञाति)। ९ अत्युन्नति के बाद बड़ों का भी पतन होता है (अत्यारूढि)। १० वह सदा चौकन्ना रहता है (प्रत्युत्पन्नमतिः)। ११ आप क्या काम करते हैं? (वृत्ति)। १२ यह बात उस समय मुझे नहीं सूझी (स्फुरित)। १३ और कोई चारा नहीं है। १४ इस प्रकार की स्त्रियाँ गृहिणी होती हैं और इससे विपरीत कुल के लिए दुःखद होती हैं (युवति, आधि)। १५ राम की बुद्धि तीक्ष्ण है और देवदत्त की मोटी। १६ वह देखने में सुन्दर है। १७ उसने शत्रुता का रूप अपनाया हुआ है। १८ वह देखने में राम की बड़ाई कर रहा है पर वस्तुतः बुराई कर रहा है। (ख) (नश्, भ्रम् धातु) १ वैर करनेवाला नष्ट हो जाता है (विनश्)। २ अधमात्मा नष्ट हो जाता है (विनश्)। ३ मेरा मन अस्थिर घूम रहा है (भ्रम्)। ४ पेड़ के नीचे मैं चक्कर लगा रहा है (भ्रम्)। ५ अभीप्सित व्यक्ति बड़े कामों में जो सफल हो जाते हैं यह बड़ों की कृपा ही समझनी चाहिए (सिध्)। ६ सज्जन पापी पर क्रोध करता है (क्रुध्) दुर्जन से द्रोह करता है (द्रुह्) निरपराध को क्षमा करता है (क्षम्)। ७ राम बाण से मृगों को बींधता है (व्यध्) शत्रुओं को दबाता है (दम्) और रावण के विनाश से प्रसन्न होता है (हृष्)। ८ दुर्जन थोड़े-से सन्तुष्ट होता है (तुष्)। ९ कुम्भकर्ण के नाश से कुलीन स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं (दुष्)। १० ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूख जाता है (शुष्)। (ग) (ल्यप्) १ तुमने मेरा अभिप्राय ठीक समझा। २ उसके आज्ञा का लेने पर मैं उसके पास गया। ३ पहाड़ दिखाई दिया। ४ पत्थर गिरे। (घ) (शैलवर्ग) १ पहाड़ की चोटी से झरना बहा। २ घाटी में सोते निकलते हैं और नाले बहते हैं। ३ पर्वत की गुफाओं में ऋषि तपस्या करते हैं। ४ पिण्डारी ग्लेशियर का दृश्य मनोरम है। ५ पठार की भूमि सम होती है, वहाँ वृक्षादि भी होते हैं। ६ दर्रे के मार्ग से आवागमन होता है।

संकेत—(क) १. विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। २. भिन्नरुचिर्हि लोकः। ३. भाप देखुमनयोरुभयोः वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम्। ४. संहतिः कार्यसाधिका। ५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। ६. श्रेयांसि बहुविघ्नानि। ७. चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। ८. अस्तु विभवेषु बान्धवाः संभवन्ति। ९. अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा। ११ किं वृत्तिमुपजीवत्यार्यः। १२. इति मम बुद्धौ नावस्थितम्। १३ अन्या गतिः। १४ यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः। १५. तीक्ष्णमतिः रामः, स्थूलबुद्धिः। १६. सौम्याकृतिः। १७. मित्रप्रतिरूपकशत्रुः। १८. स रामस्य व्याजस्तुतिमाचरति। (ख) १ वैरी नश्यति। २ विनश्यत्यधमात्मा। ४ भ्रमामि। ५. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। ६. सज्जनः पापिने क्रुध्यति दुर्जनाय द्रुह्यति क्षमते। ७. विध्यति दाम्यति हृष्यति। ८ तुष्यति। ९. कुम्भकर्णनाशे कुलस्त्रियः दुष्यन्ति। १० शुष्यति कासारः। (ग) १. सम्यग् विज्ञातो भावः। ३. दृष्टः। ४ पतिताः।

शब्दकोष—१७५+२५=२००] अभ्यास ४० (व्याकरण)

(क) काननम् (वन), विटपिन् (वृक्ष), व्रततिः (लता), मूलम् (जड़), दारु (लकड़ी), इन्धनम् (ईंधन), मञ्जरिः (बौर), पर्णम् (पत्ता), किसलयम् (कोंपल), वृन्तम् (डंठल), देवदारुः (देवदार), भद्रदारुः (चीड़) त्वक्सारः (बांस का पेड़), सर्जः (साल), शाकः (शाक का पेड़), तमालः (आबनूस), करीरः (करील, बबूल), गुग्गुलुः (गुग्गल) श्लेष्मातकः (लिसोड़ा), प्रियालः (प्याल)। (२०)। (ख) ष्ठिव् (थूकना), अस् (फेंकना), पुष् (पुष्ट करना), शुष् (शुष्क होना), तुष् (खुश होना)। (५)।

व्याकरण (नदी, श्रेयसी, भ्रम्, क्षिप्, शतृ प्रत्यय)

१ नदी और श्रेयसी शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४४)

२ भ्रम् और क्षिप् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६, ११)

नियम २११—(लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे) (क) लट् के स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् होता है। शतृ का अत् और शानच् का आन शेष रहता है। ये दोनों प्रत्यय क्रिया की वर्तमानता को सूचित करते हैं। हिन्दी में इनका अर्थ 'रहा है, रहे हैं, रहा था, हुआ, हुए' आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है। (ख) पाणिनि के नियमानुसार प्रथमा कारक में शतृ, शानच् का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—स पठन् अस्ति न कहकर—स पठति ही कहना चाहिए। परन्तु प्रथमा में भी कुछ प्रयोग मिलते हैं अतः प्रथमा में भी इनका प्रयोग प्रचलित है। (ग) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्द विशेष्य या विशेषण के रूप में आते हैं। शतृ प्रत्ययान्त के लिंग, वचन, कारक, [illegible] के तुल्य होते हैं। इसके रूप पुंलिंग में पठत् (शब्द २४) के तुल्य चलेंगे। जुहोत्यादि की धातुओं में न् नहीं लगेगा। जैसे—ददत् ददतौ ददतः। स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य। नपुंसक में जगत् (शब्द १८) के तुल्य। जैसे—पठन्तं रामं पश्य। पठते रामाय फलानि यच्छ। (घ) शतृ प्रत्यय में भी धातु से विकरण आदि होते हैं, अतः शतृ प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का अति सरल प्रकार यह है कि उस धातु के लट् के प्रथम पु० बहुवचन के रूप में से अन्तिम इ और बीच के न् को (यदि हो तो) हटा दें। इस प्रकार शतृ प्रत्यय वाला रूप बन जाता है। जैसे भू> भवन्ति, भवत्। अस्> सन्ति, सत्। गम्> गच्छन्ति, गच्छत्। कृ> कुर्वन्ति, कुर्वत्। दा> ददति, ददत्। (ङ) शतृप्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् या स्था धातु का प्रयोग होता है। वर्तमान आदि में अर्थानुसार लट्, लङ् आदि। गृहं गच्छन् आसीत्, भविष्यति वा। पशूनां वधं कुर्वन् व्यस्ते। तं प्रतिपालयन् तस्थौ अतिष्ठत् वा। (च) शतृ-प्रत्ययान्त को स्त्रीलिंग बनाने के लिए ये नियम स्मरण रक्खें—(१) (उगितश्च) सभी जगह अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। (२) (शप्श्यनोर्नित्यम्) भ्वादि, दिवादि और चुरादि की धातुओं में त् से पहले न् और लगेगा। जैसे—गच्छत् > गच्छन्ती, दीव्यत् > दीव्यन्ती, कथयत् > कथयन्ती। (३) (आच्छीनद्योर्नुम्) अदादि की आकारान्त धातुओं तथा तुदादि की धातुओं में बीच में न् विकल्प से लगेगा। भात् > भान्ती भाती, तुदत् > तुदन्ती, तुदती। (४) इसके अतिरिक्त सभी स्थानों पर न् नहीं लगेगा केवल ई अन्त में लगेगी। सती, ददती, शृण्वती, कुर्वती, चिन्वती। (देखो परिशिष्ट में शतृ प्रत्यय)।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (नदी, लक्ष्मी) १ नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीतीं। २ नदियों में लोग तैरते हैं और उनमें मगर आदि भी रहते हैं। ३ लक्ष्मी वह है, जिससे दूसरों का उपकार करता है। ४ लक्ष्मी के प्रसाद से दोष भी गुण हो जाते हैं। ५ यह घर में लक्ष्मी है। ६ सज्जन स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य कोमल होता है (पुरन्ध्री)। ७ जिन्होंने पुण्य कर्म नहीं किए हैं उनकी वाणी स्वच्छ और गम्भीर पदवाली नहीं होती (सरस्वती)। (ख) (भ्रम्, क्षिप्) १ वह कठिन परिश्रम करता है (श्रम्)। २ वह तीव्रगति से शत्रु की ओर चला (क्रम्)। ३ बिना कारण ही जो पक्षपात होता है उसका प्रतीकार नहीं है। वह वैमनस्य ही तन्तु है, जो प्राणियों को अन्दर से सी रहा है। ४ अच्छी सिलाई के लिए सिलाई की मशीन से वस्त्रों को सीओ। ५ इधर-उधर मत घूमो और न इधर-उधर ही मनमाने फेंको (अस्)। ६ जल से वायु शुद्ध होती है (शुध्)। ७ आग लकड़ी से तृप्त नहीं होती (तृप्)। (ग) (घञ् प्रत्यय) १ वह बाण चमकता हुआ दिखाई दिया। २ थोड़ी योग्यता वाला होने पर भी मैं रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ३ वह सिर-दर्द का बहाना बना घर चला गया। ४ सूर्य के उदय होने पर अन्धकार कैसे प्रकट होगा (आविर्भू)। ५ नीचों से मित्रता की अपेक्षा महात्माओं से विरोध अच्छा है क्योंकि वह ऐश्वर्य को उन्नत करता है। ६ सज्जनों के सन्देहास्पद विषयों में उनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं। (घ) (द्वितीया) १ तुम्हें लोग महर्षि कहते हैं। २ यमुना के किनारे गया। ३ उसे बड़ा दुःख हुआ। ४ राजा का हितकर्ता लोगों में बुरा समझा जाता है। ५ वह तृप्त नहीं हुआ। ६ पहाड़ की चोटी पर चढ़ा। ७ पक्षी आकाश में उड़ा। ८ चन्द्रापीड़ हिमगृह पर सोया। ९ दुष्यन्त इन्द्र के आधे आसन पर बैठा। १० वह सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। ११ महात्माओं को धिक्कार। १२ नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गए। (ङ) (वन-वर्ग) वन भूमि के रक्षक हैं वे भूमि को रेगिस्तान होने से बचाते हैं। वृक्षों की उपयोगिता बहुत है। उनके पत्ते, लकड़ी, कोंपल और, डण्ठल कलियाँ फूल और फल सभी अनेकों कामों में आते हैं। कुछ पेड़ फल देते हैं और उनके फल खाए जाते हैं। कुछ पेड़ों की लकड़ी ईंधन के रूप में काम आती है। पहाड़ों पर देवदार, चीड़, बाँस, साल और ताल के पेड़ अधिक होते हैं। गूलर, लिसोड़ा और प्लाक्ष पर फल भी होते हैं। आबनूस की लकड़ी काली होती है और महुए की छाल अच्छी बनती हैं।

संकेत— (क) १ स्वयं न पिबन्ति नद्यः पयः। ६ पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति। ७ भवति नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती। (ख) १ नवेत्तुम्, न हि कैतवमकारणमूलकमुपरतमूलेन सीव्यति। ४ सूचीकर्म। ५. सीव्यत अलङ्कारविकरम्, मक्षिप्यत, भ्रमत। ७. काष्ठानाम्। (ग) १. शरसम्पातं कुर्वन्। २ रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्। ३ शिरोवेदनाव्याजमवलम्ब्य। ४ तमांसि तपति। ५. वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। ६. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। (घ) १. प्रकृतिमानवन्ति। २ यमुनाकच्छम्। ३ स तं विषादमन्वभूत्। ४ हितकर्ता जनाति लोके। ५. न तृप्तिमाययौ। ६. शिखरमारुरोह। ७. दिवमुदपतत्। ८. हिमगृहमधिशिश्ये। ९. अर्धासनम् अधिष्ठौ। १० अभिनिविशते सन्मार्गम्। ११ धिक् महात्मनः। १२ परिजनः। (ङ) वनस्पति, कलिका, ... सहस्त्रायाम्...।

शब्दकोष—१२५१-१२७५] अभ्यास ५१ (व्याकरण)

(क) रसालः (आम), जम्बूः (जामुन), पलाशः (ढाक), प्लक्षः (पाकड़), अश्वत्थः (पीपल), न्यग्रोधः (बड़), नीपः (कदम्ब), शाल्मलिः (सेमर), खदिरः (खैर), एरण्डः (एरंड), शिंशपा (शीशम), तालः (ताड़), नारिकेलः (नारियल), निम्बः (नीम), मधूकः (महुआ), बिल्वः (बेल), फेनिलः (रीठा), आमलकी (आँवला), बिभीतकः (बहेड़ा), हरीतकी (हर्र), पनसः (कटहल), अपामार्गः (चिरचिटा), वेतसः (बेंत), अर्कः (आक), धत्तूरः (धतूरा)। (२५)

व्याकरण (स्त्री, श्री, शो, छो, शतृ, शानच् प्रत्यय)

१ स्त्री और श्री शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४५, ४६)

२ शो और छो धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ९२, ९३)

नियम २१२—(लटः शानच्) (क) आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् हो जाता है। शानच् का आन शेष रहेगा। शानच् होने पर शब्द के रूप पुंलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत्, नपुंसक में गृहवत् चलेंगे। शानच् प्रत्ययान्त का लिंग वचन और कारक कर्ता के तुल्य होगा। (देखो परिशिष्ट में शानच् प्रत्यय)। (ख) शानच् प्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, भू या स्था का लट्, लङ् आदि का प्रयोग होगा। (ग) (आने मुक्) जिन धातुओं के अन्त में अ विकरण लगता है, वहाँ पर अ और आन के बीच में म् लग जायगा। अर्थात् अ + आन = मान। जैसे—पचते>पचमानः। वर्तते>वर्तमानः। (घ) (ईदासः) आस् धातु का शानच् होने पर आसीन रूप होता है। (ङ) अन्यत्र आन ही जुड़ेगा। शी>शयानः, कृ>कुर्वाणः, [illegible]>[illegible]।

नियम २१३—(क) (विदेः शतुर्वसुः) विद् के बाद शतृ को वसु विकल्प से होता है। विदन्, विद्वान्। विदुषी। (ख) द्विष धातु से शत्रु अर्थ में और सु से यज्ञ में रस-निचोड़ना अर्थ में शतृ होता है। द्विषन्, सुन्वन्। (ग) अर्ह् से योग्य होना अर्थ में शतृ। अर्हन्। (घ) (पूङ्यजोः) पू और यज् के वर्तमान अर्थ में पवमानः यजमानः रूप होते हैं। (ङ) (ताच्छील्य) स्वभाव आदि अर्थों में चानश् (आन) प्रत्यय होता है। भोगं भुञ्जानः। कवचं बिभ्राणः। शत्रुं निघ्नानः।

नियम २१४—(क) शतृ और शानच् क्रिया की वर्तमानता को बताते हैं। इनसे 'जब कि' अर्थ भी निकलता है। अरण्ये चरन्—जब वह वन में घूम रहा था। विवाहकौतुकं बिभ्रत एव—जब कि वह विवाह का सूत्र पहने हुए था। (ख) (लक्षणहेत्वोः क्रियायाः) स्वभाव और कारण अर्थ बताने में शतृ शानच् होते हैं। शयाना भुञ्जते यवनाः (यवन लेटे-लेटे खाते हैं)। अर्जयन् वसति (धन कमाता हुआ रहता है)। (ग) (ताच्छील्य) चानश् स्वभाव आयु और शक्ति आ० का बोध कराता है। उदाहरण नियम २१३ (ङ) में है। (घ) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त का सप्तमी में समय-सूचक अर्थ हो जाता है। जब वह रो रहा था—तस्मिन् रुदति सति। तस्मिन् पठति सति।

नियम २१५—(लृटः सद्वा) करने जा रहा है या करनेवाला है, इस अर्थ में लृट् को परस्मै० में शतृ और आत्मने० में शानच् होता है। लृट् का रूप बनाकर शतृ, शानच् लगावें। पश्यन् विनेष्यन्निव पुष्पसारान्। करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।

अभ्यास २१

संस्कृत बनाओ :—(क) (स्त्री, श्री शब्द) १ स्त्रियाँ जन्म से ही चतुर होती हैं। २ लज्जा ही वस्तुतः स्त्रियों को सुशोभित करती है। ३ स्त्रियों में शिक्षा दीक्षा से ही चतुरता देखी जाती है। ४ स्त्रियों का पति ही गति है। ५ स्त्रियों का भर्ता ही देवता है। ६ अथक परिश्रम ही श्री का मूल है। ७ साहस में श्री निवास करती है। ८ स्वाभिमान भी रहे और धन भी मिले ऐसा नहीं होता। ९ सीता दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान थी। (ख) (शो, छो धातु) १ शत्रु को मारता है (छो)। २ भीम ने दुर्योधन को मारा। ३ आपका काम समाप्त हो गया (अवसो)। ४ वह ऋषि नीलकमल के पत्ते की धार से शमीलता को काटने का प्रयत्न करता है (व्यवसो)। ५ पेड़ों को जल दिए बिना शकुन्तला जल नहीं पीना चाहती थी। ६ चाकू से चाकू छीलता है (शो)। ७ उसने छुरी से पेन्सिल छीली। ८ कुशा को काटता है (दो)। ९ लकड़ी का काटता है (छो)। (ग) (धाव्, शासन्) १ पुत्र और शिष्य का पढ़ता हुआ प्रसन्न होता हुआ और यत्न करता हुआ देखना चाहे। २ सूर्योदय होने पर सोने वाले को श्री छोड़ देती है। ३ मैं आराम से बैठा हूँ, आप भी आराम से बैठें। ४ बिस्तर के पास में बैठे हुए पुत्र को राजा ने देखा। ५ वह कवच पहनता है शत्रुओं को मारता है और लोगों को भोगता है। ६ मुसलमान छोटे-छोटे खाते हैं। ७ जब वह रो रहा था तभी कौआ रोटी लेकर उड़ गया। ८ अन्य शत्रुओं को विजित करने की इच्छा से मानो वह वन में घुसा। (घ)(द्वितीया) १ तुम्हारी दुष्टता की शिकायत मैंने आचार्य से कर दी है। २ आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है। ३ चार महीने वर्षा नहीं हुई। ४ बालक से रास्ता पूछता है। ५ बालक को धर्म बताता है। ६ देवदत्त से सौ रुपया जीतता है (जि)। ७ देवदत्त का सौ रुपया चुराता है। ८ समुद्र से अमृत को मथता है। ९ बकरी को गाँव में ले जाता है (नी ह, कृष्)। १० राजा से कुशल पूछा। ११ क्रोध के वश में न होओ। १२ अपने साथी से मिठाई लो। १३ समय ही सबको को करता है। १४ सब लोग स्वार्थ देखते हैं। (ङ) (वृक्षवर्ग) उपवन में वृक्षों की सुन्दरता दर्शनीय है। वृक्षों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। आम कलमी आम जामुन, शाक, पाकड़, पीपल, बड़, कदम्ब, सेम, खैर, एरंड, शीशम ताड़ नारियल, नीम, महुआ, बेल और कचनार के वृक्ष फूलों और फलों से सुशोभित हो रहे हैं। दूर्वा, सोया, आँवला सिरस्सा कहा जाता है।

संकेत—(क) १. निसर्गतैव। २ लज्जैव वस्तुतः स्त्रियं विभूषयति शिक्षयैव। ३ स्त्रीणामशिक्षित-पटुत्वम्। ६ अनिर्वेदः। ८. न मानिता चास्ति धनानि न श्रियः। ९. श्रीः इव। (ख) १ स्यति। २ भीमः दुर्योधनं व्यक्त। ४ शाखया, धियं व्यवस्यति ५. पातुं न व्यव-स्यति। ६. श्यति। ७. अश्यत्। ८. कुशान् द्यति। ९. छ्यति। (ग) १ पठन्तम्, मोदमानम् यतमानम्। २. शयानम्। ३ सुखासीनोऽस्मि। ४ शयनाभ्याशे आसीनम्। ५. विजानं निध्नाना भुञ्जाना। ८. विजिगीषया। (घ) १. तवाविनयमाचार्यम् परिवादितवान् अहं आचार्यं। २. भवन्तमन्तरेण। ३ चतुरो मासान् न ववर्ष। ४ बालकं पन्थानम्। ५. ब्रूते। ६ देवदत्तं शतम्। ७. मुष्णाति। ८ सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। ९. अजां ग्रामम्। ११ क्रोधं मा गमः। १२

शब्दकोष–१ २५+२५=१ ५] अभ्यास ४२ (व्याकरण)

(क) बकुलः (मौलसिरी), कुवलयम् (नीलकमल), इन्दीवरम् (नीलकमल), कुमुदम् (श्वेत कमल), पुण्डरीकम् (सफेद कमल), कोकनदम् (लाल कमल), कह्लारम् (सफेद कमल), कुमुदिनी (कुमुद की लता), नलिनी (पद्म-समूह), शेफालिका (हार सिंगार), यूथिका (जूही), चम्पकः (चम्पा), मालती (चमेली), मल्लिका (बेला), गन्धपुष्पम् (गेंदा), केतकी (केवड़ा), कर्णिकारः (कनेर), बन्धूकः (दुपहरिया), कुन्दम् (कुन्द), स्थलपद्मम् (गुलाब), स्तबकः (गुलदस्ता), प्रसूनम् (फूल), मकरन्दः (पराग), जपापुष्पम् (जपाकुसुम), नवमालिका (नेवारी)। (२५)

व्याकरण (धेनु, वधू, कुप्, पच्, तुमुन् प्रत्यय)

१. धेनु और वधू शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४७, ४८)

२. कुप् और पच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६४, ६५)

नियम २१६—(क) (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्) को, के लिए अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। ऐसे स्थानों पर दूसरी क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। यह अव्यय होता है, अतः इसका रूप नहीं चलेगा। पठितुं द्रष्टुं भोक्तुं वा विद्यालयं याति। (ख) (समानकर्तृकेषु तुमुन्) इच्छार्थक धातुओं के साथ तुमुन् होता है। पठितुं भोक्तुं वा इच्छति। भोक्तुमिच्छामि। (ग) (शकधृषज्ञा०) शक् ज्ञा रभ् लभ् सह् अर्ह अस् आदि के साथ तुमुन् होता है। भोक्तुं शक्नोति, पठितुं जानाति, भोक्तुमारभते। (घ) (पर्याप्तिवचनेषु०) पर्याप्त अर्थ में तुमुन्। भोक्तुं पर्याप्तः प्रवीणः कुशलो वा। (ङ) (कालसमयवेलासु०) समयवाचक शब्दों के साथ तुमुन् होता है। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

नियम २१७—तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ये नियम तृच् (तृ), तव्यत् (तव्य) में भी लगेंगे। (क) धातु को गुण होता है अर्थात् अन्तिम इ ई > ए, उ ऊ > ओ, ऋ ॠ > अर्, तथा उपधा (उपान्त्य) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् होता है। जैसे—जि > जेतुम्, भू > भवितुम्, कृ > कर्तुम्। हर्तुम्, धर्तुम्। (ख) सेट् धातुओं में बीच में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। उदाहरण उपर्युक्त हैं। (ग) सन्धि नियमों के अनुसार धातु के अन्तिम च् और ज् को क्, द् को त्, ध को द् और भ् को ब् होता है। पच्-पक्तुम्, मुच्-मोक्तुम्, छिद्-छेत्तुम्, रुध्-रोद्धुम्, लभ्-लब्धुम्। (घ) (व्रश्चभ्रस्जसृजमृज०) धातु के अन्तिम छ् और श् को ष् होता है और इन धातुओं के च् या ज् को भी ष् होता है:—व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज्। ष् होकर इनके ष्टुम् वाले रूप बनेंगे। प्रच्छ्-प्रष्टुम्, प्रविश्-प्रवेष्टुम्। स्रष्टुम्, यष्टुम्। (ङ) (आदेच०) धातुओं के अन्तिम ए और ऐ को आ हो जाता है। आह्वे-आह्वातुम्, गै-गातुम्, ध्यै-ध्यातुम्। (च) धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है। गम्-गन्तुम्, रम्-रन्तुम्। (छ) धातु के अन्तिम ह् को घ् या ढ् होकर ग्धुम् या ढुम् वाला रूप बनता है। दह्-दग्धुम्, द्रुह्-द्रोग्धुम्, दुह्-दोग्धुम्, लिह्-लेढुम्, वह्-वोढुम्। (ज) इन धातुओं के ये रूप होते हैं:—सह्-सोढुम्, वह्-वोढुम्, सृज्-स्रष्टुम्, दृश्-द्रष्टुम्, आरुह्-आरोढुम्, ग्रह्-ग्रहीतुम्।

नियम २१८—(तुं काममनसोरपि) तुम् के म् का लोप होता है, बाद में काम या मनस् (इच्छार्थक) शब्द हों तो। वक्तुकामः, वक्तुमनाः (बोलने का इच्छुक)।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (धेनु, वधू) १ गाय को माता माना जाता है, यह उचित है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसकी सुरक्षा और पालन-पोषण का भी पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। २ यह तुम्हारा शरीर (तनु) कठिन परिश्रम के योग्य नहीं है। ३ कोयल चोंच से (चञ्चु) दाने चुगती है और बच्चों को खिलाती है। ४ तन्दूर में (कन्दु) पकी रोटियाँ जल्दी हजम होती हैं। ५ वधू श्वसुर से शर्माती है। ६ जामुन (जम्बू) मीठी होती है। ७ कुप्पी (कुतू) में तेल भर दो। ८ यह चप्पल (पादू) मेरे पैर में ठीक आता है। (ख) (क्रुध्, पद् धातु) १ राजा लोग विश्वासघाती पर क्रोध करते हैं (क्रुध्)। २ गुरु शिष्य पर बहुत अधिक क्रुद्ध हुआ। ३ रक्त के दूषित होने पर शरीर में दोष कुपित हो जाते हैं। ४ उसने विदर्भ का आधिपत्य पाया (पद्)। ५ वे अपने धर्म का पालन करते हैं (पद्)। ६ ओंकार का पालन करो (प्रतिपद्)। ७ मनुष्य दुःख होने पर आत्मा अपने महत्त्व को प्राप्त करता है (प्रतिपद्)। ८ समय मिलने पर आपका काम पूरा करूँगा (संपादि)। ९ इधर आओ। १० कौन तुम्हारा अनुकरण कर सकता है (प्रतिपद्)। ११ यह यौवन को प्राप्त हुआ (प्रपद्)। १२ पृथ्वी कीचड़ हो गई (प्रपद्)। १३ कोई तुम जैसा पैदा होगा (उत्पद्)। १४ जो पाप करेगा वह दुःखी होगा (विपद्)। १५ यह तुम्हारे योग्य नहीं है (उपपद्)। १६ पाँच को तीन से गुणा करने पर पन्द्रह हो जाते हैं (संपद्)। १७ इस शब्द का यह रूप बनता है (निष्पद्)। (ग) (तृतीया) १ चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है और बादल के साथ बिजली। २ सज्जनों का सज्जनों से मिलन बड़े भाग्य से होता है। ३ मृग मृगों के साथ घूमते हैं, गाएँ गायों के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ। समान स्वभाव और आदतवालों की मित्रता होती है। ४ यह आँख से काना, कान से बहरा, सिर से गंजा, पैर से लँगड़ा और पीठ से कुबड़ा है। ५ चोटी से हिन्दू और दाढ़ी से मुसलमान जाने जाते हैं। (घ) (तुमुन्) १ आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है। २ यह इस काम को कर सकता है। ३ वह घर जाने को उतावला हो रहा था। ४ दो तीन दिन प्रतीक्षा करो। ५ मेरे प्रेम को मत ठुकराओ। ६ तुम कुछ कहना चाहते हो। ७ मैं कुछ पढ़ना चाहता हूँ। (ङ) (पुष्पवाटी) उपवन पुष्पों से सुरभित है। तालाब में नीले-लाल और सफेद कमल खिले हुए हैं। रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। हारसिंगार, जूही, चम्पा, चमेली, बेला, जपाकुसुम, नेवारी, गुलाब, गेंदा, गुलहीरा, केवड़ा, कनेर और कुन्द के फूल शोभित हो रहे हैं।

संकेत—(क) १ मन्यते। २ इयम् त्वदीया कठिनश्रमस्य [illegible]। ३ कणान् चिनुते। ४ कन्दौ पक्वा [illegible]। ७ पूरय। ८ [illegible]। (ख) १ विश्वासघातिने। २ भृशम्। ३ कुप्यन्ति। ४ अवाप। ५ पद्यन्ते। ६ ओंकारं प्रतिपद्यस्व। ७ [illegible]। ८ [illegible] संपादयिष्यामि। ९ [illegible]। १० अनुकृतिं प्रतिपत्स्यते। ११ प्रपेदे। १२ पंकतां प्रपेदे। १३ उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा। १४ विपत्स्यते। १५ नैतत्त्वय्युपपद्यते। १६ [illegible] संपद्यन्ते। १७ निष्पद्यते। (ग) १ सह मेघेन तडित् प्रलीयते। २ सतां संगः [illegible] पुण्येन भवति। ३ मृगाः मृगैः संगमनुव्रजन्ति। समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ४ [illegible], पृष्ठेन कुब्जः। (घ) १ कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible]। ६ वक्तुमनाः। ७ पठितुमनाः। (ङ) [illegible]।

शब्दकोष—१५०+२५=१७५] अभ्यास ४३ (व्याकरण)

(क) मृद्वीका (अंगूर), द्राक्षा (अंगूर) सेवम् (सेब), आम्रम् (आम), जम्बु (जामुन) कदलीफलम्(केला), नारंगम् (नारंगी, संतरा), आम्रातम् (अमरूद), दाडिमम् (अनार) जम्बीरम्(नींबू) जम्बीरकम्(कागजी नींबू), बीजपूर (बिजौरा नींबू), उदुम्बरम् (गूलर), कर्कन्धु (बेर), श्रीपर्णिका(कायफल), अमृतफलम्(नाशपाती), सुमानी (खुमानी), आलुकम् (आलूबुखारा), पूगम् (शहतूत), मातुलुंगः (मुसम्मी), क्षीरिका (खिरनी), स्वर्णक्षीरी(मकोय) नारिकेलम् (नारियल) चीनिका(लीची), अंजीरम्(अंजीर) । (२५) ।

व्याकरण (स्वसृ मातृ, दुष्, जन्, क्त्वा प्रत्यय)

१ स्वसृ और मातृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४९, ५)

२ दुष् और जन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६६, ६७)

नियम २१९—(क) (समानकर्तृकयोः पूर्वकाले) पढ़कर, लिखकर आदि 'कर' या 'करके' के अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है। क्त्वा का त्वा शेष रहता है। क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए। त्वा प्रत्यय अव्यय होता है अतः इसका रूप नहीं चलता। जैसे—मोहनः खादित्वा विद्यालयं गच्छति। (ख) (अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः) निषेधार्थक अलम् और खलु के साथ धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है। जैसे—अलं दत्त्वा (मत दो)। पीत्वा खलु (मत पीओ)। अलं हसित्वा (मत हँसो)। (देखो अभ्यास ४४ भी)। (ग) कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त कर्मप्रवचनीय के तुल्य व्यवहार में आते हैं। जैसे—उद्दिश्य, अधिकृत्य मुक्त्वा। किमुद्दिश्य (किस लिए) धर्ममधिकृत्य (धर्म के बारे में)।

नियम २२०—क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि क्त प्रत्यय से बने रूप में से त या न हटाकर त्वा लगा दो। क्त प्रत्यय वाले सभी नियम यहाँ भी लगते हैं। जैसे—पठ्>पठितम् त्वा में पठित्वा। इसी प्रकार लिखित> लिखित्वा गत>गत्वा, उक्त उक्त्वा कृत-कृत्वा। संक्षेप में नियम ये हैं :—(क) नियम २१८ (क) देखो। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा अनिट् में नहीं। पठित्वा, लिखित्वा। कृत्वा हृत्वा, भूत्वा। (ख) नियम २१८ (ग) देखो। नीत्वा पीत्वा। (ग) नियम २१८ (घ)। चित्वा छित्वा भित्वा, स्थित्वा। (घ) २१८ (ङ)। यत्वा रत्वा, नत्वा गत्वा, हत्वा, मत्वा। (ङ) नियम २१८ (च) बद्ध्वा, लब्ध्वा, दग्ध्वा। (च) नियम २१८ (ज)। उक्त्वा सुप्त्वा इष्ट्वा, उद्धृत्य, उषित्वा, गृहीत्वा, पृष्ट्वा। (छ) नियम २१७ (ग) यहाँ भी लगेगा। पक्त्वा, मुक्त्वा, छित्वा, रुद्ध्वा लब्ध्वा। (ज) नियम २१७ (घ) यहाँ भी लगेगा। ष्टु, ष व् को ष्। प्रच्छ्-पृष्ट्वा, दृश्-दृष्ट्वा, यज्-इष्ट्वा सृज्-सृष्ट्वा। (झ) नियम २१७ (ङ)। ह का ग्ध्वा या ढ्वा वाला रूप। दह्-दग्ध्वा दुह्-दुग्ध्वा, लिह्-लीढ्वा। (ञ) दीर्घ ऋ को ईर्, होगा पृ का पूर् होगा। तृ-तीर्त्वा कॄ-कीर्त्वा पृ-पूर्त्वा। (ट) (उदितो वा) जिन धातुओं में से मूलरूप में उ हटा है वहाँ बीच में इ विकल्प से होगा। अतः दो रूप बनेंगे। नियम २१८ (छ) लगेगा, खनित्वा-खात्वा वनित्वा-वात्वा, तनित्वा तत्वा। (ठ) (अनुनासिकस्य क्विझलोः) क्रम् भ्रम् चम्, दम् भ्रम्, शम् के दो रूप होते हैं। एक इ लगाकर, दूसरा अम् को आन् बनाकर। जैसे—क्रमित्वा क्रान्त्वा भ्रमित्वा-भ्रान्त्वा। (ड) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—दा> दत्वा धा>हित्वा, हा (छोड़कर)> हित्वा, अद्> जग्ध्वा दिव्> द्यूत्वा, देवित्वा, सिव्>स्यूत्वा सेवित्वा।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (स्वसृ, मातृ शब्द) १ वह अपनी बहन (स्वसृ) को लेकर घर आया। २. माता गौरव में सौ पिताओं से भी बढ़कर है। ३ पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाय, पर माता कुमाता नहीं होती। ४ बहू की ननँद (ननान्दृ) से नहीं पटती है, पर देवरानी (यातृ) से अच्छी पटती है। ५ मैं मौसी (मातृष्वसृ) और फूआ (पितृष्वसृ) के घर गया था। ६ लड़की विवाह के बाद दूर भेजी जाती है अतः उसे दुहिता कहते हैं। (ख) (पुंस्, मन्, धातु) १ पदाति पदातियों से लड़ते हैं और घुड़सवार घुड़सवारों से (सादिन्)। २ प्रजा से प्रजा उत्पन्न होती है। ३ विषयों का ध्यान करनेवालों को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम और काम से क्रोध होता है। ४ उसमें कोई गुण नहीं है (विद्)। ५ दुर्जन मित्रों से वियुक्त हो जाता है (वियुज्)। ६ हम अपने काम में लगाते हैं (अभियुज्)। ७ ऐसा मेरा विश्वास है (मन्)। ८ वह मुझको बहुत मानता है (मन्)। ९ मैं जबतक जीवित हूँ करूँगा। (ग) (क्त्वा प्रत्यय) १ जो जन्म लेकर, पढ़कर, लिखकर, सुनकर और मनन करके (मन्) भी ईश्वरभक्ति नहीं करता उसका जीवन असार है। २ बालक प्रातः उठकर, मुँह धोकर, खाना खाकर, पानी पीकर, पाठ याद करके (स्मृ), लेख लिखकर, बस्ते में (प्रवेश) पुस्तकें रखकर विद्यालय को जाता है। ३. घर आकर खेलकर, कूदकर, हँसकर, उठकर, बैठकर, कुछ देकर, कुछ लेकर, गाकर और नाचकर मनोरंजन करता है। ४ कुल मिलाकर हम सात आदमी हैं। ५ आप इसको उलटा न समझें। ६ समुद्र को छोड़कर महानदी कहाँ उतरती है। ७ वह मौं बनाकर, बकवाद झगड़ा करके सोता। ८ इसका अर्थ ठीक समझकर अपना कर्तव्य निश्चित करूँगा। (घ) (तृतीया) १ इधर-उधर की मत हाँकिए, सीधी बात कहिए। २ अपशब्द न कहिए। ३ बस इतने ही कुछ रहने दो। ४ बहुत कष्ट न कीजिए। ५ ऐसे प्राण और पुरुषार्थ से क्या लाभ जो अपरिचितों को न बचा सकें। ६ कुद्ध सर्प क्या दूध की इच्छा से छूनेवाले को काटता है। ७ उद्यम से ही काम सिद्ध होते हैं मनोरथों से नहीं। ८ उद्यम के बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते। ९ उपाय से जो चीज सम्भव है, वह पराक्रम से सम्भव नहीं। (ङ) (फलवर्ग) फल स्वास्थ्य और बुद्धि को बढ़ाते हैं। शारीरिक और बौद्धिक उन्नति के लिए फलों का सेवन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं है कि महँगे फल ही खाए जायें, सस्ते फल भी उतना ही लाभ देते हैं। अपनी स्थिति के अनुसार फल खावे। ऋतु के अनुसार अंगूर, अनार, सेब, नाशपाती, खुबानी, आम, केला, संतरा, अमरूद, जामुन, बेर, काफल, आलूबुखारा, शहतूत, मुसम्मी, नारियल, लीची, अंजीर, चिरौंजी और अखरोट खावे।

संकेत—(क) २. पितॄन् शतं माता गौरवेणातिरिच्यते। ३ कुपुत्रो जायेत। ४ वधूर्ननान्द्रा न संगच्छते यात्रा संजानीते। ६ दुहिता दूरे हिता भवति। (ख) १ सादिनश्च सादिभिः। ३ ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते संगात् संजायते। ४ गुणलेशोऽप्यस्य नैव विद्यते। ५. वियुज्यते। ६ अभियुञ्ज्महे। ७ इति मे मतिः। ९. यावदहं जिये। (ग) २ मतीवे। ४ सर्वे मिलित्वा। ५. मैवमन्यथा संभाव्य। ६ अभिमन्य अवतरति। ७ भ्रूभङ्गं कृत्वा कलहमुत्पाद्य। ८ इति गृहीत्वार्थं भूत्वा निश्चेष्यामि। (घ) १ अलमसम्बद्धप्रलापेन प्रकृतमेवानुसर्तव्यम्। २. अलं दुर्वचनेन। ३ अलमेतावदपि कृत्वा। ४ कृतमायासेन। ५. अपरिचितपरित्राणशक्तैः किं प्राणैः पौरुषेण वा। ६. अलमतिप्रसङ्गेन किम्, यदा स्पृष्टः दशति क्रुद्धः। ९. उपायतः। (ङ) फलानि, भक्षयेत्।

शब्दकोष—१ ७११+२५=७३६] अभ्यास ४४ (व्याकरण)

(क) आर्द्रालुः (आड़ू), सीताफलम् (शरीफा), पुंनागम् (फालसा), आम्रातकम् (१ आँवड़ा, २ अमावट) आम्रचूर्णम् (अमचूर), कर्कटिका (ककड़ी) मधुकर्कटी (चकोतरा), खर्बुजम् (खरबूजा) कालिन्दम् (तरबूज), कर्मरङ्गम् (कमरख), खर्जूरम् (खजूर) लकुचम् (बड़हल) शृंगाटकम् (सिंघाड़ा), निर्बीजम् (१ बिदाना अंगूर, २ बिदाना अनार) शुष्कफलम् (मेवा) वातादम् (बादाम), अक्षोटम् (अखरोट) अंकोलम् (पिस्ता), काजवम् (काजू) शुष्कद्राक्षा (किशमिश), मधुरिका (मुनक्का) क्षुधाहरम् (छुहारा) मखान्नम् (मखाना) प्रियालम् (चिरौंजी), पौष्टिकम् (पोस्ता)। (२५)

व्याकरण (नौ, वाच्, आप्, शक्, ल्यप्, णमुल् प्रत्यय)

१. नौ और वाच् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५१, ५२)

२. आप् और शक् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ६८, ६९)

नियम २२१—(समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्) धातु से पूर्व कोई अव्यय, उपसर्ग या च्वि प्रत्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है। ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले नञ् (अ) होगा तो ल्यप् नहीं होगा। ल्यप् अव्यय होता है, अतः इसके रूप नहीं चलते। जैसे—आदिश्य, संपठ्य, स्वीकृत्य। परन्तु अकृत्वा, अगत्वा।

नियम २२२—ल्यप् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें :—(क) साधारणतया धातु अपने मूलरूप में रहती है। गुण या वृद्धि नहीं होती है। इ भी बीच में नहीं लगता। जैसे—विलिख्य, आनीय, विहस्य। (ख) (अन्तरंगानपि विधीन्) ल्यप् होने पर धातु को कोई भी आदेश आदि नहीं होगा। जैसे—प्रदाय, विधाय, प्रस्तुत्य, प्रस्थाय, प्रक्रम्य, आपृच्छ्य, प्रदीव्य, प्रपठ्य। इन स्थानों पर दद्, हि, दीर्घ, इ आदि नहीं हुए। (ग) (न ल्यपि) दा, धा, मा, स्था, गा, पा, हा, सा के आ को ई नहीं होगा। प्रदाय, प्रधाय, प्रगाय, प्रपाय, विहाय आदि। (घ) (वा ल्यपि) गम् आदि के म् का लोप विकल्प से होता है, हन् आदि के न् का लोप नित्य। (लोप होने पर बीच में अगले नियम से त्) आगम्य>आगत्य, प्रणम्य>प्रणत्य। आहत्य, विहत्य, अनुमत्य। (ङ) (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) ह्रस्व अ, इ, उ, ऋ के बाद ल्यप् से पहले त् लग जाता है। अर्थात् त्य होता है। आगत्य, अधीत्य, विजित्य, संस्तुत्य, प्रहृत्य, प्रकृत्य। (च) दीर्घ ॠ को ईर्, पॄ को पूर् होगा। उत्तीर्य, विकीर्य, प्रपूर्य। (छ) (वचिस्वपि..., ग्रहिज्या...) वच् आदि को संप्रसारण होगा। वच्>प्रोच्य, वद्>अनूद्य, वस्>अध्युष्य, स्वप्>प्रसुप्य, ह्वे>आहूय, ग्रह्>संगृह्य, प्रच्छ्>आपृच्छ्य। (ज) (णेरनिटि) णिजन्त धातुओं के 'इ' का लोप हो जाता है। विचारि>विचार्य। (झ) (ल्यपि लघुपूर्वात्) धातु की उपधा में ह्रस्व अक्षर हो तो इ को अय् होगा। विगणय्य, प्रणमय्य, विरचय्य। (ञ) इनके ये रूप होते हैं—क्षि>प्रक्षीय, आपि>प्राप्य, प्रापय्य, दै>प्रदाय, ख्या>प्रख्याय, व्ये>उपव्याय। मी या मि>प्रमाय। ली>विलीय, विलाय।

नियम २२३—(क) (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च) बार-बार करना अर्थ में क्त्वा और णमुल् दोनों होते हैं। ये प्रत्यय होने पर शब्द दो बार रखा जाएगा। स्मृ>स्मारं स्मारम्, स्मृत्वा स्मृत्वा (याद करके)। पायं पायं-पीत्वा पीत्वा। भोजं भोजं-भुक्त्वा भुक्त्वा। श्रावं श्रावं-श्रुत्वा श्रुत्वा। (ख) (अन्यथैवं...) अन्यथा, एवं आदि के साथ णमुल् होगा। अन्यथाकारम्, एवंकारम्, कथंकारं ब्रूते।

अभ्यास ४४

संस्कृत बनाओ—(क) (नौ, वाच् शब्द) १ बड़े पुण्यरूपी मूल्य से तुमने यह शरीररूपी नौका खरीदी है। २ नौका से तीव्र वेगवाली नदी को पार करता है (तृ)। ३ चित्त, वाणी और क्रिया में सज्जनों की एकरूपता होती है। ४ वाणी उसके पीछे कवीश्वर के तुल्य चलती है। ५ लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है किन्तु आदिकालीन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ चलता है। ६ यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणों की वाणी में बल होता है और क्षत्रियों के बाहुओं में बल होता है। ७ वे लोग विद्वानों में उत्तम गिने जाते हैं जो मनोगत बात को वाणी से प्रकट कर सकते हैं। (ख) (आप्, शक् धातु) १ इससे क्या लाभ होगा ? २ इससे यह निष्कर्ष निकलता है। ३ चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो (आप्)। ४ ईश्वर जगत् में व्याप्त है (व्याप्)। ५ परीक्षा समाप्त हुई (समाप्)। ६ कौन इस दुष्कर काम को कर सकता है। ७ राम ही रावण को मार सका। (ग) (ल्यप् अमुक) १ तुम किसलिए हम पर दोषारोपण कर रहे हो। २ सत्य विषय पर गांधी जी ने लेख लिखे हैं। ३ यदि युद्ध को त्यागकर मृत्यु का भय न हो तो युद्ध को छोड़कर जाना उचित है। ४ कन्या को पति-गृह भेजकर मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गई है। ५ इस पर अधिक विचार मत करो। ६ सब लोग इष्ट वस्तु को पाकर सुखी हो जाते हैं। ७ कान बन्द करके ऐसा न हो। ८ सारी बात पत्र में लिखकर दो। ९ वह हाथ जोड़कर बोला। १० उसने लम्बी साँस लेकर पृथ्वी पर घुटने टेककर अपनी करुण कथा कही। ११ मेरी बात काटकर क्यों बोलते हो ? १२ सज्जन औरों का सत्कार करके, उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके पुरस्कृत करके सुखी होते हैं। १३ दुर्जन दुर्भाव को मन में रखकर, छिपकर एकत्र होकर तिरस्कार करके दुःख देकर सुख का अनुभव करते हैं। (घ) (चतुर्थी) १ इससे मेरा काम चल जाएगा। २ उसने चावलों को धूप में डाला। ३ उन्होंने लड़ाई के लिए कमर कस ली है। ४ मैं उनको कुछ नहीं समझता। ५ जो आपको रुचे (रुच्) वह कीजिए। ६ पापियों का नाम भी न लो उससे अमंगल होगा। (ङ) (फलवर्ग) डाक्टर और वैद्य फलों का बहुत महत्त्व बताते हैं। फल रक्त को शुद्ध करके बल बढ़ाता है। भोजन के बाद या तीसरे पहर फल खावें। आम, पपीता, फालसा ककड़ी खरबूजा तरबूज, कमरख, सिंघाड़ा निराला सभी लाभप्रद हैं। मेवा भी पौष्टिक और रक्तवर्धक है। बादाम, अखरोट, पिस्ता दाख, किशमिश मुनक्का, छुहारा, मखाना चिरौंजी और पोस्ता का भी सेवन करें।

संकेत:—(क) १ पुण्यपण्येन क्रीतमिदम्। ३ वाचि। ४ तं वाक् पश्चादनुवर्तते। ५ अर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। ६ वाचि वीर्यं द्विजानाम्, बाहुवीर्यं तु क्षत्रियाणाम्। ७ गण्यन्ते ते उत्तमतया विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। (ख) १ लाभः किं प्राप्स्यते। २ प्राप्नोति। ३ आप्नुहि। ५ समाप्तम्। ७ हन्तुमशक्नोत्। (ग) १ किमुद्दिश्य। २ सत्यमधिकृत्य। ३ यदि समरमपास्य। ४ प्रहित्य। ५ अलं विचार्य। ६ सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य। ७ पिधाय कर्णौ शान्तं पापम्। ८ सर्वं पत्रमारोप्य। ९ कृताञ्जलिः। १० दीर्घं निःश्वस्य जानुभ्यामवनीं गत्वा। ११ मद्वचनमाक्षिप्य। १२ सत्कृत्य अङ्गीकृत्य पुरस्कृत्य। १३ मनसिकृत्य तिरोभूय सम्भूय तिरस्कृत्य प्रपीड्य। (घ) १ इदं मे कार्यसिद्धये कल्पेत। २ तण्डुलानातपायोत्क्षिप्तवान्। ३ युद्धाय बद्धपरिकरास्ते। ४ तृणाय मन्ये। ६ कथमपि पापानां नामापि मा गृहाण। (ङ) चिर्भटी ककड़ी।

शब्दकोश-११००+२५=११२५] अभ्यास ४५ (व्याकरण)

(क) केसरिन् (शेर), द्वीपिन् (व्याघ्र, बघेरा), तरक्षुः (तेंदुआ), भल्लूकः (भालू) शाखामृगः (बन्दर), गोमायुः (गीदड़), वराहः (सूअर) शल्यः (सेह) वृकः (भेड़िया) कुरंगः (मृग) उक्षन् (बैल) लोमशा (लोमड़ी), महिषः (भैंसा), महिषी (भैंस) अजा (बकरी), मेषः (भेड़) कौलेयकः (कुत्ता), सरमा (कुतिया), खरः (गधा), मार्जारी (बिल्ली) वृश्चिकः (बिच्छू) गोधा (गोह), गृहगोधिका (छिपकली), मक्षा (मक्खी), कर्णजलौका (१ कनखजूरा २ गोजर)। (२५)

व्याकरण (सखि, सरित्, चि, भज्, तव्य, अनीय, केलिमर्)

१ सखि और सरित् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५१, ५४)

२ चि और भज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७०, ७१)

नियम २२४—(कृत्य प्रत्यय) (क) (तव्यत्तव्यानीयरः) 'चाहिए' अर्थ में धातु से तव्य, तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् का तव्य और अनीयर् का अनीय शेष रहता है। *तव्य और तव्यत् में कोई अन्तर नहीं है। वेद में तव्यत्वाला* शब्द स्वरित होगा, तव्यवाला नहीं। (ख) (तयोरेव कृत्यक्त॰) कृत्य प्रत्यय अर्थात् तव्य, अनीय आदि भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। (१) जब ये कर्मवाच्य में होंगे तो कर्म के अनुसार इनका लिंग, वचन और विभक्ति होगी। कर्ता में तृतीया कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्म के अनुसार। जैसे—तेन त्वया मया अस्माभिः वा पुस्तकानि पठितव्यानि, पठनीयानि वा। (२) जब तव्य और अनीय भाववाच्य में होंगे तो इनमें नपुंसक एकवचन ही होगा, कर्ता में तृतीया होगी। जैसे—तेन हसितव्यम्, हसनीयं वा। (३) तव्य और अनीय प्रत्ययान्त के रूप पुं॰ में रामवत्, स्त्रीलिंग में रमावत्, नपुं॰ में गृहवत् चलेंगे।

नियम २२५—'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २१७। वह नियम पूरा लगेगा। 'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुमुन् प्रत्ययान्त धातु रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। जैसे—कर्तुम्—कर्तव्य, पठितुम्—पठितव्य। सेवितव्य, हर्तव्य।

नियम २२६—अनीय प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ल्युट् (अन) अच् (अ) अप् (अ) में भी ये नियम लगेंगे। (क) साधारणतया धातु में कोई अन्तर नहीं होता। धातु मूलरूप में रहती है। बीच में इ नहीं *लगेगा। गम्>गमनीय, हसनीय, पठनीय। पा>पानीय, दानीय, स्नानीय। (ख)* धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् गुण होगा। उपधा के इ, उ, ऋ को भी क्रमशः ए, ओ, अर् गुण होगा। जैसे—चि>चयनीय, नी>नयनीय, भृ>भरणीय, भू>भवनीय, कृ>करणीय। लेखनीय, शोचनीय, कर्षणीय। (ग) धातु के अन्तिम ए और ऐ को आ होगा। आह्वे>आह्वानीय, गै>गानीय।

नियम २२७—(केलिमर उपसंख्यानम्) चाहिए अर्थ में केलिमर् प्रत्यय भी होता है। इसका एलिम शेष रहता है। पचेलिमा माषाः (पकाने योग्य)। भिदेलिमाः (तोड़ने योग्य)।

अभ्यास ५२

संस्कृत बनाओ—(क) (क्रम्, भ्रम् शब्द) १ [illegible] जो [illegible] हृदय पर रक्खा हुआ [illegible] नहीं [illegible]। २ [illegible] गिर पर रक्खे हुए मस्त को [illegible] फेंक देता है। ३ [illegible] (क्रम्) से दौड़ते को [illegible] नहीं मिटता। ४ [illegible] में नदियों का [illegible] कम हो जाता है और वर्षा में बढ़ जाता है। ५ कभी पिता (भिद्) को [illegible] है। ६ [illegible] (क्रम्) [illegible] के लिए [illegible] नहीं [illegible]। (ख) (त्रि, कृ, [illegible]) १ [illegible] पुत्रों को [illegible] है (त्रि)। २ जो धन को इकट्ठा करता है (चि), पर उसका उपभोग नहीं करता (भुज्), उसका वह धन व्यर्थ है। ३ [illegible] का शरीर [illegible] होता है (क्षि)। ४ [illegible], देवी [illegible] है [illegible] हैं [illegible] हैं। ५ मैं परीक्षित हूँ (परीक्षि) कि वह क्यो करता है, क्यों करता है। ६ व्यापार से धन बढ़ता है (उपचि) और [illegible] से घटता है (अपचि)। ७ वह अपने [illegible] का निश्चय करता है (निश्चि) और उसका पालन करता है। ८ [illegible] माला बनाने के लिए फूलों को इकट्ठा करता है (समुच्चि)। [illegible] अर्थ को जाननेवाला ही पूर्ण [illegible] को प्राप्त करता है। १ [illegible] पाप-पुण्यों का नहीं [illegible] मिलता है (क्रुध्)। (ग) (कृदन्तसन्त) १ रात्रि में भी पूरा सोना नहीं मिलता। २ गुरुओं की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती है। ३ इच्छानुसार काम करना चाहिए, शिक्षा कहीं नहीं मिलती। ४ [illegible] तक प्रेमी के साथ जाए। ५ कभी भी सज्जन शोक के अधीन नहीं होते। ६ [illegible] [illegible] होती है। ७ सोमवार के समीप [illegible] हो जाते हैं। ८ मित्र के [illegible] का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ९ परस्त्री को नहीं देखना चाहिए। १० जो [illegible] या [illegible] किया जो [illegible] या [illegible] छिपा जो करना या कर छिपा। ११ ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए। १२ पूज्य का अपमान नहीं करना चाहिए। (घ) (चतुर्थी) १ युद्ध के लिए तैयारी करता है। २ देवदत्त को [illegible] पसन्द है। ३ [illegible] राम का सौ रुपए ऋणी है (धारि)। ४ वह विद्या की इच्छा करता है (स्पृह्)। ५ मैं इस तुम्हारे शिशु को चाहता हूँ (स्पृह्)। ६ यह लकड़ी खंभे के लिए है यह सोना कुण्डल के लिए है और यह कपास कातने के लिए है। (ङ) (पशु वर्ग) मनुष्य के तुल्य पशु भी दया के पात्र हैं। पशु हत्या घृणित कार्य है। पशु भी मनुष्य के उपकार को मानते हैं। अकारण ही शेर, चीता, तेंदुआ, भालू, बन्दर, गीदड़, सूअर, भेड़िया, मृग, भाम, बैल, बछड़ा, भैंस, भैंसा, कुत्ता, बिल्ली, बकरा, साँप या बिच्छू को नहीं मारना चाहिए।

संकेत:—(क) १ [illegible] यदि [illegible], [illegible]। २ [illegible] [illegible] [illegible]। ४ [illegible]। ६ [illegible]। (ख) १ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible] न [illegible]। ५ परिचिनोमि। ६ [illegible] [illegible]। ७ निश्चिनोति। ९ [illegible] [illegible] [illegible]। १ [illegible] [illegible]। (ग) १ [illegible] [illegible] [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ४ [illegible] [illegible] [illegible]। ५ [illegible]। ७ [illegible]। ८ [illegible]। ९ [illegible] [illegible]। १० [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ११ [illegible]। १२ [illegible] [illegible] [illegible]। (घ) १ [illegible]। ३ [illegible]। ५ [illegible]। ६ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

शब्दकोश–११९५+२५=१२२०] अभ्यास ४६ (व्याकरण)

(क) पारावतः (कबूतर), चटकः (चिड़िया), परभृतः (कोयल), मरालः (हंस), बकः (बगुला) सारसः (सारस), वर्तकः (बतख), कीरः (तोता), सारिका (मैना), ध्वांक्षः (कौआ), चिल्लः (चील), गृध्रः (गिद्ध), श्येनः (बाज), कौशिकः (उल्लू), खंजनः (खंजन), चाषः (नीलकंठ), दार्वाघाटः (कठफोड़ा), चातकः (चातक), चक्रवाकः (चकवा), बर्हिन् (मोर), षट्पदः (भौंरा), पतंगः (१ पतंगा, २ टिड्डी), सरघा (मधुमक्खी) वरटा (१ हंसी २ भिरड़, ततैया, बर्रे), कुलायः (घोंसला)। (२५)

व्याकरण (समिध्, अप्, स्तु धातु, यत्, ण्यत्, क्यप्)

१ समिध् और अप् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५५, ५६)

२ स्तु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७२)

नियम २२८—(यत् प्रत्यय) (अचो यत्) चाहिए या योग्य अर्थ में आ, इ, ई, उ, ऊ अन्तवाली धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का य शेष रहता है। यत् प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। कर्मवाच्य में कर्म के तुल्य लिंग, विभक्ति, वचन। कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा क्रिया कर्मवत्। भाववाच्य में कर्ता में तृतीया क्रिया में नपुं. एकवचन। मया अस्माभिः वा जलं पेयम्, दानं देयम्, फलानि चेयानि। मया स्थेयम्।

नियम २२९—यत् प्रत्यय लगाने पर धातु में ये अन्तर होते हैं:—(१) (ईद्यति) आ को ई होकर ए हो जाएगा। आ>ए। दा>देयम्, गा>गेयम्, पा>पेयम्, स्था>स्थेयम्, हा>हेयम्। (२) इ ई को गुण होकर ए हो जाएगा। चि>चेयम्, जि>जेयम्, नी>नेयम्। (३) उ ऊ को गुण ओ होकर अव् हो जाएगा। धु>धव्यम्, हु>हव्यम्, श्रु>श्रव्यम्, भू>भव्यम्।

नियम २३०—इन स्थानों पर भी यत् (य) होगा:—(१) (पोरदुपधात्) पवर्गान्त और उपधा में अ वाली धातुओं से। शप्यम्, लभ्यम्। (२) (हनो वा यद्) हन् से यत् और हन् को वध। हन्>वध्यः। (३) (शकिसहोश्च) शक् और सह् धातु से। शक्यम्, सह्यम्। (४) (गदमदचर) गद् मद् चर् और यम् धातु से। गद्यम्, मद्यम्, चर्यम्, यम्यम्। (५) (अवद्यपण्यवर्या) अवद्यम् (नीच) पण्यम् (बिक्रेय) वर्या (वरणयोग्य) ये रूप बनते हैं।

नियम २३१—(ण्यत् प्रत्यय) (१) (ऋहलोर्ण्यत्) ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् (य) होगा। अन्तिम ऋ को आर् वृद्धि और उपधा के इ उ ऋ को गुण। कृ>कार्यम्। हार्यम्, धार्यम्। मृज्+ण्यत्=मार्ग्यः होगा। भुज्+ण्यत्=भोग्यम् (भक्ष्य), अन्यत्र भोज्यम् होगा। (२) (त्यजेश्च) त्यज्+ण्यत्=त्याज्यम् होगा। (३) (ओरावश्यके) उकारान्त से अवश्य अर्थ में। लू>लाव्यम्, पू>पाव्यम्।

नियम २३२—(क्यप् प्रत्यय) (१) (एतिस्तुशास्) इन धातुओं से क्यप् (य) होगा और ये रूप बनेंगे—इ>इत्य, स्तु>स्तुत्यः, शास्>शिष्यः, वृ>वृत्यः, आदृ>आदृत्यः, जुष्>जुष्यः। (२) (मृजेर्विभाषा) मृज्>मृज्यः। (३) (भृञोऽसंज्ञायाम्) भृ>भृत्यः (नौकर)। (४) (विभाषा कृवृषोः) कृ>कृत्यम्, वृष्>वृष्यम्। कृ से ण्यत् होकर कार्यम् भी बनेगा।

अभ्यास ४६

संस्कृत बनाओ—(क) (समिध्, अप् शब्द) १ समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त होती है (समिन्ध्)। २ हम समिधा लाने के लिए जा रहे हैं। ३ जल हमारे सुख और इष्ट-प्राप्ति के लिए हो। ४ जल में ओषधि के गुण हैं। ५ जल सुखप्रद है। (ख) (सु धातु) १ उसने गिलोय का रस निचोड़ा (सु)। २ प्राचीन काल में यज्ञों में सोमलता का रस निचोड़ा जाता था। ३ मूर्छा दोषों को छिपा लेती है (संवृ)। ४ रक्षारूपी योग से वह भी प्रतिदिन तप का संचय करता है (संचि)। ५ वह मन के [illegible] जाता है (चि)। (ग) (कृत्य प्रत्यय) १ अतः परीक्षा करके गुप्त प्रेम करना चाहिए। २ कुशिष्य को दी हुई विद्या के तुल्य तुम अशोचनीय हो गए हो। ३ सारी अवस्थाओं में सुन्दर व्यक्ति रमणीय होते हैं। ४ इसको अंगूठी कैसे मिली, इस पर विचार करना चाहिए। ५ भूख मुझे खा जाएगी। ६ ब्राह्मण को निष्कारणभाव से षडङ्ग वेदों को पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए। ७ उसके एक अंश का अभिनय किया गया। ८ मूर्ख की बुद्धि दूसरे के विश्वास पर चलती है। ९ वह नींद के अधीन हो गया। १० स्वार्थपरायण नहीं होना चाहिए। ११ ऐसे लोग सभी की हँसी के पात्र होते हैं। १२ अतिथि-विशेष का संमान करना चाहिए। १३ पापी निन्दा को प्राप्त होता है। १४ वह कायर है इसलिए निन्दा को प्राप्त हुआ। १५ तुम मेरी ओर से राजा से कहना। (घ) (पंचमी) १ वह आय से अधिक व्यय करता है। २ मैंने तुम्हारे विश्वास पर और हित समझकर ऐसा किया है। ३ लाचार होकर मैंने चोरी की। ४ यह मेरे शरीर से अभिन्न है। ५ भगवान् कमरे से बाहर नहीं जाता। ६ अतिपरिचय से तिरस्कार होता है, निरन्तर किसी के घर जाने से अनादर होता है। ७ वह रास्ता भूल गया। ८ कहने से करना अच्छा है। ९ कठिन समय में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। (ङ) (पक्षिवर्ग) पक्षियों की मधुर ध्वनि किसके मन को बरबस नहीं हर लेती। वनों उपवनों में पक्षी मधुर संगीत करते हैं। कबूतर, कोयल, हंस, बगुले, बतख, तोता, मैना, कौवे, चील, गिद्ध, बाज, खंजन, नीलकंठ, कठफोड़ा, चातक, चकवा, चकवी ये सभी आकाश में उड़ते हैं और मनोरंजन करते हैं। पक्षी वृक्षों में घोंसले बनाकर रहते हैं। भौंरे और मधुमक्खी पुष्पों का पराग ले लेते हैं। मधुमक्खियाँ शहद तैयार करती हैं।

संकेत:—(क) १ समिध्यते। ३ शं नो देवीरभीष्टये आपः। ४ अप्सु भेषजम्। ५ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। (ख) १ असुनोद् अमृतवल्लीम्। २ सूयते स्म। ३ संवृणोति [illegible]। ४ रक्षायोगात्। ५ मनःकुसुमानि चिनोति। (ग) १ अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः। ३ रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। ४ अंगुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। ५ बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। ६ ब्राह्मणेन निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। ७ एकदेशोऽभिनेयार्थः कृतः। ८ मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः। ९ निद्राभिभूतो जातः। १० [illegible]। ११ [illegible]। १२ संमान्यः। १३ वाच्यतां याति। १४ कातरः। १५ मद्वचनात्। (घ) १ [illegible]। ३ [illegible]। ४ अव्यतिरिक्तः। ५ भगवान् कक्षान्न निर्गच्छति। ६ अवज्ञा [illegible] सन्ततगमनात्। ७ मार्गाद् भ्रष्टः। ८ वाचः कर्मातिरिच्यते। ९ त्याज्यम्।

शब्दकोष—११७५+२५=१२] अभ्यास ४८ (व्याकरण)

(क) गात्रम् (शरीर), शिरस् (नपुं., सिर), शिरोरुहः (बाल) शिखा (चोटी), पलितम् (सफेद बाल), ललाटम् (माथा), लोचनम् (नेत्र), घ्राणम् (नाक), आस्यम् (मुँह), रसना (जीभ), रदनः (दाँत), श्रोत्रम् (कान), कण्ठः (गला), ग्रीवा (गर्दन) स्कन्धः (कंधा), जत्रु (नपुं., कंधे की हड्डी), कूर्चम् (दाढ़ी), श्मश्रु (नपुं., मूँछ), कपोलः (गाल), ओष्ठः (ओठ), अधरः (नीचे का होंठ), भ्रूः (स्त्री., भौं), पक्ष्मन् (नपुं., पलक), वक्षस् (नपुं., छाती) कुक्षिः (पेट)। (२५)

व्याकरण (दिव्, उपानह्, क्लिश्, स्पृश्, तृच्, अच्, अप्)

१. दिव् और उपानह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ५९, ६)

२. क्लिश् और स्पृश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७५, ७६)

नियम २३६—(ण्वुल्तृचौ) धातु से 'वाला' (कर्ता) अर्थ में तृच् प्रत्यय होता है। तृच् का 'तृ' शेष रहता है। जैसे—कृ>कर्तृ (करनेवाला), हृ>हर्तृ (हरने वाला)। कर्ता के अनुसार इसके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। पुंलिंग में इसके रूप कर्तृ शब्द (शब्द सं. ११) के तुल्य चलेंगे। स्त्रीलिंग में अन्त में 'ई' लगाकर नदी (शब्द ४१) के तुल्य और नपुं. में कर्तृ (शब्द ६७) के तुल्य रूप चलेंगे। प्रायः सभी धातुओं से तृच् प्रत्यय लगता है। तृच् प्रत्ययान्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। पुस्तकस्य कर्ता पठिता, हर्ता वा। धातु को गुण होता है।

नियम २३७—तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि धातु के तुमुन् प्रत्ययान्त रूप में से तुम् के स्थान पर तृ लगाने से तृच् प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। नियम २१७ (क) से (ज) पूरा लगेगा। (क) धातु को गुण होगा। कृ>कर्तुम्>कर्तृ। हर्तृ, धर्तृ, मर्तृ। जेता, नेता, भविता। (ख) सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। पठितृ, सेवितृ, रोदितृ। (ग) पक्तृ, मोक्तृ, छेत्तृ। (घ) म्रष्टृ, प्रवेष्टृ स्रष्टृ। (ङ) व्यवहर्तृ, गातृ। (च) गन्तृ, रन्तृ। (छ) दग्धृ, द्रोग्धृ, योग्धृ, लेढृ बोढृ। (ज) लब्धा, बोद्धा, स्रष्टा द्रष्टा, आराद्धा, प्रहोता प्र. एक. में।

नियम २३८—(१) (पचाद्यच्) पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। अच् का अ शेष रहता है। अच् लगाने से संज्ञाशब्द बन जाते हैं। धातु को गुण होता है। पुंलिंग रहता है। रामवत् रूप होंगे। पच्>पचः। इसी प्रकार मदः चोरः, देवः, चरः, चलः, पतः, वदः, मरः, क्षमः, कोपः, जपः, सर्पः, दर्पः आदि। (२) (एरच्) इ या ई अन्तवाली धातुओं से अच् (अ) प्रत्यय होता है। गुण ए होकर अय् आदेश। चि>चयः, जि>जयः, नी>नयः। आश्रि>आश्रयः। इसी प्रकार प्रश्रयः, विनयः, प्रणयः।

नियम २३९—(ऋदोरप्) दीर्घ ॠ उ या ऊ अन्तवाली धातुओं से अप् (अ) प्रत्यय होता है। गुण होता है, पुंलिंग होगा। कॄ>करः, गॄ>गरः। यु>यवः, स्तु>स्तवः। पू>पवः, भू>भवः।

अभ्यास ४८

संस्कृत बनाओ—(क) (दिश्, उपानह् शब्द) १ दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और हवा सुन्दर बहने लगी। २ वायु प्रत्येक दिशा में मकरन्द को फैला रही है (कॄ)। ३ दक्षिण दिशा में सूर्य का भी तेज मन्द हो जाता है। ४ कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नहीं चबाता। ५ जूता पैर में हो तो सारी पृथ्वी चमड़े से ढकी-सी दीखती है। (ख) (क्लिश्, स्पृश् धातु) १ अत्याचारियों को क्लेश पहुँचाना मेरे भाग्य में मत लिखना। २ रात्रि ने तारे रूपी अक्षरों से आकाश में अन्धकार की प्रशस्ति लिखी है। ३ उसने सिर, बाल, आँख, नाक, कान और पेट को छुआ। ४ हाथी छूता हुआ भी मार डालता है। ५ वह सोलह वर्ष का हो गया। ६ बिना मन के भी वीर पुरुष संग्रामवाले उत्साह के पद को पाता है। ७ किसपर दोष डालूँ (निक्षिप्)। (ग) (तृष् आदि प्रत्यय) १ कौन शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को वस्त्र से रोकता है। २ विषय ऊपर से मनोहर लगते हैं, पर उनका अन्त दुःखद होता है। ३ विद्वानों के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। ४ विनय सज्जनों को प्रिय क्यों न हो क्योंकि वह योगियों को मुक्ति देता है। ५ लता ही नहीं रही तो फूल कहाँ? ६ जिसको तुम आग समझते थे वह स्पर्श के योग्य रत्न है। (घ) (षष्ठी) १ ऋषियों के लिए क्या परोक्ष है? २ वीरों का निश्चय कठोर कर्मों वाला होता है वह प्रेम मार्ग को छोड़ देता है। ३ उसमें ईर्ष्या नाममात्र को नहीं है। ४ उसे मरे आज तीसरा दिन है। ५ तुम्हारी बात सत्य-सी प्रतीत होती है। ६ वर्षों हुए वे समाप्त हो गए। ७ भूकम्प आए एक महीना हो गया। ८ उसका मुँह हर्ष से खिल गया। ९ उसका मुख कमल की शोभा को धारण करता है। १० उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है। (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर ही मुख्यतः धर्म का साधन है। शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। स्वच्छ वायु में भ्रमण और व्यायाम से शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहता है। नियमित रूप से स्नान करे और सिर, हाथ, नाक, आँख, कान, गर्दन, कन्धा, छाती, पेट, जाँघ, पैर और मुँह को जल से या साबुन से धोवे। सिर में तेल डाले, माथे पर तिलक लगावे, आँख में अंजन लगावे। दाढ़ी को उस्तरे से साफ करे, मूँछ को साफ रक्खे, नाखूनों को नेल-कटर (नहरनी) से काटे। अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा, इन पाँचों अंगुलियों को पुष्ट रक्खे।

संकेत—(क) १ प्रसेदुः, ववौ वायुः सुखाः। २ दिशि दिशि किरति। ३ दक्षिणस्यां [illegible] मन्दायते। ४ क्रियते नाश्नात्युपानहम्। ५ उपानद्गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भूः। (ख) १ अत्याचारिषु क्लेशनिवेशनं [illegible] मा लिख। २ ताराक्षरैः तमःप्रशस्तिम्। ४ स्पृशन्नपि गजो हन्ति। ५ षोडशवर्ष[illegible]। ६ लभते पदमासीनोऽप्य[illegible]। (ग) १ शरीरनिर्वापिणीं शारदीं [illegible]। २ आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः। ३ धीमताम् अविदितम्। ४ योगिनां परिणमन् विमुक्तये केन नास्तु विनयः सतां प्रियः। ५ लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्योद्गमः कुतः। ६ आशङ्कसे यदग्निम्। (घ) १ किमपरोक्षम्। २ वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते। ३ [illegible] मत्सरस्य। ४ [illegible] दिनम्। ५ सत्यमिव प्रतिभाति। ६ [illegible]। ७ [illegible]। ८ हर्षोत्फुल्लं [illegible]। ९ [illegible]। १० [illegible]। (ङ) शरीरमाद्यम् [illegible] प्रमार्जयेत् [illegible] नखनिकृन्तनेन कृन्तेत्।

शब्दकोष-१२००+२५=१२२५] अभ्यास ४९ (व्याकरण)

(क) पृष्ठम् (पीठ) श्रोणि (स्त्री, कमर), ऊरुः (जंघा), जानु (घुटना), गुल्फः (टखना, पैर की जोड़की हड्डी), बाहुः (बाँह), कफोणिः (कोहनी) मणिबन्धः (कलाई), चपेटः (थप्पड़), मुष्टिः (मुट्ठी), करभः (कलाई से कनी अँगुलि तक), नाडिः (स्त्री नाड़ी), सिरा (स्त्री नस), फुफ्फुसम् (फेफड़ा) हृदयम् (हृदय), यकृत् (नपुं, जिगर), प्लीहा (तिल्ली), अन्त्रम् (आँत), पृष्ठास्थि (नपुं, रीढ़), शुक्रम् (वीर्य), रजस् (रज), रुधिरम् (खून), आमिषम् (मांस), वसा (चर्बी), मज्जा (हड्डी के अन्दर की चर्बी)। (२५)

व्याकरण (वारि, दधि, कृ, गृ, ल्युट्, ण्वुल्, ट प्रत्यय।)

१. वारि और दधि शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १२, १३)।

२. कृ और गृ धातुओं के रूप स्मरण करो। (दे० धातु ७७, ७८)।

नियम २४०—(ल्युट् प्रत्यय) (१) (ल्युट् च) भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् के यु को 'अन' हो जाता है। अन प्रत्ययान्त शब्द नपुं० होते हैं। धातु को गुण होता है। ल्युट् (अन) प्रत्यय में भी वही नियम लगते हैं जो अनीय प्रत्यय में लगते हैं। देखो नियम २२६। गम्>गमनम् (जाना)। इसी प्रकार पठनम्, लेखनम्, पचनम्, पूजनम्। कृ>करणम्। हरणम्, भरणम्, मरणम्, रोदनम्। (२) (करणाधिकरणयोश्च) करण और अधिकरण अर्थों में भी ल्युट् (अन) होता है। यानम् (जिससे जाते हैं, सवारी), स्थानम् (जहाँ बैठते हैं), उपकरणम् (जिससे काम करते हैं, साधन), आवरणम् (जिससे ढकते हैं)। (३) (कर्मणि च येन०) कर्ता को सुख मिले तो कर्म पहले होने पर धातु से ल्युट् (अन)। नित्य-समास होगा। पयःपानं सुखम्। (४) (नन्दिग्रहि०) नन्द् आदि से ल्यु (अन) होता है। नन्दनः, जनार्दनः, मधुसूदनः।

नियम २४१—(ण्वुल्तृचौ) करनेवाला (कर्ता) अर्थ में धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के वु को 'अक' हो जाता है। नियम २१४ के तुल्य वृद्धि होगी। कर्ता के तुल्य इसके रूप होंगे। पुं० में रामवत्, स्त्रीलिंग में 'इका' अन्त में होगा और रमावत्, नपुं० में ज्ञानवत्। कृ> कारकः (करनेवाला), कारिका, कारकम्। पाठकः, लेखकः, हारकः, उपकारकः, सेवकः। (१) (आतो युक्०) आकारान्त धातु में बीच में य् लगेगा। दा> दायकः, धा>धायकः, पा> पायकः। (२) (नोदात्तोपदेशस्य०) इनको वृद्धि नहीं होगी। शमकः, दमकः, गमकः, यमकः। जन् को भी वृद्धि नहीं होती। जनकः। (३) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—हन्>घातकः, वध्>वधकः, रञ्ज्> रञ्जकः रम्>रमकः, क्रम्>क्रमकः।

नियम २४२—(ट प्रत्यय) इन स्थानों पर ट (अ) होता है—(१) (चरेष्टः) अधिकरण पहले होने पर चर् धातु से। कुरुचरः। (२) (भिक्षासेना०) भिक्षा आदि पहले हों तो चर् धातु से। भिक्षाचरः, सेनाचरः, आदायचरः। (३) (पुरोऽग्रतो०) पुरः आदि पहले हों तो सृ धातु से। पुरःसरः, अग्रतःसरः, अग्रेसरः, अग्रसरः। (४) (कृञो हेतु०) कृ धातु से हेतु, स्वभाव और अनुकूल अर्थ में। यशस्करी विद्या, श्राद्धकरः, वचनकरः। (५) (दिवाविभानिशाप्रभा०) दिवा आदि पहले हों तो कृ धातु से। दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, किंकरः, लिपिकरः, चित्रकरः। (६) (कर्मणि भृतौ) कर्म पहले हो तो कृ धातु से। कर्मकरः (नौकर)।

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (वारि, दधि शब्द) १ जिस प्रकार फावड़े से खोदकर मनुष्य जल पा लेता है उसी प्रकार सेवा से गुरुगत विद्या को प्राप्त कर लेता है। २ एक बार चन्द्रमा ने समुद्र के निर्मल (शुचि) जल में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब को देखा और उसने खेदपूर्वक तारा के मुख का स्मरण किया। ३ दूध दही के रूप में परिणत होता है। ४ दही मीठी है, मधु मधुर है, अंगूर मीठे हैं, चीनी भी मीठी है। जिसका मन जिसमें लग गया उसके लिए वही मीठा है। (ख) (कृ गृ धातु) १ यह कोई वीर बालक सेनाओं के ऊपर बाणरूपी हिम को डाल रहा है (कृ)। २ हवा प्रत्येक दिशा में पराग को फैला रही है (कृ)। ३ हरिणशावकों में वह पूर्वों की संकाश डाल दी है (प्रकृ)। ४ घोड़े खुरों से भूमि को खोद रहे हैं (उत्कृ)। ५ तेरी तलवार शत्रुओं के शरीरों को टुकड़े-टुकड़े कर दे (विकृ)। ६ बैल प्रसन्नचित्त हो मिट्टी खोदता है, कबूतरी मुर्गा खाने को खोदता है कुत्ता सोने के लिए मिट्टी खोदता है (अपस्कृ, आ)। ७ रोगी दवा की गोली को निगलता है (गृ)। ८ राजा ने वचन कहा (उद्गृ)। ९. साँप विष को उगलता है (उद्गृ)। १० बालक अन्न के ग्रास को निगलता है (निगृ)। ११ वह शब्द को विरुद्ध मानता है (संगृ आ)। (ग) (स्फुट् आदि) १ उसने राष्ट्रपतिजी से भेंट की। २ मैं राष्ट्रपतिजी से मिलना चाहता हूँ। ३ मधुर आकृतियों के लिए क्या मण्डन नहीं है। ४ जीवन में हँसना रोना, मरना, जीना, उत्थान पतन लगा ही रहता है। ५ विद्या यशस्करी है। ६ अधिक बोलने के कारण मुझे बहुत ताना सहना पड़ा है। (घ) (षष्ठी) १ यह मेरा विश्वस्त बन्धु है। २ यह मेरा विश्वासपात्र है। ३ राजा के पास जाता हूँ। ४ वह सत्कार मेरे मनोरथों से भी परे था। ५ उसका तुम्हारी याद करता है। ६ वह भिक्षु पर दया करता है। ७ यदि अपने आपको संभाल सका तो जियेगा चाहेगा। ८ आपका शिष्यों पर पूरा अधिकार है। ९ पाणिनि वैयाकरणों में श्रेष्ठ है। १० वह साहसियों में धुरीण और विद्वानों में अग्रणी है। ११ क्या तुम पति को याद करती हो? (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम अनिवार्य है। प्राणायाम से फेफड़ों की सफाई होती है। प्राणायाम से शरीर के प्रत्येक अंग में शुद्ध वायु पहुँचती है। पीठ, कमर, गुर्दा, टखना कोहनी कलाई, मुट्ठी हृदय, आँत नसें, नाड़ियाँ, सभी को प्राणायाम से लाभ होता है। वैद्यक के अनुसार वात पित्त और कफ के विकार से ही शरीर में सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। ठीक आहार और विहार से शरीर नीरोग रहता है।

संकेत—(क) १ यथा खनन् खनित्रेण अधिगच्छति। २ शुचिनि संक्रान्तम् सस्मार। ३ दधिभावेन। ४ मधुर, चरम... मधुरम्। (ख) शरनुषारं किरति। २ प्रकिरति। ४ परिकिरन्ति। ५. कर्मठी विकिरतु। ६. आकिरति ७. निगिरति। ८. उदगार। ९. उद्गिरति। १० निगिरति। ११ शब्दं निर्दं संगिरते। (ग) १ राष्ट्रपतिजिरर्पी सेवे। २ राष्ट्र राष्ट्रपतिमा-सुमवलिम्वसमि। ३ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। ४ ...। ५ ...
मत्वरेण बहुभाषणेन ...। (घ) १ विश्वासपात्रम्। २. विश्वासभूमिः। ३ ...। ४ ...
...। ५ स्मरति। ६ भिक्षोः दयते। ७ ...। ८ ...
शिष्येषु ...। ९ ...। १० ...। ११ ...।

शब्दकोष—१२२५+२५=१२५] अभ्यास ५० (व्याकरण)

(क) कंचुकः (कुर्ता), कंचुलिका (ब्लाउज), अधोवस्त्रम् (धोती), शाटिका (साड़ी), पादयामः (पायजामा), प्रावारः (कोट), प्रावारकम् (शेरवानी), बृहतिका (ओवरकोट), आप्रपदीनम् (पैंट), अन्तरीयम् (पेटी कोट), अधोंशुकम् (अण्डरवीयर, जाँघिया), नक्तकम् (नाइट ड्रेस), प्रच्छदपटः (ओढ़नी, चुन्नी), स्यूतवरः (सलवार), रल्लकः (लोई), नीशारः (रजाई), तूलसंस्तरः (गद्दा), आस्तरणम् (दरी), प्रच्छदः (चादर), उपधानम् (तकिया), ऊर्णावरकम् (स्वेटर)। (२१)। (ख) कार्पासम् (सूती), कौशेयम् (रेशमी), राङ्कवम् (ऊनी), नाइलोनकम् (नाइलोन का)। (४)

व्याकरण (अक्षि, अस्थि, क्षिप्, मृ, क, खल्, णिनि प्रत्यय)

१ अक्षि और अस्थि शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ६४, ६५)

२ क्षिप् और मृ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ७१, ८)

नियम २४३—(क प्रत्यय) इन स्थानों पर क (अ) प्रत्यय होता है। क का 'अ' शेष रहता है। धातु को गुण नहीं होगा। धातु के अन्तिम आ का लोप होता है। 'कर्ता' (कर्ता) अर्थ में क प्रत्यय होता है। (१) (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः) जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ हो उनसे तथा ज्ञा, प्री, कॄ धातु से क प्रत्यय। लिख्> लिखः (लेखक) बुध्> बुधः (विद्वान्), कृश्> कृशः (निर्बल), ज्ञा> ज्ञः, प्री> प्रियः (प्रिय), कॄ> किरः (बखेरनेवाला)। (२) (आतश्चोपसर्गे) उपसर्ग पहले हो तो आकारान्त धातु से क। प्र+ज्ञा> प्रज्ञः विज्ञः, सुज्ञः, अभिज्ञः, आ+ह्वा> आह्वः प्रह्वः। (३) (आतोऽनुपसर्गे कः) उपसर्ग-भिन्न कोई कर्म पहले हो तो आकारान्त धातु से क। दा> सुखदः, दुःखदः, गोदः। त्रा> आतपत्रम्, गोत्रम् पुत्रः, छत्रः। पा> द्विपः गोपः, महीपः, पादपः। (४) (सुपि स्थः) कोई शब्द पहले हो तो आकारान्त और स्था धातु से क। पा> द्विपः। स्था> समस्थः, विषमस्थः। (५) (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलविभुज आदि में क होता है। मूलविभुजः, महीध्रः, कुध्रः। (६) (गेहे कः) ग्रह् धातु से गृह अर्थ में क। ग्रह्> गृहम्।

नियम २४४—(खल् प्रत्यय) (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुर् या सु पहले हो तो धातु से खल् (अ) प्रत्यय ही होता है कठिन या सरल अर्थ में। धातु को गुण होगा। ईषत्करः, दुष्करः, सुकरः। दुर्भेदः, सुभेदः, दुर्गमः, सुगमः, दुर्लभः, सुलभः, दुस्तरः, सुतरः।

नियम २४५—(णिनि प्रत्यय) इन स्थानों पर णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। नियम २१४ (?) के तुल्य वृद्धि या गुण। पुं. में करिन् के तुल्य, स्त्री. में ई लगाकर नदीवत्, नपुं. में वारिवत्। (१) (नन्दिग्रहि) ग्रह् आदि धातुओं से णिनि (इन्)। ग्रह> ग्राही। स्थायी, मन्त्री। (२) (सुप्यजातौ णिनि) जाति-भिन्न कोई शब्द पहले हो तो धातु से णिनि होगा, स्वभाव अर्थ में। भुज्> उष्णभोजी, आमिषभोजी, निरामिषभोजी। शाकाहारी मांसाहारी, मिथ्यावादी, मित्रद्रोही मनोहारी। वस्> निवासी, प्रवासी। कृ> उपकारी अपकारी अधिकारी। (३) (साधुकारिणि) अच्छा करने अर्थ में। साधुदायी। (४)(कर्तर्युपमाने) उपमान अर्थ में। उष्ट्रक्रोशी ध्वांक्षरावी। (५) (व्रते) व्रत में। स्थण्डिलशायी। (६) (मनः, आत्ममाने खश्च) अपने को समझने अर्थ में मन् धातु से णिनि और खश्(अ)। शब्द के अन्त में म् लगेगा। पण्डितंमानी, पण्डितंमन्यः।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (अक्षि, अस्थि शब्द) १ वह आँख से काणा है। २ उसकी आँख में तिनका गिर गया (पत्)। ३ उसे जागते ही रात बीती। ४ कुत्ता हड्डी को चाटता है। ५ हड्डियों में फास्फोरस भी होता है। (ख) (क्षिप्, घ धातु) १ नौकर पर दोष लगाता है (क्षिप्)। २ हे मूर्ख सुनार, तू मुझे बार-बार आग में क्यों डालता है (क्षिप्), जलने पर मेरे अन्दर गुण और बढ़ जाते हैं और मैं खरा सोना हो जाता हूँ। ३ जल में पत्थर फेंकता है (क्षिप्)। ४ उसने सुन्दर वस्त्र फेंककर (अवक्षिप्) मुनिवस्त्र पहने। ५ उसने कृष्ण की निन्दा की (अवक्षिप्)। ६ अरे मूर्ख, क्यों इस प्रकार अपमान कर रहा है (आक्षिप्)। ७ बालक ने ढेला ऊपर फेंका (उत्क्षिप्)। ८ वह भी अपना आभूषण सुनार के पास धरोहर रखती है (निक्षिप्)। ९ राजा ने उस पर क्रूर दृष्टि डाली (निक्षिप्)। १० जले पर नमक डालता है (प्रक्षिप्)। ११ गन्दी चीजें आग में न डालें (प्रक्षिप्)। १२ उसने अपना निबन्ध संक्षिप्त करके लिखा (संक्षिप्)। १३ आत्मा न उत्पन्न होता है (जन्) और न मरता है (मृ)। १४ परमात्मा न कभी मरा न वृद्ध हुआ। (ग) (क शब्द आदि) १ मित्र सुन्दर वचन ही कहता है सुनकर नहीं। २ यह काम शीघ्र करना तो सुकर है पर शुद्ध रूप से करना कठिन है। ३ आँधी में भी पहाड़ निष्कम्प रहते हैं। ४ सबके मन की रुचिकर बात कहना अति कठिन है। ५ जिनके प्रभाव से उत्तम पुरुष स्त्रियों के लिए अति दुष्कर होते हैं। ६ संसार में सुन्दरता सुलभ है, गुणार्जन कठिन है। ७ तुम्हारे लिए मृग पकड़ना कठिन नहीं होगा। ८ मनुष्यों की इच्छा ऊँची होती है। ९ बन्धुजनों के वियोग सन्तापकारी होते हैं। १० छिद्रान्वेषी लोग दोषों को ही देखते हैं। ११ उसने पृथ्वी उसके हाथों में दे दी। (घ) (सप्तमी) १ चौदहवें दिन सब ओर से वर्षा हुई थी। २ पति के कहने में रहना (स्था)। ३ उपनीजन पर प्रिय-सखी का व्यवहार करना। ४ ऐसा होने पर क्या करना चाहिए। ५ धनलाभ प्राप्त होने पर विद्वान् व्यक्ति आशा छोड़ देता है। ६ रण में जयश्री उत्कर्ष पर निर्भर है। (ङ) (वस्त्रवर्ग) वस्त्र शरीर को ढकने के लिए हैं। स्वच्छ और धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिएँ (धारि)। प्राचीन पद्धति को अपनानेवाले लोग कुर्ता धोती पहनते हैं। पाश्चात्य पद्धति को अपनानेवाले लोग कोट पैंट या पायजामा, शेरवानी पहनते हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट पहनती हैं। कुर्ता सलवार और ओढ़नी का पंजाब में अधिक प्रचलन है। आजकल सूती रेशमी, ऊनी और नाइलोन के कपड़े अधिक चलते हैं। बिस्तर में रुई गद्दा, चादर, तकिया रजाई, दोई, कम्बल दुशाले ये काम आते हैं।

संकेत—(क) १ काणमक्ष्णोः प्रभातमासीत्। ४ लेढि। ५. फास्फरस्। (ख) १. दोषान् क्षिपति। २. हन्ते दुर्मते कथमिति सुवर्णकार विशुद्धम्। ४ अवक्षिप्य वस्त्रं। ५ कृष्णमवाक्षिपत्। ६. आक्षिपसि। ७. उदक्षिपत्। ८. हस्ते निक्षिपति। ९. निक्षिपत्। १० क्षारं क्षते प्रक्षिपति। १२ अमेध्यम्। १३ संक्षिप्य। १४ न जायते न म्रियते। (ग) १. प्रियमपि सुकरम् निपुणमिति दुष्करम्। ३ प्रवातेऽपि। ४ दुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः। ६. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्। ७. मृगो दुष्करः। ८. उन्नतिच्छा। १० छिद्रान्वेषिणः। ११ हस्तप्राप्तिमिमामकरोत्। (घ) १ चतुर्दशे दिवसे समन्तात्सर्वतः देवः। २ वाक्ये। ३ वृत्तिः। ४ एवं गते सति। ५. लब्धलाभे। ६ प्रकर्षतन्त्रा। (ङ) कौशेयाणि आविकानि, सम्यग्वाससाम् कम्बलः, द्विपटी, वस्त्रमुच्यते।—

शब्दकोष—१२५०+२५=१२७५] अभ्यास ४१ (व्याकरण)

(क) आभरणम् (आभूषण), मूर्धाभरणम् (बेंदी), ललाटाभरणम् (टिकुली), नासाभरणम् (१ नथ २ बुलाक), नासापुष्पम् (नाक का फूल), कर्णपूरः (कनफूल), कुण्डलम् (कान की बाली), कण्ठाभरणम् (कण्ठा), ग्रैवेयकम् (हंसुली), हारः (मोती का हार), एकावली (एक लड़ का हार), मुक्तावली (मोती की माला), स्रक् (पुष्प-माला), केयूरम् (बाजूबन्द, ब्रेसलेट), कंकणम् (कंगन), काचवलयम् (चूड़ी), अंगुलीयकम् (अंगूठी), कटकः (सोने का कड़ा), त्रोटकम् (हाथ का तोड़ा), मेखला (करधन), नूपुरम् (पाजेब), पादाभरणम् (छल्ले), मुकुटम् (मुकुट), मुद्रिका (नामांकित अँगूठी), किंकिणी (घुंघरू)। (२५)

व्याकरण (मधु, कर्तृ, गुह्, मुच्, क्तिन्, अण्, क्विप्)

१. मधु और कर्तृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १६, १७)
२. गुह् और मुच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८१, ८२)

नियम २४६—(क्तिन् प्रत्यय) (१) (स्त्रियां क्तिन्) धातुओं से स्त्रीलिंग में क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग ही होते हैं। गुण या वृद्धि नहीं होगी। सम्प्रसारण होगा। ति प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा शब्द बनते हैं। जैसे—कृ > कृतिः, धृतिः, स्तुतिः, भूतिः। 'ति' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २३८ (क) (ग) से (झ)। साधारणतया क्त प्रत्ययान्त रूप में त के स्थान पर ति लगाने से क्ति प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं। जैसे—गा > गीत > गीति, गम् > गत > गति, वच् > उक्त > उक्ति। (क) कृति, हृति, धृति। (ग) गीति, पीति। (घ) उपमिति, स्थिति। (ङ) गति, मति, नति। (छ) ख्याति, स्फाति। (ज) उक्ति, इष्टि, सुप्ति। (झ) ग्लानि, म्लानि। (२) (स्थागापापचो भावे) इनसे भावार्थ में क्तिन्। उपस्थितिः, गीतिः, संपीतिः, पक्तिः। (३) (ऊतियूति०) से रूप बनते हैं—ऊतिः, हेतिः, कीर्तिः। (४) (संपदादिभ्यः) संपद् आदि से। संपत्ति विपत्ति।

नियम २४७—(अण् प्रत्यय) (कर्मण्यण्) कोई कर्मवाचक शब्द पहले हो तो धातु से अण् (अ) प्रत्यय होता है। धातु को वृद्धि होती है। कुम्भं करोतीति > कुम्भकारः।

नियम २४८—(क्विप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्विप् प्रत्यय होता है। क्विप् का पूरा लोप हो जायगा, कुछ शेष नहीं रहेगा। (१) (सत्सूद्विष०) उपसर्ग या अन्य कोई शब्द पहले हो तो सद् सू द्विष् द्रुह् विद् आदि से क्विप्। उपनिषद्। प्रसूः। मित्रद्विट्। गोधुक्। वेदवित्। (२) (क्विप् च) धातुओं से क्विप् होता है। उखास्रत्, पर्णध्वत्, वाहभ्रट्। (३) (ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्) ब्रह्म आदि पहले हों तो भूत अर्थ में हन् धातु से। ब्रह्महा, भ्रूणहा, वृत्रहा। (४) (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः) सुकर्म आदि पहले हों तो कृ धातु से क्विप्। त् अन्त में जुड़ जाएगा। सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्। मरुत् के तुल्य रूप चलेंगे। (५) (भ्राजभास०) भ्राज्, भास्, धुर्व्, द्युत्, ऊर्ज्, पुर् आदि से क्विप् होता है। विभ्राट्, भाः, धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः।

नियम २४९—(क्वनिप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्वनिप् होता है। इसका 'वन्' शेष रहता है। गुण नहीं होगा। रूप आत्मन्वत्। (१) (दृशेः क्वनिप्) दृश् धातु से क्वनिप्। पारदृश्वा। (२) (राजनि युधिकृञः) राजन् पहले हो तो युध् और कृ धातु से क्वनिप्। राजयुध्वा, राजकृत्वा। (३) (सहे च) सह पहले हो तो युध् और कृ धातु से। सहयुध्वा, सहकृत्वा। (४) (अन्येभ्योऽपि) अन्य धातुओं से भी क्वनिप्। इ > इत्वा, प्रातरित्वा। बीच में त् लगा।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (मधु कर्तृ धातृ) १ भौंरे कमलों से मधु को पीते हैं। २ दुर्जनों के जिह्वाग्र पर मधु रहता है और हृदय में घोर विष। ३ भोजन पकाने के लिए लकड़ियाँ (दारु) लाओ और कुएँ से जल (अम्बु) लाओ। ४ पहाड़ की चोटी पर (सानु) ऋषि मुनि रहते हैं। ५ आग पर राँगा (त्रपु) और लाख (जतु) पिघलाओ। ६ आँसू (अश्रु) मत गिराओ धैर्य रक्खो। ७ प्रातः सेफ्टी रेजर से दाढ़ी (श्मश्रु) बनाओ। ८ ब्रह्म जगत् का कर्ता धर्ता और संहर्ता है। (ख) (द्रुह्, मुच्) १ दुर्जन वाणी रूपी बाण से सज्जनों को दुःख देते हैं (द्रुह्)। २ भीम ने गदा से शत्रु को चोट मारी (द्रुह्)। ३ रात्रि बीत गई, बिस्तर छोड़ो (मुच्)। ४ मुर्गों पर बाघ झपटता है (मुच्)। ५ सत्यवादी सब पापों से मुक्त हो जाता है। ६ मारो या छोड़ो, यह आपकी इच्छा पर है। (ग) (क्तिन् आदि प्रत्यय) १ मनोरथ के लिए कुछ भी अलभ्य नहीं है। २ मरना मनुष्यों का स्वभाव है, इसका उलटा जीवन है। ३ अविवेक बड़ी आपत्तियों का घर है। ४ विपत्ति में (विपद्) धैर्य और वैभव में क्षमा, यह महात्माओं में होता है। ५ विपत्ति में धैर्य धारण करके रहना चाहिए। ६ जन्म लेने-वालों को विपत्ति आती ही है। ७ विपत्ति के पीछे विपत्ति और संपत्ति के पीछे संपत्ति चलती है। ८ संपत्तियाँ अच्छे आचरणवालों को भी विचलित कर देती हैं। ९ यह वचन मर्मभेदी है। १० प्राणियों की इस असारता को धिक्कार है। (घ) (सप्तमी) १ सभ्यों पर पक्षपात होता ही है। २ सब अपने साथियों पर विश्वास करते हैं। ३ प्रायः ऐश्वर्य से उन्मत्तों में ये विकार आते हैं। ४ प्रजा राजा पर बहुत अनुरक्त है। ५ साहस में श्री रहती है। ६ उसने चावलों को धूप में डाला। ७ पढ़ाई शुरू करने के समय क्यों खेल रहे हो। ८ प्रसन्नता के स्थानपर दुःख न करो। ९ वर्षा रुकने पर वह घर गया। १० यह मेरी समझ के बाहर है। ११ आप मेरे पिता की जगह पर हैं। १२ मेरी आवाज की पहुँच के अन्दर रहना। १३ सिपाही के आते ही चोर भाग गए। १४ तुम्हारे रहते हुए कौन दीनों को दुःख दे सकता है। १५ यज्ञ करने पर वर्षा हुई। १६ व्याकुल हुए बच्चों को मिठाई दो। (ङ) (आभूषणवर्ग) अलंकार शरीर को अलंकृत करते हैं। सधवा स्त्रियाँ सिर पर वेणी माथे पर मुकुट और टिकुली, नाक में नथ और नाक का फूल कान में कर्णफूल और बाली, गले में हँसुली, कण्ठा मोती का हार और फूल-माला बाँह में बाजूबन्द, कलाई में कंगन और चूड़ी अँगुलियों में अँगूठी कमर में करधन, पैरों में पाजेब, छल्ले और घुँघरू पहनती हैं।

संकेत—(क) २. हलाहलम्। ५ द्रावय। ६. पातय। ८. कर्तृ धर्तृ संहर्तृ। (ख) १ वाग्बाणेन। २ दुद्रोह। ३ शय्यां मुञ्च। (ग) १ अगतिः। २. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। ३ अविवेकः परमापदां पदम्। ५. अवलम्ब्य। ६. विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता। ७ विपद् विपदमनुबध्नाति संपत् संपदम्। ८. सद्वृत्तानामपि विक्रियाकारिण्यः। ९. मर्मच्छिद्। १० धिगिमां देहभृतामसारताम्। (घ) २ सर्वः स्वार्थेषु विश्वसिति। ३ मूर्च्छन्ति। ६. सूर्यातपे। ७. अध्ययने प्रारब्धव्ये। ८. हर्षस्थाने शोकं मा विधेहि। ९. शान्ते पानीयवर्षे। १० मम बुद्धेः पदं न याति। ११ पितुः स्थाने वर्तसे। १२. श्रवणगोचरे तिष्ठ। १३ भटप्रवेशमात्र एव रक्षिणि। १४ त्वयि सति। १६ व्याकुलेभ्यः।

शब्दकोष—१२७१+२५=१२९६] अभ्यास २५ (व्याकरण)

(क) सिन्दूरम् (सिन्दूर), चूर्णकम् (पाउडर), बिन्दुः (बिन्दी) ललाटिका (टीका) तिलकम् (तिलक) पत्रलेखा (पत्रलेखा), कज्जलम् (काजल), गन्धतैलम् (इत्र), हैमम् (स्नो) घारः (क्रीम) दर्पणः (शीशा) प्रसाधनी (कंघी), ओष्ठरंजनम् (लिपस्टिक), कपोलरंजनम् (रूज) नखरंजनम् (नेल पालिश) फेनिलम् (साबुन) शृंगारफलकम् (ड्रेसिंग टेबुल), रोमशातनी (ब्रुश), दन्तधावनम् (१ दाँत का ब्रुश, २ दातुन) दन्तपिष्टकम् (टूथ पेस्ट), दन्तचूर्णम् (१ टूथ पाउडर २ मंजन) मेन्धिका (मेंहदी), अलक्तकः (आलता, महावर), उद्वर्तनम् (उबटन) शृंगारस्थानम् (सिंगारदान) (२५)

व्याकरण (जगत्, छिद्, भिद्, इष्णु, खश् आदि प्रत्यय)

१ जगत् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४८)
२ छिद् और भिद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८२, ८४)

नियम २५०—(इष्णुच् प्रत्यय) (अलंकृञ्-निराकृञ्) अलंकृ, निराकृ आदि धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय होता है। इष्णु शेष रहता है। धातु को गुण, गुणवत् रूप। अलंकरिष्णु। निराकरिष्णु। उत्पतिष्णु। उन्मदिष्णु। रोचिष्णु। वर्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः।

नियम २५१—(खश् प्रत्यय) इन स्थानों पर खश् होता है। इसका अ शेष रहता है। (अरुर्द्विषद्) खश् होने पर पहले अजन्त शब्द के अन्त में 'म्' जुड़ जाएगा। गुण होगा। (१) (एजेः खश्) एजि धातु से खश् (अ)। जनमेजयतीति जनमेजयः। (२) इन स्थानों पर खश् होता है—स्तनन्धयः अभ्रंलिहा वायुः, मितम्पचः, विधुन्तुदः, अरुन्तुदः असूर्यम्पश्या ललाटन्तपः। (३) (आत्ममाने खश्च) अपने आपको समझने अर्थ में खश्। पण्डितंमन्यः। कालिम्मन्या। श्रियंमन्यः। नरंमन्यः।

नियम २५२—(खच् प्रत्यय) खच् का अ शेष रहता है। पूर्वपद में म् जुड़ेगा। गुण होगा। (१) (प्रियवशे वदः खच्) प्रिय, वश पहले हों तो वद् से खच्। प्रियंवदः वशंवदः। (२) (गमेः सुपि, विहायसो विह च) गम् धातु से खच्। भुजंगमः भुजंगः। विहंगमः, विहंगः। (३) (द्विषत्परयोस्तापेः) द्विषत्, पर पहले हों तो तापि से खच्। द्विषन्तपः, परन्तपः। (४) इन स्थानों पर खच् होता है—वाचंयमः पुरन्दरः, सर्वंसहः, कूलंकषा नदी भयंकरः, अभयंकरः, क्षेमंकरः विश्वंभरः, पतिंवरा कन्या अरिन्दमः।

नियम २५३—(अथुच्) अथुच् का अथु शेष रहता है। गुण होगा। (ड्वितोऽथुच्) जिन धातुओं में से डु हटा है, वहाँ अथुच् होगा। वप्>वेपथुः श्वि>श्वयथुः।

नियम २५४—(ष्ट्रन्) (दाम्नीशस्) दा, नी, शस्, सु आदि से ष्ट्रन् होता है। इसका त्र शेष रहता है। गुण होगा। दात्रम् नेत्रम् शस्त्रम्। पत्>पत्त्रम्। दंश्>दंष्ट्रा।

नियम २५५—(इत्र) (अर्तिलूधूसूखनसहचर) ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह्, चर् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है। गुण होगा। अरित्रम् धवित्रम् खनित्रम्, चरित्रम्।

नियम २५६—(उ) (सनाशंसभिक्ष उः) सन् प्रत्यय जिनके अन्त में हो उनसे, आशंस् और भिक्ष् धातु से उ प्रत्यय होता है। चिकीर्षुः, आशंसुः, भिक्षुः।

नियम २ ७—(ड) ड का अ शेष रहता है। टि का लोप होगा। (१) (सप्तम्यां जनेर्डः) सप्तम्यन्त शब्द पहले हो तो जन् धातु से ड। सरसिजम्, सरोजम्। (२) इन स्थानों पर भी ड होता है—प्रजा, अजः द्विजः।

नियम २५८—(अ) (अ प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ। बाद में टाप्। चिकीर्षा। नियम २५९—(युच्) (ण्यासश्रन्थो युच्) ण्यन्त से युच् (अन) होता है। कारि>कारणा। हारणा, धारणा।

अभ्यास ७२

संस्कृत बनाओ—(क) (जगत् शब्द) १ सूर्य जंगम और स्थावर का आत्मा है। २ जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ। ३ यह सारा संसार ही नश्वर है इसमें भी यह शरीर और अधिक नश्वर है। ४ यदि एक ही कर्म से संसार को वश में करना चाहते हो तो पर-निन्दा से वाणी को रोको। ५ पत्नी के वियोग में यह सारा संसार वनवत् हो जाता है। ६ पत्नी के स्वर्गवास होने पर संसार शीघ्र अरण्यवत् हो जाता है। ७ मृग ऊँची छलाँग के कारण आकाश में अधिक और भूमि पर कम चल रहा है (जगत्)। ८ वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं (पतत्)। ९ लता से फूल गिरे (पतिष्यत्)। (ख) (छिद् भिद् धातु) १ इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते हैं (छिद्)। २ हमारे बन्धनों को काटो (छिद्)। ३ तृष्णा को नष्ट करो (छिद्)। ४ मेरे इस संशय को दूर करो (छिद्)। ५ इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता (छिद्)। ६ घड़ा फोड़कर कपड़ा फाड़कर गधे की सवारी करके जिस किसी प्रकार हो मनुष्य प्रसिद्धि प्राप्त करे। ७ ठण्डा जल भी क्या पहाड़ को नहीं तोड़ देता (भिद्)। ८ शत्रु ने सन्धि को तोड़ा (भिद्)। ९ गुप्त बात छः कानों में पड़ते ही समाप्त हो जाती है। १० उपल को पीसता है (पिष्)। ११ यह व्यर्थ ही पिष्टपेषण करता है। (ग) (इष्णु आदि) १ बन ठनकर रहनेवाले लोग बालों में तेल और इत्र डालते हैं कंघी से बालों को काढ़ते हैं मुँह पर स्नो और क्रीम लगाते हैं। दाँत के ब्रुश पर टूथ पेस्ट लेकर दाँत साफ करते हैं। जूतों पर पालिश कराते हैं और कपड़ों पर लोहा कराते हैं। २ बड़े आदमी मर्मभेदी वचन कभी नहीं कहते। ३ कमल सेवाल से घिरा हुआ भी मनोहर होता है। ४ सज्जन प्रियवादी शिष्य आज्ञाकारी, दुर्जन भयंकर, सत्पुरुष अभयंकर, मुनि वाचंयमी राजा शत्रुतापी महल गगनचुम्बी शत्रु जन-पीड़क, सूर्य प्रकाशकारी और कृपण मितम्पची है। (घ) (प्रसाधनवर्ग) स्त्रियाँ प्रायः शृंगार-प्रिय होती हैं। वे सज-धज से रहना चाहती हैं। वे सिर में सिन्दूर लगाती हैं, माथे पर टीका और बेंदी लगाती हैं आँखों में काजल देह में उबटन नाखूनों पर नख पालिश, गालों पर रूज ओठों पर लिपस्टिक मुँह पर स्नो और क्रीम पैरों में महावर और हाथों पर मेंहदी लगाती हैं। ड्रेसिंग टेबुल पर सिंगारदान और शृंगार का सामान रखती हैं। कुछ स्त्रियाँ जूड़ा बाँधती हैं, कुछ वेणी की झाड़ी लगाती हैं और कुछ बालों में क्लिप लगाती हैं।

संकेत—(क) १ जगतस्तस्थुषश्च। २ पितरौ। ३ विशिष्य शरीरं नश्वरम्, विनश्वरम्। ४ यदीच्छसि वशीकर्तुम् परापवादात् निवारय। ५ प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति। ६ [illegible]। ७ उच्चप्लुतत्वात् वियति। ८ पतन्ति पर्णानि। ९ पतिष्यन्ति। (ख) २ पाशान्। ४ छिन्धि। ५ न मे किंचित् छिद्यते। ६ भित्त्वा छित्त्वा, कृत्वा गर्दभारोहणम्। येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ८ अभिनत्। ९ षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। १० [illegible] पिनष्टि। (ग) १ अलंकरिष्णवः, प्रसाधयन्ति [illegible]। २ [illegible] महतां वचो [illegible]। ३ सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्। ४ प्रियंवदः, वचनेकरः, भयंकरः, अभयंकरः, वाचंयमः, [illegible], मितम्पचः। (घ) अलंकरिष्णवो भवन्ति। [illegible]।

शब्दकोष-११ +२५=११२५] अभ्यास ५४ (व्याकरण)

(क) ग्राम (गाँव), नगरी (कस्बा) नगरम् (शहर), कुटी (कुटिया), भवनम् (मकान), प्रासादः (महल) मार्गः (सड़क), राजमार्गः (मुख्य सड़क), मृन्मार्गः (कच्ची सड़क), दृढमार्गः (पक्की सड़क) रथ्या (चौड़ी सड़क) वीथिका (१ गली, २ गैलरी), नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी), निगमः (कार्पोरेशन) नगराध्यक्षः (म्युनिसिपल चेयरमैन), निगमाध्यक्षः (मेयर), चतुष्पथः (१ चौक, २ चौराहा), पुरोद्यानम् (पार्क), रक्षिस्थानम् (थाना) कोटपालिका (कोतवाली), जनमार्गः (आम रास्ता), उपवेशगृहम् (ड्राइंग रूम), भोजनगृहम् (डाइनिंग रूम), स्नानागारम् (बाथ रूम), भाण्डागारम् (स्टोर रूम) ।(२५)

व्याकरण (नामन् शर्मन् हिंस् भंज् अपत्यार्थक प्रत्यय)

१ नामन् और शर्मन् शब्दों के रूप स्मरण करो । (दे० शब्द ६१, ■)

२ हिंस् और भंज् धातुओं के रूप स्मरण करो । (दे० धातु ८५ ८६)

नियम २१०—सारे तद्धित के लिए यह नियम मुख्यतया स्मरण कर लें । (तद्धितेष्वचामादेः, किति च) जिस तद्धित प्रत्यय में से ण्, ञ् या क् हटा होगा वहाँ पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जायगी । (१) ञ् हटेवाले प्रत्यय, जैसे—अञ्, इञ्, यञ्, ठञ् । (२) ण् हटे वाले प्रत्यय—अण्, ण्य, ण्य । (३) क् हटे वाले—ठक्, ढक् ।

नियम २११—(अण् प्रत्यय) अपत्य अर्थात् पुत्र या पुत्री के अर्थ में इन स्थानों पर अण् प्रत्यय होगा । अण् का अ शेष रहेगा । शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि । (यस्येति च) शब्द के अन्तिम अ आ इ और ई का लोप हो जायगा । (१) (तस्यापत्यम्) अपत्य अर्थ में अण् (अ) होगा । वसुदेवस्यापत्यम्> वासुदेवः । उपगु> औपगवः । (२) (अश्वपत्यादिभ्यश्च) अश्वपति आदि से अपत्य अर्थ में अण् । अश्वपति> आश्वपतम् । गणपति> गाणपतम् । (३)(शिवादिभ्योऽण्) शिव आदि से अण् । शिवस्यापत्यं> शैवः । गंगा>गांगः । (४) (ऋष्यन्धकवृष्णि) ऋषि, अन्धकवंशी वृष्णिवंशी और कुरुवंशी से अपत्यार्थ में अण् । वसिष्ठ> वासिष्ठः । विश्वामित्र>वैश्वामित्रः । अनिरुद्ध> आनिरुद्धः । नकुल> नाकुलः । सहदेव> साहदेवः । (५) (मातुरुत्संख्या) कोई संख्या, सम् या भद्र पहले होगा तो मातृ शब्द से अपत्यार्थ में अण् । मातृ को मातुर् हो जायगा । द्विमातृ> द्वैमातुरः । षण्मातृ> षाण्मातुरः । संमातृ> सांमातुरः ।

नियम २१२—(इञ् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर इञ् प्रत्यय होगा । इञ् का इ शेष रहेगा । शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि । हरिवत् रूप चलेंगे । (१) (अत इञ्) अकारान्त शब्दों से इञ् । दशरथ> दाशरथिः (राम) । दक्ष> दाक्षिः । सुमित्रा> सौमित्रिः (लक्ष्मण) । द्रोण> द्रौणिः (अश्वत्थामा) । (२) (बाह्वादिभ्यश्च) बाहु आदि से इञ् । उ को गुण ओ हो जाएगा । बाहु> बाहविः ।

नियम २१३—(ढक् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर ढक् होगा । ढ को एय हो जायगा । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (स्त्रीभ्यो ढक्) स्त्रीलिंग शब्दों से ढक् (एय) । विनता> वैनतेयः । भगिनी> भागिनेयः । (२) (द्व्यचः) दो स्वरवाले स्त्रीलिंग शब्दों से ढक् । कुन्ती> कौन्तेयः, माद्री> माद्रेयः राधा> राधेयः, गंगा> गांगेयः ।

नियम २१४—(ण्य प्रत्यय) अपत्यार्थ में ण्य । य शेष रहेगा । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (दित्यदित्या) दिति, अदिति आदित्य पति अन्तवाले शब्दों से ण्य । दैत्यः, आदित्यः, आदित्यः, प्रजापति> प्राजापत्यः । (२) (कुर्वादिभ्यो ण्यः) कुरुवंशी और नडादि से ण्य । कुरु> कौरव्यः । निषध> नैषध्यः ।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (नामन्, धर्मन् शब्द) १ उसने अपने पुत्र का नाम रघु रक्खा। २ मानी लोग प्राणों और सुख को सरलता से छोड़ देते हैं। ३ अपने किये कर्म को कौन नहीं भोगता (कर्मन्)। ४ वह सन्मार्ग से भ्रष्ट हुआ (धर्मन्)। ५ वे सन्मार्ग से जरा भी नहीं हटे (सद्धर्मन्)। ६ उसने मन, वचन, शरीर और कर्म से देशसेवा की। ७ उस वचन ने उस पर पूरा असर किया (मर्मन्)। (ख) (हिंस्, भञ्ज् धातु) १ जो निरपराध जीवों की हिंसा करता है वह पापी होता है (हिंस्)। २ शुभ कर्म पापों को नष्ट करता है (हिंस्)। ३ किसी भी जीव को न मारो। ४ बन्दर बगीचे को तोड़-फोड़ रहा है (भञ्ज्)। ५ राम ने धनुष को तोड़ दिया (भंज्)। ६ कुम्भपात्रों को न तोड़ो। ७ यह सुन्दर भाषण उसकी वाग्मिता को व्यक्त करता है (वि + अंज्)। (ग) (अपत्यार्थक) १ दाशरथि राम ने जामदग्न्य राम को निर्भीकता से उत्तर दिया। २ वासुदेव ने कुन्ती के पुत्र अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया। ३ पृथा के पुत्र भीम ने धृतराष्ट्र के पुत्र दुश्शासन को मार दिया। ४ राधा के पुत्र कर्ण ने द्रोण पुत्र अश्वत्थामा से कहा—मैं सारथि होऊँ या सारथि-पुत्र, अथवा जो कुछ भी होऊँ, इससे क्या। सत्कुल में जन्म होना भाग्याधीन है पर पुरुषार्थ करना मेरे हाथ में है। ५ माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव युधिष्ठिर के साथ ही वन में गए। ६ सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने कभी भी राम का साथ नहीं छोड़ा। (घ) (पुरवर्ग) नगर में सज्जन, दुर्जन, विद्वान्, अविद्वान्, धनिक, निर्धन, बड़े-छोटे, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी रहते हैं। नगर की उन्नति सभी नागरिकों का कर्तव्य है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति से जन-जीवन सुखमय होता है। अतः इन गुणों को अपनाना और इनका उपयोग करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। प्रत्येक देश में गाँव कस्बे और नगर होते हैं। गाँवों में झोपड़ियाँ और कुटिया होती हैं परन्तु नगरों में मकान और महल अधिक होते हैं। शहरों में चौड़ी सड़कें, पतली सड़कें, मेन रोड और गलियाँ भी होती हैं। यहाँ पार्क, बच्चों के पार्क, सिनेमाघर, बाजार-मार्केट, थाना, कोतवाली भी होते हैं। छोटे शहरों में म्युनिसिपैलिटी होती है और उसका अध्यक्ष म्युनिसिपल-चेयरमैन होता है। बड़े शहरों में कार्पोरेशन होता है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। इनका काम होता है कि नगर की सुरक्षा करें और नगर की उन्नति के लिए सभी साधनों को अपनायें। नगरों में प्रत्येक घर में साधारणतया ड्राइंगरूम, डाइनिंग रूम, बाथरूम, स्टोर रूम, रसोई, सोने का कमरा, रहने का कमरा, शौचालय, मूत्रालय और अतिथिगृह होते हैं। कुछ मकानों में पाकशाला और बगीचे भी होते हैं।

संकेतः—(क) १ नाम्ना रघुं चकार। २ असून् शर्म च। ३ कर्म का स्वकृतम् न भुंक्ते। ४ मार्गात् भ्रष्टधर्मा। ५ सद्धर्माणो लेशमात्रमपि न अपेयुः। ६ मनोवाक्काय कर्मभिः। ७ तस्य हृदयमर्मास्पृशत्। (ख) २ दुष्कृतानि हिनस्ति। ४ भनक्ति। ७ व्यनक्ति। (ग) १ दाशरथिः जामदग्न्यम्। ४ सूतो वा सूतपुत्रो वा। दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्। ६ सौमित्रिः (घ) [illegible] वसन्ति, ईसामतानुयायिनः, चत्वरम् [illegible] पर्णोटजानि [illegible] [illegible], राजपथः [illegible] [illegible] नि

शब्दकोष—११२५+२५=११५०] अभ्यास ५४ (व्याकरण)

(क) आपणः (दुकान), विपणिः (स्त्री, बाजार), महाट्टः (मंडी), प्राकारः (परकोटा), वृतिः (बाड़, घेरा), भित्तिः (स्त्री, दीवार), द्विभूमिकः (दुमंजिला), त्रिभूमिकः (तिमंजिला), चतुःशालम् (चारों ओर मकान, बीच में आँगन), उटजः (झोपड़ी), मण्डपः (१ मंडप, २ टेन्ट), अन्तःपुरम् (रनवास), देहली (देहली), प्रपा (प्याऊ), पथिकाश्रमः (मुसाफिरखाना), अट्टः (अटारी, बुर्जी), वलभी (छज्जा), गोपुरम् (मुख्य द्वार), वेदिका (वेदी), द्वारम् (द्वार), चत्वरम् (चबूतरा), आलिन्दः (घर के बाहर का चबूतरा), अजिरम् (आँगन), निःश्रेणिः (सीढ़ी, काठ आदि की), सोपानम् (सीढ़ी) (२५)।

व्याकरण (ब्रह्मन्, महत्, रुच्, मुच्, चातुरर्थिक प्रत्यय)

१ ब्रह्मन् और महत् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७१, ७२)

२ रुच् और मुच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८७, ८८)

नियम २६५—(रक्तार्थक) रंग आदि से रंगने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तेन रक्तं रागात्) जिससे रंगा जाए, उससे अण् (अ) प्रत्यय। प्रथम स्वर को वृद्धि। *कषाय> काषायम् (गेरु से रंगा हुआ वस्त्र)। माञ्जिष्ठम् (मंजीठ से रंगा हुआ)।* (२) (नील्या अन्) नीली शब्द से अन् (अ)। नीली> नीलम् (नील से रंगा हुआ)। (३) (पीतात्कन्) पीत से कन् (क)। पीतकम् (पीले रंग से रंगा हुआ)। (४) (हरिद्रा) हरिद्रा से अञ् (अ)। हारिद्रम् (हल्दी से रंगा हुआ)।

नियम २६६—(कालार्थक) किसी नक्षत्र से युक्त समय या पूर्णिमा होगी तो ये प्रत्यय होंगे। (१) (नक्षत्रेण युक्तः कालः) नक्षत्र से अण् (अ)। पुष्य> पौषम् अहः, पौषी रात्रिः (पुष्य से युक्त दिन या रात)। (२) (सास्मिन्) नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर मास का यह नाम पड़ता है। अण् (अ) प्रत्यय। पुष्य से युक्त मास—पौष। चित्रा> चैत्र। विशाखा> वैशाख। आषाढा> आषाढ।

नियम २६७—(देवतार्थक) देवता अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं। (१) (सास्य देवता) देवता अर्थ में अण् (अ)। इन्द्र> ऐन्द्रं हविः (इन्द्र है देवता जिसका)। पशुपति> पाशुपतम्। (२) (सोमाट्ट्यण्) सोम से ट्यण् (य)। सोम> सौम्यम्। (३) (वाय्व) वायु आदि से यत् (य)। वायु> वायव्यम्। पितृ> पित्र्यम्। (४) (अग्नेर्ढक्) अग्नि से ढक्। ढ को एय। अग्नि> आग्नेयम्।

नियम २६८—(समूहार्थक) समूह अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तस्य समूहः) समूह अर्थ में अण् (अ)। काक> काकम् (काक-समूह)। बक> बाकम्। (२) (भिक्षादिभ्योऽण्) भिक्षा आदि से अण् (अ)। भिक्षा> भैक्षम्। युवति> यौवनम् (स्त्री-समूह)। (३) (ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्) ग्राम आदि से तल् (ता)। ग्रामता, जन> जनता (जनसमूह)। बन्धु> बन्धुता। (४) (अनुदात्तादेरञ्) इनसे अञ् (अ) होता। कपोत> कापोतम्। मयूर> मायूरम् (मयूर-समूह)।

नियम २६९—(अध्ययनार्थक) पढ़ने या जानने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तदधीते तद्वेद) पढ़ने या जानने अर्थ में अण् (अ)। (न य्वाभ्याम्) संयुक्ताक्षरों में य व पहले हो तो य से पहले ऐ व से पहले औ लगेगा। व्याकरण> वैयाकरणः (व्याकरण पढ़ने या जाननेवाला)। *न्याय> नैयायिकः।* (२) (क्रमादिभ्यो वुन्) क्रम आदि से वुन् (अक) होता है। मीमांसा> मीमांसकः।

अभ्यास ५४

संस्कृत बनाओ—(क) (ब्रह्मन्, अहन् शब्द) १ ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-स्वभाव सर्वज्ञ और सर्वशक्तियुक्त है। २ सभी दानों में विद्या-दान श्रेष्ठ है। ३ जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण होता है। ४ वह वेद में (ब्रह्मन्) निष्णात है। ५ चन्द्रमा चाण्डाल के घर से (सीमन्) चाँदनी को नहीं हटाता। ६ कवच (वर्मन्) धारण करो त्योहार (पर्वन्) मनाओ वेद (ब्रह्मन्) पढ़ो घर में (सद्मन्) सुख से रहो शुभ कवच (वर्मन्) धारण करो। ७ दिन ज्योति का प्रतीक है और रात्रि अन्धकार की। ८ दिन में ऐसा काम न करे, जिससे रात्रि दुःखद प्रतीत हो। ९ दिन प्रायः बीत गया है। (ख) (रुध्, भुज् धातु) १ वह बाड़े में गायों को रोकता है। २ प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम करे (रुध्)। ३ प्रेम का बन्धन ही स्त्रियों के अतिकोमल हृदय को वियोग के समय रोकता है (रुध्)। ४ बिस्तरे पर बैठकर न खावे (भुज्)। ५ पापी आदमी सैकड़ों दुःखों को भोगता है। ६ उसने राज्य का धरोहर की तरह पालन किया (भुज्, पर)। ७ वह अकेला ही सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करता है (भुज्)। (ग) (चातुरर्थिक प्रत्यय) १ संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। कुछ लोग नील से रँगे हुए वस्त्रों को पहनते हैं, कुछ पीले रंग से रँगे हुए और कुछ हल्दी से रँगे हुए वस्त्रों को। २ संस्कृत में महीनों के नाम नक्षत्रों के नामों से पड़े हैं। पूर्णिमा के दिन जो नक्षत्र होता है उसके नाम से ही वह मास बोला जाता है। जैसे—चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर चैत्र मास, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, आषाढा से आषाढ, श्रवणा से श्रावण, भाद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फाल्गुनी से फाल्गुन नाम पड़े हैं। ३ प्राचीन समय में बहुत से अद्भुत गुणोंवाले अस्त्र थे। जैसे—आग्नेय, वारुण वायव्य, पाशुपत आदि। ४ जनता में प्रेम और बन्धुता होनी चाहिए। ५ काक-समूह, बक-समूह, कपोत-समूह और मयूर-समूह, ये अपने समूह के साथ ही रहते उड़ते और बैठते हैं। ६ वैयाकरण व्याकरण पढ़ता है, नैयायिक न्याय को, मीमांसक मीमांसा को और वेदान्ती वेदान्त को। (घ) (पुरवर्ग) बड़े शहरों में बाजार, मंडी और दुकानें होती हैं। वहाँ से नगरनिवासी सामान लाकर अपना आवश्यक काम करते हैं। शहरों में दुमंजिले, तिमंजिले, चारमंजिले और ज्यादा मंजिले मकान भी होते हैं। सीढ़ी के द्वारा ऊपर की मंजिलों पर पहुँचते हैं। आजकल बम्बई कलकत्ता आदि बड़े शहरों में लिफ्ट के द्वारा ऊपर की मंजिल पर सरलता से पहुँच जाते हैं और उससे ही उतर आते हैं। प्राचीन नगरों के चारों ओर परकोटा या खाई होती थी। मकानों में अटारी, छज्जा, द्वार मुख्यद्वार, आँगन, सीढ़ी, दीवार, चबूतरा देहली, रनिवास, मंडप भी होते थे। नगरों में प्याऊ, मुसाफिरखाने आदि भी होते थे।

संकेत—(क) १ ब्रह्मणि विनिष्णातः। ५. सैमन्। ६. बिभृत संभारम। ९. परिमन्-प्रायमहः। (ख) १. व्रजम्। ३ कामाखत्व। ४ शयनस्थो न भुञ्जीत। ५. भुङ्क्ते। ६. न्यासमिवाबुभुजत्। ७. भुनक्ति। (घ) चातुर्भूमिकाः त्रिभूमिकाः प्रासादाः अधिरोहणेनैव कर्मभूमिम् अवतरन्ति।

शब्दकोष—११५०+२५=११७५] अभ्यास ५५ (व्याकरण)

(क) गवाक्षः (खिड़की), छदिः (स्त्री०, छत), पटलप्रान्तः (स्काई लाइट), वरण्डः (बरामदा), प्रकोष्ठः (पोर्टिको), कुट्टिमम् (फर्श), कपाटम् (किवाड़) अर्गलम् (अगला, किवाड़ के पीछे का डंडा), कीलः (चटकनी), नागदन्तिका (खूँटी), कक्षः (कमरा), महाकक्षः (हॉल) लघुकक्षः (कोठरी), स्तम्भः (खंभा) दारु (नपुं०, लकड़ी), काचः (काँच), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), प्रलेपः (प्लास्टर) तूलम् (रुई) त्रपु (नपुं०, टीन), त्रपुपट्टकम् (टीन की चादर), लौहपट्टकम् (लोहे की चादर), प्रणालिका (नाली), खर्परः (खपड़ा)। (२४) (ख) खर्परावृतम् (खपरैल का)। (१)

व्याकरण (हविष्, धनुष्, युध्, तन्, यौगिक प्रत्यय)

१ हविष्, धनुष् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७१, ७४)

२ युध् और तन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ८ ९)

नियम २७०—(तस्य अपत्यम्, तत्र भवः) सामान्य शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में यौगिक प्रत्यय अण् आदि होते हैं। मुख्य प्रत्यय ये हैं—(१) (शेषे) अपत्य आदि से शेष अर्थों में अण् आदि होते हैं। चक्षुष् > चाक्षुषं रूपम् (आँख से देखने योग्य), श्रवण > श्रावणः शब्दः। (२) (राष्ट्रावारपाराद्) राष्ट्र शब्द से घ (इय) और अवारपार से ख (ईन) होते हैं। राष्ट्रे जातः > राष्ट्रियः। अवारपार > अवारपारीणः। (३) (ग्रामाद्यखञौ) ग्राम से य और खञ् (ईन) होते हैं। ग्राम्यः, ग्रामीणः। (४) (दक्षिणापश्चात्) दक्षिणा आदि से त्यक् (त्य) होता है। दक्षिणा > दाक्षिणात्यः। पश्चात् > पाश्चात्त्यः। पुरस् > पौरस्त्यः। (५) (द्युप्रागपागुदक्) दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् से यत् (य) होता है। दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्। (६) (अमेहक्वतसित्रेभ्य) अमा, इह, क्व, तस् और त्र प्रत्ययान्त से त्यप् (त्य) होता है। अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, ततस्त्यः, तत्रत्यः। (७) (त्यदादीनि च) त्यद् आदि सर्वनामों की वृद्ध संज्ञा होने से छ (ईय) प्रत्यय। तदीयः। मदीयः। (८) (वृद्धाच्छः) शब्द का प्रथम अक्षर दीर्घ हो तो छ (ईय) प्रत्यय। शाला > शालीयः। मालीयः। (९) (भवतष्ठक्छसौ) भवत् शब्द से ठक् (क) और छस् (ईय) होते हैं। भावत्कः, भवदीयः। (१०) (युष्मदस्मदोः) युष्मद् अस्मद् शब्द के ये रूप बनते हैं— युष्मदीयः (तुम्हारा), यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः (तेरा), तावकः, त्वदीयः। अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः मदीयः। (११) (कालाट्ठञ्) कालवाचकों से ठञ् (इक)। मास > मासिकम्। वार्षिकम्। (१२) (सायंचिरं०) सायं चिरं आदि के अन्त में तन लग जाता है। सायन्तनम्, चिरन्तनम्, पुरातनम्, सनातनम्।

नियम २७१—(प्रभवति) उत्पन्न होना अर्थ में अण् (अ)। हिमवत् > हैमवती गंगा।

नियम २७२—(अधिकृत्य कृते ग्रन्थे) जिस विषय को लेकर ग्रन्थ बनाया जाए, वहाँ अण् आदि। शकुन्तला > शाकुन्तलम्। कहानी आदि में प्रत्यय का लोप। वासवदत्ता।

नियम २७३—(तेन प्रोक्तम्) कहा अर्थ में अण् आदि। पाणिनि > पाणिनीयम्।

नियम २७४—इन अर्थों में भी अण् (अ) या इक लगता है। (१) (तद् गच्छति) रास्ता या दूत का जाना। स्रुघ्न > स्रौघ्नः। (२) (सोऽस्य निवासः) निवास अर्थ में अण्। स्रौघ्नः। (३) (तस्येदम्) इसका यह है अर्थ में अण्। शरद् > शारदम्। (४) (कृते ग्रन्थे) ग्रन्थ अर्थ में। वररुचि > वाररुचम्।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (हविष्, धनुष् शब्द) १ अग्नि विधिपूर्वक हुत हवि को देवों को पहुँचाता है। २ वह सामग्री और घी से हवन करता है। ३ अग्नि पर घी को (सर्पिष्) पिघलाओ। ४ आकाश में तारों (ज्योतिष्) की ज्योति (रोचिष्) चमक रही है। ५ उसने धनुष पर अमोघ बाण रक्खा। ६ आँख से (चक्षुष्) देखकर आगे पैर रक्खो। ७ यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है (वपुष्)। ८ इसका शरीर हर्ष से रोमांचित है। ९ आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है (आयुष्)। १ प्राण ही जीवों की आयु है। (ख) (युज्, तन् धातु) १ सुख के अर्थ में विषम शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं। २ आत्मा को परमात्मा में लगाओ। ३ उसने आशीर्वाद दिया। ४ एक नाटक खेला जाएगा (प्रयुज्)। ५ ऋषि तत्त्वदर्शी हैं, जो इस शकुन्तला को आश्रम के कार्यों में लगाते हैं (नियुज्)। ६ उन्मत्त मनुष्य को मूर्खता भी नहीं छोड़ती है (वियुज्)। ७ सौभाग्य से उसकी आयु नहीं गई (वियुज्)। ८ विद्या का सत्कार्य में उपयोग करो (उपयुज्)। ९. मलिन भी चन्द्रमा का चिह्न शोभा को करता है (तन्)। १० सज्जनों की संगति क्या मंगल नहीं करती है (आतन्)। ११ सत्संगति दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है (तन्)। १२ नौकरों ने शामियाने को फैलाया (वितन्)। (ग) (यौगिक प्रत्यय) १ पौरस्त्य और पाश्चात्य संस्कृतियों में भेद होते हुए भी पर्याप्त समानता है। दोनों ही मौलिक सिद्धान्तों को मानते और अपनाते हैं। पुरातन हो या नूतन, सभी संस्कृतियों ने विश्व को लाभ पहुँचाया है। २ हे गोविन्द, तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेंट करते हैं। ३ पाणिनीय अष्टाध्यायी सारे व्याकरणों का सार है और विद्वत्ता की पराकाष्ठा है। ४ विद्यालयों और महाविद्यालयों में पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ भी होती हैं। ५ कन्या पराई संपत्ति है। (घ) (गृहवर्ग) निवास के लिए घरों की आवश्यकता सदा रही है और सदा रहेगी। समयानुसार इनकी निर्माण-विधि में अन्तर होता रहा है। प्राचीन समय में ग्रामों में मकान फूँस के या खपड़ैल के होते थे। आज तक भी ग्रामों में अधिक मकान फूँस और खपड़ैल के हैं। नगरों में अधिकांश मकान पक्की ईंटों के होते हैं। उनमें पक्की ईंटों की छत होती है, खिड़कियाँ, रोशनदान, बरामदा, फर्श, किवाड़, चटकनी, सीढ़ी आदि भी होती हैं। मकानों में सीमेंट का प्लास्टर होता है। कुछ मकानों पर टीन या लोहे की चादरें भी लगाई जाती हैं। पहाड़ में मकानों में लकड़ी और काँच अधिक लगाया जाता है, जिससे खिड़की आदि बन्द होने पर भी प्रकाश अन्दर आ सके और कमरों में अँधेरा न हो।

संकेत—(क) १. वहति। २. हविषा जुहोति। ३ सर्पिः द्रावय। ४ ज्योतींषि रोचन्ते। ५. समधत्त। ७. इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः। ९. आयुर्मर्माणि रक्षति। १० प्राणा हि भूतानाम् आयुः। (ख) १ सुखार्थे विषमशब्दं न प्रयुञ्जते। ३ आशिषं युयुजे। ४ प्रयोक्ष्यते। ५. आश्रमकार्ये नियुङ्क्ते। ६. वियुङ्क्ते। ७. भाग्येन आयुषा न वियुक्तः। ८. उपयुङ्क्ष्व। ९. लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति। १० संगः सतां किमु न मंगलमातनोति। १२. पटगृहं व्यतानिषुः। (ग) २ तुभ्यमेव समर्पये। ४ पाक्षिकाः मासिकाः। ५. अर्थो हि कन्या परकीय एव। (घ) पक्वेष्टकानिर्मितानि भवन्त्येव।

शब्दकोष—११७५ + २५ = १२००] अभ्यास ५६ (व्याकरण)

(ग) अंग (१ संबोधन, २ आदरार्थ में), अथ (१ मंगलार्थक २ प्रारम्भ में, ३ बाद में, ४ प्रश्नार्थक), अथ किम् (१ और क्या, २ हाँ), अधिकृत्य (बारे में), अपि (१ भी, २ प्रश्नार्थक, ३ संभव), आम् (हाँ), इति (१ कथनोद्धरण में, २ अतएव) इव (१ सदृश, २ मानो), कच्चित् (आशा करता हूँ कि), क्व-क्व (बहुत अन्तर-सूचक), कामम् (भले ही), किमुत (क्या कहना), किल (१ वस्तुतः, २ ऐसा कहते हैं, ३ आशा अर्थ में), खलु (१ वस्तुतः, २ प्रार्थना सूचक, ३ निषेधार्थक, ४ क्योंकि), ततः (१ इसलिए, २ तो, ३ वहाँ से ४ आगे), तथा (१ वैसा, २ और भी, ३ हाँ), तावत् (१ तो, २ तब तक, ३ अभी ४ वस्तुतः) दिष्ट्या (१ भाग्य से, २ बधाई देना), न-न (अवश्य), ननु (१ अवश्य, २ अन्यथा ३ क्या ४ चूँकि), बत (खेद, हर्ष), यथा-तथा (१ जैसा-वैसा २ इस प्रकार कि, ३ चूँकि इसलिए, ४ यदि तो, ५ जितना उतना) यावत्-तावत् (१ उतना ही जितना २ जब ३ जबतक तबतक, ४ ज्योंही त्योंही), वरं-न (अच्छा है न कि) स्थाने (उचित है)। (२५)

व्याकरण (पयस्, मनस्, ज्ञा धातु, मत्वर्थक प्रत्यय।

१. पयस् और मनस् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ७५,७६)

२. ज्ञा धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ९६)

नियम २७५—(१) (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्) इसके पास है या इसमें है इन अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है। इसका मत् शेष रहता है, पुं. में भगवत् के तुल्य रूप चलेंगे, स्त्री. ई लगाकर नदीवत्, नपुं. में जगत् के तुल्य। (२) (मादुपधायाश्च) शब्द के अन्त में या उपधा में अ, आ या म् हो तो मत् के म को व, अर्थात् मत्> वत्। धन>धनवान् (धनयुक्त)। गुणवान्, विद्यावान्, धीमान्, श्रीमान्, बुद्धिमान्। यव आदि के बाद म को व नहीं होगा। यवमान्, भूमिमान्। (३) (झयः) वर्ग के १ से ४ के बाद मत् को वत् होगा। विद्युत्> विद्युत्वान्। (४) (रसादिभ्यश्च) रस आदि से मतुप् प्रत्यय। रसवान्, रूपवान्।

नियम २७६—(अत इनिठनौ) अकारान्त शब्दों से युक्त या वाला अर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय होते हैं। दण्ड>दण्डी, दण्डिकः (दण्डवाला)। धन>धनी, धनिकः। इन् प्रत्ययान्त के रूप पुं. में करिन् के तुल्य, स्त्री. में ई लगाकर नदीवत्, नपुं. में मनोहारिन् के तुल्य।

नियम २७७—(लोमादिपामादि) (१) लोमन् आदि से श प्रत्यय। लोमन्>लोमशः (लोमयुक्त)। रोमन्>रोमशः। (२) पामन् आदि से न प्रत्यय। पामन्>पामनः (खाजवाला), अंग>अंगना (स्त्री), लक्ष्मी>लक्ष्मणः (लक्ष्मीयुक्त)। (३) पिच्छ आदि से इलच् (इल)। पिच्छ>पिच्छिलः। उरस्>उरसिलः।

नियम २७८—(तदस्य संजातं)युक्त अर्थ में तारका आदि शब्दों से इतच् (इत) प्रत्यय होगा। तारका>तारकितं नभः। पुष्पितः, कुसुमितः, कुड्मलितः, अंकुरितः, क्षुधितः।

नियम २७९—कुछ मत्वर्थक प्रत्यय ये हैं—(१) (अस्मायामेधा) अस् अन्त वाले शब्दों, माया, मेधा, स्रज् से विनि (विन्) प्रत्यय। यशस्वी, मायावी, मेधावी, स्रग्वी। (२) (वाचो ग्मिनिः) वाच् से ग्मिन् प्रत्यय। वाग्मी (सुन्दर वक्ता)। (३)(अर्श आदिभ्योऽच्) अर्शस् आदि से अच् (अ)। अर्शसः(बवासीर-युक्त)। (४)(दन्त उन्नत) दन्त से उरच् (उर)। दन्तुरः। (५) (केशाद् वो) केश से व प्रत्यय। केश>केशवः।

अभ्यास ५६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयस्, मनस् शब्द) १ माता शिशु को दूध पिला रही है। २ साँप को दूध पिलाना केवल उसका विष बढ़ाना है। ३ महात्माओं के मन वचन (वचस्) और कर्म में एक ही बात होती है पर दुरात्माओं के मन वचन और कर्म में अन्तर होता है। ४ मैंने मन से भी कभी आज तक तुम्हारा बुरा नहीं किया है। ५ मेरा मन सन्देह में ही पड़ा है। ६ इस विश्वयवाले मन को और नीचे की ओर बहते हुए पानी को कौन रोक सकता है। ७ हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ है। ८ वनस्पति को शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करनी चाहिए। ९ निर्मल और कलुषित होता हुआ चित्त बता देता है कि कौन उसका हितैषी है और कौन शत्रु है (चेतस्)। १० उसकी बात पर दुर्भाव का आरोप न लगाओ। (ख) (ज्ञा धातु) १ मैं तपस्या के फल को जानता हूँ। २ जानता हुआ भी मेधावी संसार में जड़ के तुल्य आचरण करे। ३ हमें घर जाने के लिए आज्ञा दीजिए (अनुज्ञा)। ४ मैं करूँगा, यह प्रतिज्ञा करता हूँ राम तुम्हारा नहीं करता (प्रतिज्ञा)। ५ निर्धनों का अपमान न करो (अवज्ञा)। ६ सौ समय किया है इस बात से मुझको है (अवज्ञा)। ७ बहू को सास से पहली है (संज्ञा)। (ग) (मत्वर्थक प्रत्यय) १ बलवान्, धनवान् गुणवान् बुद्धिमान् रूपवान् और श्रीमान् सभी को अपनी विशेषता का अभिमान होता है। २ तपस्वी धनी, दानी मानी ज्ञानी और गुणी ये अपने गुणों से दूसरों को उपकृत करते हैं। ३ यशस्वी, तेजस्वी वर्चस्वी, मेधावी और वाग्मी अपने ज्ञान और तेज से दूसरों का पथप्रदर्शन करते हैं। (घ) (अव्ययवर्ग) १ श्रीमन् (अंग), बच्चे को पढ़ा दीजिए। २ अब (अथ) धम्र्यानुशासन प्रारम्भ होता है। ३ क्या यह काम कर सकते हैं? ४ अब मैं ग्रीष्म ऋतु के बारे में गाऊँगा। ५ क्या यह चोर तो नहीं है? ६ मैं विदेशी हूँ, क्या पूछता हूँ। ७ वह कृष्ण की हँसी-सा कर रहा था। ८ आशा करता हूँ कि आप सकुशल हैं। ९. कहाँ तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। १० भले ही वह मेरे सामने न बैठे। ११ मुझ पर यम भी प्रहार नहीं कर सकता है अन्य हिंसकों का तो कहना ही क्या। १२ भाग्य से विपत्ति टल गई। १३ महाराज आपको विजय के लिए बधाई है। १४ वैसा करना, जिससे राजा की कृपा पात्र हो जाऊँ। १५ मुझे मार उतना दुःख नहीं दे रहा है, जितना आपत्ति प्रयोग। १६ जितना पाया सब खा लिया। १७ जबतक एक दुःख समाप्त नहीं होता तबतक दूसरा उपस्थित हो जाता है। १८. प्राणत्याग अच्छा है पर मूर्खों का साथ नहीं।

संकेत:—(क) १ पाययति। २ पयःपानम्। ३ महात्मनाम् मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं। ४ न ते विप्रियं मनसापि कृतपूर्वम्। ५ संशयमेव याचते। ६. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्। ८. वनस्पतयः स्वं यशो मलीमसैः। ९. निर्मलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा। १० तस्य वचसि दुराशयं मा आरोपय। (ख) ३ अनुजानीहि। ४ प्रतिजाने, रामो हितमभिमन्यते। ५ अवजानीत। ६ शपथमवजानीते। ७ श्वश्वा संजानीते। (घ) १ अथ। ४. ऋतुमधिकृत्य। ५ अपि चौरो भवेत्। ६. ननु। ७. स्मयते। ८ अपि कच्चित् कुशली। ९. क्व...क्व। १० कामम्। ११ किमुतान्ये हिंस्राः। १२ दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्। १३ दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते। १४ तथा...यथा। १५ तथा...यथा बाधति बाधते। १६ यावत्...तावत्। १७ यावत्...तावत्। १८ वरं...न।

शब्दकोष—१४०० + २५ = १४२५] अभ्यास ५७ (व्याकरण)

(क) पीड् (उ०, दुःख देना), पृ (उ०, पूरा करना), तड् (उ०, चोट मारना), खण्ड् (उ०, तोड़ना), क्षल् (उ०, धोना), तुल् (उ०, तोलना), पाल् (उ०, रक्षा करना), चिह्न् (उ०, चिह्न करना), कीर्त् (उ०, गुणगान करना), तन्त्र् (आ०, शासन करना, पालन करना), मन्त्र् (आ०, मंत्रणा करना), त्रुट् (आ०, तोड़ना), तर्ज् (आ०, धमकाना), अर्थ् (आ०, प्रार्थना करना), कुत्स् (आ०, दोष लगाना), भर्त्स् (आ०, डाँटना), रच् (उ०, रचना, बनाना), पश् (उ०, बाँधना), धृ (उ०, धारण करना), मृष् (उ०, क्षमा करना), लङ्घ् (उ०, उल्लंघन करना), घुष् (उ०, घोषणा करना), ईर् (उ०, प्रेरणा देना), प्री (उ०, प्रसन्न करना), गवेष् (उ०, गवेषणा करना)। (२५)। सूचना—इनके रूप चुर् के तुल्य चलेंगे।

व्याकरण (पाद, दन्त, वन्द्, मन्थ्, विभक्त्यर्थ प्रत्यय)

१. पाद और दन्त के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ९)।

२. वन्द् और मन्थ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ११, १२)

नियम २८०—(तः प्रत्यय) (१) (पञ्चम्यास्तसिल्) पंचमी विभक्ति के स्थान पर तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। यस्मात् > यतः, ततः, इतः, अतः, अमुतः, सर्वतः, उभयतः। स्वतः, मत्तः, अस्मत्तः, युष्मत्तः। (२) (कु तिहोः) किम् को कु हो जाएगा। कस्मात् > कुतः। (३) (पर्यभिभ्यां च) परि और अभि से तः प्रत्यय। परितः, अभितः।

नियम २८१—(त्र प्रत्यय) (१) (सप्तम्यास्त्रल्) सप्तमी के स्थान पर त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। कुत्र, यत्र, तत्र, सर्वत्र, उभयत्र, अत्र, अन्यत्र, बहुत्र। (२) (किमोऽत्, क्वाति) किम् के क्व और कुत्र दोनों रूप होते हैं। (३) (इदमो हः) इदम् का इह (यहाँ) भी रूप बनता है। (४) (इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते) पंचमी और सप्तमी के अतिरिक्त भी तः और त्र होते हैं। स भवान् > तत्र भवान्, ततो भवान् (पूज्य आप)। अयं भवान् > अत्र भवान् (पूज्य आप)।

नियम २८२—(१) (सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा) सर्व आदि से समय अर्थ में 'दा' प्रत्यय होता है। सर्वदा, एकदा, अन्यदा, किम् > कदा, यदा, तदा। (२) (सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि) सर्व को स भी हो जाता है। सदा। (३) (अधुना) इदम् को अधुना हो जाता है। अधुना (अब)। (४) (दानीं च) इदम् से दानीम् प्रत्यय भी होता है। इदानीम् (अब)। (५) (तदो दा च) तद् से दानीम् भी होता है। तदानीम्।

नियम २८३—(१) (प्रकारवचने थाल्) 'प्रकार' अर्थ में किम् आदि से थाल् (था) प्रत्यय होगा। तेन प्रकारेण > तथा। इसी प्रकार—यथा, सर्वथा, उभयथा (दोनों प्रकार से), अन्यथा। (२) (इदमस्थमुः) इदम् से था की जगह थम् होगा। इदम् > इत्थम्। (३) (किमश्च) किम् से भी था को थम्। किम् > कथम् (कैसे)।

नियम २८४—(संख्याया विधार्थे धा) संख्यावाची शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है। एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पंचधा। बहुधा, शतधा, सहस्रधा।

नियम २८५—(प्रमाण आदि अर्थ में) (१) (प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः) प्रमाण अर्थात् माप-तोल आदि अर्थ में द्वयस, दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। जैसे—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्। हस्तमात्रम्, मुष्टिमात्रम्, कटिमात्रम्। (२) (यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्) यत् आदि से परिमाण अर्थ में वतुप् प्रत्यय। यावान्, तावान्, एतावान्। किम् का कियान्, इदम् का इयान् होता है।

अभ्यास ५७

संस्कृत बनाओ—(क) (पाद, दन्त, मनस् शब्द) १ उसने गुरु के पैर छुए। २ अपराधी ने राजा के पैर छूकर क्षमा माँगी। ३ मनुष्य द्विपाद् और पशु चतुष्पाद् होते हैं। ४ इस पुस्तक का मूल्य सवा रुपया है। ५ दाँतों को बुश से साफ करो और दाँतों में कोई तिनका फँसा हो तो दाँत साफ करने की सुई से उसे निकाल दो। ६ उसके वचन (वचस्) से मेरा हृदय मुदित हो गया। ७ उसकी बात (वचस्) मेरे हृदय पर असर कर गई। ८ उसके हृदय (चेतस्) पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा। ९ मेरा मन सन्देह में पड़ा है। १० ये विचार मेरे मन में उत्पन्न हुए (प्रादुर्भू)। ११ आज हवा मन्द है। १२ यहाँ घोर अँधेरा है। १३ वृद्धावस्था में इसे तृष्णा लगी हुई है। १४ यह उसकी बात (वचस्) का निष्कर्ष है। १५ मैं तुम्हारी बात का समर्थन नहीं करता। १६ मेरी पूरी बात सुनो। १७ उसके हृदय (चेतस्) में कृतज्ञता उत्पन्न हुई। १८ उसका मन भस्म हो गया। १९ तेज तेज से (तेजस्) शान्त होता है। (ख) (मन्थ् मथ् धातु) १ उसने उससे प्रीति बढ़ाई (मन्थ्)। २ अपने कार्यों को ठीक सोचो (मन्थ्)। ३ पुण्यात्मा कर्मों से बद्ध नहीं होता। ४ चूड़ामणि पैर में नहीं पहना जाता। ५ चित्रकूट मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है। ६ क्या यह श्लोक तुमने बनाया है (मन्थ्)? ७ उसने बाहुयुद्ध के लिए कमर कस ली। ८ मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ (प्रार्थ्)। ९ इसके बीच में मत बोलो। १० उसने फिर अपने काम में मन लगाया। ११ देवों ने समुद्र से अमृत को मथकर निकाला (मन्थ्)। १२ मैं युद्ध में सौ कौरवों को नष्ट करूँगा (मन्थ्)। (ग) (विभक्त्यर्थ प्रत्यय) १ कृष्ण को आश्रम के वृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ। २ तीव्र का बल और अग्नि से और पीव से छुड़ाने योग्य नहीं है। ३ इस विषय में पूज्य आपको प्रमाण बनाता हूँ। ४ यह वंश आठ भागों में विभक्त होकर बैठा (प्रह)। ५ यहाँ वहाँ जहाँ कहीं से भी छात्र आवें, उन्हें विद्यादान दो। ६ जब तब मुझे पत्र लिखते रहना। ७ कहाँ कैसे व्यवहार करें? यहाँ इस प्रकार से और वहाँ उस प्रकार से वर्ते। ८ यहाँ कितना जल है? कहीं कमर भर, कहीं घुटने भर, कहीं आँख भर। (घ) (क्रियार्थ) १ जो दुःख दे, चोट मारे, डरावे धमकावे, यदि मत को तोड़े मर्यादा का उल्लंघन करे, दोष लगावे उसके साथ न रहे और न उससे मित्रता करे। २. छात्र अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करता है, नौकर सज्जनों को पोसता है बनिया चीनी तोलता है राजा प्रजा की रक्षा करता है (पाल्), चार पहले चाल्य धस्यों और अस्त्रों को तेज करता है कवि राजा का गुणगान करता है राजा प्रजा पर शासन करता है राजा मन्त्रियों से मंत्रणा करता है, सज्जनों को प्रेरित करता है।

संकेत—(क) १. अग्रहीत्। २. पादयोर्निपत्य क्षमां ययाचे। ४ सपादरूप्यकम्। ५ निर्गत बेत् दन्तशलाकया। ६. हृदिमुपन्। ७. हृदयमभ्यलापत्। ८ चेतसोऽपर प्रभवत् नोपदेश। ९. संशयमेव भावते ११ निर्वातं वाति। १२. सूचीभद्य तम। १३ परिणतवयसि तृष्णा। १५. वचो नाभिनन्दामि। १६. शृणुवेदम्। १७. कृतज्ञत्वम् उद्भवत्। १८ मनः भस्मसात्। १९. शाम्यति। (ख) १. उसौ मन्थ। ३ न बध्यते ४ धार्यते। ५. आकर्षति। ६. मन्थ ७. परिकरं बबन्ध। ८ अंजलिं बद्ध्वा, प्रार्थये। ९. मैनमन्तरा प्रतिवचाम। १ मन्थ। (ग) १ त्वत्तः, मन्ये, मन्ये पुण्यहितम्। २. नाग्नितः सुखिपदीकरः। ३ भवन्तं प्रमाणीकरोमि। विधीकृत्य निषसार। ६. यदा कदा। ८ कटिदध्नम् जानुदध्नम् चक्षुर्दध्नम्। (घ) १ पीडयेत् ताडयेत्। २. पालयति, प्रशालयति पोषयति तोलयति स्तौति शास्ति मन्त्रयते प्रेरयति।

शब्दकोष–१४२५+२५=१४५०] अभ्यास ५८ (व्याकरण)

(क) कार्तस्वरम् (सुवर्ण, सोना), रजतम् (चाँदी), चन्द्रलौहम् (जर्मन सिल्वर), आयसम् (लोहा), निष्कलंकायसम् (स्टेनलेस स्टील), ताम्रकम् (ताँबा), पीतलम् (पीतल), कांस्यम् (काँसा फूल) कांस्यकूटः (कसकूट) मौक्तिकम् (मोती), इन्द्रनीलः (नीलम) वैदूर्यम् (लहसुनिया), हीरकः (हीरा), प्रवालम् (मूँगा) पुष्परागः (पुखराज) मरकतम् (पन्ना), माणिक्यम् (चुन्नी), अभ्रकम् (अभ्रक) पीतकम् (हरताल), गन्धकः (गन्धक), तुत्थाञ्जनम्(तूतिया) पारदम्(पारा) यशदम्(जस्ता),सीसकम्(सीसा),स्फटिका(फिटकिरी)।(२५)

व्याकरण (गोपा, त्रिफला, क्री, ग्रह्, भावार्थक प्रत्यय)

१ गोपा शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द १)। त्रिफला गोपा के तुल्य।
२ क्री और ग्रह् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु ९४, ९५)

नियम २८६—(तस्य भावस्त्वतलौ) भाव (हिन्दी 'पन') अर्थ में शब्द के अन्त में त्व और ता लगते हैं। त्व-प्रत्ययान्त के रूप नपुं० में ही चलेंगे, गृहवत्। ता-प्रत्ययान्त के रूप रमावत्। लघु>लघुत्वम्, लघुता (हल्कापन), गुरु>गुरुत्वम्, गुरुता। भावगत अधिकता विद्वस्>विद्वत्त्वम्, विद्वत्ता। महत्>महत्त्वम्, महत्ता।

नियम २८७—(ष्यञ् प्रत्यय) (१) (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च) वर्णवाचकों और दृढ आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। शुक्ल>शौक्ल्यम् (सफेदी)। कृष्ण>कार्ष्ण्यम् (कालापन)। दृढ>दार्ढ्यम् (दृढता)। (२) (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः) गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् (य)। धीर>धैर्यम्। सुन्दर>सौन्दर्यम्। धीर>धैर्यम्, सुख>सौख्यम्। कवि>काव्यम्। (३) (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे) चतुर्वर्ण आदि से स्वार्थ में ष्यञ् (य)। चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। षड्गुण>षाड्गुण्यम्। सेना>सैन्यम्। समीप>सामीप्यम्। त्रिलोक>त्रैलोक्यम्।

नियम २८८—(इमनिच् प्रत्यय) (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा) पृथु आदि से भाव अर्थ में इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है। [illegible] (अन्तिम स्वर-सहित अंश) का लोप होगा। (र ऋतः) शब्द के ऋ को र होगा। पृथु>प्रथिमा। लघु>लघिमा, गुरु>गरिमा, अणु>अणिमा महत्>महिमा मृदु>म्रदिमा।

नियम २८९—भावार्थक कुछ अन्य प्रत्यय ये हैं—(१) (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्) शब्द के अन्त में इ उ या ऋ हो और उससे पहले ह्रस्व स्वर हो तो शब्द से अण् (अ) होगा। शुचि>शौचम् (स्वच्छता), मुनि>मौनम् (मौन) पृथु>पार्थवम् (मोटापा)। (२) (सख्युर्यः) सखि से य प्रत्यय होगा। सखि>सख्यम् (मित्रता)। (३) (पत्यन्त) पति अन्तवाले शब्दों पुरोहित आदि और राजन् से यक् (य) होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। सेनापति>सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्। राजन्>राज्यम्। (४) (प्राणभृज्जाति) प्राणी जातिवाचक और आयु-वाचक से अञ् (अ)। अश्व>आश्वम्। कुमार>कौमारम्। कैशोरम्। (५) (हायनान्त०) हायन अन्तवाले और युवन् आदि से अण् (अ)। द्वैहायनम् (२ वर्ष का)। युवन्>यौवनम्।

नियम २९०—(वत्, क) (१) (तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः) तृतीयान्त से तुल्य अर्थ में वति (वत्) क्रियासाम्य में। ब्राह्मणेन तुल्यं>ब्राह्मणवत् अधीते। (२) (तत्र तस्येव) सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से तुल्य अर्थ में वत्। मथुरायामिव>मथुरावत्। चैत्रवत्।(३)(इवे प्रतिकृतौ)तत्सदृश मूर्ति या चित्र अर्थ में कन्(क)। अश्व इव>अश्वकः।

अभ्यास ५८

संस्कृत बनाओ—(क) (गोपा विश्वपा शब्द) १ ग्वाला गायों को चराता है, उनकी सेवा करता है और उनकी रक्षा करता है। २ ईश्वर विश्वपा है, वह विश्व का पालन करता है। ३ शंख बजानेवाला (शंखध्मा) शंख को बजाता है। ४ धूम्रपान करनेवाले (धूम्रपा) बीड़ी सिगरेट और हुक्का पीते हैं। ५ सोमपान करनेवाला (सोमपा) सोम को पीता है। (ख) (क्री ग्रह् धातु) १ प्राणों के मूल्य से यश को खरीदो। २ बनिया सामान खरीदता है और ग्राहकों को बेचता है (विक्री)। ३ वर वधू के हाथ को पकड़ता है (ग्रह्)। ४ प्रजा के कल्याण के लिए ही उसने प्रजा से कर लिया (ग्रह्)। ५ राजा चोरों को पकड़े (ग्रह्) और उन्हें जेल में डाल दे। ६ लोभी को धन से जीते (ग्रह्)। ७ गुरु मूर्ख बुद्धि ने भी वैसा ही समझा लिया (ग्रह्)। ८ लोग ऐसा समझते हैं (ग्रह्)। ९ पापी का नाम भी न ले (ग्रह्)। १० तुमने यह पुस्तक कितने मूल्य में खरीदी (ग्रह्)। ११ मनुष्य पुराने कपड़ों को उतारकर नवीन वस्त्रों को पहनता है (ग्रह्)। १२ बलवान् के साथ लड़ाई न करे (विग्रह्)। १३ आप मुझे विद्यादान से अनुगृहीत करें (अनुग्रह्)। १४ राजा पापियों और चोरों को दण्ड दे (निग्रह्)। १५ इस आतिथ्य-सत्कार को स्वीकार कीजिए (प्रतिग्रह्)। १६ इन्द्रियों को संयम में रखो (निग्रह्)। १७ माली फूलों को इकट्ठा करके (संग्रह्) लाया और उनसे उसने मालाएँ बनाईं। १८ इस विषय में मुनि झूठ नहीं मानेंगे। १९ क्या कारण है कि गुरु जी अभी तक खुश नहीं हुए। (ग) (भावार्थक) १ प्रतिभा वस्तुस्थानाभाव को नष्ट करती है। २ वीठ, क्यों स्वच्छन्द हो रही है। ३ इस विषय उन सबकी एक राय है। ४ नम्बर से लड़कों को मिठाई बाँटे (विसृ)। ५ महान् राज्य भी मुझे सुख नहीं देता। ६ संसार में मनुष्य के अपने कर्म ही उसे गौरव या हीनता को देते हैं। ७ बुद्धि अपना मानव-सुलभ है। ८ दुर्गों पर सिपाई विलक्षण नीति नहीं है। ९ सम्मान-हीनता दुःखद है। १० क्षण-क्षण में जो नवीनता को प्राप्त हो वही सौन्दर्य है। (घ) (धातुवर्ग) संसार में धातुओं का बहुत महत्त्व है। धातुओं से ही सभी उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। सोना चाँदी, मोती, नीलम अल्युमिनियम हीरा मूँगा, पुखराज, पन्ना और चुन्नी ये बहुमूल्य धातुएँ हैं और आभूषणों आदि में इनका उपयोग होता है। जर्मन सिल्वर, लोहा स्टेनलेस स्टील, ताँबा, पीतल काँसा, कलकूट, जस्ता और शीशे के विविध प्रकार के बर्तन आदि बनते हैं।

संकेत—(क) १ चरति (चरा)। ४ तमाखुपीतिकाम् तमाखुपत्रिकम् धूम्रवर्तिकाम्। (ख) १ प्राणमूल्येन। २ पण्यान् विक्रीणीते। ३ पाणि गृह्णाति। ५ गृह्णीयात् कारायां क्षिपेत्। ७ गृहीतवन्। ९ कियता मूल्येन गृहीतवान्। ११ विहाय गृह्णाति। १२ न विगृह्णीयात्। १३ अनुगृह्णातु। १५ प्रतिगृह्णातु आतिथेयं सत्कारं। १७ संगृह्य। १८ न दोषं ग्रहीष्यति। १९ नाद्यापि प्रसादं गृह्णाति। (ग) (भावार्थक) १ प्रतिभा वस्तुत्वमाभाव-नाशयति। २ दुरीक्षते किं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। ३ ऐकमत्यम्। ४ आनुपूर्व्येण। ५ न सौख्यमावहति। ६ लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति। ७ कविता। ८ आर्जवं हि कुटिलेषु। ९ अवमानना। १० क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

शब्दकोष-१४५+२५=१४७५] अभ्यास ५९ (व्याकरण)

(क) नव रसाः (नौ रस), सप्त स्वराः (सात स्वर), मन्द्रः (कोमल स्वर), मध्यः (मध्यम स्वर) तारः (तीव्र स्वर) आरोहः (चढ़ाव), अवरोहः (उतार), वीणा (सितार), मुरली (बाँसुरी) मनोहारिवाद्यम् (हारमोनियम) सारंगी (१ वायोलिन, २ सारंगी), तन्त्रीकवाद्यम् (पियानो), तानपूरा (तानपूरा), जलतरंगः (जलतरंग) मुरजः (तबला), ढोलकः (ढोलक) मंजीरम् (मंजीरा), दुन्दुभिः (नगाड़ा), पटहः (ढोल), तूर्यम् (तुरही शहनाई) डिण्डिमः (डिंढोरा) वादित्रगणः (बैण्ड), वीणावाद्यम् (बीनवाजा, नफीरी), संवादिस्वरः (विगुल), कोणः (मिजराब)। (२५)।

व्याकरण (कति पुर्, क्षिन्, तर, तम, ईयस्, इष्ठ)

१ कति शब्द के रूप स्मरण करो। (दे० शब्द १९)।

२ पुर् और क्षिन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु १७ १८)।

नियम २९१—(*द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ*) दो की तुलना में विशेषण शब्द से तरप् (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं। तर प्रत्यय लगाने पर पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमावत् और नपुं० में गृहवत् रूप चलेंगे। ईयस् लगाने पर पुं० में श्रेयस् (शब्द १९) के तुल्य, स्त्री० में अन्त में ई लगाकर नदीवत् और नपुं० में मनस् के तुल्य रूप चलेंगे। जिससे विशेषता दिखाई जाती है उसमें पंचमी होगी। रामः श्यामात् पटुतरः, पटीयान् वा।

नियम २९२—(*अतिशायने तमबिष्ठनौ*) बहुतों में से एक की विशेषता बताने अर्थ में तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं। दोनों के रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमावत्, नपुं० में गृहवत् चलेंगे। जिससे विशेषता बताई जाती है उसमें षष्ठी या सप्तमी होगी। छात्राणां छात्रेषु वा रामः पटुतमः पटिष्ठः वा।

नियम २९३—ईयस् और इष्ठ के बारे में ये बातें स्मरण रक्खें—(१) (*अजादी गुणवचनादेव*) ईयस् और इष्ठ गुणवाचकों से ही लगेंगे अन्य से नहीं। तर, तम सर्वत्र लगते हैं। (२) (टेः) ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो टि (अन्तिम स्वर सहित अंश) का लोप होगा। (३) (र ऋतो) शब्द के ऋ को र् होगा। (४) (स्थूल-दूर) स्थूल दूर आदि के अन्तिम र, ल या व का लोप होगा ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो। (५) (प्रियस्थिर) प्रिय स्थिर आदि को प्र स्थ आदि होते हैं। विशेष प्रसिद्ध रूप ये हैं। कोष्ठगत शब्द शेष रहता है। इन शब्दों से तर तम भी लगते हैं।

प्रशस्य (श्र)	श्रेयान्	श्रेष्ठः	गुरु (गर्)	गरीयान्	गरिष्ठः
वृद्ध, प्रशस्य (ज्य)	ज्यायान्	ज्येष्ठः	दीर्घ (द्राघ्)	द्राघीयान्	द्राघिष्ठः
अन्तिक (नेद्)	नेदीयान्	नेदिष्ठः	बहु (भू)	भूयान्	भूयिष्ठः
बाढ (साध्)	साधीयान्	साधिष्ठः	युवन् (कन्)	कनीयान्	कनिष्ठः
स्थूल (स्थ्)	स्थवीयान्	स्थविष्ठः	पटु (पट्)	पटीयान्	पटिष्ठः
दूर (द्)	दवीयान्	दविष्ठः	अल्प (अल्)	अल्पीयान्	अल्पिष्ठः
प्रिय (प्र)	प्रेयान्	प्रेष्ठः	महत् (मह्)	महीयान्	महिष्ठः
स्थिर (स्थ)	स्थेयान्	स्थेष्ठः	मृदु (म्रद्)	म्रदीयान्	म्रदिष्ठः
उरु (वर्)	वरीयान्	वरिष्ठः	बलिन् (बल्)	बलीयान्	बलिष्ठः

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (अति धातु) १ कितनी अग्नियाँ हैं, कितने सूर्य हैं। २ मन, तू स्मरण कर कि तूने कितने पाप किए हैं और कितने पुण्य। ३ कुछ ही देर चलकर वह लम्बी रुक गई। ४ उस पर्वत पर उसने कुछ महीने बिताए (नी)। ५. वक्ष्य पर कुछ कुछ लिखे हैं। ६ कुछ दिन बीतने पर वह घर आयेगा। (ख) (चुर्, चिन्त्) १ चोर ने तिजोरी तोड़कर तीन एक हजार रुपये के दस, एक सौ के, पचास दस रुपए के और अस्सी पाँच रुपए के नोट चुराए। २ नारद ने मन्त्रणा की शोभा को चुराया। ३ सोचो किस बहाने से हम आश्रम में जायें। ४ सज्जन की हानि को मन से भी न सोचे (चिन्त्)। ५ पिता तुम्हारी देख-भाल करेंगे (चिन्त्)। ६ पाखण्डियों और कुकर्मियों की वाणी से भी पूजा न करे (अर्च्)। ७ ऐसी वाणी न कहे (उदीर्), जिससे दूसरे के हृदय को दुःख पहुँचे। ८ कार्य पूरा करने का इच्छुक मनस्वी न दुःख की परवाह करता है और न सुख की। ९ धर्म की प्राचीन मान्यताओं का पता लगाओ (गवेष्)। १० वह मुँह पर घूँघट काढ़ती है। ११ भारतीय सरकार ने गोहत्या-निरोध की घोषणा की (घुष्)। १२ चित्रकार कपड़े पर नेहरूजी का चित्र बनाता है (चित्र्)। १३ मैं दुर्योधन की जंघा को चूर-चूर कर दूँगा (चूर्ण्)। १४ वह आभूषणों से अपने शरीर का अलंकरण कर रही है (अलंकृ)। १५ विद्या और धन को बड़े परिश्रम से एकत्र करे (अर्ज्)। (ग) (तर, तम आदि) १ पक्षोत्पन्नों के लिए पथ बड़ी चीज है (गुरु)। २ बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं। ३ बड़ों की सहायता से क्षुद्र भी सफल हो जाता है। ४ जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है (गुरु)। ५ स्वधर्म परधर्म से बढ़कर है। ६ राम श्याम से अधिक बड़ा (प्रशस्य) अच्छा (चारु), प्रिय, विशाल (उरु) भारी (गुरु) लम्बा (दीर्घ) चतुर (पटु) महान् और बलवान् (बलिन्) है और श्याम राम से हल्का (लघु) छोटा (युवन्), कोमल (मृदु) और कृश है। ७ कृष्ण सबसे अधिक बड़ा अच्छा, प्रिय विशाल, भारी लम्बा, चतुर, महान् और बलवान् है और बलराम सबसे अधिक हल्का छोटा कोमल और कृश है। (घ) (नाट्यवर्ग) विभाव अनुभाव और संचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। शृंगार वीर आदि नौ रस हैं और उनके रति उत्साह आदि नौ स्थायिभाव हैं। निषाद ऋषभ गान्धार, षड्ज, मध्यम धैवत और पंचम ये सात स्वर हैं। इनके प्रथम अक्षरों को लेकर स रे ग म आदि सरगम बना है। संगीत में क्रमशः मध्यम और तीव्र स्वरों के तीन सप्तक होते हैं। स्वरों का आरोह और अवरोह होता है। प्राचीन वाद्यों में से सितार, बाँसुरी सारंगी तानपूरा डमरू, ढोलक मंजीरा नगाड़ा ढोल तुरही सितार इनका प्रचलन अभी तक है। नवीन वाद्यों में हारमोनियम वायोलिन पियानो जलतरंग बैंड बीनवाद्य और बिगुल का अधिक प्रचलन है। संगीत जीवन को सरस और मधुर बनाता है।

संकेत—(क) ३ कतिचित्क्षण ४ कतिचित् । ५. कतिपयकुसुमोद्गम कतरत् । ६. कतिपयदिवसापगमे । (ख) १ चौरमंजूषां विदार्य, सहस्रस्य…पि चोरयामास । २. मन्त्रणम् । ३ कथयेम । ५. त्वां चिन्तयिष्यति । ६. पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् । ७. उदीरयेत् । ८. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् । ९. गवेषय । १० मुखम् अवगुण्ठयति । ११ सर्वकारः अघोषयत् । १२ चित्रयति । १३ संचूर्णयिष्यामि । १४ अलंकरोति । १५. अर्जयेत् । (ग) १ पक्षोत्पन्नानां हि पन्थो गरीयान् । २ महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः । ३ महीयसां महति क्षोदीयांसोऽपि सफलाः । ४ गरीयसी । ५. श्रेयान् । ६. ज्यायान् यवीयान् ।

शब्दकोष—१२७५+२५=१३००] अभ्यास ६० (व्याकरण)

(क) कासः (खाँसी), प्रतिश्यायः (जुकाम) ज्वरः (बुखार) विषमज्वरः (मलेरिया) शीतज्वरः (इन्फ्लुएन्ज़ा 'फ्लू'), प्रलापकज्वरः (निमोनिया), संनिपातज्वरः (टाइफाइड), राजयक्ष्मन् (पुं, तपेदिक टी बी) शीतला (चेचक), मन्थरज्वरः(मोतीझरा), अतिसारः (दस्त), प्रवाहिका (पेचिश, संग्रहणी), वमथुः (कै) विषूचिका (हैजा), रक्तचापः (ब्लडप्रेसर) पिटकः (फोड़ा) पिडिका (फुंसी), अर्शस् (नपुं, बवासीर), प्रमेहः (प्रमेह) मधुमेहः (मधुमूत्र डायबिटीज) पाण्डुः (पीलिया), अजीर्णम् (कब्ज), उपदंशः (गरमी, सिफलिस) विद्रधिः (कैंसर) पक्षाघातः (लकवा मारना) ।(२५)

नियम २९४—(विकारार्थक) विकार अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तस्य विकारः) विकार अर्थ में अण् (अ) । भस्मन्>भास्मनः । (२)(मयड्वैतयो) विकार और अवयव अर्थ में मय प्रत्यय । भस्मन्>भस्ममयम् । (३)(गोश्च पुरीषे) गोबर अर्थ में मय । गो>गोमय ।(४)(गोपयसोर्यत्) गो और पयस् से यत्(य)। गव्यम् । पयस्यम् ।

नियम २९५—(ठक्) इन अर्थों में ठक् (इक) होता है । प्रथम स्वर को वृद्धि । (१) (तेन दीव्यति) जुआ खेलना आदि अर्थों में । अक्ष>आक्षिकः । (२) (संस्कृतम्) बनाने अर्थ में । दधि>दाधिकम् । (३) (तरति) तैरने अर्थ में । उडुप> औडुपिकः (नाव से पार करनेवाला) । (४) (चरति) सवारी करना अर्थ में । हस्तिन्> हास्तिकः । (५) (रक्षति) रक्षा अर्थ में । समाज>सामाजिकः ।

नियम २९६—(यत्) इन स्थानों पर यत् (य) होता है—(१) (वहति) ढोने अर्थ में यत् । रथ>रथ्यः । (२) (धुरो यड्ढकौ) धुर् से य और ढक् (एय) । धुर्>धुर्यः, धौरेयः । (३) (नौवयोधर्म) नौ आदि से । नौ>नाव्यम् ।(४) (तत्र साधुः) ठीक अर्थ में यत् । शरण>शरण्यः । (५)(सभाया यः) सभा से य प्रत्यय । सभ्यः । (६) (पथ्यतिथि) पथिन् आदि से ढञ् (एय) । पथिन्>पाथेयम् । अतिथि>आतिथेयम् ।

नियम २९७—(छ, यत्) छ का ईय, यत् का य रहता है । (१) (उगवा दिभ्यो) हित अर्थ में उकारान्त और गो आदि से यत् । शंकु>शंकव्यम् । गो> गव्यम् । (२) (तस्मै हितम्) हित अर्थ में छ (ईय) । वत्स>वत्सीयः । (३) (शरीरा वयवाद्यत्) शरीरावयवों से यत् (य) । दन्त्यम्, कण्ठ्यम् । (४) (आत्मन्विश्वजन) आत्मन् आदि से हित अर्थ में ख (ईन)। आत्मन्>आत्मनीनम् । विश्वजन>विश्वजनीनम् ।

नियम २९८—(ठञ्) ठ को इक । (१) (तेन क्रीतम्) खरीदने अर्थ में ठञ् (इक) । सप्तति>साप्ततिकम् ।(२)(तदर्हति) योग्य होने अर्थ में ठञ् (इक) । श्वेतच्छत्र> श्वैतच्छत्रिकः । (३) (दण्डादिभ्यो यत्) दण्ड आदि से यत् (य) । दण्ड>दण्ड्यः ।

नियम २९९—(स्वार्थिक) (१) (प्रज्ञादिभ्यश्च) प्रज्ञ आदि से स्वार्थ में अण् (अ) । प्रज्ञ>प्राज्ञः, देवता>दैवतः, बन्धु>बान्धवः । (२) (अल्पे ह्रस्वे) अल्प और छोटा अर्थ में कन् (क) । तैल>तैलकम् , वृक्ष>वृक्षकः ।

नियम ३००—(१) (कृभ्वस्तियोगे) वैसा हो जाना अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है । च्वि का कुछ नहीं शेष रहता । बाद में कृ भू अस् का प्रयोग होता है । च्वि होने पर शब्द के अ को ई, इ और उ को दीर्घ होगा । शुक्ल>शुक्लीकरोति कृष्णीकरोति । (२) (विभाषा साति) सम्पूर्ण अर्थ में साति (सात्)। भस्मसात्, अग्निसात् । (३) (नित्यवीप्सयोः) बार-बार और द्विरुक्ति अर्थ में पद को द्वित्व होता है । भुक्त्वा भुक्त्वा । वृक्षं वृक्षं सिञ्चति । (४) (ईषदसमाप्तौ) कुछ कम अर्थ में कल्प देश्य देशीय प्रत्यय होते हैं । लगभग ५ वर्ष का—पंचवर्षदेशीयः,—देश्यः । अल्पायुकल्पः ।

अभ्यास ६०

संस्कृत बनाओ—(क) (क्षम्, मद् धातु) १ उन बालकों की संपत्ति का क्या कहना। २ उन्होंने बालक से कहा कि राम धनुष को देखना चाहते हैं। ३ कृपा के बहाने से यहाँ नीति ही कही गई है। ४ दूसरे का उच्छिष्ट न खावे। ५ गुरु आज्ञा देते हैं (आज्ञापि) कि पापों को छोड़ो। ६ स्त्री अलंकारों से अपने शरीर को विभूषित करती है (भूष्)। ७ बालक मिठाई का स्वाद लेता है (आस्वद्)। ८ वह बर्तनों को माँजता है (मृज्), शत्रुओं को तपाता है (तप्), सज्जनों को पुष्ट करता है (पुष्), मान्यों का मान करता है (मान्) और दुष्टों को दबाता है (दम्)। (ख) (तद्धित प्रत्यय) १ शारीरिक पुष्टि के लिए पंचगव्य का सेवन करना चाहिए। २ जुआरी पासों से जुआ खेलता है (दिव्)। ३ सब अपने-अपने स्थानों को चले गए। ४ अहिंसा का सिद्धान्त अपनी भलाई और विश्व की भलाई दोनों के लिए है। ५ राम लगभग ग्यारह वर्ष का है। ६ अब लगभग दोपहर का समय है। ७ वह लगभग मरा हुआ है। ८ आग सब वस्तुओं को भस्मसात् कर देती है। ९ नेहरूजी का कथन है कि श्रमिकों की गन्दी बस्तियों को जला दो और उनके लिए साफ मकान बनाओ। १० एकचित्त होकर देवोपकार में लगो (प्रसृ)। ११ कुछ मिलाकर मुझे बीस रुपए दो। १२ यह बात मुझको ही संकेत करती है। १३ मकान जलकर राख हो गए। १४ यह बात सर्वत्र फैल गई है। (ग) (रोगवर्ग) १ मुझे बड़ा सिरदर्द है। २ उसके फोड़े पर फोड़ा निकला है। ३ उसके रोग का शीघ्र इलाज करो। ४ अब मेरी तबीयत पहले से ठीक है। ५ रोग को ठीक जाने बिना उसका इलाज नहीं करना चाहिए। ६ इसका रोग बहुत बढ़ गया है। ७ रोगी की जान खतरे में है। ८ उसका रोग असाध्य है। (घ) (रोगवर्ग) शरीर व्याधियों का घर है। अतः कहा गया है कि—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल आरोग्य है। अतः सदा स्वस्थ रहने का यत्न करना चाहिए। सात्त्विक भोजन, उचित आहार विहार, दैनिक व्यायाम, भ्रमण, योगासन और प्राणायाम से शरीर नीरोग रहता है। इन नियमों पर ध्यान न देने से ही खाँसी, जुकाम, बुखार, मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा, निमोनिया, टाइफाइड, तपेदिक, चेचक, मोतीझरा, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, हैजा, फोड़ा, फुंसी, बवासीर, प्रमेह, मधुमेह, कब्ज आदि रोग होते हैं। कैन्सर, लकवा मारना, तपेदिक और दिल के रोग, ये घातक रोग हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि रोगों का कारण जीवन की अनियमितता है। जीवन को नियमित बनावें और वेद के शब्दों में नीरोग होकर सौ वर्ष जीवें। सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब सुख देखें और कोई दुःखी न हो।

संकेत—(क) १ किं कथ्यते श्रीमत्तायाः तेषाम्। २ मैथिलाय कथयामासुः। ३ व्याजेन। ५. वदेत। ६. भूषयति। ७. आस्वादयति। ८ मार्जयति तापयति पोषयति मानयति दमयति। (ख) २. आक्षिकः अक्षैः दीव्यति। ३ प्रतिजग्मुः। ४ अहिंसानीतिः आत्मनीना विश्वजनीना च वर्तते। ५. एकादशवर्षदेशीयः। ६ मध्याह्नकल्पः। ७. मृतकल्पः। ९. हीनानि आवासस्थानानि भस्मसात् कुरुत। १० एकचित्तीभूय। ११ विंशतीकुरु। १२. कथा मय्येवावतरति। १३ भस्मीभूतानि। १४ इदं पुञ्जीभूतम्। (ग) १ महती शिरोवेदना मां बाधते। २ गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता। ३ विकारो चिकित्स्यताम्। ४ अद्य मे शिथिलोऽयम्। ५. विकारं सम्यक् परिज्ञायैव तस्य प्रतीकारः। ६. अभिवृद्धिं गतः। ७. आतुरो जीवितसंशये वर्तते। (घ) व्याधिमन्दिरम्। जीवेम शरदः शतम्। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

व्याकरण

आवश्यक-निर्देश

१ शब्दरूप-संग्रह में उन सभी शब्दों का (१०० शब्दों का) संग्रह किया गया है, जो अधिक प्रचलित हैं। जिन शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है या सर्वथा नहीं होता है, उनका समावेश इसमें नहीं किया गया है।

२ शब्दों और धातुओं के रूप के साथ अभ्यासों की संख्याएँ दी गई हैं। उसका भाव यह है कि उस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में हुआ है और उस प्रकार के चलनेवाले शब्द या धातु भी उस अभ्यास में दिए गए हैं। अनुवाद वाले प्रकरण में उस शब्द या धातु के अभ्यास में उसी प्रकार चलनेवाले शब्द या धातु यथास्थान कोष्ठ में दिए गए हैं, उनके रूप भी निर्दिष्ट शब्द या धातु के तुल्य चलावें।

३ संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है :—

(क) शब्दरूपों में प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रक्खे गए हैं। जैसे—प्र० = प्रथमा, द्वि० = द्वितीया, तृ० = तृतीया, च० = चतुर्थी, पं० = पंचमी, ष० = षष्ठी, स० = सप्तमी, सं० = संबोधन।

(ख) पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, नपुं० = नपुंसक लिंग। एक० = एकवचन, द्वि० = द्विवचन, बहु० = बहुवचन। दे० अ० = देखो अभ्यास, अ० = अभ्यास। प्रत्येक शब्द या धातु के रूप में ऊपर से नीचे की ओर प्रथम पंक्ति एकवचन की है, दूसरी द्विवचन की और तीसरी बहुवचन की। जो शब्द किसी विशेष वचन में ही चलते हैं उनमें उसी वचन के रूप हैं।

(ग) धातुरूपों में प्र० पु० या प्र० = प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष), म० पु० या म० = मध्यम पुरुष, उ० पु० या उ० = उत्तम पुरुष। प० = परस्मैपद, आ० = आत्मनेपद, उ० = उभयपद।

४ सर्वनाम शब्दों का संबोधन नहीं होता, अतः उनके रूप संबोधन में नहीं दिए गए हैं।

५ शब्दरूपों के लिए ये नियम स्मरण कर लें—(१) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न को ण होता है यदि अट् (स्वर, ह य व र) कवर्ग, पवर्ग, आ, न् बीच में हों तो भी न् को ण् होगा। ऋ वाले शब्दों में भी यह नियम लगेगा। अतः र्, ऋ और ष् वाले शब्दों में इस नियम के अनुसार न् को ण् करें, अन्यत्र न ही रहेगा। (२) (इण्कोः आदेशप्रत्यययोः) अ को छोड़कर अन्य स्वरों के बाद तथा कवर्ग के बाद प्रत्यय के स् को ष् हो जाता है। धातुओं में भी यह नियम लगेगा। जैसे—रामेषु, हरिषु, कर्तृषु, वायुषु।

(१) शब्दरूप-संग्रह

(क) अजन्त पुंलिंग शब्द

(१) राम (राम) (देखो अभ्यास १) (२) पाद (पैर) (देखो अभ्यास ५७)

रामः	रामौ	रामाः	प्र	पादः	पादौ	पादाः
रामम्	,,	रामान्	द्वि	पादम्	,,	पदः
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
रामाय		रामेभ्यः	च०	पदे	,,	पद्भ्यः
रामात्	,,		पं	पदः	,,	,,
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष	पदः	पदोः	पदाम्
रामे	,,	रामेषु	स	पदि	,,	पत्सु
हे राम	हे रामौ	हे रामाः	सं	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

सूचना—पाद के पूरे रूप राम के तुल्य भी चलेंगे। पाद के तुल्य ही दन्त के द्वितीया बहु० आदि में दतः दता, दद्भ्याम् आदि रूप होंगे।

(३) गोपा (ग्वाला) (दे० अ० ५८) (४) हरि (विष्णु) (देखो अ० ४)

गोपाः	गोपौ	गोपाः	प्र	हरिः	हरी	हरयः
गोपाम्	,,	गोपः	द्वि	हरिम्		हरीन्
गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः	तृ	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
गोपे		गोपाभ्यः	च	हरये	,,	हरिभ्यः
गोपः	,,		पं	हरेः		,,
,,	गोपोः	गोपाम्	ष	,,	हर्योः	हरीणाम्
गोपि	,,	गोपासु	स०	हरौ	,,	हरिषु
हे गोपाः	हे गोपौ	हे गोपाः	सं	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

(५) सखि (मित्र) (दे० अ० ११) (६) पति (पति) (दे० अ० २)

सखा	सखायौ	सखायः	प्र	पतिः	पती	पतयः
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०	पतिम्	,,	पतीन्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृ	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च	पत्ये	,,	पतिभ्यः
सख्युः		,,	पं	पत्युः	,,	,,
,,	सख्योः	सखीनाम्	ष	,,	पत्योः	पतीनाम्
सख्यौ	,,	सखिषु	स	पत्यौ	,,	पतिषु
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः	सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

सूचना—स्त्रीलिंग में सखी के रूप नदीवत् चलेंगे।

(७) भूपति (राजा) (दे० अ० ४)				(८) सुधी (विद्वान्) (दे० अ० २१)		
भूपतिः	भूपती	भूपतयः	प्र	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
भूपतिम्	„	भूपतीन्	द्वि	सुधियम्	„	„
भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः	तृ	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
भूपतये	„	भूपतिभ्यः	च	सुधिये	„	सुधीभ्यः
भूपतेः	„	„	पं	सुधियः	„	„
„	भूपत्योः	भूपतीनाम्	ष	„	सुधियोः	सुधियाम्
भूपतौ	„	भूपतिषु	स	सुधियि	„	सुधीषु
हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः	सं	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

(९) गुरु (गुरु) (दे० अ० ५)				(१०) स्वभू (ब्रह्मा) (दे० अ० २१)		
गुरुः	गुरू	गुरवः	प्र	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः
गुरुम्	„	गुरून्	द्वि	स्वभुवम्	„	„
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः	तृ	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
गुरवे	„	गुरुभ्यः	च	स्वभुवे	„	स्वभूभ्यः
गुरोः	„	„	पं	स्वभुवः	„	„
„	गुर्वोः	गुरूणाम्	ष	„	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
गुरौ	„	गुरुषु	स	स्वभुवि	„	स्वभूषु
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	सं	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

(११) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० २१)				(१२) पितृ (पिता) (दे० अ० २१)		
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र	पिता	पितरौ	पितरः
कर्तारम्	„	कर्तॄन्	द्वि	पितरम्	„	पितॄन्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
कर्त्रे	„	कर्तृभ्यः	च	पित्रे	„	पितृभ्यः
कर्तुः	„	„	पं	पितुः	„	„
„	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष	„	पित्रोः	पितॄणाम्
कर्तरि	„	कर्तृषु	स०	पितरि	„	पितृषु
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः	सं	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

(१३) नृ (मनुष्य) (पितृवत्) (दे अ २१)

ना	नरौ	नरः	प्र
नरम्	,,	नॄन्	द्वि
त्रा	नृभ्याम्	नृभिः	तृ
त्रे	,,	नृभ्यः	च
त्रुः	,,	,,	पं
,,	त्रोः	नृणाम्	ष
नरि	,,	नृषु	स
हे नः	हे नरौ	हे नरः	सं

(१४) गो (गाय या बैल) पुं, स्त्री (दे अ २४)

प्र	गौः	गावौ	गावः
द्वि	गाम्	,,	गाः
तृ	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च	गवे	,,	गोभ्यः
पं	गोः	,,	,,
ष	,,	गवोः	गवाम्
स	गवि	,,	गोषु
सं	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

(ख) हलन्त पुंलिंग शब्द

(१५) पयोमुच् (बादल) (दे अ २६)

पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः	प्र
पयोमुचम्	,,	,,	द्वि
पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	तृ
पयोमुचे	,,	पयोमुग्भ्यः	च
पयोमुचः	,,	,,	पं
,,	पयोमुचोः	पयोमुचाम्	ष
पयोमुचि	,,	पयोमुक्षु	स
हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः	सं

(१६) प्राञ्च् (पूर्वी) (दे अ २५)

प्र	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि	प्राञ्चम्	,,	प्राचः
तृ	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च	प्राचे	,,	प्राग्भ्यः
पं	प्राचः	,,	,,
ष	,,	प्राचोः	प्राचाम्
स	प्राचि	,,	प्राक्षु
सं	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

(१७) उदञ्च् (उत्तरी) (दे अ २६)

उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः	प्र
उदञ्चम्	,,	उदीचः	द्वि
उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	तृ
उदीचे	,,	उदग्भ्यः	च
उदीचः	,,	,,	पं
,,	उदीचोः	उदीचाम्	ष
उदीचि	,,	उदक्षु	स
हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः	सं

(१८) वणिज् (बनिया) (दे अ २६)

प्र	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वि	वणिजम्	,,	,,
तृ	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
च	वणिजे	,,	वणिग्भ्यः
पं	वणिजः	,,	,,
ष	,,	वणिजोः	वणिजाम्
स	वणिजि	,,	वणिक्षु
सं	हे वणिक्	हे वणिजौ	हे वणिजः

(१९) भूभृत् (राजा, पर्वत) (दे० अ० २७) — (२०) भगवत् (भगवान्) (दे० अ० २८)

भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः	प्र०	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
भूभृतम्	,,	,,	द्वि०	भगवन्तम्	,,	भगवतः
भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः	तृ०	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
भूभृते	,,	भूभृद्भ्यः	च०	भगवते	,,	भगवद्भ्यः
भूभृतः	,,		पं०	भगवतः	,,	,,
,,	भूभृतोः	भूभृताम्	ष०	,,	भगवतोः	भगवताम्
भूभृति	,,	भूभृत्सु	स०	भगवति	,,	भगवत्सु
हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः	सं०	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

(२१) धीमत् (बुद्धिमान्) (दे० अ० २८) — (२२) महत् (महान्) (दे० अ० २९)

धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः	प्र	महान्	महान्तौ	महान्तः
धीमन्तम्	,,	धीमतः	द्वि	महान्तम्	,,	महतः
धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः	तृ	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
धीमते	,,	धीमद्भ्यः	च	महते		महद्भ्यः
धीमतः	,,	,,	पं	महतः	,,	,,
,,	धीमतोः	धीमताम्	ष	,,	महतोः	महताम्
धीमति	,,	धीमत्सु	स	महति	,,	महत्सु
हे धीमन्	हे धीमन्तौ	हे धीमन्तः	सं	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः

(२३) भवत् (आप) (दे० अ० १) — (२४) पठत् (पढ़ता हुआ) (दे० अ० २

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	प्र	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
भवन्तम्	,,	भवतः	द्वि	पठन्तम्	,,	पठतः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	तृ	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
भवते	,,	भवद्भ्यः	च	पठते	,,	पठद्भ्यः
भवतः	,,	,,	पं	पठतः	,,	,,
,,	भवतोः	भवताम्	ष	,,	पठतोः	पठताम्
भवति	,,	भवत्सु	स	पठति	,,	पठत्सु
हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः	सं	हे पठन्	हे पठन्तौ	[illegible]

(२५) यावत् (जितना) (दे० अ १)				(२६) क्षुध् (स्त्रियाम्) (दे० अ ११)		
यावान्	यावन्तौ	यावन्तः	प्र	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः
यावन्तम्	,,	यावतः	द्वि	क्षुधम्	,,	,,
यावता	यावद्भ्याम्	यावद्भिः	तृ०	क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
यावते	,,	यावद्भ्यः	च	क्षुधे	,,	क्षुद्भ्यः
यावतः	,,	,,	पं	क्षुधः	,,	,,
,,	यावतोः	यावताम्	ष	,,	क्षुधोः	क्षुधाम्
यावति	,,	यावत्सु	स	क्षुधि	,,	क्षुत्सु
हे यावन्	हे यावन्तौ	हे यावन्तः	सं	हे क्षुत्	हे क्षुधौ	हे क्षुधः

(२७) आत्मन् (आत्मा) (दे अ १२)				(२८) राजन् (राजा) (दे अ १२)		
आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	प्र	राजा	राजानौ	राजानः
आत्मानम्	,,	आत्मनः	द्वि	राजानम्	,,	राज्ञः
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	तृ	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
आत्मने	,,	आत्मभ्यः	च	राज्ञे	,,	राजभ्यः
आत्मनः	,,	,,	पं	राज्ञः	,,	,,
,,	आत्मनोः	आत्मनाम्	ष	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्
आत्मनि	,,	आत्मसु	स	राज्ञि,राजनि	,,	राजसु
हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः	सं	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

(२९) श्वन् (कुत्ता) (दे अ ११)				(३०) युवन् (युवक) (दे अ ११		
श्वा	श्वानौ	श्वानः	प्र	युवा	युवानौ	युवानः
श्वानम्	,,	शुनः	द्वि	युवानम्	,,	यूनः
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः	तृ	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
शुने	,,	श्वभ्यः	च०	यूने	,,	युवभ्यः
शुनः	,,	,,	पं	यूनः	,,	,,
,,	शुनोः	शुनाम्	ष	,,	यूनोः	यूनाम्
शुनि	,,	श्वसु	स	यूनि	,,	युवसु
हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः	स	हे युवन्	हे युवानौ	हे [illegible]

(२१) वृत्रहन् (इन्द्र) (दे. अ. १४)				(२२) मघवन् (इन्द्र) (दे. अ. १४)		
वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः	प्र	मघवा	मघवानौ	मघवानः
वृत्रहणम्	,,	वृत्रघ्नः	द्वि	मघवानम्	,,	मघोनः
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः	तृ	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
वृत्रघ्ने	,,	वृत्रहभ्यः	च	मघोने	,,	मघवभ्यः
वृत्रघ्नः	,,	,,	पं	मघोनः	,,	,,
,,	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्	ष०	,,	मघोनोः	मघोनाम्
वृत्रघ्नि / वृत्रहणि	,,	वृत्रहसु	स	मघोनि	,,	मघवसु
हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः	सं	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

सूचना—इसका ही मघवत् शब्द बनाकर भगवत् (शब्द २) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

(२३) करिन् (हाथी) (दे. अ. १५)				(२४) पथिन् (मार्ग) (दे. अ. १५)		
करी	करिणौ	करिणः	प्र	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
करिणम्	,,	,,	द्वि	पन्थानम्	,,	पथः
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
करिणे	,,	करिभ्यः	च	पथे		पथिभ्यः
करिणः	,,	,,	पं	पथः	,,	,,
,,	करिणोः	करिणाम्	ष	,,	पथोः	पथाम्
करिणि	,,	करिषु	स	पथि	,,	पथिषु
हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः	सं	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

(२५) तादृश् (वैसा) (दे. अ. १६)				(२६) विद्वस् (विद्वान्) (दे. अ. १७)		
तादृक्	तादृशौ	तादृशः	प्र	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
तादृशम्	,,	,,	द्वि	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	तृ	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
तादृशे	,,	तादृग्भ्यः	च	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
तादृशः	,,	,,	पं	विदुषः	,,	,,
,,	तादृशोः	तादृशाम्	ष	,,	विदुषोः	विदुषाम्
तादृशि	,,	तादृक्षु	स	विदुषि	,,	विद्वत्सु
हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः	सं	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

(३७) पुंस् (पुरुष) (दे अ १७)   (३८) चन्द्रमस् (चन्द्रमा) (दे अ १९)

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	प्र	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
पुमांसम्	„	पुंसः	द्वि०	चन्द्रमसम्	„	„
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
पुंसे	„	पुंभ्यः	च	चन्द्रमसे	„	चन्द्रमोभ्यः
पुंसः	„	„	पं	चन्द्रमसः	„	„
„	पुंसोः	पुंसाम्	ष	„	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
पुंसि	„	पुंसु	स	चन्द्रमसि	„	चन्द्रमस्सु
हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः	सं	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

(३९) श्रेयस् (अधिक प्रशंसनीय) (दे अ १८)   (४०) अनडुह् (बैल) (दे अ १८)

श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः	प्र	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
श्रेयांसम्	„	श्रेयसः	द्वि	अनड्वाहम्	„	अनडुहः
श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः	तृ	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
श्रेयसे	„	श्रेयोभ्यः	च	अनडुहे	„	अनडुद्भ्यः
श्रेयसः	„	„	पं	अनडुहः	„	„
„	श्रेयसोः	श्रेयसाम्	ष	„	अनडुहोः	अनडुहाम्
श्रेयसि	„	श्रेयस्सु	स	अनडुहि	„	अनडुत्सु
हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः	सं	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

(ग) स्त्रीलिंग शब्द

(४१) रमा (लक्ष्मी) (दे० अ० ३)   (४२) मति (बुद्धि) (दे० अ० १९)

रमा	रमे	रमाः	प्र	मतिः	मती	मतयः
रमाम्	„	„	द्वि	मतिम्	„	„
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	तृ	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
रमायै	„	रमाभ्यः	च	मत्यै मतये	„	मतिभ्यः
रमायाः	„	„	पं	मत्याः मतेः	„	„
„	रमयोः	रमाणाम्	ष	„ „	मत्योः	मतीनाम्
रमायाम्	„	रमासु	स	मत्याम्, मतौ	„	मतिषु
हे रमे	हे रमे	हे रमाः	सं	हे मते	हे मती	हे मतयः

(४३) नदी (नदी) (दे० अ० ४) (४४) लक्ष्मी (लक्ष्मी) (दे० अ० ४)

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
नदीम्	,,	नदीः	द्वि	लक्ष्मीम्	,,	लक्ष्मीः
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
नद्यै	,,	नदीभ्यः	च०	लक्ष्म्यै	,,	लक्ष्मीभ्यः
नद्याः	,,	,,	पं	लक्ष्म्याः	,,	,,
,,	नद्योः	नदीनाम्	ष	,,	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
नद्याम्	,,	नदीषु	स	लक्ष्म्याम्	,,	लक्ष्मीषु
हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः	सं	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

(४५) स्त्री (स्त्री) (दे० अ० ४१) (४६) श्री (लक्ष्मी) (दे० अ० ४१)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	प्र	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	,, स्त्रीः	द्वि	श्रियम्	,,	,,
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	तृ	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः	च	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः
स्त्रियाः		,,	पं	श्रियाः, श्रियः ,		,,
,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	ष	,, ,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स्त्रियाम्		स्त्रीषु	स	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु
हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	सं	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

(४७) धेनु (गाय) (दे० अ० ४२) (४८) वधू (बहू) (दे० अ० ४२)

धेनुः	धेनू	धेनवः	प्र	वधूः	वध्वौ	वध्वः
धेनुम्	,,	धेनूः	द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	तृ	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः	च	वध्वै	,,	वधूभ्यः
धेन्वाः, धेनोः	,,	,,	पं	वध्वाः	,,	,,
,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्	ष	,,	वध्वोः	वधूनाम्
धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु	स०	वध्वाम्	,	वधूषु
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः	सं	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

(४९) स्वसृ (बहिन) (दे० अ० ४१) (५०) मातृ (माता) (दे० अ० ४१)

स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः	प्र	माता	मातरौ	मातरः
स्वसारम्	,,	स्वसॄः	द्वि	मातरम्	,,	मातॄः
स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	तृ	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
स्वस्रे	,,	स्वसृभ्यः	च	मात्रे	,,	मातृभ्यः
स्वसुः	,,		पं	मातुः	,,	,,
,,	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्	ष०	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स्वसरि	,,	स्वसृषु	स०	मातरि	,,	मातृषु
हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः	सं	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

(५१) नौ (नाव) (दे० अ० ४४) (५२) वाच् (वाणी) (दे० अ० ४४)

नौः	नावौ	नावः	प्र	वाक्-ग्	वाचौ	वाचः
नावम्	,,	,,	द्वि	वाचम्	,,	,,
नावा	नौभ्याम्	नौभिः	तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
नावे	,,	नौभ्यः	च०	वाचे	,,	वाग्भ्यः
नावः	,,	,,	पं०	वाचः	,,	,,
,,	नावोः	नावाम्	ष०	,,	वाचोः	वाचाम्
नावि	,,	नौषु	स०	वाचि	,,	वाक्षु
हे नौः	हे नावौ	हे नावः	सं	हे वाक्,-ग्	हे वाचौ	हे वाचः

(५३) (स्रज्) (माला) (दे० अ० ४५) (५४) सरित् (नदी) (दे० अ० ४५)

स्रक्	स्रजौ	स्रजः	प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
स्रजम्	,,	,,	द्वि	सरितम्	,,	
स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः	तृ	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
स्रजे	,,	स्रग्भ्यः	च	सरिते	,,	सरिद्भ्यः
स्रजः	,,	,,	पं	सरितः	,,	,,
,,	स्रजोः	स्रजाम्	ष	,,	सरितोः	सरिताम्
स्रजि	,,	स्रक्षु	स	सरिति	,,	सरित्सु
हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रजः	सं	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

(५५) समिध् (समिधा) (दे० अ० ४६) (५६) अप् (जल) (दे० अ० ४६)

समित्	समिधौ	समिधः	प्र०	आपः
समिधम्	,,	,,	द्वि०	अपः
समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः	तृ०	अद्भिः
समिधे	,,	समिद्भ्यः	च०	अद्भ्यः
समिधः	,,	,,	पं०	,,
,,	समिधोः	समिधाम्	ष०	अपाम्
समिधि	,,	समित्सु	स०	अप्सु
हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः	सं०	हे आपः

सूचना—अप् के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(५७) गिर् (वाणी) (दे० अ० ४७) (५८) पुर् (नगर) (दे० अ० ४७)

गीः	गिरौ	गिरः	प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
गिरम्	,,	,,	द्वि०	पुरम्	,,	,,
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
गिरे	,,	गीर्भ्यः	च०	पुरे	,,	पूर्भ्यः
गिरः			पं०	पुरः	,,	,,
,,	गिरोः	गिराम्	ष०	,,	पुरोः	पुराम्
गिरि	,,	गीर्षु	स०	पुरि	,,	पूर्षु
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः	सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

(५९) दिश् (दिशा) (दे० अ० ४८) (६०) उपानह् (जूता) (दे० अ० ४८)

दिक्	दिशौ	दिशः	प्र०	उपानत्	उपानहौ	उपानहः
दिशम्	,,	,,	द्वि०	उपानहम्	,,	,,
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
दिशे	,,	दिग्भ्यः	च०	उपानहे	,,	उपानद्भ्यः
दिशः	,,	,,	पं०	उपानहः	,,	,,
,,	दिशोः	दिशाम्	ष०	,,	उपानहोः	उपानहाम्
दिशि	,,	दिक्षु	स०	उपानहि	,,	उपानत्सु
हे दिक्	हे दिशौ	हे दिशः	सं०	हे उपानत्	हे उपानहौ	हे उपानहः

(घ) नपुंसकलिंग शब्द

(६१) गृह (घर) (दे० अ० २)				(६२) वारि (जल) (दे० अ० ४९)		
गृहम्	गृहे	गृहाणि	प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः	तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
गृहाय	,,	गृहेभ्यः	च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
गृहात्	,,	,,	पं०	वारिणः	,,	,,
गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्	ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
गृहे	,,	गृहेषु	स०	वारिणि	,,	वारिषु
हे गृह	हे गृहे	हे गृहाणि	सं०	हे वारि, वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

सूचना—मनोहारिन् आदि इन् अन्तवालों के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। दो स्थानों पर अन्तर होगा। षष्ठी बहु० में 'इनाम्' अन्त में होगा और सं० एक० में 'इन्'।

(६३) दधि (दही) (दे० अ० ४९)				(६४) अक्षि (आँख) (दधिवत्) (दे० अ० ५०)		
दधि	दधिनी	दधीनि	प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
दध्ने	,,	दधिभ्यः	च०	अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः
दध्नः	,,	,,	पं०	अक्ष्णः	,,	,,
,,	दध्नोः	दध्नाम्	ष०	,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
दध्नि, दधनि	,,	दधिषु	स०	अक्ष्णि, अक्षणि	,,	अक्षिषु
हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि	सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

(६५) अस्थि (हड्डी) (दधिवत्) (दे० अ० ५०)				(६६) मधु (शहद) (दे० अ० ५१)		
अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः	तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
अस्थ्ने	,,	अस्थिभ्यः	च०	मधुने	,,	मधुभ्यः
अस्थ्नः	,,	,,	पं०	मधुनः	,,	,,
,,	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्	ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
अस्थ्नि, अस्थनि	,,	अस्थिषु	स०	मधुनि	,,	मधुषु
हे अस्थि, अस्थे	हे अस्थिनी	हे अस्थीनि	सं०	हे मधु, मधो	हे मधुनी	हे मधूनि

(६७) कर्तृ (करने वाला) (दे० अ० ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे० अ० ५२)

कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	प्र	जगत्	जगती	जगन्ति
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः	च	जगते	,,	जगद्भ्यः
कर्तृणः	,,	,,	पं	जगतः	,,	,,
,,	कर्तृणोः	कर्तॄणाम्	ष	,,	जगतोः	जगताम्
कर्तृणि	,,	कर्तृषु	स	जगति	,,	जगत्सु
हे कर्तृ, कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि	सं०	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक० से सप्तमी बहु० तक कर्तृ पुं० (शब्द ११) के तुल्य भी रूप बनेंगे।

(६९) नामन् (नाम) (दे० अ० ५३) (७०) शर्मन् (सुख) (दे० अ० ५३)

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
,,	,,	,,	द्वि	,,		,,
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः
नाम्ने	,,	नामभ्यः	च	शर्मणे	,,	शर्मभ्यः
नाम्नः	,,	,,	पं	शर्मणः	,,	,,
,,	नाम्नोः	नाम्नाम्	ष	,,	शर्मणोः	शर्मणाम्
नाम्नि, नामनि	,,	नामसु	स	शर्मणि		शर्मसु
हे नाम, नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि	सं	हे शर्म, शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे० अ० ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे० अ० ५४)

ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,, ,,	,,
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः	च	अह्ने	,,	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	,,	,,	पं०	अह्नः	,,	,,
,,	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्	ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि	,,	अहःसु,-स्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	सं	हे अहः	अह्नी, अहनी	अहानि

(७३) हविष् (हवि) (दे० अ० ५५) (७४) धनुष् (धनुष) (दे अ० ५५)

हविः	हविषी	हवींषि	प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
"	"	"	द्वि०	"	"	"
हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः	तृ	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
हविषे	"	हविर्भ्यः	च	धनुषे	"	धनुर्भ्यः
हविषः	"	"	पं०	धनुषः		"
"	हविषोः	हविषाम्	ष०	"	धनुषोः	धनुषाम्
हविषि		हविःषु,-ष्षु	स०	धनुषि	"	धनुःषु,-ष्षु
हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि	सं	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

(७५) पयस् (दूध, जल) (दे अ० ५६) (७६) मनस् (मन) (दे अ ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र	मनः	मनसी	मनांसि
"	"	"	द्वि	"	"	"
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
पयसे	"	पयोभ्यः	च	मनसे	"	मनोभ्यः
पयसः		"	पं	मनसः	"	"
"	पयसोः	पयसाम्	ष	"	मनसोः	मनसाम्
पयसि	"	पयःसु,-स्सु	स	मनसि	"	मनःसु,-स्सु
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	सं	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(ख) सर्वनाम शब्द

(७७) (क) सर्व (सब) पुंलिंग (दे अ ८) (७७) (ग) सर्व (स्त्रीलिंग) (दे० अ ८)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्		सर्वान्	द्वि	सर्वाम्	"	"
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः	च	सर्वस्यै	"	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	"	"	पं	सर्वस्याः	"	
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष	"	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु	स	सर्वस्याम्	"	सर्वासु

(७७) (ख) सर्व (नपुंसकलिंग) (दे अ ७)

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	प्र
"	"	"	द्वि

(६७) कर्तृ (करने वाला) (दे० अ० ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे० अ० ५२)

कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	प्र	जगत्	जगती	जगन्ति
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः	च	जगते	,,	जगद्भ्यः
कर्तृणः	,,	,,	पं	जगतः	,,	,,
,,	कर्तृणोः	कर्तॄणाम्	ष	,,	जगतोः	जगताम्
कर्तृणि	,,	कर्तृषु	स	जगति	,,	जगत्सु
हे कर्तृ, कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि	सं	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक० से सप्तमी बहु० तक कर्तृ पुं० (शब्द ११) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

—

(६९) नामन् (नाम) (दे० अ० ५३) (७०) शर्मन् (सुख) (दे० अ० ५३)

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
,,	,,	,,	द्वि	,,	,,	,,
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः
नाम्ने	,,	नामभ्यः	च	शर्मणे	,,	शर्मभ्यः
नाम्नः	,,	,,	पं	शर्मणः	,,	,,
,,	नाम्नोः	नाम्नाम्	ष	,,	शर्मणोः	शर्मणाम्
नाम्नि, नामनि	,,	नामसु	स	शर्मणि	,,	शर्मसु
हे नाम, नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि	सं	हे शर्म, शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

—

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे० अ० ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे० अ० ५४)

ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
,,	,,	,,	द्वि	,,	,, ,,	,,
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः	च	अह्ने	,,	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	,,	,,	पं	अह्नः		,,
,,	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्	ष	,,	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि		अहःसु, -स्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	सं	हे अहः	अह्नी, अहनी	अहानि

—

(३१) हविस् (हवि) (दे० अ० ५५) (३२) धनुस् (धनु) (दे० अ० ५५)

हविः	हविषी	हवींषि	प्र	धनुः	धनुषी	धनूंषि
"	"	"	द्वि०	"	"	"
हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः	तृ	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
हविषे	"	हविर्भ्यः	च	धनुषे	"	धनुर्भ्यः
हविषः	"	"	पं	धनुषः	"	"
"	हविषोः	हविषाम्	ष	"	धनुषोः	धनुषाम्
हविषि	"	हविःषु-ष्षु	स	धनुषि	"	धनुःषु-ष्षु
हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि	सं	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

(३३) पयस् (दूध जल) (दे० अ० ५६) (३४) मनस् (मन) (दे० अ० ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र	मनः	मनसी	मनांसि
"	"	"	द्वि०	"	"	"
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
पयसे	"	पयोभ्यः	च	मनसे	"	मनोभ्यः
पयसः	"	"	पं	मनसः	"	"
"	पयसोः	पयसाम्	ष	"	मनसोः	मनसाम्
पयसि	"	पयःसु-स्सु	स	मनसि	"	मनःसु-स्सु
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	सं	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(ङ) सर्वनाम शब्द

(३५) (क) सर्व (सब) पुंल्लिंग (दे० अ० ६) (३५) (ख) सर्वा (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ७)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्	"	सर्वान्	द्वि	सर्वाम्	"	"
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः	च०	सर्वस्यै	"	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	"	"	पं०	सर्वस्याः	"	"
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष	"	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु	स	सर्वस्याम्	"	सर्वासु

(३५) (ग) सर्व (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

(७८)(क)विश्व(सब)पुंलिंग(दे० अ १) (७९)(क)पूर्व(पहला)पु०

विश्वः	विश्वौ	विश्वे	प्र	पूर्वः	पूर्वौ
विश्वम्	,,	विश्वान्	द्वि	पूर्वम्	,,
विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः	तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्
विश्वस्मै	,,	विश्वेभ्यः	च	पूर्वस्मै	,,
विश्वस्मात्	,		पं०	पूर्वस्मात् पूर्वात्	,,
विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्	ष	पूर्वस्य	पूर्वयोः
विश्वस्मिन्	,	विश्वेषु	स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	,,

(७८)(ख)विश्व(नपुंसकलिंग)(दे अ ७)(७९)(ख)पूर्व(नपुंसक

विश्वम्	विश्वे	विश्वानि	प्र०	पूर्वम्	पूर्वे
,,	,,	,,	द्वि०		,

शेष पुंलिंग के तुल्य (दे अ ७८, क) (शेष पुंलिंग के तुल्य (दे

(७८) (ग)विश्व(स्त्रीलिंग)(दे० अ ८) (७९) (ग)पूर्व(स्त्रीलिं

विश्वा	विश्वे	विश्वाः	प्र०	पूर्वा	पूर्वे
विश्वाम्	,	,	द्वि	पूर्वाम्	,,
विश्वया	विश्वाभ्याम्	विश्वाभिः	तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्
विश्वस्यै		विश्वाभ्यः	च०	पूर्वस्यै	,
विश्वस्याः	,,	,	पं	पूर्वस्याः	,,
,,	विश्वयोः	विश्वासाम्	ष		पूर्वयोः
विश्वस्याम्	,,	विश्वासु	स	पूर्वस्याम्	,,

(८०)(क)अन्य(दूसरा)पुंलिंग(दे अ १) (८०)(ग)अन्य(स्त्रीलिं

अन्यः	अन्यौ	अन्ये	प्र	अन्या	अन्ये
अन्यम्	,,	अन्यान्	द्वि०	अन्याम्	,,
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः	तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्
अन्यस्मै	,,	अन्येभ्यः	च	अन्यस्यै	,,
अन्यस्मात्	,,	,	पं	अन्यस्याः	,
अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्	ष०	,,	अन्ययोः
अन्यस्मिन्	,,	अन्येषु	स	अन्यस्याम्	,,

(८०)(ख)अन्य(नपुंसकलिंग)(दे० अ ७) —

अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८०, क)

(८१) (क) तद् (वह) पुंलिंग (दे० अ० ६) (८२) (क) यद् (जो) पुंलिंग (दे० अ० ६)

सः	तौ	ते	प्र	यः	यौ	ये
तम्	,,	तान्	द्वि०	यम्	,,	यान्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तृ	येन	याभ्याम्	यैः
तस्मै	,,	तेभ्यः	च०	यस्मै	,,	येभ्यः
तस्मात्	,,	,,	पं०	यस्मात्	,,	,,
तस्य	तयोः	तेषाम्	ष	यस्य	ययोः	येषाम्
तस्मिन्	,,	तेषु	स०	यस्मिन्	,,	येषु

(८१) (ख) तत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७) (८२) (ख) यत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

तत्	ते	तानि	प्र	यत्	ये	यानि
,,	,,	,,	द्वि			,,

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८१, क) शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८२, क)

(८१) (ग) तद् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८) (८२) (ग) यद् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)

सा	ते	ताः	प्र	या	ये	याः
ताम्	,,	,,	द्वि	याम्	,,	,,
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तृ	यया	याभ्याम्	याभिः
तस्यै	,,	ताभ्यः	च	यस्यै	,,	याभ्यः
तस्याः	,,	,,	पं	यस्याः	,,	,,
,,	तयोः	तासाम्	ष		ययोः	यासाम्
तस्याम्	,,	तासु	स	यस्याम्		यासु

(८३) (क) एतद् (यह) पुंलिंग (तद् के तुल्य) (८४) (क) किम् (क्या) पुंलिंग (तद् के तुल्य)

एषः	एतौ	एते	प्र	कः	कौ	के
एतम्	,,	एतान्	द्वि	कम्	,,	कान्

शेष तद् पुंलिंग (८१ क) के तुल्य। शेष तद् पुंलिंग (८१, क) के तुल्य।

(८३) (ख) एतद् (नपुंसकलिंग) (८४) (ख) किम् (नपुंसक०)

एतत्	एते	एतानि	प्र	किम्	के	कानि
,,		,,	द्वि		,,	,,

शेष तद् नपुं० (८१, ख) के तुल्य। शेष तद् नपुं (८१, ख) के तुल्य

(८३) (ग) एतद् (स्त्रीलिंग) (८४) (ग) किम् (स्त्रीलिंग)

एषा	एते	एताः	प्र	का	के	काः
एताम्	,,	,,	द्वि	काम्	,,	,,

शेष तद् स्त्रीलिंग (८१ ग) के तुल्य। शेष तद् स्त्रीलिंग (८१ ग) के तुल्य

(८५) युष्मद् (तू) (देखो अ ११) — (८६) अस्मद् (मैं) (देखो अ ११)

त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वाम्	,,	युष्मान्	द्वि	माम्	,	अस्मान्
त्वा	वाम्	वः		मा	नौ	नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यम्	,,	युष्मभ्यम्	च	मह्यम्	,,	अस्मभ्यम्
ते	वाम्	वः		मे	नौ	नः
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पं	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव	युवयोः	युष्माकम्	ष	मम	आवयोः	अस्माकम्
ते	वाम्	वः		मे	नौ	नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	स	मयि	आवयोः	अस्मासु

(८७) (क) इदम् (यह) पुंलिंग (देखो अ १) — (८८)(क) अदस् (वह) पुंलिंग (देखो अ १)

अयम्	इमौ	इमे	प्र	असौ	अमू	अमी
इमम्	,,	इमान्	द्वि	अमुम्	,,	अमून्
अनेन	आभ्याम्	एभिः	तृ	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
अस्मै	,,	एभ्यः	च	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः
अस्मात्	,,	,,	पं	अमुष्मात्	,,	,,
अस्य	अनयोः	एषाम्	ष	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अस्मिन्	,,	एषु	स	अमुष्मिन्	,	अमीषु

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०) — (८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)

इदम्	इमे	इमानि	प्र	अदः	अमू	अमूनि
,,	,,	,	द्वि	,,		

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८७ क) — शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८८, क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग) — (८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)

इयम्	इमे	इमाः	प्र	असौ	अमू	अमूः
इमाम्		,,	द्वि	अमूम्	,,	,,
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
अस्यै	,	आभ्यः	च	अमुष्यै		अमूभ्यः
अस्याः	,,		पं	अमुष्याः		
,,	अनयोः	आसाम्	ष	,,	अमुयोः	अमूषाम्
अस्याम्	,,	आसु	स	अमुष्याम्	,,	अमूषु

(८९) एक (एक) (दे० अ० ११)

पुंलिंग	नपुंसक०	स्त्रीलिंग	
एकः	एकम्	एका	प्र
एकम्		एकाम्	द्वि०
एकेन	एकेन	एकया	तृ०
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	च
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	पं
एकस्य	एकस्य	,	ष
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	स

(९०) द्वि (दो) (दे अ० १४)

	पुंलिंग	नपुं०, स्त्रीलिंग
प्र	द्वौ	द्वे
द्वि०	,,	,,
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च	,	,
पं		,
ष	द्वयोः	द्वयोः
स	,	,,

सूचना—केवल एकवचन में रूप चलते हैं। सूचना—द्वि के द्विवचन में ही रूप चलेंगे।

(९१) त्रि (तीन) (दे अ १५) (९२) चतुर् (चार) (दे अ १६)

पुं०	नपुं०	स्त्री०		पुं०	नपुं०	स्त्री०
त्रयः	त्रीणि	तिस्रः	प्र	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
त्रीन्		,,	द्वि	चतुरः	,,	,
त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः	तृ	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
,,	,	,	पं	,	,,	,,
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	ष	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	स	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

सूचना—त्रि के बहु० में ही रूप चलते हैं। सूचना—चतुर् के बहु में ही रूप चलते हैं

(९३) पंचन् (पाँच)	(९४) षष् (छः)		(९५) सप्तन् (सात)
पञ्च	षट्	प्र	सप्त
,,	,,	द्वि	,,
पञ्चभिः	षड्भिः	तृ	सप्तभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	च	सप्तभ्यः
,,	,	पं	,,
पञ्चानाम्	षण्णाम्	ष	सप्तानाम्
पञ्चसु	षट्सु	स	सप्तसु

सूचना—५ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(८५) युष्मद् (तू) (दे० अ ११)

त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र
त्वाम् त्वा	वाम्	युष्मान् वः	द्वि
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	तृ
तुभ्यम् ते	वाम्	युष्मभ्यम् वः	च
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पं
तव ते	युवयोः वाम्	युष्माकम् वः	ष
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	स

(८६) अस्मद् (मैं) (दे अ १२)

प्र	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि	माम् मा	" नौ	अस्मान् नः
तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च	मह्यम् मे	नौ	अस्मभ्यम् नः
पं	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकम् नः
स	मयि	आवयोः	अस्मासु

(८७) (क) इदम् (यह) पुंलिंग (दे अ १)

अयम्	इमौ	इमे	प्र
इमम्		इमान्	द्वि
अनेन	आभ्याम्	एभिः	तृ
अस्मै	"	एभ्यः	च
अस्मात्	"	"	पं
अस्य	अनयोः	एषाम्	ष
अस्मिन्		एषु	स

(८८)(क) अदस् (वह) पुंलिंग (दे अ १)

प्र	असौ	अमू	अमी
द्वि	अमुम्	"	अमून्
तृ	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च	अमुष्मै	"	अमीभ्यः
पं	अमुष्मात्	"	
ष	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स	अमुष्मिन्		अमीषु

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०)

इदम्	इमे	इमानि	प्र
"	"		द्वि

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८७ क)

(८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)

प्र	अदः	अमू	अमूनि
द्वि	"	"	"

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८८, क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग)

इयम्	इमे	इमाः	प्र
इमाम्	"	"	द्वि
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ
अस्यै	"	आभ्यः	च
अस्याः	"	"	पं
"	अनयोः	आसाम्	ष
अस्याम्		आसु	स

(८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)

प्र	असौ	अमू	अमूः
द्वि	अमूम्	"	"
तृ	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च	अमुष्यै	"	अमूभ्यः
पं	अमुष्याः	"	"
ष	"	अमुयोः	अमूषाम्
स	अमुष्याम्	"	अमूषु

(८९) एक (एक) (दे० अ० ११) — (९०) द्वि (दो) (दे० अ० १४)

पुंलिंग	नपुंसक०	स्त्रीलिंग		पुंलिंग	नपुं०, स्त्रीलिंग
एकः	एकम्	एका	प्र०	द्वौ	द्वे
एकम्	"	एकाम्	द्वि	"	"
एकेन	एकेन	एकया	तृ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	च	"	"
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	पं	"	"
एकस्य	एकस्य	"	ष	द्वयोः	द्वयोः
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	स०	"	"

सूचना—केवल एकवचन में रूप चलते हैं। सूचना—द्वि के द्विवचन में ही रूप चलेंगे।

(९१) त्रि (तीन) (दे० अ० १५) — (९२) चतुर् (चार) (दे० अ० १६)

पुं०	नपुं०	स्त्री०		पुं०	नपुं०	स्त्री०
त्रयः	त्रीणि	तिस्रः	प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
त्रीन्	"	"	द्वि	चतुरः	"	"
त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः	तृ	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	च	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
"	"	"	पं	"	"	"
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	ष	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

सूचना—त्रि के बहु० में ही रूप चलते हैं। सूचना—चतुर् के बहु० में ही रूप चलते हैं।

(९३) पंचन् (पाँच)	(९४) षष् (छः)		(९५) सप्तन् (सात)
पञ्च	षट्	प्र	सप्त
"	"	द्वि	"
पञ्चभिः	षड्भिः	तृ	सप्तभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	च	सप्तभ्यः
"	"	पं	"
पञ्चानाम्	षण्णाम्	ष	सप्तानाम्
पञ्चसु	षट्सु	स	सप्तसु

सूचना—५ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(९६) अष्टन् (आठ)

अष्ट	अष्टौ
,,	,,
अष्टभिः	अष्टाभिः
अष्टभ्यः	अष्टाभ्यः
,,	
अष्टानाम्	अष्टानाम्
अष्टसु	अष्टासु

(९७) नवन् (नौ)

प्र	नव
द्वि	,,
तृ	नवभिः
च	नवभ्यः
पं	
ष	नवानाम्
स	नवसु

(९८) दशन् (दस)

दश
,,
दशभिः
दशभ्यः
,,
दशानाम्
दशसु

सूचना—अष्टन्, नवन्, दशन् के रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

(९९) कति (कितने) (दे० अ० ६१)

कति
,,
कतिभिः
कतिभ्यः
कतीनाम्
कतिषु

सूचना—कति के रूप बहु० में ही चलते हैं।

(१००) उभ (दोनों) (दे० अ० १)

	पुं	नपुं० स्त्री
प्र	उभौ	उभे
द्वि	,,	,,
तृ	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
च	,,	,,
पं		,,
ष	उभयोः	,,
स	,,	उभयोः
		,,

सूचना—उभ के रूप तीनों लिंगों में केवल द्विवचन में ही चलते हैं।

(२) संख्याएँ

१ एकः, एकम्, एका
२ द्वौ, द्वे, द्वे
३ त्रयः, त्रीणि, तिस्रः
४ चत्वारः, चत्वारि, चतस्रः
५ पञ्च
६ षट्
७ सप्त
८ अष्ट, अष्टौ
९ नव
१० दश
११ एकादश
१२ द्वादश
१३ त्रयोदश
१४ चतुर्दश
१५ पञ्चदश
१६ षोडश
१७ सप्तदश
१८ अष्टादश
१९ नवदश
एकोनविंशतिः
२० विंशतिः
२१ एकविंशतिः
२२ द्वाविंशतिः
२३ त्रयोविंशतिः
२४ चतुर्विंशतिः
२५ पञ्चविंशतिः
२६ षड्विंशतिः
२७ सप्तविंशतिः
२८ अष्टाविंशतिः

२९ नवविंशतिः
एकोनत्रिंशत्
३० त्रिंशत्
३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टात्रिंशत्
३९ नवत्रिंशत्
एकोनचत्वारिंशत्
४० चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ द्विचत्वारिंशत्
द्वाचत्वारिंशत्
४३ त्रिचत्वारिंशत्
त्रयश्चत्वारिंशत्
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ अष्टचत्वारिंशत्
अष्टाचत्वारिंशत्
४९ नवचत्वारिंशत्
एकोनपञ्चाशत्
५० पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ द्विपञ्चाशत्
द्वापञ्चाशत्

५३ त्रिपञ्चाशत्
त्रयःपञ्चाशत्
५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्टपञ्चाशत्
अष्टापञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टिः
६० षष्टिः
६१ एकषष्टिः
६२ द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः
६३ त्रिषष्टिः
त्रयःषष्टिः
६४ चतुःषष्टिः
६५ पञ्चषष्टिः
६६ षट्षष्टिः
६७ सप्तषष्टिः
६८ अष्टषष्टिः
अष्टाषष्टिः
६९ नवषष्टिः
एकोनसप्ततिः
७० सप्ततिः
७१ एकसप्ततिः
७२ द्विसप्ततिः
द्वासप्ततिः
७३ त्रिसप्ततिः
त्रयःसप्ततिः
७४ चतुःसप्ततिः
७५ पञ्चसप्ततिः

७६ षट्सप्ततिः
७७ सप्तसप्ततिः
७८ अष्टसप्ततिः
अष्टासप्ततिः
७९ नवसप्ततिः
एकोनाशीतिः
८० अशीतिः
८१ एकाशीतिः
८२ द्व्यशीतिः
८३ त्र्यशीतिः
८४ चतुरशीतिः
८५ पञ्चाशीतिः
८६ षडशीतिः
८७ सप्ताशीतिः
८८ अष्टाशीतिः
८९ नवाशीतिः
एकोननवतिः
९० नवतिः
९१ एकनवतिः
९२ द्विनवतिः
द्वानवतिः
९३ त्रिनवतिः
त्रयोनवतिः
९४ चतुर्नवतिः
९५ पञ्चनवतिः
९६ षण्णवतिः
९७ सप्तनवतिः
९८ अष्टनवतिः
अष्टानवतिः
९९ नवनवतिः
एकोनशतम्
१०० शतम्।

१ हजार—सहस्रम्। १० हजार—अयुतम्। १ लाख—लक्षम्। १० लाख—नियुत-प्रयुतम्। १ करोड़—कोटिः। १० करोड़—दशकोटिः। १ अरब—अर्बुदम्। १० अरब—दशार्बुदम्। १ खरब—खर्वम्। १० खरब—दशखर्वम्। १ नील—नीलम्। १० नील—दशनीलम्। १ पद्म—पद्मम्। १० पद्म—दशपद्मम्। १ शंख—शंखम्। १० शंख—दशशंखम्। १ महाशंख—महाशंखम्।

सूचना—१ (क) १०१ आदि संख्याओं के लिए अधिक शब्द लगाकर संख्या शब्द बनावें। जैसे, १०१ एकाधिकं शतम्। १०२ द्व्यधिकं शतम् आदि। (ख) २०० आदि के लिए दो आदि संख्यावाचक शब्द पहले रखकर बाद में 'शती' रखें, या शत पहले रखकर द्वयम्, त्रयम् आदि रखें। जैसे—२०० , द्विशती शतद्वयम्। ३०० त्रिशती शतत्रयम्, ४०० चतुःशती, ५०० पञ्चशती, ६०० षट्शती ७०० सप्तशती (हिन्दी सतसई) आदि।

२. त्रि (३) से लेकर १८ (अष्टादशन्) तक सारे शब्दों के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं। दशन् से अष्टादशन् तक दशन् के तुल्य।

३ एकोनविंशति से नवनवति तक सारे शब्द एकवचनान्त स्त्रीलिंग हैं। इनके रूप एकवचन में ही चलते हैं। इकारान्त विंशति, सप्तति, अशीति, नवति तथा जिनके अन्त में ये हों उनके रूप मति के तुल्य चलेंगे। तकारान्त त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् के रूप सरित् के तुल्य (शब्द सं० १४) चलेंगे।

४ शतम्, सहस्रम्, अयुतम्, लक्षम्, नियुतम्, प्रयुतम् आदि शब्द तथा एकवचनान्त नपुंसक हैं। शतम् एक० में रूप चलेगा। ज्ञान के सदृश।

५ संख्येय शब्द (प्रथम, द्वितीय आदि) बनाने के लिए अभ्यास १८ का व्याकरण (८क)।

(ख) धातुरूप-संग्रह

आवश्यक-निर्देश

१. संस्कृत में सारी धातुओं को १ विभागों में बाँटा गया है। उन्हें 'गण' कहते हैं, अतः १ गण हैं। धातु और तिङ् (ति, तः आदि) प्रत्यय के बीच में होनेवाले अ, उ, नु आदि को 'विकरण' कहते हैं। इनके अन्तर के आधार पर ही ये गण बनाए गए हैं। ये 'विकरण' लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में ही होते हैं, अन्य ६ लकारों में नहीं होते, यह स्मरण रक्खें। प्रत्येक गण में तीनों प्रकार की धातुएँ होती हैं, परस्मैपदी (ति तः, अन्ति आदिवाली) आत्मनेपदी (ते एते, अन्ते आदिवाली) और उभयपदी (पूर्वोक्त दोनों प्रकार के रूपवाली)। प्रत्येक गण की विशेषताएँ आगे प्रत्येक गण के विवरण में दी गई हैं। यहाँ अधिक प्रसिद्ध १ धातुओं के रूप दिए गए हैं।

२. प्रत्येक गण के विवरण में उस गण में आनेवाली धातुओं के अन्त में क्या संक्षिप्त-रूप लगेंगे, इसका विवरण दिया गया है। उस गण की धातुओं के अन्त में उन लकारों में निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप लगावें।

३. गणों के अन्तर के कारण लिट्, लुट्, आशीर्लिङ्, लृट्, लृङ् और लुङ् में कोई अन्तर नहीं होता। अतः सभी गणों में इन लकारों में एक से ही रूप चलेंगे। इन लकारों के संक्षिप्त रूप आगे दिए हैं, उन्हें स्मरण कर लें। सभी गणों में उन्हीं संक्षिप्त-रूपों को लगावें। अतएव धातुरूपों में लिट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृट् के प्रारम्भिक रूप ही संकेतमात्र दिए गए हैं। सभी धातुओं के लृङ् और लुङ् के पूरे रूप दिए गए हैं।

४. दसों गणों के विकरण और मुख्य कार्य ये हैं :—

गण	विकरण	कार्य
(१) भ्वादिगण	अ	लट् आदि में धातु को गुण होगा।
(२) अदादिगण	×	लट् आदि के एक० में धातु को गुण होगा।
(३) जुहोत्यादिगण	×	लट् आदि में धातु को द्वित्व और एक० में गुण।
(४) दिवादिगण	य	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(५) स्वादिगण	नु (नो)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(६) तुदादिगण	अ	" "
(७) रुधादिगण	न (न्)	" "
(८) तनादिगण	उ (ओ)	लट् आदि में धातु को पर० में गुण होगा।
(९) क्र्यादिगण	ना (नी)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(१०) चुरादिगण	अय	लट् आदि में धातु को गुण या वृद्धि होगी।

(क) लकारों के संक्षिप्त-रूप

लट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
ति	तः	अन्ति	प्र	ते	इते (आते)	अन्ते (अते)
सि	थः	थ	म	से	इथे (आथे)	ध्वे
मि	वः	मः	उ	इ (ए)	वहे	महे

लोट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
तु	ताम्	अन्तु	प्र	ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)
—, हि	तम्	त	म	स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै

लङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
त्	ताम्	अन्	प्र	त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)
:	तम्	त	म	थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि

विधिलिङ्

परस्मैपद							आत्मनेपद		
ईत्	ईताम्	ईयुः	यात्	याताम्	युः	प्र	ईत	ईयाताम्	ईरन्
ईः	ईतम्	ईत	याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
(इ) स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र	(इ) स्यते	स्येते	स्यन्ते
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लुट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
(इ) ता	तारौ	तारः	प्र	(इ) ता	तारौ	तारः
तासि	तास्थः	तास्थ	म	तासे	तासाथे	ताध्वे
तास्मि	तास्वः	तास्मः	उ	ताहे	तास्वहे	तास्महे

आशीर्लिङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
(X) यात्	यास्ताम्	यासुः	प्र	(इ) सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
याः	यास्तम्	यास्त	म	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
यासम्	यास्व	यास्म	उ	सीय	सीवहि	सीमहि

लृङ् (धातु से पहले अ लगेगा)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
(इ) स्यत्	स्यताम्	स्यन्	प्र०	(इ) स्यत	स्येताम्	स्यन्त
स्यः	स्यतम्	स्यत	म	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
स्यम्	स्याव	स्याम	उ०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

सूचना—लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में सेट् में स्य से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद-लिट्

अ	अतुः	उः	प्र पु०
(इ)थ	अथुः	अ	म पु
अ	(इ)व	(इ)म	उ पु

लुङ् (१ स्-लोप वाला भेद)

त्	ताम्	उः (अन्)	प्र पु
:	तम्	त	म पु
अम्	व	म	उ पु

(२ अ-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र पु
अः	अतम्	अत	म पु
अम्	आव	आम	उ पु

(३ द्वित्व-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र पु
:	अतम्	अत	म पु
अम्	आव	आम	उ पु

(४ स्-वाला भेद)

ईत्	स्ताम्	सुः	प्र पु०
सीः	स्तम्	स्त	म पु
सम्	स्व	स्म	उ पु

(५ इष्-वाला भेद)

ईत्	इष्टाम्	इषुः	प्र पु
ईः	इष्टम्	इष्ट	म पु
इषम्	इष्व	इष्म	उ पु

(६ सिष्-वाला भेद)

सीत्	सिष्टाम्	सिषुः	प्र पु
सीः	सिष्टम्	सिष्ट	म पु
सिषम्	सिष्व	सिष्म	उ पु

(७ स-वाला भेद)

सत्	सताम्	सन्	प्र पु
सः	सतम्	सत	म पु
सम्	साव	साम	उ० पु

आत्मनेपद-लिट्

ए	आते	इरे
(इ)षे	आथे	(इ)ध्वे
ए	(इ)वहे	(इ)महे

लुङ् (१. स्-लोप वाला भेद)

सूचना—यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता। लुङ् के ७ भेद होते हैं। आगे रूपों में लुङ् के आगे संख्या से इसका निर्देश होगा।

(२ अ-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त
अथाः	एथाम्	अध्वम्
ए	आवहि	आमहि

(३ द्वित्व-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त
अथाः	एथाम्	अध्वम्
ए	आवहि	आमहि

(४ स्-वाला भेद)

स्त	साताम्	सत
स्थाः	साथाम्	ध्वम्
सि	स्वहि	स्महि

(५ इष्-वाला भेद)

इष्ट	इषाताम्	इषत
इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्-इढ्वम्
इषि	इष्वहि	इष्महि

(६ सिष्-वाला भेद)

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता।

(७ स-वाला भेद)

सत	साताम्	सन्त
सथाः	साथाम्	सध्वम्
सि	सावहि	सामहि

(१) भ्वादिगण

(१) भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, अतः इसका नाम भ्वादिगण पड़ा। दसों गणों में यह गण सबसे मुख्य है। सबसे अधिक धातुएँ इसी गण में हैं। चुरादि गण तक धातुपाठ में वर्णित धातुओं की संख्या १९७० है। इनमें से भ्वादिगण की धातुओं की संख्या १०३५ है। अतः ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण धातुपाठ की आधे से अधिक धातुएँ भ्वादिगण में हैं।

(२) भ्वादिगण की *विशेषताएँ* ये हैं—(क) धातु और प्रत्यय के बीच में (कर्तरि शप्) शप् (अ) विकरण लगता है। इसलिए धातु के अन्त में अति, अतः, अन्ति आदि लगेंगे। मूल प्रत्यय ति, तः आदि हैं। (ख) धातु के अन्तिम स्वर इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को तथा उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। अन्त में गुण के ए को अय् और ओ को अव् हो जाता है। जैसे—भू > भवति, जि > जयति, इ > एति, घुष् > घोषति, मुद् > मोदते।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् लकार में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद	लट्			आत्मनेपद	लट्	
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	प्र	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ	एय	एवहि	एमहि

(१) भ्वादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(१) भू (होना) लट् (वर्तमान) (दे. अ. १)				लोट् (आज्ञा अर्थ)		
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र पु	भवतु	भवताम्	भवन्तु
भवसि	भवथः	भवथ	म पु	भव	भवतम्	भवत
भवामि	भवावः	भवामः	उ पु०	भवानि	भवाव	भवाम

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)				विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र०पु	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
अभवः	अभवतम्	अभवत	म पु	भवेः	भवेतम्	भवेत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ०पु	भवेयम्	भवेव	भवेम

लृट् (भविष्यत्)				लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र पु	भविता	भवितारौ	भवितारः
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म पु	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ पु	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)				लृङ् (हेतुहेतुमद् भविष्यत्)		
भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र पु	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म पु	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ पु	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

लिट् (परोक्ष भूत)				लुङ् (१) (सामान्य भूत)		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र पु	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०पु	अभूः	अभूतम्	अभूत
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ पु	अभूवम्	अभूव	अभूम

सूचना—(१) लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धिकार्य भी होगा।

(२) लुङ् के आगे दी हुई संख्याएँ इस बात का निर्देश करती हैं कि पृष्ठ १८९ पर दिए हुए लुङ् के ७ भेदों में से कौनसा भेद यहाँ पर है। जिस भेद का निर्देश हो, उसी भेद के संक्षिप्त रूप पृष्ठ १८५ के अनुसार धातु के अन्त में लगावें। सम्पूर्ण धातुरूप के लिए यह निर्देश स्मरण रखें।

(२) हस् (हँसना) (भू के तुल्य) (दि अ १)

लट्			
हसति	हसतः	हसन्ति	प्र पु
हससि	हसथः	हसथ	म० पु
हसामि	हसावः	हसामः	उ पु
लोट्			
हसतु	हसताम्	हसन्तु	प्र पु
हस	हसतम्	हसत	म पु
हसानि	हसाव	हसाम	उ पु
लङ्			
अहसत्	अहसताम्	अहसन्	प्र पु
अहसः	अहसतम्	अहसत	म पु
अहसम्	अहसाव	अहसाम	उ पु
विधिलिङ्			
हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	प्र पु
हसेः	हसेतम्	हसेत	म पु
हसेयम्	हसेव	हसेम	उ० पु
हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	लृट्
हसिता	हसितारौ	हसितारः	लुट्
हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः	आ लिङ्
अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्	लृङ्
लिट्			
जहास	जहसतुः	जहसुः	प्र पु
जहसिथ	जहसथुः	जहस	म पु
जहास,जहस	जहसिव	जहसिम	उ पु
लुङ् (५)			
अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः	प्र पु
अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट	म पु
अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म	उ पु

(३) पठ् (पढ़ना) (भू के तुल्य) (दि अ १)

लट्		
पठति	पठतः	पठन्ति
पठसि	पठथः	पठथ
पठामि	पठावः	पठामः
लोट्		
पठतु	पठताम्	पठन्तु
पठ	पठतम्	पठत
पठानि	पठाव	पठाम
लङ्		
अपठत्	अपठताम्	अपठन्
अपठः	अपठतम्	अपठत
अपठम्	अपठाव	अपठाम
विधिलिङ्		
पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
पठेः	पठेतम्	पठेत
पठेयम्	पठेव	पठेम
पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
पठिता	पठितारौ	पठितारः
पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
लिट्		
पपाठ	पेठतुः	पेठुः
पेठिथ	पेठथुः	पेठ
पपाठ पपठ	पेठिव	पेठिम
लुङ् (५)		
अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

सूचना—पठ् के लुङ् में अपठीत् आदि भी रूप होते हैं। हस् (लुङ्) के रूप

(४) रक्ष् (रक्षा करना) (भू के तुल्य) (दे० अ० २)

(५) वद् (बोलना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ३)

	लट्				लट्	
रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र० पु०	वदति	वदतः	वदन्ति
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म० पु०	वदसि	वदथः	वदथ
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ० पु०	वदामि	वदावः	वदामः
	लोट्				लोट्	
रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु	प्र० पु०	वदतु	वदताम्	वदन्तु
रक्ष	रक्षतम्	रक्षत	म० पु०	वद	वदतम्	वदत
रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम	उ० पु०	वदानि	वदाव	वदाम
	लङ्				लङ्	
अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	प्र० पु०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	म० पु०	अवदः	अवदतम्	अवदत
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	उ० पु०	अवदम्	अवदाव	अवदाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः	प्र० पु०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत	म० पु०	वदेः	वदेतम्	वदेत
रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम	उ० पु०	वदेयम्	वदेव	वदेम

रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	लृट्	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	लुट्	वदिता	वदितारौ	वदितारः
रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः	आ० लिङ्	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्	लृङ्	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्

	लिट्				लिट्	
ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	प्र० पु०	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	म० पु०	उवादिथ	ऊदथुः	ऊद
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	उ० पु०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः	प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट	म० पु०	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म	उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

(१) गम् (जाना) (भू के तुल्य) (दे० अ० १) | **(७) दृश् (देखना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ४)**

सूचना—लट् आदि में गम् को गच्छ होगा। सूचना—लट् आदि में दृश् को पश्य् होगा।

	लट्				लट्	
गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र पु	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ पु	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
	लोट्				लोट्	
गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र पु	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
गच्छ	गच्छतम्	गच्छत	म पु	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ पु	पश्यानि	पश्याव	पश्याम
	लङ्				लङ्	
अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	प्र पु	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	म पु	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	उ० पु	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र पु	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म पु	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ पु	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	लृट्	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः	लुट्	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	आ० लिङ्	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्	लृङ्	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्

	लिट्				लिट्	
जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	प्र० पु	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
जगमिथ,जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	म पु	ददर्शिथ,दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
जगम,जगाम	जग्मिव	जग्मिम	उ पु	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम
	लुङ् (२)				लुङ् (१), (४)	
अगमत्	अगमताम्	अगमन्	प्र पु	(क)अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
अगमः	अगमतम्	अगमत	म पु	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
अगमम्	अगमाव	अगमाम	उ पु	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम
				(ख)अद्राक्षीत्	अद्राष्टाम्	अद्राक्षुः
				अद्राक्षीः	अद्राष्टम्	अद्राष्ट
				अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म

---

(८) पा (पीना) (भू के तुल्य) (दे.नं.५) (९) स्था (रुकना) (भू के तुल्य)(दे.नं.९)

सूचना—लट् आदि में पा को पिब् होगा। सूचना—लट् आदि में स्था को तिष्ठ् होगा।

लट्				लट्		
पिबति	पिबतः	पिबन्ति	प्र० पु	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
पिबसि	पिबथः	पिबथ	म पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
पिबामि	पिबावः	पिबामः	उ पु	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः
लोट्				लोट्		
पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु	प्र पु	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
पिब	पिबतम्	पिबत	म पु	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
पिबानि	पिबाव	पिबाम	उ पु	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
लङ्				लङ्		
अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	प्र पु	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	म पु	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम	उ पु	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः	प्र पु	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
पिबेः	पिबेतम्	पिबेत	म पु	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
पिबेयम्	पिबेव	पिबेम	उ पु	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

—

पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति	लृट्	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
पाता	पातारौ	पातारः	लुट्	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः	आ० लिङ्	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्	लृङ्	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
लिट्				लिट्		
पपौ	पपतुः	पपुः	प्र पु	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप	म पु	तस्थिथ,तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
पपौ	पपिव	पपिम	उ पु	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम
लुङ् (१)				लुङ् (१)		
अपात्	अपाताम्	अपुः	प्र पु	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
अपाः	अपातम्	अपात	म पु	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
अपाम्	अपाव	अपाम	उ पु	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

—

(दि ग ११)

[सू]चना—घ्रा आदि में घ्रा को जिघ्र् होगा।

(दे ग ५)

सूचना—सद् आदि में सद् को सीद् होगा।

	लट्					लट्	
घ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति	प्र॰ पु॰	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
घ्रसि	जिघ्रथः	जिघ्रथ	म पु॰	सीदसि	सीदथः	सीदथ
घ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः	उ पु	सीदामि	सीदावः	सीदामः
	लोट्				लोट्	
घ्रतु	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु	प्र पु	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
घ्र	जिघ्रतम्	जिघ्रत	म पु	सीद	सीदतम्	सीदत
घ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम	उ पु	सीदानि	सीदाव	सीदाम
	लङ्				लङ्	
जिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्	प्र पु	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
जिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत	म पु	असीदः	असीदतम्	असीदत
जिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम	उ पु	असीदम्	असीदाव	असीदाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
घ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः	प्र पु	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयुः
घ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत	म पु	सीदेः	सीदेतम्	सीदेत
घ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम	उ पु	सीदेयम्	सीदेव	सीदेम
	—				—	
स्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति	लृट्	सत्स्यति	सत्स्यतः	सत्स्यन्ति
ता	घ्रातारौ	घ्रातारः	लुट्	सत्ता	सत्तारौ	सत्तारः
यात्	घ्रेयास्ताम्	घ्रेयासुः	आशीर्लिङ्	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
यात्	घ्रायास्ताम्	घ्रायासुः				
घ्रास्यत्	अघ्रास्यताम्	अघ्रास्यन्	लृङ्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्
	लिट्				लिट्	
घ्रौ	जघ्रतुः	जघ्रुः	प्र पु	ससाद	सेदतुः	सेदुः
घ्रिथ, घ्राथ	जघ्रथुः	जघ्र	म पु	सेदिथ, ससत्थ	सेदथुः	सेद
घ्रौ	जघ्रिव	जघ्रिम	उ पु॰	ससाद ससद	सेदिव	सेदिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (१)	
घ्रात्	अघ्राताम्	अघ्रुः	प्र	असदत्	असदताम्	असदन्
घ्राः	अघ्रातम्	अघ्रात	म	असदः	असदतम्	असदत
घ्राम्	अघ्राव	अघ्राम	उ	असदम्	असदाव	असदाम
	लुङ् (ख) (२)					
घ्रासीत्	अघ्रासिष्टाम्	अघ्रासिषुः				
घ्रासीः	अघ्रासिष्टम्	अघ्रासिष्ट				
घ्रासिषम्	अघ्रासिष्व	अघ्रासिष्म				

(१२) पच् (पकाना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ११) — (१३) नम् (नमस्कार करना) (दे० अ० ११)

	लट्				लट्	
पचति	पचतः	पचन्ति	प्र पु	नमति	नमतः	नमन्ति
पचसि	पचथः	पचथ	म पु	नमसि	नमथः	नमथ
पचामि	पचावः	पचामः	उ पु	नमामि	नमावः	नमामः
	लोट्				लोट्	
पचतु	पचताम्	पचन्तु	प्र पु०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
पच	पचतम्	पचत	म पु	नम	नमतम्	नमत
पचानि	पचाव	पचाम	उ पु	नमानि	नमाव	नमाम
	लङ्				लङ्	
अपचत्	अपचताम्	अपचन्	प्र पु	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
अपचः	अपचतम्	अपचत	म पु	अनमः	अनमतम्	अनमत
अपचम्	अपचाव	अपचाम	उ पु	अनमम्	अनमाव	अनमाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	प्र पु०	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
पचेः	पचेतम्	पचेत	म पु	नमेः	नमेतम्	नमेत
पचेयम्	पचेव	पचेम	उ पु	नमेयम्	नमेव	नमेम
	—				—	
पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	लृट्	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः	लुट्	नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः
पच्यात्	पच्यास्ताम्	पच्यासुः	आ० लिङ्	नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः
अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्	लृङ्	अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्
	लिट्				लिट्	
पपाच	पेचतुः	पेचुः	प्र पु	ननाम	नेमतुः	नेमुः
पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच	म पु	नेमिथ, ननन्थ	नेमथुः	नेम
पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	उ पु	ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम
	लुङ् (४)				लुङ् (६)	
अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः	प्र पु	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त	म पु	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	उ पु	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

(१४) स्मृ (स्मरण करना) (दे॰ अ॰ ११) (१५) जि (जीतना) (दे॰ अ॰ १२)

	लट्				लट्	
स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	प्र॰ पु॰	जयति	जयतः	जयन्ति
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	म॰ पु॰	जयसि	जयथः	जयथ
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	उ॰ पु॰	जयामि	जयावः	जयामः
	लोट्				लोट्	
स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु	प्र॰ पु॰	जयतु	जयताम्	जयन्तु
स्मर	स्मरतम्	स्मरत	म॰ पु॰	जय	जयतम्	जयत
स्मराणि	स्मराव	स्मराम	उ॰ पु॰	जयानि	जयाव	जयाम
	लङ्				लङ्	
अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	प्र॰ पु॰	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	म॰ पु॰	अजयः	अजयतम्	अजयत
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	उ॰ पु॰	अजयम्	अजयाव	अजयाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	प्र॰ पु॰	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	म॰ पु॰	जयेः	जयेतम्	जयेत
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	उ॰ पु॰	जयेयम्	जयेव	जयेम
स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	लृट्	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः	लुट्	जेता	जेतारौ	जेतारः
स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः	आ॰ लिङ्	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्	लृङ्	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
	लिट्				लिट्	
सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः	प्र॰ पु॰	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर	म॰ पु॰	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम	उ॰ पु॰	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः	प्र॰ पु॰	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट	म॰ पु॰	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म	उ॰ पु॰	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

(१६) श्रु (सुनना) (दे. अ. २०) | (१७) कृष् (जोतना) (दे. अ. १४)

	लट् (श्रु को शृ)				लट्	
शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र पु०	कर्षति	कर्षतः	कर्षन्ति
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म पु	कर्षसि	कर्षथः	कर्षथ
शृणोमि	शृणुवः,-ण्वः	शृणुमः-ण्मः	उ पु	कर्षामि	कर्षावः	कर्षामः
	लोट्				लोट्	
शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र पु	कर्षतु	कर्षताम्	कर्षन्तु
शृणु	शृणुतम्	शृणुत	म पु०	कर्ष	कर्षतम्	कर्षत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ०पु	कर्षाणि	कर्षाव	कर्षाम
	लङ्				लङ्	
अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र पु	अकर्षत्	अकर्षताम्	अकर्षन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म पु	अकर्षः	अकर्षतम्	अकर्षत
अशृणवम्	अशृणुव,-ण्व	अशृणुम,-ण्म	उ पु	अकर्षम्	अकर्षाव	अकर्षाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	प्र पु	कर्षेत्	कर्षेताम्	कर्षेयुः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	म पु	कर्षेः	कर्षेतम्	कर्षेत
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	उ०पु	कर्षेयम्	कर्षेव	कर्षेम
—					—	
श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	लृट्	क्रक्ष्यति / कर्क्ष्यति	क्रक्ष्यतः / कर्क्ष्यतः	क्रक्ष्यन्ति / कर्क्ष्यन्ति
श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः	लुट्	क्रष्टा	कर्ष्टा	(दोनों प्रकार से)
श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः	आ लिङ्	कृष्यात्	कृष्यास्ताम्	कृष्यासुः
अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्	लृङ्	अक्रक्ष्यत्,	अकर्क्ष्यत्	(दोनोंप्रकारसे)
	लिट्				लिट्	
शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	प्र पु	चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	म पु	चकर्षिथ	चकृषथुः	चकृष
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम	उ पु	चकर्ष	चकृषिव	चकृषिम
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	प्र पु	अकार्क्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्क्षुः
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट	म पु	अकार्क्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म	उ पु	अकार्क्षम्	अकार्क्ष्व	अकार्क्ष्म

सूचना—लट् आदि में श्रु को शृ होगा। सूचना—लुङ् में अकृक्षत् और अक्राक्षीत् भी रूप बनेंगे। स्पृश् (७) के लुङ् के तुल्य रूप चलावें।

(१८) वस (रहना) (दे० अ० १४) (१९) त्यज (छोड़ना) (दे० अ० १५)

वस				त्यज		
लट्				**लट्**		
वसति	वसतः	वसन्ति	प्र पु	त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
वससि	वसथः	वसथ	म पु	त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
वसामि	वसावः	वसामः	उ पु	त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः
लोट्				**लोट्**		
वसतु	वसताम्	वसन्तु	प्र पु	त्यजतु	त्यजताम्	त्यजन्तु
वस	वसतम्	वसत	म पु	त्यज	त्यजतम्	त्यजत
वसानि	वसाव	वसाम	उ पु	त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम
लङ्				**लङ्**		
अवसत्	अवसताम्	अवसन्	प्र पु	अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्
अवसः	अवसतम्	अवसत	म पु	अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत
अवसम्	अवसाव	अवसाम	उ पु	अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
वसेत्	वसेताम्	वसेयुः	प्र पु	त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः
वसेः	वसेतम्	वसेत	म पु	त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत
वसेयम्	वसेव	वसेम	उ पु	त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम
वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति	लृट्	त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति
वस्ता	वस्तारौ	वस्तारः	लुट्	त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः
उष्यात्	उष्यास्ताम्	उष्यासुः	आ लिङ्	त्यज्यात्	त्यज्यास्ताम्	त्यज्यासुः
अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्	लृङ्	अत्यक्ष्यत्	अत्यक्ष्यताम्	अत्यक्ष्यन्
लिट्				**लिट्**		
उवास	ऊषतुः	ऊषुः	प्र पु	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष	म पु	तत्यजिथ तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम	उ पु	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम
लुङ् (४)				**लुङ् (४)**		
अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः	प्र पु	अत्याक्षीत्	अत्याक्ताम्	अत्याक्षुः
अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त	म पु	अत्याक्षीः	अत्याक्तम्	अत्याक्त
अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म	उ पु	अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

भ्वादिगण (आत्मनेपदी धातुएँ)

(२०) सेव् (सेवा करना) (दे अ ६)

लट्				लोट्		
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	प्र० पु	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	म० पु	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	उ पु	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ्				विधिलिङ्		
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	प्र पु	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	म पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	उ पु	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लृट्				लुट्		
सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	प्र पु	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे	म पु	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे	उ पु	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	प्र	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	म	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	उ	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

लिट्				लुङ् (५)		
सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	प्र पु	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे	म पु	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम्
सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे	उ पु	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

सूचना—लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धि-कार्य भी होगा।

(२१) लभ् (पाना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० १) | (२२) वृध् (बढ़ना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ७)

लट्				लट्		
लभते	लभेते	लभन्ते	प्र० पु०	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
लभसे	लभेथे	लभध्वे	म० पु०	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
लभे	लभावहे	लभामहे	उ० पु०	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे
लोट्				**लोट्**		
लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्	प्र० पु०	वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्
लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्	म० पु०	वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्
लभै	लभावहै	लभामहै	उ० पु०	वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै
लङ्				**लङ्**		
अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	प्र० पु०	अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त
अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्	म० पु०	अवर्धथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	उ० पु०	अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्	प्र० पु०	वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्
लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्	म० पु०	वर्धेथाः	वर्धेयाथाम्	वर्धेध्वम्
लभेय	लभेवहि	लभेमहि	उ० पु०	वर्धेय	वर्धेवहि	वर्धेमहि

लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	लृट्	वर्धिष्यते,	वर्त्स्यति	(दोनों प्रकार से)
लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः	लुट्	वर्धिता	वर्धितारौ	वर्धितारः
लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्	आ० लिङ्	वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त	लृङ्	अवर्धिष्यत	अवर्त्स्यत्	(दोनों प्रकार से)

लिट्				लिट्		
लेभे	लेभाते	लेभिरे	प्र० पु०	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे	म० पु०	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे	उ० पु०	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे
लुङ् (४)				**लुङ् (क) (१)**		
अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत	प्र०	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्	म०	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिढ्वम्
अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि	उ०	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि

लुङ् (ख) (२)

अवृधत्	अवृधताम्	अवृधन्
अवृधः	अवृधतम्	अवृधत
अवृधम्	अवृधाव	अवृधाम

(२३) मुद् (प्रसन्न होना) (सेव् के तुल्य) (देखो भ १)

(२४) सह् (सहना) (सेव् के तुल्य) (देखो भ १)

मुद्					सह्		
	लट्					लट्	
मोदते	मोदेते	मोदन्ते	प्र	पु	सहते	सहेते	सहन्ते
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	म	पु	सहसे	सहेथे	सहध्वे
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	उ	पु	सहे	सहावहे	सहामहे
	लोट्					लोट्	
मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्	प्र	पु	सहताम्	सहेताम्	सहन्ताम्
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्	म	पु	सहस्व	सहेथाम्	सहध्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै	उ	पु	सहै	सहावहै	सहामहै
	लङ्					लङ्	
अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	प्र	पु	असहत	असहेताम्	असहन्त
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	म	पु	असहथाः	असहेथाम्	असहध्वम्
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	उ	पु	असहे	असहावहि	असहामहि
	विधिलिङ्					विधिलिङ्	
मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	प्र		सहेत	सहेयाताम्	सहेरन्
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्	म		सहेथाः	सहेयाथाम्	सहेध्वम्
मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि	उ		सहेय	सहेवहि	सहेमहि
	—					—	
मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	लृट्		सहिष्यते	सहिष्येते	सहिष्यन्ते
मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः	लुट्		सहिता / सोढा	सहितारौ / सोढारौ	सहितारः / सोढारः
मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्	आ लिङ्		सहिषीष्ट	सहिषीयास्ताम्	
अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त	लृङ्		असहिष्यत	असहिष्येताम्	
	लिट्					लिट्	
मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	प्र		सेहे	सेहाते	सेहिरे
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	म		सेहिषे	सेहाथे	सेहिध्वे
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	उ		सेहे	सेहिवहे	सेहिमहे
	लुङ् (५)					लुङ् (५)	
अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत	प्र		असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिढ्वम्	म		असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिढ्वम्
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि	उ		असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

(२५) वृत् (होना) (सेव् के तुल्य) (देखो सं० १) | (२६) ईक्ष् (देखना) (सेव् के तुल्य) (देखो सं० ७)

	लट्				लट्	
वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते	प्र०	ईक्षते	ईक्षेते	ईक्षन्ते
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे	म०	ईक्षसे	ईक्षेथे	ईक्षध्वे
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे	उ०	ईक्षे	ईक्षावहे	ईक्षामहे
	लोट्				लोट्	
वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्	प्र	ईक्षताम्	ईक्षेताम्	ईक्षन्ताम्
वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्	म०	ईक्षस्व	ईक्षेथाम्	ईक्षध्वम्
वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै	उ	ईक्षै	ईक्षावहै	ईक्षामहै
	लङ्				लङ्	
अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	प्र	ऐक्षत	ऐक्षेताम्	ऐक्षन्त
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	म०	ऐक्षथाः	ऐक्षेथाम्	ऐक्षध्वम्
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	उ	ऐक्षे	ऐक्षावहि	ऐक्षामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्	प्र	ईक्षेत	ईक्षेयाताम्	ईक्षेरन्
वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्	म०	ईक्षेथाः	ईक्षेयाथाम्	ईक्षेध्वम्
वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि	उ०	ईक्षेय	ईक्षेवहि	ईक्षेमहि

वर्तिष्यते, वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)		लृट्	ईक्षिष्यते	ईक्षिष्येते	ईक्षिष्यन्ते
वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः लुट्	ईक्षिता	ईक्षितारौ	ईक्षितारः
वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्०	आ० लिङ्	ईक्षिषीष्ट	ईक्षिषीयास्ताम्	
अवर्तिष्यत, अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)		लृङ्	ऐक्षिष्यत	ऐक्षिष्येताम्	

	लिट्				लिट्	
ववृते	ववृताते	ववृतिरे	प्र	ईक्षांचक्रे	ईक्षांचक्राते	ईक्षांचक्रिरे
ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे	म	ईक्षांचकृषे	ईक्षांचक्राथे	ईक्षांचकृढ्वे
ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे	उ	ईक्षांचक्रे	ईक्षांचकृवहे	ईक्षांचकृमहे
	लुङ् (क) (५)				लुङ् (५)	
अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत	प्र	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिषाताम्	ऐक्षिषत
अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिढ्वम्	म	ऐक्षिष्ठाः	ऐक्षिषाथाम्	ऐक्षिढ्वम्
अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि	उ	ऐक्षिषि	ऐक्षिष्वहि	ऐक्षिष्महि
	लुङ् (ख) (२)					
अवृतत्	अवृतताम्	अवृतन्	प्र			
अवृतः	अवृततम्	अवृतत	म			
अवृतम्	अवृताव	अवृताम	उ			

भ्वादिगण (उभयपदी धातुएँ)

(२७) नी (ले जाना) परस्मैपद | आत्मनेपद (दे. म १८)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
नयति	नयतः	नयन्ति	प्र	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयावः	नयामः	उ	नये	नयावहे	नयामहे
	लोट्				लोट्	
नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय	नयतम्	नयत	म	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	नयै	नयावहै	नयामहै
	लङ्				लङ्	
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ	अनये	अनयावहि	अनयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नयेत्	नयेताम्	नयेयुः	प्र	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ	नयेय	नयेवहि	नयेमहि
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	लृट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः	आ लिङ्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
	लिट्				लिट्	
निनाय	निन्यतुः	निन्युः	प्र	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
निनयिथ,निनेथ	निन्यथुः	निन्य	म	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम	उ	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः	प्र	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट	म	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म	उ	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२८) हृ (हरना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे. नि. १९)

	लट्				लट्	
हरति	हरतः	हरन्ति	प्र	हरते	हरेते	हरन्ते
हरसि	हरथः	हरथ	म	हरसे	हरेथे	हरध्वे
हरामि	हरावः	हरामः	उ०	हरे	हरावहे	हरामहे

	लोट्				लोट्	
हरतु	हरताम्	हरन्तु	प्र०	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
हर	हरतम्	हरत	म	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
हराणि	हराव	हराम	उ	हरै	हरावहै	हरामहै

	लङ्				लङ्	
अहरत्	अहरताम्	अहरन्	प्र	अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
अहरः	अहरतम्	अहरत	म	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
अहरम्	अहराव	अहराम	उ०	अहरे	अहरावहि	अहरामहि

	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	प्र	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
हरेः	हरेतम्	हरेत	म	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
हरेयम्	हरेव	हरेम	उ	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	लृट्	हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः	लुट्	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
ह्रियात्	ह्रियास्ताम्	ह्रियासुः	आ० लिङ्	हृषीष्ट	हृषीयास्ताम्	हृषीरन्
अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्	लृङ्	अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त

	लिट्				लिट्	
जहार	जह्रतुः	जह्रुः	प्र०	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	म०	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिध्वे
जहार,जहर	जह्रिव	जह्रिम	उ	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः	प्र	अहृत	अहृषाताम्	अहृषत
अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट	म	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्
अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म	उ०	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि

(२९) याच् (माँगना) परस्मैपद आत्मनेपद (२ व १६)

लट्				लट्		
याचति	याचतः	याचन्ति	प्र०	याचते	याचेते	याचन्ते
याचसि	याचथः	याचथ	म	याचसे	याचेथे	याचध्वे
याचामि	याचावः	याचामः	उ०	याचे	याचावहे	याचामहे

लोट्				लोट्		
याचतु	याचताम्	याचन्तु	प्र०	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
याच	याचतम्	याचत	म०	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
याचानि	याचाव	याचाम	उ०	याचै	याचावहै	याचामहै

लङ्				लङ्		
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	प्र	अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	म	अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	उ	अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	प्र०	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
याचेः	याचेतम्	याचेत	म	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
याचेयम्	याचेव	याचेम	उ०	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	लृट्	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
याचिता	याचितारौ	याचितारः	लुट्	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः	आ० लिङ्	याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्	
अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्		लृङ्	अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्	

लिट्				लिट्		
ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	प्र	ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे
ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच	म०	ययाचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे
ययाच	ययाचिव	ययाचिम	उ०	ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे

लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः	प्र	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट	म	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिढ्वम्
अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म	उ	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि

(१०) वह् (ढोना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे. अ १०)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				**लट्**		
वहति	वहतः	वहन्ति	प्र	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म	वहसे	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ	वहे	वहावहे	वहामहे
लोट्				**लोट्**		
वहतु	वहताम्	वहन्तु	प्र	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ	वहै	वहावहै	वहामहै
लङ्				**लङ्**		
अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ	अवहे	अवहावहि	अवहामहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेत	म	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ	वहेय	वहेवहि	वहेमहि
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	आ. लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
लिट्				**लिट्**		
उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	प्र	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
उवहिथ, उवोढ	ऊहथुः	ऊह	म०	ऊहिषे	ऊहाथे	ऊहिध्वे
उवाह, उवह	ऊहिव	ऊहिम	उ	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे
लुङ् (४)				**लुङ् (४)**		
अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् (इ-वाली) धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगता है, अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं. रूप)				आत्मनेपद (सं. रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अन्ति	प्र	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	अन्	प्र	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

(३०) वह् (ढोना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे. म. १०)

लट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
वहति	वहतः	वहन्ति	प्र	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म	वहसे	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ	वहे	वहावहे	वहामहे

लोट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
वहतु	वहताम्	वहन्तु	प्र	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ	वहै	वहावहै	वहामहै

लङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ	अवहे	अवहावहि	अवहामहि

विधिलिङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेत	म	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ	वहेय	वहेवहि	वहेमहि

—

परस्मैपद				आत्मनेपद		
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	आ. लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

लिट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	प्र	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
उवहिथ, उवोढ	ऊहथुः	ऊह	म	ऊहिषे	ऊहाथे	ऊहिध्वे
उवाह, उवह	ऊहिव	ऊहिम	उ	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे

लुङ् (४)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् (इ-वाली) धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगता है, अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अन्ति	प्र	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	अन्	प्र	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

अदादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(६१) अद् (खाना) (दे० अ० २१)

लट्				लोट्		
अत्ति	अत्तः	अदन्ति	प्र०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
अद्मि	अद्वः	अद्मः	उ०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्				विधिलिङ्		
आदत्	आत्ताम्	आदन्	प्र०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट्				लुट्		
अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

आशीर्लिङ्				लृङ्		
अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः	प्र०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त	म०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म	उ०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

लिट् (क)				लुङ् (१) (अद् को घस्)		
आद	आदतुः	आदुः	प्र०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
आदिथ	आदथुः	आद	म०	अघसः	अघसतम्	अघसत
आद	आदिव	आदिम	उ०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

लिट् (ख) (अद् को घस्)			
जघास	जक्षतुः	जक्षुः	प्र०
जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष	म०
जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम	उ०

(३२) अस् (होना) (दे. अ. २४) (३३) इ (जाना) (दे. अ. १०)

सूचना—लिट्, लुङ् आदि में अस् को भू होगा। सूचना—इ को लुङ् में गा होगा।

लट्				लट्		
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	एति	इतः	यन्ति
असि	स्थः	स्थ	म०	एषि	इथः	इथ
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	एमि	इवः	इमः
लोट्				**लोट्**		
अस्तु	स्ताम्	सन्तु	प्र०	एतु	इताम्	यन्तु
एधि	स्तम्	स्त	म०	इहि	इतम्	इत
असानि	असाव	असाम	उ०	अयानि	अयाव	अयाम
लङ्				**लङ्**		
आसीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
आसीः	आस्तम्	आस्त	म०	ऐः	ऐतम्	ऐत
आसम्	आस्व	आस्म	उ०	आयम्	ऐव	ऐम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	इयात्	इयाताम्	इयुः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	इयाः	इयातम्	इयात
स्याम्	स्याव	स्याम	उ०	इयाम्	इयाव	इयाम

भविष्यति	भविष्यतः (भू के तुल्य)	लृट्	एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
भविता	भवितारौ (,,)	लुट्	एता	एतारौ	एतारः
भूयात्	भूयास्ताम् (,,)	आ० लिङ्	ईयात्	ईयास्ताम्	ईयासुः
अभविष्यत्	अभविष्यताम् (,,)	लृङ्	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्

लिट् (भू के तुल्य)				लिट्		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम
लुङ् (१) (भू के तुल्य)				**लुङ् (१) (इ को गा)**		
अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अगात्	अगाताम्	अगुः
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अगाः	अगातम्	अगात
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अगाम्	अगाव	अगाम

(२४) रुद् (रोना) (दे० अ० २८) (२५) स्वप् (सोना) (दे० अ० २८)

	लट्				लट्	
रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	उ०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः
	लोट्				लोट्	
रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम
	लङ्				लङ्	
अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र०	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	म०	अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

—

रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति	लृट्	स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति
रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः	लुट्	स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	आ० लिङ्	सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः
अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्		लृङ्	अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्	

	लिट्				लिट्	
रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः	प्र०	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद	म०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम	उ०	सुष्वाप सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम
	लुङ् (क) (२)				लुङ् (४)	
अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्	प्र०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
अरुदः	अरुदतम्	अरुदत	म०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम	उ०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

—

लुङ् (ख) (५)

अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	प्र०
अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	म०
अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म	उ०

(३६) दुह् (दुहना) (दे० अ० २७) (३७) लिह् (चाटना) (दे० अ० २७)

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं। सूचना—केवल परस्मै० के रूप दिए हैं।

	लट्				लट्	
दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	प्र	लेढि	लीढः	लिहन्ति
धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	म	लेक्षि	लीढः	लीढ
दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः	उ	लेह्मि	लिह्वः	लिह्मः
	लोट्				लोट्	
दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	प्र	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	म	लीढि	लीढम्	लीढ
दोहानि	दोहाव	दोहाम	उ	लेहानि	लेहाव	लेहाम
	लङ्				लङ्	
अधोक्,-ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र	अलेट् -ड्	अलीढाम्	अलिहन्
अधोक् -ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म	—	अलीढम्	अलीढ
अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म	उ	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दुह्यात्	दुह्याताम्	दुह्युः	प्र	लिह्यात्	लिह्याताम्	लिह्युः
दुह्याः	दुह्यातम्	दुह्यात	म	लिह्याः	लिह्यातम्	लिह्यात
दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	उ	लिह्याम्	लिह्याव	लिह्याम
धोक्ष्यति	धोक्ष्यतः	धोक्ष्यन्ति	लृट्	लेक्ष्यति	लेक्ष्यतः	लेक्ष्यन्ति
दोग्धा	दोग्धारौ	दोग्धारः	लुट्	लेढा	लेढारौ	लेढारः
दुह्यात्	दुह्यास्ताम्	दुह्यासुः	आ० लिङ्	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्यासुः
अधोक्ष्यत्	अधोक्ष्यताम्	अधोक्ष्यन्	लृङ्	अलेक्ष्यत्	अलेक्ष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
दुदोह	दुदुहतुः	दुदुहुः	प्र०	लिलेह	लिलिहतुः	लिलिहुः
दुदोहिथ	दुदुहथुः	दुदुह	म	लिलेहिथ	लिलिहथुः	लिलिह
दुदोह	दुदुहिव	दुदुहिम	उ	लिलेह	लिलिहिव	लिलिहिम
	लुङ् (७)				लुङ् (७)	
अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्	प्र	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्
अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत	म	अलिक्षः	अलिक्षतम्	अलिक्षत
अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम	उ	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम

(२८) हन् (मारना) (प० अ २१) (२९) स्तु (स्तुति करना) (प० अ २१)

	लट्				लट्	
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	प्र	स्तौति, स्तवीति	स्तुतः	स्तुवन्ति
हंसि	हथः	हथ	म	स्तौषि स्तवीषि स्तुथः		स्तुथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः	उ	स्तौमि स्तवीमि स्तुवः		स्तुमः
	लोट्				लोट्	
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	प्र	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु
जहि	हतम्	हत	म	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
हनानि	हनाव	हनाम	उ	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम
	लङ्				लङ्	
अहन्	अहताम्	अघ्नन्	प्र	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवः
अहन्	अहतम्	अहत	म	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्	अस्तुत
अहनम्	अहन्व	अहन्म	उ०	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	प्र	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात	म	स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	उ	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम
—					—	
हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति	लृट्	स्तोष्यति	स्तोष्यतः	स्तोष्यन्ति
हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः	लुट्	स्तोता	स्तोतारौ	स्तोतारः
वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः	आ लिङ्	स्तूयात्	स्तूयास्ताम्	स्तूयासुः
अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्		लृङ्	अस्तोष्यत्	अस्तोष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
जघान,	जघ्नतुः	जघ्नुः	प्र	तुष्टाव	तुष्टुवतुः	तुष्टुवुः
जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न	म	तुष्टोथ	तुष्टुवथुः	तुष्टुव
जघान जघन	जघ्निव	जघ्निम	उ	तुष्टाव तुष्टव तुष्टुव		तुष्टुम
	लुङ् (५) (हन् को वध)				लुङ् (५)	
अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः	प्र	अस्तावीत्	अस्ताविष्टाम्	अस्ताविषुः
अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट	प्र०	अस्तावीः	अस्ताविष्टम्	अस्ताविष्ट
अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म	उ	अस्ताविषम्	अस्ताविष्व	अस्ताविष्म
—					—	

(४०) या (जाना) (दे॰ अ॰ २६) (४१) पा (रक्षा करना) (दे॰ अ॰ २६)

	लट्				लट्	
याति	यातः	यान्ति	प्र	पाति	पातः	पान्ति
यासि	याथः	याथ	म	पासि	पाथः	पाथ
यामि	यावः	यामः	उ	पामि	पावः	पामः
	लोट्				लोट्	
यातु	याताम्	यान्तु	प्र	पातु	पाताम्	पान्तु
याहि	यातम्	यात	म	पाहि	पातम्	पात
यानि	याव	याम	उ	पानि	पाव	पाम
	लङ्				लङ्	
अयात्	अयाताम्	अयुः, अयान्	प्र	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
अयाः	अयातम्	अयात	म	अपाः	अपातम्	अपात
अयाम्	अयाव	अयाम	उ	अपाम्	अपाव	अपाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यायात्	यायाताम्	यायुः	प्र	पायात्	पायाताम्	पायुः
यायाः	यायातम्	यायात	म	पायाः	पायातम्	पायात
यायाम्	यायाव	यायाम	उ	पायाम्	पायाव	पायाम

यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति	लृट्	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
याता	यातारौ	यातारः	लुट्	पाता	पातारौ	पातारः
यायात्	यायास्ताम्	यायासुः	आ॰लिङ्	पायात्	पायास्ताम्	पायासुः
अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्	लृङ्	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्

	लिट्				लिट्	
ययौ	ययतुः	ययुः	प्र	पपौ	पपतुः	पपुः
ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय	म	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
ययौ	ययिव	ययिम	उ	पपौ	पपिव	पपिम
	लुङ् (१)				लुङ् (१)	
अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः	प्र	अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः
अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट	म	अपासीः	अपासिष्टम्	अपासिष्ट
अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म	उ	अपासिषम्	अपासिष्व	अपासिष्म

(४२) शास् (शिक्षा देना) (दे. श. २१) (४३) विद् (जानना) (दे. श. २)

	लट्				लट्	
शास्ति	शिष्टः	शासति	प्र०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	म०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	उ०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः
	लोट्				लोट्	
शास्तु	शिष्टाम्	शासतु	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	म०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
शासानि	शासाव	शासाम	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम
	लङ्				लङ्	
अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट	म०	अवेः, अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
अशासम्	अशिष्व	अशिष्म	उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः	प्र०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात	म०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम	उ०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम
शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति	लृट्	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति
शासिता	शासितारौ	शासितारः	लुट्	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः	आ० लिङ्	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः
अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्		लृङ्	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
शशास	शशासतुः	शशासुः	प्र०	विवेद	विविदतुः	विविदुः
शशासिथ	शशासथुः	शशास	म०	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
शशास	शशासिव	शशासिम	उ०	विवेद	विविदिव	विविदिम
	लुङ् (२)				लुङ् (५)	
अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्	प्र०	अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अशिषः	अशिषतम्	अशिषत	म०	अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम	उ०	अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म

सूचना—(१) लट् में वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद, वेद विद्व विद्म भी रूप होते हैं।
(२) लिट् और लोट् में विदाम्+कृ अर्थात् विदाञ्चकार और विदाङ्करोतु आदि भी होते हैं।

अदादिगण—आत्मनेपदी धातुएँ

(७४) आस् (बैठना) (दे अ ११)

	लट्				लोट्	
आस्ते	आसाते	आसते	प्र	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
आस्से	आसाथे	आध्वे	म	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
आसे	आस्वहे	आस्महे	उ	आसै	आसावहै	आसामहै
	—				—	
	लङ्				**विधिलिङ्**	
आस्त	आसाताम्	आसत	प्र	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्	म	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि	उ	आसीय	आसीवहि	आसीमहि
	—				—	
	लृट्				**लुट्**	
आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते	प्र	आसिता	आसितारौ	आसितारः
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे	म०	आसितासे	आसितासाथे	आसिताध्वे
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे	उ०	आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे
	—				—	
	आशीर्लिङ्				**लृङ्**	
आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्	प्र	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्	म	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि	उ	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि
	—				—	
	लिट् (आसां + कृ)				**लुङ् (५)**	
आसांचक्रे	आसांचक्राते	आसांचक्रिरे	प्र	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे	म	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिध्वम्
—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे	उ	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि
	—				—	

(४५) शी (सोना) (दे० अ० २१) (४६) अधि + इ (पढ़ना) (दे० अ० १२)

	लट्				लट्	
शेते	शयाते	शेरते	प्र०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
शये	शेवहे	शेमहे	उ०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

	लोट्				लोट्	
शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
शयै	शयावहै	शयामहै	उ०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

	लङ्				लङ्	
अशेत	अशयाताम्	अशेरत	प्र०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	म०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

—

शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	लृट्	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
शयिता	शयितारौ	शयितारः	लुट्	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्		आ० लिङ्	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	
अशयिष्यत	अशयिष्येताम्		लृङ्	अध्यैष्यत	अध्यगीष्यत (दोनों प्रकार से)	

	लिट्				लिट् (इ को गा)	
शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	प्र०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे	म०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे	उ०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

	लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)	
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत	प्र०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्	म०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि	उ०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

—

लुङ् (ख) (४) (इ को गा)

अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

(४७) ब्रू (कहना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे० अ० २५)

सूचना—लृट् आदि में ब्रू को वच् होगा। सूचना—लृट् आदि में ब्रू को वच्।

	लट्				लट्	
ब्रवीति / आह	ब्रूतः / आहतुः	ब्रुवन्ति / आहुः	प्र	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि / आत्थ	ब्रूथः / आहथुः	ब्रूथ	म	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	उ	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे
	लोट्				लोट्	
ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	प्र	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	म	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	उ	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै
	लङ्				लङ्	
अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	प्र	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	म	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	उ	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	प्र	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	म	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	उ	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि
	—				—	
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः	लुट्	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः	आ० लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
	लिट्				लिट्	
उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	प्र	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
उवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच	म०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम	उ०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे
	लुङ् (१)				लुङ् (१)	
अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	प्र	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
अवोचः	अवोचतम्	अवोचत	म	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम	उ०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

(३) जुहोत्यादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है, उसका रूप जुहोति आदि होता है, अतः गण का नाम जुहोत्यादिगण पड़ा। जुहोत्यादिगण में भी अदादिगण के तुल्य धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई विकरण नहीं लगता है। (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, श्लौ) उक्त लकारों में धातु को द्वित्व होता है अर्थात् धातु को दो बार पढ़ा जाता है और द्वित्व के प्रथम भाग में कुछ परिवर्तन भी होता है। उक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में २४ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अति	प्र	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अतु	प्र	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	उः	प्र	त	आताम्	अत
ः	तम्	त	म	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ	ईय	ईवहि	ईमहि

(४८) हु (हवन करना) (दे० भ० ११) परस्मैपदी — (४९) भी (डरना) (दे० भ० ११) परस्मैपदी

लट्

जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः

लोट्

जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

लङ्

अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम

विधिलिङ्

जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	लृट्	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
होता	होतारौ	होतारः	लुट्	भेता	भेतारौ	भेतारः
हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः	आ० लिङ्	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्	लृङ्	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्

लिट् (क)

जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः	प्र	बिभाय	बिभ्यतुः	बिभ्युः
जुहविथ जुहोथ	जुहुवथुः	जुहुव	म	बिभयिथ,बिभेथ	बिभ्यथुः	बिभ्य
जुहाव जुहव	जुहुविव	जुहुविम	उ	बिभाय बिभय	बिभ्यिव	बिभ्यिम

लिट् (ख) (जुहवां + कृ) — (बिभयां+कृ)

जुहवांचकार	-चक्रतुः	-चक्रुः	प्र	बिभयांचकार	-चक्रतुः	-चक्रुः
-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र	म	-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र
-चकार,चकर	-चकृव	-चकृम	उ	-चकार,चकर	-चकृव	-चकृम

लुङ् (४)

अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः	प्र	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट	म	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म	उ	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

(५०) हा (छोड़ना) (दे० अ० १४) — परस्मैपदी

(५१) ह्री (लज्जित होना) (दे० अ० १४) — परस्मैपदी

	लट्				लट्	
जहाति	जहीतः	जहति	प्र	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
जहासि	जहीथः	जहीथ	म	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
जहामि	जहीवः	जहीमः	उ	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः
	लोट्				लोट्	
जहातु	जहीताम्	जहतु	प्र०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
जहाहि,जहीहि	जहीतम्	जहीत	म०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
जहानि	जहाव	जहाम	उ	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम
	लङ्				लङ्	
अजहात्	अजहीताम्	अजहुः	प्र	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयुः
अजहाः	अजहीतम्	अजहीत	म	अजिह्रेः	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
अजहाम्	अजहीव	अजहीम	उ	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः	प्र	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम्	जिह्रीयुः
जह्याः	जह्यातम्	जह्यात	म	जिह्रीयाः	जिह्रीयातम्	जिह्रीयात
जह्याम्	जह्याव	जह्याम	उ	जिह्रीयाम्	जिह्रीयाव	जिह्रीयाम
हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति	लृट्	ह्रेष्यति	ह्रेष्यतः	ह्रेष्यन्ति
हाता	हातारौ	हातारः	लुट्	ह्रेता	ह्रेतारौ	ह्रेतारः
हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः	आ लिङ्	ह्रीयात्	ह्रीयास्ताम्	ह्रीयासुः
अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्	लृङ्	अह्रेष्यत्	अह्रेष्यताम्	अह्रेष्यन्
	लिट्				लिट्	
जहौ	जहतुः	जहुः	प्र	जिह्राय	जिह्रियतुः	जिह्रियुः
जहिथ,जहाथ	जहथुः	जह	म	जिह्रयिथ,जिह्रेथ	जिह्रियथुः	जिह्रिय
जहौ	जहिव	जहिम	उ	जिह्राय,जिह्रय	जिह्रियिव	जिह्रियिम
	लुङ् (६)				लुङ् (४)	
अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः	प्र	अह्रैषीत्	अह्रैष्टाम्	अह्रैषुः
अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट	म	अह्रैषीः	अह्रैष्टम्	अह्रैष्ट
अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म	उ	अह्रैषम्	अह्रैष्व	अह्रैष्म

सूचना—ह्री के लिट् में जिह्रयां+कृ अर्थात् जिह्रयांचकार आदि भी रूप होते हैं।

(५२) भृ(पालन करना) (उ०प० १५) (५३) मा(तोलना, मापना) (आ० प० १५)

उभयपदी				आत्मनेपदी		

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं।

	लट्				लट्	
बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	प्र	मिमीते	मिमाते	मिमते
बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	म०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	उ०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे
	लोट्				लोट्	
बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	प्र	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	म	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
बिभराणि	बिभराव	बिभराम	उ०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै
	लङ्				लङ्	
अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	प्र०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	म०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	उ०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	प्र	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	म	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	उ	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि
	—				—	
भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति	लृट्	मास्यते	मास्येते	मास्यन्ते
भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः	लुट्	माता	मातारौ	मातारः
भ्रियात्	भ्रियास्ताम्	भ्रियासुः आ	लिङ्	मासीष्ट	मासीयास्ताम्	मासीरन्
अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्	लृङ्	अमास्यत	अमास्येताम्	अमास्यन्त
	लिट्				लिट्	
बभार	बभ्रतुः	बभ्रुः	प्र	ममे	ममाते	ममिरे
बभर्थ	बभ्रथुः	बभ्र	म	ममिषे	ममाथे	ममिध्वे
बभार,बभर	बभृव	बभृम	उ०	ममे	ममिवहे	ममिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः	प्र	अमास्त	अमासाताम्	अमासत
अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट	म	अमास्थाः	अमासाथाम्	अमाध्वम्
अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म	उ०	अमासि	अमास्वहि	अमास्महि

सूचना—लिट् में बिभरां+कृ अर्थात्
बिभरांचकार आदि भी रूप बनेंगे।

—

(५७) दा (देना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे. अ १६)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				**लट्**		
ददाति	दत्तः	ददति	प्र	दत्ते	ददाते	ददते
ददासि	दत्थः	दत्थ	म	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ	ददे	दद्वहे	दद्महे
लोट्				**लोट्**		
ददातु	दत्ताम्	ददतु	प्र	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
देहि	दत्तम्	दत्त	म	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
ददानि	ददाव	ददाम	उ	ददै	ददावहै	ददामहै
लङ्				**लङ्**		
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र	अदत्त	अददाताम्	अददत
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
अददाम्	अदद्व	अदद्म	उ	अददि	अदद्वहि	अदद्महि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	म	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	लृट्	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
दाता	दातारौ	दातारः	लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
देयात्	देयास्ताम्	देयासुः	आ. लिङ्	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लृङ्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लिट्				**लिट्**		
ददौ	ददतुः	ददुः	प्र	ददे	ददाते	ददिरे
ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद	म	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
ददौ	ददिव	ददिम	उ	ददे	ददिवहे	ददिमहे
लुङ् (१)				**लुङ् (४)**		
अदात्	अदाताम्	अदुः	प्र	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
अदाः	अदातम्	अदात	म	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
अदाम्	अदाव	अदाम	उ	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

(९५) धा (धारण करना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे अ १०)

लट्				लट्		
दधाति	धत्तः	दधति	प्र	धत्ते	दधाते	दधते
दधासि	धत्थः	धत्थ	म	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
दधामि	दध्वः	दध्मः	उ	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्				लोट्		
दधातु	धत्ताम्	दधतु	प्र	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
धेहि	धत्तम्	धत्त	म	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
दधानि	दधाव	दधाम	उ	दधै	दधावहै	दधामहै

लङ्				लङ्		
अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	प्र	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
अदधाः	अधत्तम्	अधत्त	म	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
अदधाम्	अदध्व	अदध्म	उ	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	प्र	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
दध्याः	दध्यातम्	दध्यात	म	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
दध्याम्	दध्याव	दध्याम	उ	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति	लृट्	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
धाता	धातारौ	धातारः	लुट्	धाता	धातारौ	धातारः
धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः	आ लिङ्	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्	लृङ्	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त

लिट्				लिट्		
दधौ	दधतुः	दधुः	प्र	दधे	दधाते	दधिरे
दधिथ,दधाथ	दधथुः	दध	म	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
दधौ	दधिव	दधिम	उ	दधे	दधिवहे	दधिमहे

लुङ् (१)				लुङ् (४)		
अधात्	अधाताम्	अधुः	प्र	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
अधाः	अधातम्	अधात	म	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिढ्वम्
अधाम्	अधाव	अधाम	उ	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

(४) दिवादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु दिव् है, अतः गण का नाम दिवादिगण पड़ा। (दिवादिभ्यः श्यन्) दिवादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्यन् (य) विकरण लगता है और धातु को गुण नहीं होता। इस गण की धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'य' लगाकर परस्मैपद में भू धातु के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् धातु के तुल्य रूप चलेंगे।

(२) इस गण में १४० धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे।

लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

लृट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप) | आत्मनेपद (सं० रूप)

लट्

यति	यतः	यन्ति	प्र	यते	येते	यन्ते
यसि	यथः	यथ	म	यसे	येथे	यध्वे
यामि	यावः	यामः	उ	ये	यावहे	यामहे

लोट्

यतु	यताम्	यन्तु	प्र	यताम्	येताम्	यन्ताम्
य	यतम्	यत	म	यस्व	येथाम्	यध्वम्
यानि	याव	याम	उ	यै	यावहै	यामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

यत्	यताम्	यन्	प्र	यत	येताम्	यन्त
ः	यतम्	यत	म	यथाः	येथाम्	यध्वम्
म्	याव	याम	उ	ये	यावहि	यामहि

विधिलिङ्

येत्	येताम्	येयुः	प्र	येत	येयाताम्	येरन्
येः	येतम्	येत	म	येथाः	येयाथाम्	येध्वम्
येयम्	येव	येम	उ	येय	येवहि	येमहि

—

दिवादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(५६) दिव् (चमकना आदि) (दे० अ० १८) (५७) नृत् (नाचना) (दे० अ० १८)

	लट्				लट्	
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र०	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म०	नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ०	नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः
	लोट्				लोट्	
दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र०	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत	म०	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ०	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम
	लङ्				लङ्	
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म०	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र०	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म०	नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ०	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम

देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	लृट्	नर्तिष्यति	नर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)	
देविता	देवितारौ	देवितारः	लुट्	नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः
दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः	आ० लिङ्	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्		लृङ्	अनर्तिष्यत्	अनर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)	
	लिट्				लिट्	
दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः	प्र०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव	म०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
दिदेव	दिदिविव	दिदिविम	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः	प्र०	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः
अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट	म०	अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट
अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म	उ०	अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म

(५८) नश् (नष्ट होना) (दे० अ० १९) (५९) भ्रम् (घूमना) (दे० अ० १९)

	लट्				लट्	
नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	भ्राम्यति	भ्राम्यतः	भ्राम्यन्ति
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	म०	भ्राम्यसि	भ्राम्यथः	भ्राम्यथ
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	उ०	भ्राम्यामि	भ्राम्यावः	भ्राम्यामः
	लोट्				लोट्	
नश्यतु	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	भ्राम्यतु	भ्राम्यताम्	भ्राम्यन्तु
नश्य	नश्यतम्	नश्यत	म	भ्राम्य	भ्राम्यतम्	भ्राम्यत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ	भ्राम्याणि	भ्राम्याव	भ्राम्याम
	लङ्				लङ्	
अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र	अभ्राम्यत्	अभ्राम्यताम्	अभ्राम्यन्
अनश्यः	अनश्यतम्	अनश्यत	म	अभ्राम्यः	अभ्राम्यतम्	अभ्राम्यत
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ	अभ्राम्यम्	अभ्राम्याव	अभ्राम्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र	भ्राम्येत्	भ्राम्येताम्	भ्राम्येयुः
नश्येः	नश्येतम्	नश्येत	म	भ्राम्येः	भ्राम्येतम्	भ्राम्येत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ	भ्राम्येयम्	भ्राम्येव	भ्राम्येम

नशिष्यति, नङ्क्ष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् भ्रमिष्यति भ्रमिष्यतः भ्रमिष्यन्ति
नशिता, नंष्टा (दोनों प्रकार से) लुट् भ्रमिता भ्रमितारौ भ्रमितारः
नश्यात् नश्यास्ताम् नश्यासुः आ० लिङ् भ्रम्यात् भ्रम्यास्ताम् भ्रम्यासुः
अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ् अभ्रमिष्यत् अभ्रमिष्यताम्

	लिट्				लिट्	
ननाश	नेशतुः	नेशुः	प्र	बभ्राम	बभ्रमतुः भ्रेमतुः	बभ्रमुः भ्रेमुः
नेशिथ ननंष्ठ	नेशथुः	नेश	म	बभ्रमिथ भ्रेमिथ	बभ्रमथुः भ्रेमथुः	बभ्रम भ्रेम
ननाश ननश	नेशिव नेश्व	नेशिम नेश्म	उ	बभ्राम बभ्रम	बभ्रमिव भ्रेमिव	बभ्रमिम भ्रेमिम
	लुङ् (२)				लुङ् (२)	
अनशत्	अनशताम्	अनशन्	प्र	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्
अनशः	अनशतम्	अनशत	म	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
अनशम्	अनशाव	अनशाम	उ	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम

सूचना—भ्रम् भ्वादिगणी भी है, अतः भ्रमति भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत् वाले रूप भी बनेंगे।

(६०) श्रम् (परिश्रम करना) (दे० अ० ४) (६१) सिव् (सीना) (दे० अ० ४)

लट्				लट्		
श्राम्यति	श्राम्यतः	श्राम्यन्ति	प्र	सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति
श्राम्यसि	श्राम्यथः	श्राम्यथ	म	सीव्यसि	सीव्यथः	सीव्यथ
श्राम्यामि	श्राम्यावः	श्राम्यामः	उ	सीव्यामि	सीव्यावः	सीव्यामः
लोट्				लोट्		
श्राम्यतु	श्राम्यताम्	श्राम्यन्तु	प्र	सीव्यतु	सीव्यताम्	सीव्यन्तु
श्राम्य	श्राम्यतम्	श्राम्यत	म	सीव्य	सीव्यतम्	सीव्यत
श्राम्याणि	श्राम्याव	श्राम्याम	उ	सीव्यानि	सीव्याव	सीव्याम
लङ्				लङ्		
अश्राम्यत्	अश्राम्यताम्	अश्राम्यन्	प्र	असीव्यत्	असीव्यताम्	असीव्यन्
अश्राम्यः	अश्राम्यतम्	अश्राम्यत	म	असीव्यः	असीव्यतम्	असीव्यत
अश्राम्यम्	अश्राम्याव	अश्राम्याम	उ	असीव्यम्	असीव्याव	असीव्याम
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
श्राम्येत्	श्राम्येताम्	श्राम्येयुः	प्र	सीव्येत्	सीव्येताम्	सीव्येयुः
श्राम्येः	श्राम्येतम्	श्राम्येत	म	सीव्येः	सीव्येतम्	सीव्येत
श्राम्येयम्	श्राम्येव	श्राम्येम	उ	सीव्येयम्	सीव्येव	सीव्येम

—

श्रमिष्यति	श्रमिष्यतः	श्रमिष्यन्ति	लृट्	सेविष्यति	सेविष्यतः	सेविष्यन्ति
श्रमिता	श्रमितारौ	श्रमितारः	लुट्	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
श्रम्यात्	श्रम्यास्ताम्	श्रम्यासुः	आ० लिङ्	सीव्यात्	सीव्यास्ताम्	सीव्यासुः
अश्रमिष्यत्	अश्रमिष्यताम्		लृङ्	असेविष्यत्	असेविष्यताम्	
लिट्				लिट्		
शश्राम	शश्रमतुः	शश्रमुः	प्र	सिषेव	सिषिवतुः	सिषिवुः
शश्रमिथ	शश्रमथुः	शश्रम	म	सिषेविथ	सिषिवथुः	सिषिव
शश्राम, शश्रम	शश्रमिव	शश्रमिम	उ	सिषेव	सिषिविव	सिषिविम
लुङ् (२)				लुङ् (५)		
अश्रमत्	अश्रमताम्	अश्रमन्	प्र	असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषुः
अश्रमः	अश्रमतम्	अश्रमत	म	असेवीः	असेविष्टम्	असेविष्ट
अश्रमम्	अश्रमाव	अश्रमाम	उ०	असेविषम्	असेविष्व	असेविष्म

(६२) सो (नष्ट होना) (दि० प० ४१) (६३) दो (छीलना) (दि० प० ४१)

	लट्				लट्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र	द्यति	द्यतः	द्यन्ति
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म	द्यसि	द्यथः	द्यथ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ	द्यामि	द्यावः	द्यामः
	लोट्				लोट्	
स्यतु	स्यताम्	स्यन्तु	प्र	द्यतु	द्यताम्	द्यन्तु
स्य	स्यतम्	स्यत	म	द्य	द्यतम्	द्यत
स्यानि	स्याव	स्याम	उ	द्यानि	द्याव	द्याम
	लङ्				लङ्	
अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	प्र	अद्यत्	अद्यताम्	अद्यन्
अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	म	अद्यः	अद्यतम्	अद्यत
अस्यम्	अस्याव	अस्याम	उ	अद्यम्	अद्याव	अद्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्येत्	स्येताम्	स्येयुः	प्र	द्येत्	द्येताम्	द्येयुः
स्येः	स्येतम्	स्येत	म	द्येः	द्येतम्	द्येत
स्येयम्	स्येव	स्येम	उ	द्येयम्	द्येव	द्येम
	—				—	
सास्यति	सास्यतः	सास्यन्ति	लृट्	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
साता	सातारौ	सातारः	लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
सेयात्	सेयास्ताम्	सेयासुः	आ लिङ्	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
असास्यत्	असास्यताम्	असास्यन्	लृङ्	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
	लिट्				लिट्	
ससौ	ससतुः	ससुः	प्र	ददौ	ददतुः	ददुः
ससिथ,ससाथ	ससथुः	सस	म	ददिथ,ददाथ	ददथुः	दद
ससौ	ससिव	ससिम	उ	ददौ	ददिव	ददिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (क) (१)	
असात्	असाताम्	असुः	प्र	अदात्	अदाताम्	अदुः
असाः	असातम्	असात	म	अदाः	अदातम्	अदात
असाम्	असाव	असाम	उ	अदाम्	अदाव	अदाम
	लुङ् (ख) (६)				लुङ् (ख) (६)	
असासीत्	असासिष्टाम्	असासिषुः	प्र	अदासीत्	अदासिष्टाम्	अदासिषुः
असासीः	असासिष्टम्	असासिष्ट	म	अदासीः	अदासिष्टम्	अदासिष्ट
असासिषम्	असासिष्व	असासिष्म	उ	अदासिषम्	अदासिष्व	अदासिष्म

(६४) कुप् (क्रुद्ध होना) (दि. प. ४२)

लट्				
कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति	प्र	
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ	म	
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः	उ	
लोट्				
कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु	प्र	
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत	म	
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम	उ	
लङ्				
अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्	प्र	
अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत	म	
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम	उ	
विधिलिङ्				
कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः	प्र	
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत	म	
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम	उ	
कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति	लृट्	
कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः	लुट्	
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः	आ. लिङ्	
अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्		लृङ्	
लिट्				
चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः	प्र	
चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप	म	
चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम	उ	
लुङ् (२)				
अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्	प्र	
अकुपः	अकुपतम्	अकुपत	म	
अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम	उ	

(६५) पच् (पकाना) (दि. प. ४१)

आत्मनेपदी

लट्			
प्र	पचते	पचेते	पचन्ते
म	पचसे	पचेथे	पचध्वे
उ	पचे	पचावहे	पचामहे
लोट्			
प्र	पचताम्	पचेताम्	पचन्ताम्
म	पचस्व	पचेथाम्	पचध्वम्
उ	पचै	पचावहै	पचामहै
लङ्			
प्र	अपचत	अपचेताम्	अपचन्त
म	अपचथाः	अपचेथाम्	अपचध्वम्
उ	अपचे	अपचावहि	अपचामहि
विधिलिङ्			
प्र	पचेत	पचेयाताम्	पचेरन्
म	पचेथाः	पचेयाथाम्	पचेध्वम्
उ	पचेय	पचेवहि	पचेमहि
लृट्	पक्ष्यते	पक्ष्येते	पक्ष्यन्ते
लुट्	पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः
आ. लिङ्	पक्षीष्ट	पक्षीयास्ताम्	पक्षीरन्
लृङ्	अपक्ष्यत	अपक्ष्येताम्	
लिट्			
प्र	पेचे	पेचाते	पेचिरे
म	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्वे
उ	पेचे	पेचिवहे	पेचिमहे
लुङ् (४)			
प्र	अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत
म	अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्
उ	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि

आत्मनेपदी—धातुएँ

(५९) युध् (लड़ना) (दि० अ० ४१) (६०) जन् (उत्पन्न होना) (दि० अ० ४१)

सूचना—लट् आदि में जन् को जा होगा।

लट्				लट् (जन् को जा)		
युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते	प्र	जायते	जायेते	जायन्ते
युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे	म	जायसे	जायेथे	जायध्वे
युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे	उ०	जाये	जायावहे	जायामहे

लोट्				लोट् (जन् को जा)		
युध्यताम्	युध्येताम्	युध्यन्ताम्	प्र	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
युध्यस्व	युध्येथाम्	युध्यध्वम्	म	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
युध्यै	युध्यावहै	युध्यामहै	उ	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ्				लङ्* (जन् को जा)		
अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त	प्र	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्	म	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि	उ	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ् (जन् को जा)		
युध्येत	युध्येयाताम्	युध्येरन्	प्र	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
युध्येथाः	युध्येयाथाम्	युध्येध्वम्	म	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
युध्येय	युध्येवहि	युध्येमहि	उ	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

योत्स्यते	योत्स्येते	योत्स्यन्ते	लृट्	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
योद्धा	योद्धारौ	योद्धारः	लुट्	जनिता	जनितारौ	जनितारः
युत्सीष्ट	युत्सीयास्ताम्		आ० लिङ्	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	
अयोत्स्यत	अयोत्स्येताम्		लृङ्	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	

लिट्				लिट्		
युयुधे	युयुधाते	युयुधिरे	प्र	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
युयुधिषे	युयुधाथे	युयुधिध्वे	म	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
युयुधे	युयुधिवहे	युयुधिमहे	उ	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अयुद्ध	अयुत्साताम्	अयुत्सत	प्र	{ अजनि { अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
अयुद्धाः	अयुत्साथाम्	अयुद्ध्वम्	म	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
अयुत्सि	अयुत्स्वहि	अयुत्स्महि	उ	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

(५) स्वादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, अतः गण का नाम स्वादिगण पड़ा। (स्वादिभ्यः श्नुः) स्वादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्नु (नु) विकरण लगता है और धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) नु को परस्मैपद में लट्, लोट् (म० पु० एक० को छोड़कर) और लङ् में एकवचन में गुण होता है। (ख) (लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः) यदि कोई संयोग पहले न हो तो नु के उ का लोप विकल्प से होता है, बाद में व् या म् हो तो। लट् आदि में उ० पु० द्विवचन और बहुवचन में दो रूप बनेंगे।

(३) इस गण में ३५ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। लुट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्त रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप) — आत्मनेपद (सं० रूप)

लट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
नोति	नुतः	न्वन्ति, नुवन्ति	प्र०	नुते	नुवाते न्वाते	नुवते, न्वते
नोषि	नुथः	नुथ	म०	नुषे	नुवाथे न्वाथे	नुध्वे
नोमि	नुवः, न्वः	नुमः, न्मः	उ०	न्वे नुवे	नुवहे, न्वहे	नुमहे, न्महे

लोट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
नोतु	नुताम्	न्वन्तु, नुवन्तु	प्र०	नुताम्	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवताम्, न्वताम्
नु, नुहि	नुतम्	नुत	म०	नुष्व	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवानि	नवाव	नवाम	उ०	नवै	नवावहै	नवामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
नोत्	नुताम्	न्वन्, नुवन्	प्र०	नुत	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवत, न्वत
नोः	नुतम्	नुत	म०	नुथाः	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवम्	नुव, न्व	नुम, न्म	उ०	नुवि न्वि	नुवहि, न्वहि	नुमहि, न्महि

विधिलिङ्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
नुयात्	नुयाताम्	नुयुः	प्र०	न्वीत	न्वीयाताम्	न्वीरन्
नुयाः	नुयातम्	नुयात	म०	न्वीथाः	न्वीयाथाम्	न्वीध्वम्
नुयाम्	नुयाव	नुयाम	उ०	न्वीय	न्वीवहि	न्वीमहि

सूचना—जहाँ दो-दो रूप दिए हैं उनमें से एक या दोनों रूप इनका धातु पर निर्भर है।

स्वादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(९८) आप् (पाना) (दे० अ० ४४) | (९९) शक् (सकना) (दे० अ० ४४)

	लट्				लट्	
आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति	प्र	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ	म	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः
	लोट्				लोट्	
आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत	म	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम	उ	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम
	लङ्				लङ्	
आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम
	—				—	
आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	लृट्	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः	लुट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः	आ० लिङ्	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्	लृङ्	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
आप	आपतुः	आपुः	प्र	शशाक	शेकतुः	शेकुः
आपिथ	आपथुः	आप	म	शेकिथ शशक्थ	शेकथुः	शेक
आप	आपिव	आपिम	उ०	शशाक,शशक	शेकिव	शेकिम
	लुङ् (१)				लुङ् (१)	
आपत्	आपताम्	आपन्	प्र	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
आपः	आपतम्	आपत	म	अशकः	अशकतम्	अशकत
आपम्	आपाव	आपाम	उ	अशकम्	अशकाव	अशकाम

(७०) चि (इकट्ठा करना)(दे म ४९) (७१) अश् (व्याप्त होना)(दे म ८९)

सूचना—उभय है, केवल परस्मै के रूप दिए हैं। आत्मनेपदी

	लट्				लट्	
चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
चिनोमि	चिनुवः, -न्वः	चिनुमः,-न्मः	उ	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे
	लोट्				लोट्	
चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
चिनु	चिनुतम्	चिनुत	म	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै
	लङ्				लङ्	
अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	उ	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि
	—				—	
चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	लृट्	अशिष्यते,	अक्ष्यते	(दोनों प्रकार से)
चेता	चेतारौ	चेतारः	लुट्	अशिता,	अष्टा	(,,)
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः	आ लिङ्	अशिषीष्ट	अक्षीष्ट	(,,)
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	लृङ्	आशिष्यत,	आक्ष्यत	(,,)
	लिट् (क)				लिट्	
चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र	आनशे	आनशाते	आनशिरे
चिचयिथ,चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य	म	आनशिषे	आनशाथे	आनशिध्वे
चिचाय,चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	आनशे	आनशिवहे	आनशिमहे

(ख) चिकाय चिक्यतुः आदि।

	लुङ् (४)				लुङ् (क) (५)	
अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	प्र०	आशिष्ट	आशिषाताम्	आशिषत
अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट	म	आशिष्ठाः	आशिषाथाम्	आशिध्वम्
अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	उ०	आशिषि	आशिष्वहि	आशिष्महि

सूचना—आत्मने में लुङ् (७०) आ० के रूप। (ख) आष्ट आक्षाताम् इत्यादि

उभयपदी धातु

(७२) सु (रस निकालना) (दे. अ ४६)

परस्मैपद्-लट्				आत्मनेपद्-लट्		
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः	सुनुमः	उ	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे
लोट्				लोट्		
सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै
लङ्				लङ्		
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	प्र	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	म	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	लृट्	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोता	सोतारौ	सोतारः	लुट्	सोता	सोतारौ	सोतारः
सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः	आ लिङ्	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्	
असोष्यत्	असोष्यताम्		लृङ्	असोष्यत	असोष्येताम्	

लिट्				लिट्		
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सुषविथ,सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव	म	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सुषाव,सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे
लुङ् (५)				लुङ् (४)		
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	प्र	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट	म	असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म	उ०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

(६) तुदादिगण

(१) इस गणकी प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अतः गण का नाम तुदादिगण पड़ा। (तुदादिभ्यः शः) तुदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण में भी 'अ' विकरण लगता है। अन्तर यह है कि भ्वादिगण में लट् आदि में धातु को गुण होता है, परन्तु तुदादि में धातु को गुण नहीं होगा।

(२) (क) लट् आदि में धातु के अन्तिम इ और ई को इय् होगा, उ और ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को इर् होगा। जैसे—रि>रियति, सू>सुवति, मृ>म्रियते, गॄ>गिरति। (ख) (शे मुचादीनाम्) मुच् आदि धातुओं में बीच में न् लग जाता है। मुच्>मुञ्चति, विद्>विन्दति, लिप्>लिम्पति, सिच्>सिञ्चति, कृत्>कृन्तति।

(३) इस गण में १५७ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्त रूप निम्नलिखित लगेंगे। परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लिट्, लुट् आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं॰ रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं॰ रूप)				आत्मनेपद (सं॰ रूप)		
लट्				लट्		
अति	अतः	अन्ति	प्र॰	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म॰	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ॰	ए	आवहे	आमहे
लोट्				लोट्		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र॰	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म॰	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ॰	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	प्र॰	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म॰	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ॰	ए	आवहि	आमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
एत्	एताम्	एयुः	प्र॰	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म॰	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ॰	एय	एवहि	एमहि

परस्मैपदी-धातुएँ

(७३) इष् (चाहना) (६ प ४०) (७४) प्रच्छ् (पूछना) (६ प ४७)

सूचना—लट् आदि में इष् को इच्छ् होगा। सूचना—लट् आदि में प्रच्छ् को पृच्छ्।

	लट्				लट्	
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	प्र	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ	म	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	उ०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः
	लोट्				लोट्	
इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु	प्र	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
इच्छ	इच्छतम्	इच्छत	म	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम	उ	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम
	लङ्				लङ्	
ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्	प्र	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत	म	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम	उ	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	प्र	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	म	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	उ०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम
एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति	लृट्	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
एषिता, एष्टा (दोनों प्रकारसे)			लुट्	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः	आ. लिङ्	पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्ताम्	
ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्	लृङ्	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
इयेष	ईषतुः	ईषुः	प्र०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
इयेषिथ	ईषथुः	ईष	म०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
इयेष	ईषिव	ईषिम	उ०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम
	लुङ् (५)				लुङ् (४)	
ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः	प्र	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट	म	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म	उ	अप्राक्षम्	[illegible]	[illegible]

(७५) लिख् (लिखना) (दे० अ० ४८)   (७६) स्पृश् (छूना) (दे० अ० ४८)

	लट्				लट्	
लिखति	लिखतः	लिखन्ति	प्र	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	म	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	उ०	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः
	लोट्				लोट्	
लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	प्र०	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	म०	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	उ	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम
	लङ्				लङ्	
अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्	प्र	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
अलिखः	अलिखतम्	अलिखत	म०	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम	उ	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः	प्र	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
लिखेः	लिखेतम्	लिखेत	म	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
लिखेयम्	लिखेव	लिखेम	उ	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लेखिष्यति लेखिष्यतः लेखिष्यन्ति लृट् स्पर्क्ष्यति, स्प्रक्ष्यति (दोनों प्रकार से)
लेखिता लेखितारौ लेखितारः लुट् स्पर्ष्टा, स्प्रष्टा ,, ,,
लिख्यात् लिख्यास्ताम् लिख्यासुः आ० लिङ् स्पृश्यात् स्पृश्यास्ताम् ०
अलेखिष्यत् अलेखिष्यताम् लृङ् अस्पर्क्ष्यत्, अस्प्रक्ष्यत् (दोनों प्रकार से)

	लिट्				लिट्	
लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः	प्र	पस्पर्श	पस्पृशतुः	पस्पृशुः
लिलेखिथ	लिलिखथुः	लिलिख	म	पस्पर्शिथ	पस्पृशथुः	पस्पृश
लिलेख	लिलिखिव	लिलिखिम	उ	पस्पर्श	पस्पृशिव	पस्पृशिम
	लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)	
अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः	प्र	अस्पार्क्षीत्	अस्पार्ष्टाम्	अस्पार्क्षुः
अलेखीः	अलेखिष्टम्	अलेखिष्ट	म०	अस्पार्क्षीः	अस्पार्ष्टम्	अस्पार्ष्ट
अलेखिषम्	अलेखिष्व	अलेखिष्म	उ	अस्पार्क्षम्	अस्पार्क्ष्व	अस्पार्क्ष्म

लुङ् (ख) (४) अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टाम् (पूर्ववत्)
लुङ् (ग) (७) अस्पृक्षत् अस्पृक्षताम् अस्पृक्षन्
अस्पृक्षः अस्पृक्षतम् अस्पृक्षत
अस्पृक्षम् अस्पृक्षाव अस्पृक्षाम

(७७) कॄ (फैलाना) (दे० अ० ४९) (७८) गॄ (निगलना) (दे० अ० ४९)

	लट्				लट्	
किरति	किरतः	किरन्ति	प्र	गिरति	गिरतः	गिरन्ति
किरसि	किरथः	किरथ	म	गिरसि	गिरथः	गिरथ
किरामि	किरावः	किरामः	उ०	गिरामि	गिरावः	गिरामः
	लोट्				लोट्	
किरतु	किरताम्	किरन्तु	प्र०	गिरतु	गिरताम्	गिरन्तु
किर	किरतम्	किरत	म०	गिर	गिरतम्	गिरत
किराणि	किराव	किराम	उ	गिराणि	गिराव	गिराम
	लङ्				लङ्	
अकिरत्	अकिरताम्	अकिरन्	प्र	अगिरत्	अगिरताम्	अगिरन्
अकिरः	अकिरतम्	अकिरत	म०	अगिरः	अगिरतम्	अगिरत
अकिरम्	अकिराव	अकिराम	उ	अगिरम्	अगिराव	अगिराम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
किरेत्	किरेताम्	किरेयुः	प्र०	गिरेत्	गिरेताम्	गिरेयुः
किरेः	किरेतम्	किरेत	म	गिरेः	गिरेतम्	गिरेत
किरेयम्	किरेव	किरेम	उ	गिरेयम्	गिरेव	गिरेम

करिष्यति करीष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् गरिष्यति गरीष्यति (दोनों प्रकार से)
करिता करीता (,,) लुट् गरिता, गरीता (,,)
कीर्यात् कीर्यास्ताम् कीर्यासुः आ० लिङ् गीर्यात् गीर्यास्ताम् गीर्यासुः
अकरिष्यत्, अकरीष्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ् अगरिष्यत् अगरीष्यत् (दोनों प्रकार से)

	लिट्				लिट्	
चकार	चकरतुः	चकरुः	प्र	जगार	जगरतुः	जगरुः
चकरिथ	चकरथुः	चकर	म	जगरिथ	जगरथुः	जगर
चकार, चकर	चकरिव	चकरिम	उ	जगार, जगर	जगरिव	जगरिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारीत्	अकारिष्टाम्	अकारिषुः	प्र	अगारीत्	अगारिष्टाम्	अगारिषुः
अकारीः	अकारिष्टम्	अकारिष्ट	म	अगारीः	अगारिष्टम्	अगारिष्ट
अकारिषम्	अकारिष्व	अकारिष्म	उ	अगारिषम्	अगारिष्व	अगारिष्म

सूचना—(अचि विभाषा) गॄ धातु के र् को ल् होता है, स्वर बाद में हो तो। अतः आशीर्लिङ् को छोड़कर सर्वत्र र के स्थान पर ल वाले भी रूप बनेंगे। जैसे—गिलति, गिलतु, अगिलत्, गिलेत्, गलिष्यति, गलिता, अगलिष्यत्, जगाल, अगालीत्।

(७९) क्षिप् (फेंकना) (दे ण ८)

सूचना—धातु उभयपदी है । यहाँ परस्मैपद के ही रूप दिए हैं । आत्मनेपद में तुद् (८१) के तुल्य ।

(८०) मृ (मरना) (दे म ५)

सूचना—यह लृट्, लुट्, लृङ् और लिट् में परस्मै है अन्यत्र आत्मनेपदी ।

लट्				लट्		
क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति	प्र	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
क्षिपसि	क्षिपथः	क्षिपथ	म	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
क्षिपामि	क्षिपावः	क्षिपामः	उ	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लोट्				लोट्		
क्षिपतु	क्षिपताम्	क्षिपन्तु	प्र	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
क्षिप	क्षिपतम्	क्षिपत	म	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
क्षिपाणि	क्षिपाव	क्षिपाम	उ	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै

लङ्				लङ्		
अक्षिपत्	अक्षिपताम्	अक्षिपन्	प्र	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
अक्षिपः	अक्षिपतम्	अक्षिपत	म	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
अक्षिपम्	अक्षिपाव	अक्षिपाम	उ	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
क्षिपेत्	क्षिपेताम्	क्षिपेयुः	प्र	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
क्षिपेः	क्षिपेतम्	क्षिपेत	म	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
क्षिपेयम्	क्षिपेव	क्षिपेम	उ	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि

—				—		
क्षेप्स्यति	क्षेप्स्यतः	क्षेप्स्यन्ति	लृट्	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
क्षेप्ता	क्षेप्तारौ	क्षेप्तारः	लुट्	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
क्षिप्यात्	क्षिप्यास्ताम्	क्षिप्यासुः	आ० लिङ्	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	
अक्षेप्स्यत्	अक्षेप्स्यताम्	अक्षेप्स्यन्	लृङ्	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	•

लिट्				लिट्		
चिक्षेप	चिक्षिपतुः	चिक्षिपुः	प्र	ममार	मम्रतुः	मम्रुः
चिक्षेपिथ	चिक्षिपथुः	चिक्षिप	म	ममर्थ	मम्रथुः	मम्र
चिक्षेप	चिक्षिपिव	चिक्षिपिम	उ०	ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम

लुङ् (४)				लुङ् (५)		
अक्षैप्सीत्	अक्षैप्ताम्	अक्षैप्सुः	प्र	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
अक्षैप्सीः	अक्षैप्तम्	अक्षैप्त	म	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
अक्षैप्सम्	अक्षैप्स्व	अक्षैप्स्म	उ	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि

तुदादिगण, उभयपदी धातुएँ

(८१) तुद् (दुःख देना) (दे० अ० ५१)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे
लोट्				लोट्		
तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु	प्र	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ	तुदै	तुदावहै	तुदामहै
लङ्				लङ्		
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि
—				—		
तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	लृट्	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	लुट्	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	आ लिङ्	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्		लृङ्	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	
लिट्				लिट्		
तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	प्र	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	म	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम	उ०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे
लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः	प्र	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त	म	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म	उ	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

(८२) मुच (छोड़ना) (दे० अ० ६१)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	प्र	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते
मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ	म	मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे
मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः	उ	मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे

लोट्				लोट्		
मुञ्चतु	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु	प्र	मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्
मुञ्च	मुञ्चतम्	मुञ्चत	म	मुञ्चस्व	मुञ्चेथाम्	मुञ्चध्वम्
मुञ्चानि	मुञ्चाव	मुञ्चाम	उ	मुञ्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै

लङ्				लङ्		
अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्	प्र	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
अमुञ्चः	अमुञ्चतम्	अमुञ्चत	म०	अमुञ्चथाः	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्
अमुञ्चम्	अमुञ्चाव	अमुञ्चाम	उ	अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
मुञ्चेत्	मुञ्चेताम्	मुञ्चेयुः	प्र	मुञ्चेत	मुञ्चेयाताम्	मुञ्चेरन्
मुञ्चेः	मुञ्चेतम्	मुञ्चेत	म	मुञ्चेथाः	मुञ्चेयाथाम्	मुञ्चेध्वम्
मुञ्चेयम्	मुञ्चेव	मुञ्चेम	उ	मुञ्चेय	मुञ्चेवहि	मुञ्चेमहि

मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति	लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः	लुट्	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
मुच्यात्	मुच्यास्ताम्	मुच्यासुः	आ०लिङ्	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	
अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्	लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	

लिट्				लिट्		
मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः	प्र	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मुमोचिथ	मुमुचथुः	मुमुच	म	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम	उ	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

लुङ् (२)				लुङ् (४)		
अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्	प्र	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
अमुचः	अमुचतम्	अमुचत	म	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम	उ	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

(७) रुधादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना) है, अतः गण का नाम रुधादिगण पड़ा। (रुधादिभ्यः श्नम्) रुधादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न) विकरण लगता है। यह कभी न् हो जाता है। लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) सन्धि-नियमों के अनुसार यथास्थान धातु के ध् को द् या त्, द् को त्, च् को क् या ग् होते हैं। (ख) विकरण के न को परस्मैपद के लट्, लोट् और लङ् के एकवचन में प्रायः न रहेगा, अन्यत्र न् होगा। (ग) विकरण के न् को सन्धि-नियमानुसार ण् और म् भी होता है। "न" का विशेष विवरण सं. रूप से समझें।

(३) इस गण में २५ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। न या न् धातु के प्रथम स्वर के बाद लगावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे। सेट् में सं. रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।।

परस्मैपद (सं. रूप)				आत्मनेपद (सं. रूप)		
लट्				**लट्**		
(न) ति	(न्) तः	(न्) अन्ति	प्र०	(न्) ते	(न्) आते	(न्) अते
(न) सि	(न्) थः	(न्) थ	म	(न्) से	(न्) आथे	(न्) ध्वे
(न) मि	(न्) वः	(न्) मः	उ	(न्) ए	(न्) वहे	(न्) महे
लोट्				**लोट्**		
(न) तु	(न्) ताम्	(न्) अन्तु	प्र	(न्) ताम्	(न्) आताम्	(न्) अताम्
(न्) हि	(न्) तम्	(न्) त	म	(न्) स्व	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) आनि	(न) आव	(न) आम	उ	(न) ऐ	(न) आवहै	(न) आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**		
(न) त्	(न्) ताम्	(न्) अन्	प्र	(न्) त	(न्) आताम्	(न्) अत
(न) :	(न्) तम्	(न्) त	म	(न्) थाः	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) अम्	(न्) व	(न्) म	उ	(न्) इ	(न्) वहि	(न्) महि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
(न्) यात्	(न्) याताम्	(न्) युः	प्र	(न्) ईत	(न्) ईयाताम्	(न्) ईरन्
(न्) याः	(न्) यातम्	(न्) यात	म	(न्) ईथाः	(न्) ईयाथाम्	(न्) ईध्वम्
(न्) याम्	(न्) याव	(न्) याम	उ	(न्) ईय	(न्) ईवहि	(न्) ईमहि

(८३) छिद् (काटना) (दे० अ० ५२)				(८४) भिद् (तोड़ना) (दे० अ० ५२)		
सूचना—केवल परस्मै के रूप दिए हैं।				सूचना—केवल परस्मै के रूप दिए हैं।		
	लट्				लट्	
छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति	प्र	भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति
छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ	म	भिनत्सि	भिन्थः	भिन्थ
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः	उ	भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः
	लोट्				लोट्	
छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु	प्र	भिनत्तु	भिन्ताम्	भिन्दन्तु
छिन्द्धि	छिन्तम्	छिन्त	म	भिन्द्धि	भिन्तम्	भिन्त
छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम	उ	भिनदानि	भिनदाव	भिनदाम
	लङ्				लङ्	
अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्	प्र	अभिनत्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त	म	अभिनः	अभिन्तम्	अभिन्त
अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म	उ०	अभिनदम्	अभिन्द्व	अभिन्द्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः	प्र	भिन्द्यात्	भिन्द्याताम्	भिन्द्युः
छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात	म	भिन्द्याः	भिन्द्यातम्	भिन्द्यात
छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम	उ	भिन्द्याम्	भिन्द्याव	भिन्द्याम
छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति	लृट्	भेत्स्यति	भेत्स्यतः	भेत्स्यन्ति
छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः	लुट्	भेत्ता	भेत्तारौ	भेत्तारः
छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः	आ० लिङ्	भिद्यात्	भिद्यास्ताम्	भिद्यासुः
अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्		लृङ्	अभेत्स्यत्	अभेत्स्यताम्	
	लिट्				लिट्	
चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः	प्र	बिभेद	बिभिदतुः	बिभिदुः
चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद	म	बिभेदिथ	बिभिदथुः	बिभिद
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम	उ	बिभेद	बिभिदिव	बिभिदिम
	लुङ् (क) (४)				लुङ् (क) (४)	
अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः	प्र	अभैत्सीत्	अभैत्ताम्	अभैत्सुः
अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त	म	अभैत्सीः	अभैत्तम्	अभैत्त
अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म	उ	अभैत्सम्	अभैत्स्व	अभैत्स्म

(ख) (२) अच्छिदत् अच्छिदताम् आदि (ख) (२) अभिदत् अभिदताम् आदि

(८५) हिंस् (हिंसा करना) (१ म ५१) (८६) भंज् (तोड़ना) (१ म ५१)

परस्मैपदी				परस्मैपदी		
	लट्				लट्	
हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति	प्र	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ	म	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः	उ०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः
	लोट्				लोट्	
हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु	प्र	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त	म	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम	उ	भनजानि	भनजाव	भनजाम
	लङ्				लङ्	
अहिनत्	अहिंस्ताम्	अहिंसन्	प्र	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
अहिनः	अहिंस्तम्	अहिंस्त	म	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म	उ	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः	प्र	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात	म	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम	उ	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम
	—				—	
हिंसिष्यति	हिंसिष्यतः	हिंसिष्यन्ति	लृट्	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
हिंसिता	हिंसितारौ	हिंसितारः	लुट्	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
हिंस्यात्	हिंस्यास्ताम्	हिंस्यासुः आ	लिङ्	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
अहिंसिष्यत्	अहिंसिष्यताम्		लृङ्	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
जिहिंस	जिहिंसतुः	जिहिंसुः	प्र	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
जिहिंसिथ	जिहिंसथुः	जिहिंस	म	बभञ्जिथ,बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
जिहिंस	जिहिंसिव	जिहिंसिम	उ	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम
	लुङ् (५)				लुङ् (४)	
अहिंसीत्	अहिंसिष्टाम्	अहिंसिषुः	प्र	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
अहिंसीः	अहिंसिष्टम्	अहिंसिष्ट	म	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
अहिंसिषम्	अहिंसिष्व	अहिंसिष्म	उ	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म

रुधादिगण। उभयपदी धातुएँ

(८७) रुध् (रोकना ढकना) (दे अ ५४)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति	प्र	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध	म	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	उ	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे
लोट्				लोट्		
रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु	प्र	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
रुन्द्धि	रुन्धम्	रुन्ध	म	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै
लङ्				लङ्		
अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्	प्र	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
अरुणः	अरुन्धम्	अरुन्ध	म	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	प्र	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

—

रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति	लृट्	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः	लुट्	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः	आ लिङ्	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	•
अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	•	लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	

लिट्				लिट्		
रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः	प्र	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध	म	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम	उ	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे
लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)		
अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः	प्र	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध	म	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म	उ	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

—

(ख) (२)			
अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्	प्र
अरुधः	अरुधतम्	अरुधत	म
अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम	उ

(८८) भुज् (पालन करना) (दे० अ० ५४) (८८) भुज् (खाना) (दे० अ० ५४)

भुनक्ति—पालन करना अर्थ में परस्मैपदी है। भुङ्क्ते—खाना, उपभोग अर्थ में आत्मनेपदी है।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे
लोट्				लोट्		
भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै
लङ्				लङ्		
अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्	प्र	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त	म	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति	लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः	आ० लिङ्	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	
अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्		लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	

लिट्				लिट्		
बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	प्र	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज	म	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम	उ	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे
लुङ् (४)				लुङ् (५)		
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	प्र	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त	म	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म	उ	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

(८०) युज् (लगाना, जोड़ना, मिलाना, नियुक्त करना) (दे० अ० ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	म	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
	लोट्				लोट्	
युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
	लङ्				लङ्	
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि
	—				—	
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	लुट्	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ० लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्	
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्		लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	प्र	युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे
युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज	म	युयुजिषे	युयुजाथे	युयुजिध्वे
युयोज	युयुजिव	युयुजिम	उ	युयुजे	युयुजिवहे	युयुजिमहे
	लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)	
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	प्र	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त	म	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि
	लुङ् (ख) (२)				—	
अयुजत्	अयुजताम्	अयुजन् आदि				

(८) तनादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, अतः गण का नाम तनादि गण पड़ा। (तनादिकृञ्भ्य उः) तनादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' विकरण लगता है।

(२) (क) धातुओं के उपधा के इ और ऋ को लट् आदि में विकल्प से गुण होता है। अतः उनके लट् आदि में दो रूप बनेंगे। क्षिण्>क्षिणोति, क्षेणोति। (ख) (अत उत्सार्वधातुके) कृ धातु के अ को उत् हो जाता है, कित् ङित् वाले स्थानों पर। अतः परस्मैपद में लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में द्विवचन और बहुवचन में अ को उत् होता है। आत्मनेपद में लट् आदि में सर्वत्र उत्। लोट् उत्तमपुरुष में दोनों पदों में गुण ही होता है। (ग) उ विकरण को परस्मै० लट् आदि के एक० में गुण होता है। परस्मै० विधिलिङ् और आत्मने० में उ ही रहता है। लोट् उ० पु० में गुण होगा।

(३) इस गण में १० धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृ० १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ओति	उतः	उवन्ति	प्र	उते	वाते	वते
ओषि	उथः	उथ	म	उषे	वाथे	उध्वे
ओमि	उवः, वः	उमः, मः	उ	वे	उवहे, वहे	उमहे, महे
	लोट्				लोट्	
ओतु	उताम्	वन्तु	प्र	उताम्	वाताम्	वताम्
उ	उतम्	उत	म	उष्व	वाथाम्	उध्वम्
अवानि	अवाव	अवाम	उ	अवै	अवावहै	अवामहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
ओत्	उताम्	वन्	प्र	उत	वाताम्	वत
ओः	उतम्	उत	म	उथाः	वाथाम्	उध्वम्
अवम्	उव, व	उम, म	उ	वि	उवहि, वहि	उमहि, महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
उयात्	उयाताम्	उयुः	प्र०	वीत	वीयाताम्	वीरन्
उयाः	उयातम्	उयात	म	वीथाः	वीयाथाम्	वीध्वम्
उयाम्	उयाव	उयाम	उ	वीय	वीवहि	वीमहि

तनादिगण । उभयपदी धातुएँ

(१०) तन् (फैलाना) (दे० अ० ५५)

परस्मैपद—लट् आत्मनेपद—लट्

तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
तनोमि	तनुवः	तनुमः	उ०	तन्वे	तनुवहे	तनुमहे

लोट् लोट्

तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
तनु	तनुतम्	तनुत	म०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

लङ् लङ्

अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	प्र०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	म०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
अतनवम्	अतनुव	अतनुम	उ०	अतन्वि	अतनुवहि	अतनुमहि

विधिलिङ् विधिलिङ्

तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

— —

तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनिता	तनितारौ	तनितारः	लुट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः	आ० लिङ्	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	
अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्		लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	•

लिट् लिट्

ततान	तेनतुः	तेनुः	प्र०	तेने	तेनाते	तेनिरे
तेनिथ	तेनथुः	तेन	म०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
ततान,ततन	तेनिव	तेनिम	उ०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

लुङ् (क) (५) लुङ् (५)

अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः	प्र०	अतत,अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट	म०	अतथाः अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म	उ०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि

लुङ् (ख) (५) —

अतानीत् अतानिष्टाम् आदि (पूर्ववत्)

(९१) कृ (करना) (दे. अ २१ २४)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
	लोट्				लोट्	
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ	करवै	करवावहै	करवामहै
	लङ्				लङ्	
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्		लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार,चकर	चकृव	चकृम	उ	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

(९) क्र्यादिगण

१. इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा। (क्र्यादिभ्यः श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है।

२. (क) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता। (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है। दोनों पदों में लोट् उ० पु० में ना रहेगा। अन्यत्र ना को नी होता है। जहाँ बाद में स्वर होता है, वहाँ ना का न् रहता है। परस्मै० लोट् म० पु० एक० में ना को नी होता है या आन होता है। (ग) धातु की उपधा में न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा। (घ) (हलः श्नः शानज्झौ) व्यञ्जनान्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म० पु० एक० में ना को आन हो जाएगा और हि का लोप होगा। अतः 'आन' शेष रहेगा। बन्ध् > बधान, मुष् > मुषाण। (ङ) (प्वादीनां ह्रस्वः) पू आदि धातुओं को लट् आदि में ह्रस्व होगा। पू > पुनाति। लू > लुनाति। (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घः) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोड़कर। ग्रहीष्यति, ग्रहीता।

३. इस गण में ६१ धातुएँ हैं।

४. लट् आदि में धातु के बाद ये संक्षिप्तरूप लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट वे रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
नाति	नीतः	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथः	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीवः	नीमः	उ०	ने	नीवहे	नीमहे
	लोट्				लोट्	
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि (आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	नामहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीताम्	नाताम्	नत
नाः	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नीयात्	नीयाताम्	नीयुः	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीयाः	नीयातम्	नीयात	म०	नीथाः	नीयाथाम्	नीध्वम्
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	[illegible]	[illegible]

क्र्यादिगण । परस्मैपदी धातुएँ

(९२) बन्ध् (बाँधना) (दे० अ ५७) (९३) मन्थ् (मथना) (दे अ ५७)

	लट्				लट्	
बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति	प्र	मथ्नाति	मथ्नीतः	मथ्नन्ति
बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ	म	मथ्नासि	मथ्नीथः	मथ्नीथ
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः	उ०	मथ्नामि	मथ्नीवः	मथ्नीमः
	लोट्				लोट्	
बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु	प्र	मथ्नातु	मथ्नीताम्	मथ्नन्तु
बधान	बध्नीतम्	बध्नीत	म	मथान	मथ्नीतम्	मथ्नीत
बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम	उ०	मथ्नानि	मथ्नाव	मथ्नाम
	लङ्				लङ्	
अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	प्र	अमथ्नात्	अमथ्नीताम्	अमथ्नन्
अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत	म	अमथ्नाः	अमथ्नीतम्	अमथ्नीत
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	उ	अमथ्नाम्	अमथ्नीव	अमथ्नीम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः	प्र	मथ्नीयात्	मथ्नीयाताम्	मथ्नीयुः
बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात	म	मथ्नीयाः	मथ्नीयातम्	मथ्नीयात
बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम	उ	मथ्नीयाम्	मथ्नीयाव	मथ्नीयाम
	—				—	
भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति	लृट्	मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति
बन्द्धा	बन्द्धारौ	बन्द्धारः	लुट्	मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितारः
बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासुः	आ लिङ्	मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासुः
अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्		लृङ्	अमन्थिष्यत्	अमन्थिष्यताम्	
	लिट्				लिट्	
बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः	प्र०	ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः
बबन्धिथ	बबन्धथुः	बबन्ध	म	ममन्थिथ	ममन्थथुः	ममन्थ
बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम	उ	ममन्थ	ममन्थिव	ममन्थिम
	लुङ् (४)				लुङ् (५)	
अभान्त्सीत्	अबान्द्धाम्	अभान्त्सुः	प्र	अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषुः
अभान्त्सीः	अबान्द्धम्	अबान्द्ध	म	अमन्थीः	अमन्थिष्टम्	अमन्थिष्ट
अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म	उ	अमन्थिषम्	अमन्थिष्व	अमन्थिष्म

उभयपदी धातुएँ

(९५) क्री (मोल लेना) (दे० अ० ५८)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
	लोट्				लोट्	
क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि
	—				—	
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः	आ० लिङ्	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	
अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्		लृङ्	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	
	लिट्				लिट्	
चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	प्र	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय	म	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	उ	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः	प्र	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट	म	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म	उ	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

(९५) ग्रह् (पकड़ना) (दे० अ० ५८)

सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह् होगा। सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह्।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति	प्र	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	म	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	उ	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
लोट्				लोट्		
गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु	प्र	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत	म	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम	उ	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
लङ्				लङ्		
अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	प्र	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	म	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	उ	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	म	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	उ	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति	लृट्	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः	लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः	आ० लिङ्	ग्रहीषीष्ट	ग्रहीषीयास्ताम्	
अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	०	लृङ्	अग्रहीष्यत	अग्रहीष्येताम्	

लिट्				लिट्		
जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः	प्र	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह	म	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे
जग्राह,जग्रह	जगृहिव	जगृहिम	उ	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे
लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः	प्र	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट	म	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीढ्वम्
अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म	उ	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि

(९१) ज्ञा (जानना) (९ उ ५६)

सूचना—लट् आदि में ज्ञा को 'जा' होगा। सूचना—लट् आदि में ज्ञा को जा होगा।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
जानाति	जानीतः	जानन्ति	प्र	जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथः	जानीथ	म	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीवः	जानीमः	उ	जाने	जानीवहे	जानीमहे
लोट्				लोट्		
जानातु	जानीताम्	जानन्तु	प्र	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
जानीहि	जानीतम्	जानीत	म०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
जानानि	जानाव	जानाम	उ	जानै	जानावहै	जानामहै
लङ्				लङ्		
अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
अजानाः	अजानीतम्	अजानीत	म०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः	प्र	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात	म	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

—

ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति	लृट्	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः	लुट्	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
ज्ञायात्, ज्ञेयात् (दोनों प्रकार है)			आ० लिङ्	ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	•
अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्		लृङ्	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	•

लिट्				लिट्		
जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ	म०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम	उ	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे
लुङ् (६)				लुङ् (४)		
अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः	प्र	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट	म	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म	उ	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

(१०) चुरादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, अतः गण का नाम चुरादिगण पड़ा। (सत्याप० चुरादिभ्यो णिच्) चुरादिगण में दसों लकारों में धातु से णिच् (अय) प्रत्यय होता है। लट् आदि में शप् (अ) और लग जाने से धातु और प्रत्यय के बीच में 'अय' विकरण हो जाता है।

(२) सूचना—प्रेरणार्थक धातुओं में भी 'हेतुमति च' सूत्र से णिच् प्रत्यय करने पर चुरादिगण की धातुओं के तुल्य ही दसों लकारों में रूप चलेंगे।

(३) (क) णिच् (अय) लगने पर धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को क्रमशः ऐ, औ, आर् वृद्धि होगी। पृ > पारयति, चि > चाययति। (ख) उपधा में अ, इ, उ, ऋ हों तो उन्हें क्रमशः आ, ए, ओ, अर् होगा। कथ्, गण्, रच् आदि कुछ धातुओं में अ को आ नहीं होता है। (ग) लृट् में परस्मै. में इष्यति लगेगा और आत्मने. में इष्यते आदि। (घ) (अर्तिह्री० 'आर्तां पुक् णौ') आकारान्त धातुओं में आ के बाद प् और लग जाता है। ज्ञा + णि > ज्ञापयति।

(४) इस गण में ४११ धातुएँ हैं। चुरादिगण तक पूरी धातुसंख्या १९७ है।

(५) चुरादिगणी धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'अय' लगाकर परस्मै. में भू के तुल्य और आत्मने. में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लिट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
लट् (धातु + अय्)				लट् (धातु + अय्)		
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
लोट् (धातु + अय्)				लोट् (धातु + अय्)		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु + अय्)				लङ् (धातु + अय्)		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	[illegible]	[illegible]	अन्त
अः	अतम्	अत	म०			
अम्	आव	आम	उ०			
विधिलिङ् (धातु + अय्)						
एत्	एताम्	एयुः	प्र०			
एः	एतम्	एत	म०			
एयम्	एव	एम	उ०			

चुरादिगण । उभयपदी धातुएँ

(९७) चुर् (चुराना) (दे० अ० ५९)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
लोट्				लोट्		
चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
लङ्				लङ्		
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि
चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	लृट्	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	•
चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः	लुट्	चोरयिता	चोरयितारौ	•
चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः	आ० लिङ्	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	
अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्		लृङ्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	•

लिट् (क) (चोरयां+कृ)				लिट् (क) (चोरयां+कृ)		
चोरयांचकार	–चक्रतुः	–चक्रुः	प्र०	चोरयांचक्रे	–चक्राते	–चक्रिरे
–चकर्थ	–चक्रथुः	–चक्र	म०	–चकृषे	–चक्राथे	–चकृढ्वे
–चकार, चकर	–चकृव	–चकृम	उ०	–चक्रे	–चकृवहे	–चकृमहे

(ख) (चोरयां+भू) चोरयांबभूव आदि (ख) (चोरयां+भू) चोरयांबभूव आदि

(ग) (चोरयाम्+अस्) चोरयामास आदि (ग) (चोरयाम्+अस्) चोरयामास आदि

लुङ् (१)				लुङ् (१)		
अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	प्र०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत	म०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	उ०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

(९८) चिन्त् (सोचना) (दे० क्र० ५१) (दोनों पदों में चुर् के तुल्य)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
चिन्तयति	चिन्तयतः	चिन्तयन्ति	प्र	चिन्तयते	चिन्तयेते	चिन्तयन्ते
चिन्तयसि	चिन्तयथः	चिन्तयथ	म	चिन्तयसे	चिन्तयेथे	चिन्तयध्वे
चिन्तयामि	चिन्तयावः	चिन्तयामः	उ०	चिन्तये	चिन्तयावहे	चिन्तयामहे
लोट्				लोट्		
चिन्तयतु	चिन्तयताम्	चिन्तयन्तु	प्र०	चिन्तयताम्	चिन्तयेताम्	चिन्तयन्ताम्
चिन्तय	चिन्तयतम्	चिन्तयत	म०	चिन्तयस्व	चिन्तयेथाम्	चिन्तयध्वम्
चिन्तयानि	चिन्तयाव	चिन्तयाम	उ	चिन्तयै	चिन्तयावहै	चिन्तयामहै
लङ्				लङ्		
अचिन्तयत्	अचिन्तयताम्	अचिन्तयन्	प्र	अचिन्तयत	अचिन्तयेताम्	अचिन्तयन्त
अचिन्तयः	अचिन्तयतम्	अचिन्तयत	म	अचिन्तयथाः	अचिन्तयेथाम्	अचिन्तयध्वम्
अचिन्तयम्	अचिन्तयाव	अचिन्तयाम	उ	अचिन्तये	अचिन्तयावहि	अचिन्तयामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चिन्तयेत्	चिन्तयेताम्	चिन्तयेयुः	प्र	चिन्तयेत	चिन्तयेयाताम्	चिन्तयेरन्
चिन्तयेः	चिन्तयेतम्	चिन्तयेत	म	चिन्तयेथाः	चिन्तयेयाथाम्	चिन्तयेध्वम्
चिन्तयेयम्	चिन्तयेव	चिन्तयेम	उ	चिन्तयेय	चिन्तयेवहि	चिन्तयेमहि

चिन्तयिष्यति	चिन्तयिष्यतः	लृट्	चिन्तयिष्यते	चिन्तयिष्येते
चिन्तयिता	चिन्तयितारौ	लुट्	चिन्तयिता	चिन्तयितारौ •
चिन्त्यात्	चिन्त्यास्ताम्	आ० लिङ्	चिन्तयिषीष्ट	चिन्तयिषीयास्ताम् •
अचिन्तयिष्यत्	अचिन्तयिष्यताम्	लृङ्	अचिन्तयिष्यत	अचिन्तयिष्येताम् •

लिट् (क) (चिन्तयां+कृ)				लिट् (क) (चिन्तयां+कृ)		
चिन्तयांचकार—चक्रतुः		—चक्रुः	प्र	चिन्तयांचक्रे	—चक्राते	—चक्रिरे
—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र	म	—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे
—चकार,चकर—चकृव		—चकृम	उ	—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे

(ख) (चिन्तयां+भू) चिन्तयांबभूव आदि (ख) (चिन्तयां+भू) चिन्तयांबभूव आदि

(ग) (चिन्तयाम्+अस्) चिन्तयामास आदि (ग) (चिन्तयाम्+अस्) चिन्तयामास आदि

लुङ् (१)				लुङ्		
अचिचिन्तत्	अचिचिन्तताम्	अचिचिन्तन्	प्र	अचिचिन्तत	अचिचिन्तेताम्	अचिचिन्तन्त
अचिचिन्तः	अचिचिन्ततम्	अचिचिन्तत	म	अचिचिन्तथाः	अचिचिन्तेथाम्	अचिचिन्तध्वम्
अचिचिन्तम्	अचिचिन्ताव	अचिचिन्ताम	उ	अचिचिन्ते	अचिचिन्तावहि	अचिचिन्तामहि

(९९) कथ् (कहना) (दे० म० ९)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर् के तुल्य।

(१००) भक्ष् (खाना) (दे० म० ९)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर् के तुल्य।

परस्मैपद—लट्

कथयति	कथयतः	कथयन्ति	प्र	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति
कथयसि	कथयथः	कथयथ	म	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
कथयामि	कथयावः	कथयामः	उ	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

—

कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु	लोट्	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्	लङ्	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः	वि लिङ्	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
कथयिष्यति	कथयिष्यतः		लृट्	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	
कथयिता	कथयितारौ		लुट्	भक्षयिता	भक्षयितारौ	
कथ्यात्	कथ्यास्ताम्		आ लिङ्	भक्ष्यात्	भक्ष्यास्ताम्	
अकथयिष्यत्	अकथयिष्यताम्		लृङ्	अभक्षयिष्यत्	अभक्षयिष्यताम्	
(क) कथयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	लिट्	(क) भक्षयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः
(ख) कथयांबभूव	(ग) कथयामास		,,	(ख) भक्षयांबभूव	(ग) भक्षयामास	
अचकथत्	अचकथताम्		लुङ्	अबभक्षत्	अबभक्षताम्	

आत्मनेपद

कथयते	कथयेते	कथयन्ते	लट्	भक्षयते	भक्षयेते	भक्षयन्ते
कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्	लोट्	भक्षयताम्	भक्षयेताम्	भक्षयन्ताम्
अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त	लङ्	अभक्षयत	अभक्षयेताम्	अभक्षयन्त
कथयेत	कथयेयाताम्	कथयेरन्	वि लिङ्	भक्षयेत	भक्षयेयाताम्	भक्षयेरन्
कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते	लृट्	भक्षयिष्यते	भक्षयिष्येते	
कथयिता	कथयितारौ		लुट्	भक्षयिता	भक्षयितारौ	
कथयिषीष्ट	कथयिषीयास्ताम्		आ लिङ्	भक्षयिषीष्ट	भक्षयिषीयास्ताम्	
अकथयिष्यत	अकथयिष्येताम्		लृङ्	अभक्षयिष्यत	अभक्षयिष्येताम्	
(क) कथयांचक्रे	—चक्राते	—चक्रिरे	लिट्	(क) भक्षयांचक्रे	—चक्राते	—चक्रिरे
(ख) कथयांबभूव	(ग) कथयामास		,,	(ख) भक्षयांबभूव	(ग) भक्षयामास	
अचकथत	अचकथेताम्		लुङ्	अबभक्षत	अबभक्षेताम्	

—

(क) णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातु

(१०१) कारि (करवाना) (व्याकरणादि के लिए देखो अभ्यास ११-१४)

सूचना—परस्मै० और आत्मने० दोनों पदों में कथ् चुर् (९७) धातु के तुल्य चलेंगे।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
कारयति	कारयतः	कारयन्ति	प्र०	कारयते	कारयेते	कारयन्ते
कारयसि	कारयथः	कारयथ	म	कारयसे	कारयेथे	कारयध्वे
कारयामि	कारयावः	कारयामः	उ०	कारये	कारयावहे	कारयामहे
लोट्				लोट्		
कारयतु	कारयताम्	कारयन्तु	प्र	कारयताम्	कारयेताम्	कारयन्ताम्
कारय	कारयतम्	कारयत	म	कारयस्व	कारयेथाम्	कारयध्वम्
कारयाणि	कारयाव	कारयाम	उ	कारयै	कारयावहै	कारयामहै
लङ्				लङ्		
अकारयत्	अकारयताम्	अकारयन्	प्र	अकारयत	अकारयेताम्	अकारयन्त
अकारयः	अकारयतम्	अकारयत	म	अकारयथाः	अकारयेथाम्	अकारयध्वम्
अकारयम्	अकारयाव	अकारयाम	उ	अकारये	अकारयावहि	अकारयामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
कारयेत्	कारयेताम्	कारयेयुः	प्र	कारयेत	कारयेयाताम्	कारयेरन्
कारयेः	कारयेतम्	कारयेत	म	कारयेथाः	कारयेयाथाम्	कारयेध्वम्
कारयेयम्	कारयेव	कारयेम	उ०	कारयेय	कारयेवहि	कारयेमहि

कारयिष्यति	कारयिष्यतः	लृट्	कारयिष्यते	कारयिष्येते
कारयिता	कारयितारौ	लुट्	कारयिता	कारयितारौ
कार्यात्	कार्यास्ताम्	आ० लिङ्	कारयिषीष्ट	कारयिषीयास्ताम्
अकारयिष्यत्	अकारयिष्यताम्	लृङ्	अकारयिष्यत	अकारयिष्येताम्

लिट् (क) (कारयां+कृ)				लिट् (क) (कारयां+कृ)		
कारयांचकार	-चक्रतुः	-चक्रुः	प्र०	कारयांचक्रे	-चक्राते	-चक्रिरे
-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र	म	-चकृषे	-चक्राथे	-चकृढ्वे
-चकार,चकर	-चकृव	-चकृम	उ	-चक्रे	-चकृवहे	-चकृमहे

(ख) (कारयां+भू) कारयांबभूव आदि — (ख) (कारयां+भू) कारयांबभूव आदि

(ग) (कारयाम्+अस्) कारयामास आदि — (ग) (कारयाम्+अस्) कारयामास आदि

लुङ् (१)				लुङ् (१)		
अचीकरत्	अचीकरताम्	अचीकरन्	प्र	अचीकरत	अचीकरेताम्	अचीकरन्त
अचीकरः	अचीकरतम्	अचीकरत	म	अचीकरथाः	अचीकरेथाम्	अचीकरध्वम्
अचीकरम्	अचीकराव	अचीकराम	उ	अचीकरे	अचीकरावहि	अचीकरामहि

(ख) सन्नन्त (इच्छार्थक) धातुएँ (देखो अभ्यास १५)

(१०२) पिपठिष (पठ + सन्) (पढ़ना चाहना) (१०३) जिज्ञास (ज्ञा + सन्) (जिज्ञासा करना)

सूचना—परस्मै में ष् के गुरुप। सूचना—आत्मने में सेष् के गुरुप

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
पिपठिषति	पिपठिषतः	पिपठिषन्ति	प्र०	जिज्ञासते	जिज्ञासेते	जिज्ञासन्ते
पिपठिषसि	पिपठिषथः	पिपठिषथ	म	जिज्ञाससे	जिज्ञासेथे	जिज्ञासध्वे
पिपठिषामि	पिपठिषावः	पिपठिषामः	उ	जिज्ञासे	जिज्ञासावहे	जिज्ञासामहे
लोट्				लोट्		
पिपठिषतु	पिपठिषताम्	पिपठिषन्तु	प्र०	जिज्ञासताम्	जिज्ञासेताम्	जिज्ञासन्ताम्
पिपठिष	पिपठिषतम्	पिपठिषत	म	जिज्ञासस्व	जिज्ञासेथाम्	जिज्ञासध्वम्
पिपठिषाणि	पिपठिषाव	पिपठिषाम	उ	जिज्ञासै	जिज्ञासावहै	जिज्ञासामहै
लङ्				लङ्		
अपिपठिषत्	अपिपठिषताम्	अपिपठिषन्	प्र	अजिज्ञासत	—सेताम्	—सन्त
अपिपठिषः	अपिपठिषतम्	अपिपठिषत	म	—सथाः	—सेथाम्	—सध्वम्
अपिपठिषम्	अपिपठिषाव	अपिपठिषाम	उ	—से	—सावहि	—सामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
पिपठिषेत्	पिपठिषेताम्	पिपठिषेयुः	प्र	जिज्ञासेत	—सेयाताम्	—सेरन्
पिपठिषेः	पिपठिषेतम्	पिपठिषेत	म	—सेथाः	—सेयाथाम्	—सेध्वम्
पिपठिषेयम्	पिपठिषेव	पिपठिषेम	उ	—सेय	—सेवहि	—सेमहि

पिपठिषिष्यति	पिपठिषिष्यतः	लृट्	जिज्ञासिष्यते	जिज्ञासिष्येते
पिपठिषिता	पिपठिषितारौ	लुट्	जिज्ञासिता	जिज्ञासितारौ
पिपठिष्यात्	पिपठिष्यास्ताम्	आ० लिङ्	जिज्ञासिषीष्ट	जिज्ञासिषीयास्ताम्
अपिपठिषिष्यत्	अपिपठिषिष्यताम्	लृङ्	अजिज्ञासिष्यत	अजिज्ञासिष्येताम्

लिट् (पिपठिष् + आम् + कृ, भू, अस्) लिट् (जिज्ञास् + आम् + कृ, भू, अस्)

(क) पिपठिषाञ्चकार	—चक्रतुः	आदि		(क) जिज्ञासाञ्चक्रे	—चक्राते	आदि
(ख) पिपठिषाम्बभूव	—बभूवतुः	आदि		(ख) जिज्ञासाम्बभूव	—बभूवतुः	आदि
(ग) पिपठिषामास	—आसतुः	—आसुः	प्र०	(ग) जिज्ञासामास	—आसतुः	—आसुः
—आसिथ	—आसथुः	—आस	म	—आसिथ	—आसथुः	—आस
—आस	—आसिव	—आसिम	उ	—आस	—आसिव	—आसिम
लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अपिपठिषीत्	—षिष्टाम्	—षिषुः	प्र०	अजिज्ञासिष्ट	—सिषाताम्	—सिषत
—षीः	—षिष्टम्	—षिष्ट	म	—सिष्ठाः	—सिषाथाम्	—सिढ्वम्
—षिषम्	—षिष्व	—षिष्म	उ	—सिषि	—सिष्वहि	—सिष्महि

(ग) भाव-कर्म-वाच्य

(१०४) कृ (करना) (दे० अ० ११ १२) (१०५) दा (देना) (दे० अ० ११ १२)

सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक० ही होगा। सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक० ही होगा।

कर्मवाच्य—लट्				कर्मवाच्य—लट्		
क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते	प्र०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे	म०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे	उ०	दीये	दीयावहे	दीयामहे
	लोट्				लोट्	
क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्	प्र०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्	म०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै	उ०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त	प्र०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्	म०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि	उ०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्	प्र०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्	म०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि	उ०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

करिष्यते, कारिष्यते (दोनों प्रकार हैं) लृट् दास्यते, दायिष्यते (दोनों प्रकार हैं)
कर्ता, कारिता („ „) लुट् दाता, दायिता („ „)
कृषीष्ट, कारिषीष्ट („ „) आ० लिङ् दासीष्ट, दायिषीष्ट („ „)
अकरिष्यत, अकारिष्यत („ „) लृङ् अदास्यत, अदायिष्यत („ „)

	लिट्				लिट्	
चक्रे	चक्राते	चक्रिरे	प्र०	ददे	ददाते	ददिरे
चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
चक्रे	चकृवहे	चकृमहे	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत	प्र०	अदायि	अदायिषाताम्	अदायिषत
अकारिष्ठाः	अकारिषाथाम्	अकारिढ्वम्	म०	अदायिष्ठाः	अदायिषाथाम्	अदायिढ्वम्
अकारिषि	अकारिष्वहि	अकारिष्महि	उ०	अदायिषि	अदायिष्वहि	अदायिष्महि

(४) धातुरूप-कोष

(सिद्धान्तकौमुदी की सभी प्रसिद्ध धातुओं के रूपों का संग्रह)

आवश्यक-निर्देश

१ सिद्धान्तकौमुदी में जितनी भी प्रसिद्ध धातुएँ हैं और जिनका संस्कृत-साहित्य में विशेषरूप से प्रयोग हुआ है, उन सभी धातुओं का यहाँ पर अकारादिक्रम से संग्रह किया गया है। प्रत्येक धातु के पूरे १० लकारों के प्रारम्भिक रूप (प्र० पु० एकवचन) यहाँ पर दिए गए हैं। साथ ही प्रत्येक धातु के णिच् प्रत्यय और कर्मवाच्य के रूप भी दिए गए हैं। इस कोष में ४६५ धातुएँ दी गई हैं।

२. जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के तुल्य ही चलेंगे। धातुरूप-संग्रह में प्रत्येक गण के प्रारम्भ में उस गण की विशेषताएँ दी हुई हैं और साथ ही संक्षिप्त-रूप भी दिए हुए हैं। जो धातु जिस गण की हो और जिस पद (परस्मै०, आत्मने० या उभयपद) की हो, उसके रूप उस गण में निर्दिष्ट संक्षिप्त-रूप लगाकर बनावें। जो उभयपदी धातुएँ परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित हैं, उनके परस्मैपद के ही रूप यहाँ दिए गए हैं। जिनके दोनों पदों में रूप प्रचलित हैं, उनके दोनों पदों के रूप दिए हैं। जिन उभयपदी धातुओं के रूप यहाँ आत्मनेपद में नहीं दिए हैं, उनके आत्मनेपद के रूप उस गण की अन्य आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलावें।

३ सिद्धान्तकौमुदी के लकारों का प्रामाणिक क्रम निम्नलिखित है। इसी क्रम से यहाँ धातुओं के रूप दिए गए हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्। अन्त में णिच् प्रत्यय और भावकर्मवाच्य का प्र० पु० एक० का रूप दिया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर लकारों के नाम दिए गए हैं। उनके नीचे प्रत्येक पंक्ति में उस लकार के रूप दिए गए हैं। रूप बाएँ और दाएँ दोनों पृष्ठ पर फैले हुए हैं, अतः उस धातु के सामने के दोनों पृष्ठ देखें।

४ प्रत्येक धातु के आगे कोष्ठ में निर्देश कर दिया गया है कि वह किस गण की है और किस पद में उसके रूप चलते हैं। साथ ही धातु का हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है। धातुओं के एक या दो ही अर्थ दिए गए हैं। संक्षेप के लिए कहीं-कहीं पर कल्पना के लिए (धा०) दिया गया है।

५ संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है :—प० = परस्मैपदी। आ० = आत्मनेपदी। उ० = उभयपदी। १ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। ११ = कण्ड्वादिगण।

६. लङ्, लुङ् और लृङ् में अ या आ शुद्ध धातु से ही पहले लगता है, उपसर्ग से पूर्व कभी नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग से मिलावें। सन्धिकार्य प्राप्त हो तो उसे भी करें। स्वर-आदिवाली धातुओं से पहले आ लगता है और व्यंजन-आदिवाली धातुओं के पहले अ लगता है।

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अघ्	(१० उ०, पाप करना)	अघयति-ते	अघयांचकार	अघयिता	अघयिष्यति	अघयतु
अङ्क्	(१० उ०, चिह्न)	अङ्कयति-ते	अङ्कयांचकार	अङ्कयिता	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज्	(७ प , स्पष्ट)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट्	(१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटिष्यति	अटतु
अत्	(१ प , सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतिष्यति	अततु
अद्	(२ प , खाना)	अत्ति	आद, जघास	अत्ता	अत्स्यति	अत्तु
अन्	(२ प , जीवित रहना) प्र+	अनिति	आन	अनिता	अनिष्यति	अनितु
अय्	(१ आ० जाना) परा+	अयते	अयांचक्रे	अयिता	अयिष्यते	अयताम्
अर्च्	(१ प , पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज्	(१ प , संग्रह)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह्	(१ प , योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव्	(१ प , रक्षा)	अवति	आव	अविता	अविष्यति	अवतु
अश्	(५ आ , व्याप्त०)	अश्नुते	आनशे	अशिता	अशिष्यते	अश्नुताम्
अश्	(९ प , खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशिष्यति	अश्नातु
अस्	(२ प , होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भविष्यति	अस्तु
अस्	(४ प , फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असिष्यति	अस्यतु
असू	(११ प , क्रोध)	असूयति	असूयांचकार	असूयिता	असूयिष्यति	असूयतु
आन्दोल्	(१ उ , हिलाना)	आन्दोलयति	आन्दोलयांचकार	आन्दोलयिता	आन्दोलयिष्यति	आन्दोलयतु
आप्	(५ प , पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्स्यति	आप्नोतु
आप्	(१ उ , पहुँचाना)	आपयति-ते	आपयांचकार	आपयिता	आपयिष्यति	आपयतु
आस्	(२ आ , बैठना)	आस्ते	आसांचक्रे	आसिता	आसिष्यते	आस्ताम्
इ	(२ प , जाना)	एति	इयाय	एता	एष्यति	एतु
इ	(अधि+, २ आ , पढ़ना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येष्यते	अधीताम्
इष्	(४ प , जाना) अनु+	इष्यति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इष्यतु
इष्	(६ प , चाहना)	इच्छति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इच्छतु
ईक्ष्	(१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षांचक्रे	ईक्षिता	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर्	(१० उ०, प्रेरणा०) प्र+	ईरयति-ते	ईरयांचकार	ईरयिता	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य्	(१ प०, ईर्ष्या)	ईर्ष्यति	ईर्ष्यांचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यिष्यति	ईर्ष्यतु
ईह्	(१ आ , चाहना)	ईहते	ईहांचक्रे	ईहिता	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ्	(६ प , छोड़ना)	उज्झति	उज्झांचकार	उज्झिता	उज्झिष्यति	उज्झतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आपत्	अपेत्	अप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	अपयति	अप्यते
आह्वत्	अह्वेत्	अह्व्यात्	आह्वित्	आह्वयिष्यत्	आह्वयति	अह्व्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	अञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयति	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत	आययति	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नुत	अश्नुवीत	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत्	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्थत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दोलयत्	आन्दोलयेत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयिष्यत्	आन्दोलयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐष्णत्	इष्णेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यते

अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
उन्द् (७ प०, भिगोना)	उनत्ति	उन्दाञ्चकार	उन्दिता	उन्दिष्यति	उनत्तु
ऊह् (१ आ, तर्क)	ऊहते	ऊहाञ्चक्रे	ऊहिता	ऊहिष्यते	ऊहताम्
ऋच्छ् (६ प, जाना)	ऋच्छति	आनर्च्छ	ऋच्छिता	ऋच्छिष्यति	ऋच्छतु
एज् (१ प, काँपना)	एजति	एजाञ्चकार	एजिता	एजिष्यति	एजतु
एध् (१ आ, बढ़ना)	एधते	एधाञ्चक्रे	एधिता	एधिष्यते	एधताम्
कण्डू (११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयाञ्चकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु
कथ् (१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयाञ्चकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु
आ	कथयते	कथयाञ्चक्रे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्
कम् (१ आ, चाहना)	कामयते	कामयाञ्चक्रे	कामयिता	कामयिष्यते	कामयताम्
कम्प् (१ आ, काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्
कांक्ष् (१ प, चाहना)	कांक्षति	चकांक्ष	कांक्षिता	कांक्षिष्यति	कांक्षतु
काश् (१ आ०, चमकना)	काशते	चकाशे	काशिता	काशिष्यते	काशताम्
कास् (१ आ०, खाँसना)	कासते	कासाञ्चक्रे	कासिता	कासिष्यते	कासताम्
कित् (१ प, चिकित्सा)	चिकित्सति	चिकित्साञ्चकार	चिकित्सिता	चिकित्सिष्यते	चिकित्सतु
कील् (१ प, गाड़ना)	कीलति	चिकील	कीलिता	कीलिष्यति	कीलतु
कु (२ प, गूँजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु
कुम्भ् (१ प, कम होना)	कुम्भति	चुकुम्भ	कुम्भिता	कुम्भिष्यति	कुम्भतु
कुत्स् (१ आ, दोष देना)	कुत्सयते	कुत्सयाञ्चक्रे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्
कुप् (४ प, क्रोध)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु
कूर्द् (१ आ, कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्
कूज् (१ प, चूँ-चूँ करना)	कूजति	चुकूज	कूजिता	कूजिष्यति	कूजतु
कृ (८ उ, करना) प	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु
आ	कुरुते	चक्रे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्
कृत् (६ प, काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्ततु
कृप् (१ आ, समर्थ होना)	कल्पते	चकॢपे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्
कृष् (१ प, खींचना)	कर्षति	चकर्ष	कर्ष्टा	कर्क्ष्यति	कर्षतु
कॄ (६ प०, बखेरना)	किरति	चकार	करिता	करिष्यति	किरतु
कॄत् (१ उ, नाम लेना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयाञ्चकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु
क्रन्द् (१ प, रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु
क्रम् (१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
औनत्	उन्द्यात्	उद्यात्	औन्दीत्	औन्दिष्यत्	उन्दयति	उद्यते
और्दत	ऊर्देत	ऊर्दिषीष्ट	और्दिष्ट	और्दिष्यत	ऊर्दयति	ऊर्द्यते
आर्म्फत्	ऋम्फेत्	ऋम्फ्यात्	आर्म्फीत्	आर्म्फिष्यत्	ऋम्फयति	ऋम्फ्यते
ऐजत्	एजेत्	एज्यात्	ऐजीत्	ऐजिष्यत्	एजयति	एज्यते
ऐधत	एधेत	एधिषीष्ट	ऐधिष्ट	ऐधिष्यत	एधयति	एध्यते
अकण्डूयत्	कण्डूयेत्	कण्डूय्यात्	अकण्डूयीत्	अकण्डूयिष्यत्	कण्डूययति	कण्डूय्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथ्यात्	अचकथत्	अकथयिष्यत्	कथयति	कथ्यते
अकथयत	कथयेत	कथयिषीष्ट	अचकथत	अकथयिष्यत	,,	,,
अकामयत	कामयेत	कामयिषीष्ट	अचीकमत	अकामयिष्यत	कामयति	काम्यते
अकम्पत	कम्पेत	कम्पिषीष्ट	अकम्पिष्ट	अकम्पिष्यत	कम्पयति	कम्प्यते
अकाङ्क्षत्	काङ्क्षेत्	काङ्क्ष्यात्	अकाङ्क्षीत्	अकाङ्क्षिष्यत्	काङ्क्षयति	काङ्क्ष्यते
अकाशत	काशेत	काशिषीष्ट	अकाशिष्ट	अकाशिष्यत	काशयति	काश्यते
अकासत	कासेत	कासिषीष्ट	अकासिष्ट	अकासिष्यत	कासयति	कास्यते
अचिकित्सत्	चिकित्सेत्	चिकित्स्यात्	अचिकित्सीत्	अचिकित्सिष्यत्	चिकित्सयति	चिकित्स्यते
अकीलत्	कीलेत्	कील्यात्	अकीलीत्	अकीलिष्यत्	कीलयति	कील्यते
अकौत्	कुयात्	कूयात्	अकौषीत्	अकोष्यत्	कावयति	कूयते
अकुञ्चत्	कुञ्चेत्	कुच्यात्	अकुञ्चीत्	अकुञ्चिष्यत्	कुञ्चयति	कुच्यते
अकुत्सयत	कुत्सयेत	कुत्सयिषीष्ट	अचुकुत्सत	अकुत्सयिष्यत	कुत्सयते	कुत्स्यते
अकुप्यत्	कुप्येत्	कुप्यात्	अकुपत्	अकोपिष्यत्	कोपयति	कुप्यते
अकूर्दत	कूर्देत	कूर्दिषीष्ट	अकूर्दिष्ट	अकूर्दिष्यत	कूर्दयति	कूर्द्यते
अकृषत्	कृषेत्	कृष्यात्	अकृक्षत्	अक्रक्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकरोत्	कुर्यात्	क्रियात्	अकार्षीत्	अकरिष्यत्	कारयति	क्रियते
अकुरुत	कुर्वीत	कृषीष्ट	अकृत	अकरिष्यत	,,	,,
अकृन्तत्	कृन्तेत्	कृत्यात्	अकर्तीत्	अकर्तिष्यत्	कर्तयति	कृत्यते
अकल्पत	कल्पेत	कल्पिषीष्ट	अक्लृपत्	अकल्पिष्यत	कल्पयति	क्लृप्यते
अकर्षत्	कर्षेत्	कृष्यात्	अकार्क्षीत्	अकर्क्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकिरत्	किरेत्	कीर्यात्	अकारीत्	अकरिष्यत्	कारयति	कीर्यते
अकीर्तयत्	कीर्तयेत्	कीर्त्यात्	अचिकीर्तत्	अकीर्तयिष्यत्	कीर्तयति	कीर्त्यते
अक्रन्दत्	क्रन्देत्	क्रन्द्यात्	अक्रन्दीत्	अक्रन्दिष्यत्	क्रन्दयति	क्रन्द्यते
अक्रामत्	क्रामेत्	क्रम्यात्	अक्रमीत्	अक्रमिष्यत्	क्रमयति	क्रम्यते

१९

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
क्री	(९ उ०, खरीदना) प	क्रीणाति	चिक्राय	क्रेता	क्रेष्यति	क्रीणातु
	आ०—	क्रीणीते	चिक्रिये	क्रेता	क्रेष्यते	क्रीणीताम्
क्रीड्	(१ प, खेलना)	क्रीडति	चिक्रीड	क्रीडिता	क्रीडिष्यति	क्रीडतु
क्रुध्	(४ प, क्रुद्ध होना)	क्रुध्यति	चुक्रोध	क्रोद्धा	क्रोत्स्यति	क्रुध्यतु
क्रुश्	(१ प, रोना)	क्रोशति	चुक्रोश	क्रोष्टा	क्रोक्ष्यति	क्रोशतु
क्लम्	(४ प थकना)	क्लाम्यति	चक्लाम	क्लमिता	क्लमिष्यति	क्लाम्यतु
क्लिद्	(४ प०, गीला होना)	क्लिद्यति	चिक्लेद	क्लेदिता	क्लेदिष्यति	क्लिद्यतु
क्लिश्	(४ आ, क्लिष्ट होना)	क्लिश्यते	चिक्लिशे	क्लेशिता	क्लेशिष्यते	क्लिश्यताम्
क्लिश्	(९ प, दुःख देना)	क्लिश्नाति	चिक्लेश	क्लेशिता	क्लेशिष्यति	क्लिश्नातु
क्वण्	(१ प, अव्यक्तशब्दकरना)	क्वणति	चक्वाण	क्वणिता	क्वणिष्यति	क्वणतु
क्वथ्	(१ प, पकाना)	क्वथति	चक्वाथ	क्वथिता	क्वथिष्यति	क्वथतु
क्षम्	(१ आ, क्षमा करना)	क्षमते	चक्षमे	क्षमिता	क्षमिष्यते	क्षमताम्
क्षम्	(४ प, क्षमा)	क्षाम्यति	चक्षाम	क्षमिता	क्षमिष्यति	क्षाम्यतु
क्षर्	(१ प०, बहना)	क्षरति	चक्षार	क्षरिता	क्षरिष्यति	क्षरतु
क्षल्	(१० उ०, धोना) प्र+	क्षालयति-ते	क्षालयाञ्चकार	क्षालयिता	क्षालयिष्यति	क्षालयतु
क्षि	(१ प, नष्ट होना)	क्षयति	चिक्षाय	क्षेता	क्षेष्यति	क्षयतु
क्षिप्	(६ उ, फेंकना)	क्षिपति–ते	चिक्षेप	क्षेप्ता	क्षेप्स्यति	क्षिपतु
क्षीब्	(१ आ०, मत्त होना)	क्षीबते	चिक्षीबे	क्षीबिता	क्षीबिष्यते	क्षीबताम्
क्षुद्	(७ उ, पीसना)	क्षुणत्ति	चुक्षोद	क्षोत्ता	क्षोत्स्यति	क्षुणत्तु
क्षुभ्	(१ आ, क्षुब्ध होना)	क्षोभते	चुक्षुभे	क्षोभिता	क्षोभिष्यते	क्षोभताम्
क्षै	(१ प, क्षीण होना)	क्षायति	चक्षौ	क्षाता	क्षास्यति	क्षायतु
क्ष्णु	(२ प, तेज करना)	क्ष्णौति	चुक्ष्णाव	क्ष्णविता	क्ष्णविष्यति	क्ष्णौतु
खण्ड्	(१ उ, तोड़ना)	खण्डयति-ते	खण्डयाञ्चकार	खण्डयिता	खण्डयिष्यति	खण्डयतु
खन्	(१ उ, खोदना)	खनति–ते	चखान	खनिता	खनिष्यति	खनतु
खाद्	(१ प खाना)	खादति	चखाद	खादिता	खादिष्यति	खादतु
खिद्	(४ आ०, खिन्न होना)	खिद्यते	चिखिदे	खेत्ता	खेत्स्यते	खिद्यताम्
खेल्	(१ प०, खेलना)	खेलति	चिखेल	खेलिता	खेलिष्यति	खेलतु
गण्	(१० उ, गिनना)	गणयति–ते	गणयाञ्चकार	गणयिता	गणयिष्यति	गणयतु
गद्	(१ प, कहना) नि+	गदति	जगाद	गदिता	गदिष्यति	गदतु
गम्	(१ प०, जाना)	गच्छति	जगाम	गन्ता	गमिष्यति	गच्छतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रैषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति-ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	,,	,,
अक्रीडत्	क्रीडेत्	क्रीड्यात्	अक्रीडीत्	अक्रीडिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोशत्	क्रोशेत्	क्रुश्यात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोशयति	क्रुश्यते
अक्लाम्यत्	क्लाम्येत्	क्लम्यात्	अक्लमत्	अक्लमिष्यत्	क्लमयति	क्लम्यते
अक्लिद्यत्	क्लिद्येत्	क्लिद्यात्	अक्लिदत्	अक्लेदिष्यत्	क्लेदयति	क्लिद्यते
अक्लिश्यत	क्लिश्येत	क्लेशिषीष्ट	अक्लेशिष्ट	अक्लेशिष्यत	क्लेशयति	क्लिश्यते
अक्लिश्नात्	क्लिश्नीयात्	क्लिश्यात्	अक्लेशीत्	अक्लेशिष्यत्	,,	,,
अक्वणत्	क्वणेत्	क्वण्यात्	अक्वणीत्	अक्वणिष्यत्	क्वाणयति	क्वण्यते
अक्वथत्	क्वथेत्	क्वथ्यात्	अक्वथीत्	अक्वथिष्यत्	क्वाथयति	क्वथ्यते
अक्षमत	क्षमेत	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	,,	,,
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षालयत्	क्षालयेत्	क्षाल्यात्	अचिक्षलत्	अक्षालयिष्यत्	क्षालयति	क्षाल्यते
अक्षयत्	क्षयेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेष्यत्	क्षापयति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीबत	क्षीबेत	क्षीबिषीष्ट	अक्षीबिष्ट	अक्षीबिष्यत	क्षीबयति	क्षीब्यते
अक्षुध्यत्	क्षुध्येत्	क्षुध्यात्	अक्षुधत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोधयति	क्षुध्यते
अक्षोभत	क्षोभेत	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत्	अक्षोभिष्यत	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षायात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्ष्णौत्	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्ष्णावीत्	अक्ष्णविष्यत्	क्ष्णावयति	क्ष्णूयते
अखण्डयत्	खण्डयेत्	खण्ड्यात्	अचखण्डत्	अखण्डयिष्यत्	खण्डयति	खण्ड्यते
अखनत्	खनेत्	खन्यात्	अखनीत्	अखनिष्यत्	खानयति	खन्यते
अखादत्	खादेत्	खाद्यात्	अखादीत्	अखादिष्यत्	खादयति	खाद्यते
अखिद्यत	खिद्येत	खित्सीष्ट	अखित्त	अखेत्स्यत	खेदयति	खिद्यते
अखेलत्	खेलेत्	खेल्यात्	अखेलीत्	अखेलिष्यत्	खेलयति	खेल्यते
अगणयत्	गणयेत्	गण्यात्	अजीगणत्	अगणयिष्यत्	गणयति	गण्यते
अगदत्	गदेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगदिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्यात्	अगमत्	अगमिष्यत्	गमयति	गम्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
गर्ज् (१ प, गरजना)	गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु
गर्ह् (१ आ०, निन्दा करना)	गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्
गर्ह् (१ उ, ,,)	गर्हयति-ते	गर्हयाञ्चकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु
गवेष् (१ उ०, खोजना)	गवेषयति	गवेषयाञ्चकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु
गाह् (१ आ, घुसना)	गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्
गुम्फ (१ प०, गूँथना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुण्ठ् (१० उ, घूँघट) अव+	गुण्ठयति	गुण्ठयाञ्चकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु
गुप् (१ प०, रक्षा करना)	गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु
गुप् (१ आ, निन्दा करना)	जुगुप्सते	जुगुप्साञ्चक्रे	जुगुप्सिता	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सताम्
गुम्फ् (६ प, गूँथना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुह् (१ उ, छिपाना)	गूहति-ते	जुगूह	गूहिता	गूहिष्यति	गूहतु
गॄ (६ प, निगलना)	गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु
गॄ (९ प, कहना)	गृणाति	,,	,,	,,	गृणातु
गै (१ प, गाना)	गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु
ग्रन्थ् (९ प०, संग्रह)	ग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु
ग्रस् (१ आ, खाना)	ग्रसते	जग्रसे	ग्रसिता	ग्रसिष्यते	ग्रसताम्
ग्रह् (९ उ, लेना) प०—	गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु
आ	गृह्णीते	जगृहे	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्
ग्लै (१ प, थकना)	ग्लायति	जग्लौ	ग्लाता	ग्लास्यति	ग्लायतु
घट् (१ आ, बनाना)	घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्
घुष् (१० उ, घोषणा)	घोषयति	घोषयाञ्चकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु
घूर्ण् (१ आ, घूमना)	घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्
घूर्ण् (६ प घूमना)	घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु
घ्रा (१ प, सूँघना)	जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु
चकास् (२ प चमकना)	चकास्ति	चकासाञ्चकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु
चक्ष् (२ आ० कहना) आ+	आचष्टे	आचचक्षे	आख्याता	आख्यास्यति	आचष्टाम्
चम् (आ+, १ प पीना)	आचामति	आचचाम	आचमिता	आचमिष्यति	आचामतु
चर् (१ प चलना)	चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु
चर्व् (१ प चबाना)	चर्वति	चचर्व	चर्विता	चर्विष्यति	चर्वतु
चल् (१ प, हिलना)	चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते
अगर्हत	गर्हेत	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत्	अगर्हयिष्यत्	,,	,,
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत्	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत	गाहयति	गाह्यते
अगुञ्जत्	गुञ्जेत्	गुञ्ज्यात्	अगुञ्जीत्	अगुञ्जिष्यत्	गुञ्जयति	गुञ्ज्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगोप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत	जुगुप्सेत	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुफ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुफ्यते
अगूहत्	गूहेत्	गुह्यात्	अगूहीत्	अगूहिष्यत्	गूहयति	गुह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृणात्	गृणीयात्	,		,,	,,	,
अगायत्	गायेत्	गेयात्	अगासीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रथ्नात्	ग्रथ्नीयात्	ग्रथ्यात्	अग्रन्थीत्	अग्रन्थिष्यत्	ग्रन्थयति	ग्रथ्यते
अग्रसत	ग्रसेत	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात्	गृह्णीयात्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत	,	,,
अग्लायत्	ग्लायेत्	ग्लायात्	अग्लासीत्	अग्लास्यत्	ग्लपयति	ग्लायते
अघटत	घटेत	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत्	घोष्यात्	अजूघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत	घूर्णेत	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	,,	,,
अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	घ्रेयात्	अघ्रात्	अघ्रास्यत्	घ्रापयति	घ्रायते
अचकात्	चकास्यात्	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्य
आचष्ट	आचक्षीत	आख्यायात्	आख्यत्	आख्यास्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्वत्	चर्वेत्	चर्व्यात्	अचर्वीत्	अचर्विष्यत्	चर्वयति	चर्व्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चालयति	चल्यते

धातु अर्थ		लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना)	प०—	चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु
	आ०—	चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्
चित् (१ प, समझना)		चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु
चित् (१ आ, सोचना)		चेतयते	चेतयांचक्रे	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्
चित्र् (१० उ, चित्र बनाना)		चित्रयति	चित्रयांचकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु
चिन्त् (१ उ, सोचना)		चिन्तयति	चिन्तयांचकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु
	आ०—	—ते	—चक्रे	„	—ते	—ताम्
चिह्न् (१० उ, चिह्न लगाना)		चिह्नयति	चिह्नयांचकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)		चोदयति	चोदयांचकार	चोदयिता	चोदयिष्यति	चोदयतु
चुम्ब् (१ प, चूमना)		चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु
चुर् (१ उ०, चुराना)		चोरयति	चोरयांचकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु
	आ०—	—ते	—चक्रे	„	—ते	—ताम्
चूर्ण् (१ उ, चूर करना)		चूर्णयति	चूर्णयांचकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयतु
चूष् (१ प चूसना)		चूषति	चुचूष	चूषिता	चूषिष्यति	चूषतु
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)		चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्
छद् (१ उ, ढकना) आ +		आच्छादयति	आच्छादयांचकार	आच्छादयिता	आच्छादयिष्यति	आच्छादयतु
छिद् (७ उ, काटना)		छिनत्ति	चिच्छेद	छेत्ता	छेत्स्यति	छिनत्तु
छुर् (६ प, काटना)		छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु
छो (४ प, काटना)		छ्यति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छ्यतु
जन् (४ आ पैदा होना)		जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्
जप् (१ प, जपना)		जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु
जल्प् (१ प, बात करना)		जल्पति	जजल्प	जल्पिता	जल्पिष्यति	जल्पतु
जागृ (२ प, जागना)		जागर्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु
जि (१ प जीतना)		जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु
जीव् (१ प, जीना)		जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु
जुष् (१ उ, प्रसन्न होना)		जोषयति	जोषयांचकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु
जृम्भ् (१ आ जँभाई लेना)		जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्
जॄ (४ प, वृद्ध होना)		जीर्यति	जजार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु
ज्ञा (९ उ, जानना)	प०—	जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु
	आ०—	जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचैषीत्	अचेष्यत्	चापयति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	,,	,,
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	,,	चेत्यते
अचित्रयत्	चित्रयेत्	चित्र्यात्	अचिचित्रत्	अचित्रयिष्यत्	चित्रयति	चित्र्यते
अचिन्तयत्	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत्	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्त्यते
—यत	—येत	चिन्तयिषीष्ट	—न्तत	—ष्यत	,,	,,
अचिह्नयत्	चिह्नयेत्	चिह्न्यात्	अचिचिह्नत्	अचिह्नयिष्यत्	चिह्नयति	चिह्न्यते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	—रत	—त	,,	,,
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्ण्यते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्टत	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्ट्यते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुरत्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छ्यत्	छ्येत्	छायात्	अच्छात्	अच्छास्यत्	छाययति	छायते
अजायत	जायेत	जनिषीष्ट	अजनिष्ट	अजनिष्यत	जनयति	जन्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजक्षत्	जक्षेत्	जक्ष्यात्	अजक्षीत्	अजक्षिष्यत्	जक्षयति	जक्ष्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजूजुषत्	अजोषयिष्यत्	जोषयति	जोष्यते
अजृम्भत	जृम्भेत	जृम्भिषीष्ट	अजृम्भिष्ट	अजृम्भिष्यत	जृम्भयति	जृम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजारीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते
अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत		

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
ज्ञा (१० उ, आज्ञा देना) आ+	ज्ञापयति	ज्ञापयांचकार	ज्ञापयिता	ज्ञापयिष्यति	ज्ञापयतु
ज्वर् (१ प, रुग्ण होना)	ज्वरति	जज्वार	ज्वरिता	ज्वरिष्यति	ज्वरतु
ज्वल् (१ प, जलना)	ज्वलति	जज्वाल	ज्वलिता	ज्वलिष्यति	ज्वलतु
टङ्क् (१ उ, चिह्न लगाना)	टङ्कयति	टङ्कयांचकार	टङ्कयिता	टङ्कयिष्यति	टङ्कयतु
डी (१ आ, उड़ना) उत्+	डयते	डिड्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्
डी (४ आ,) उत्+	डीयते	,,		,,	डीयताम्
ढौक् (१ आ, पहुँचना)	ढौकते	डुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्
तक्ष् (१ प, छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु
तड् (१ उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयांचकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु
तन् (८ उ, फैलाना) प०—	तनोति	ततान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु
आ	तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्
तन्त्र् (१ आ पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयांचक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तन्त्रयताम्
तप् (१ प, तपना)	तपति	तताप	तप्ता	तप्स्यति	तपतु
तर्क् (१ उ, सोचना)	तर्कयति	तर्कयांचकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु
तर्ज् (१ प० डाँटना)	तर्जति	ततर्ज	तर्जिता	तर्जिष्यति	तर्जतु
तर्ज् (१ आ डाँटना)	तर्जयते	तर्जयांचक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्
तंस् (१ उ, सजाना) अव+	तंसयति	तंसयांचकार	तंसयिता	तंसयिष्यति	तंसयतु
तिज् (१ आ, क्षमा करना)	तितिक्षते	तितिक्षांचक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्
तुद् (६ उ, दुःख देना)	तुदति–ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु
तुरण् (११ प०, जल्दी करना)	तुरण्यति	तुरणांचकार	तुरणिता	तुरणिष्यति	तुरण्यतु
तुल् (१ उ, तोलना)	तोलयति	तोलयांचकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु
तुष् (४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोक्ष्यति	तुष्यतु
तृप् (४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तृष् (४ प, प्यासा होना)	तृष्यति	ततर्ष	तर्षिता	तर्षिष्यति	तृष्यतु
तॄ (१ प, तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु
त्यज् (१ प छोड़ना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु
त्रप् (१ आ, लजाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्
त्रस् (४ प डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु
त्रुट् (६ प, टूटना)	त्रुटति	तुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु
त्रुट् (१ आ, तोड़ना)	त्रोटयते	त्रोटयांचक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अज्ञापयत्	ज्ञापयेत्	ज्ञाप्यात्	अजिज्ञपत्	अज्ञापयिष्यत्	ज्ञापयति	ज्ञाप्यते
अज्वरत्	ज्वरेत्	ज्वर्यात्	अज्वारीत्	अज्वरिष्यत्	ज्वरयति	ज्वर्यते
अज्वलत्	ज्वलेत्	ज्वल्यात्	अज्वालीत्	अज्वलिष्यत्	ज्वालयति	ज्वल्यते
अटंकयत्	टंकयेत्	टंक्यात्	अटटंकत्	अटंकयिष्यत्	टंकयति	टंक्यते
अडयत	डयेत	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत	डाययति	डीयते
अडीयत	डीयेत		,,		,,	,,
अढौकत	ढौकेत	ढौकिषीष्ट	अढौकिष्ट	अढौकिष्यत	ढौकयति	ढौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत	तन्वीत	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत	,,	,,
अतन्त्रयत	तन्त्रयेत	तन्त्रयिषीष्ट	अततन्त्रत	अतन्त्रयिष्यत	तन्त्रयति	तन्त्र्यते
अतपत्	तपेत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्स्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतर्जयत	तर्जयेत	तर्जयिषीष्ट	अततर्जत	अतर्जयिष्यत	,,	,,
अतंसयत्	तंसयेत्	तंस्यात्	अततंसत्	अतंसयिष्यत्	तंसयति	तंस्यते
अतितिक्षत	तितिक्षेत	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरण्यीत्	अतुरण्यिष्यत्	तुरण्यति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अतूतुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतुष्यत्	तुष्येत्	तुष्यात्	अतुषत्	अतोक्ष्यत्	तोषयति	तुष्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतृष्यत्	तृष्येत्	तृष्यात्	अतृषत्	अतर्षिष्यत्	तर्षयति	तृष्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत	त्रपेत	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रसत्	त्रसेत्	त्रस्यात्	अत्रासीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत	त्रोटयेत	त्रोटयिषीष्ट	अतुत्रुटत	अत्रोटयिष्यत	,,	त्रोट्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
त्रै (१ आ	बचाना)	त्रायते	तत्रे	त्राता	त्रास्यते	त्रायताम्
त्वक्ष् (१ प	, छीलना)	त्वक्षति	तत्वक्ष	त्वक्षिता	त्वक्षिष्यति	त्वक्षतु
त्वर् (१ आ	,जल्दी करना)	त्वरते	तत्वरे	त्वरिता	त्वरिष्यते	त्वरताम्
त्विष् (१ उ	, चमकना)	त्वेषति–ते	तित्वेष	त्वेष्टा	त्वेक्ष्यति	त्वेषतु
दण्ड् (१० उ	,दण्ड देना)	दण्डयति–ते	दण्डयांचकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु
दम् (४ प०	,दमन करना)	दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु
दम्भ् (५ प	धोखा देना)	दभ्नोति	ददम्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दभ्नोतु
दय् (१ आ०	,दया करना)	दयते	दयांचक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्
दंश् (१ प	डँसना)	दशति	ददंश	दंष्टा	दंक्ष्यति	दशतु
दह् (१ प	, जलाना)	दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु
दा (१ प	, देना)	यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु
दा (२ प	, काटना)	दाति		,,	,,	दातु
दा (३ उ	देना) प —	ददाति	,	,,	,,	ददातु
	आ० —	दत्ते	ददे	,	दास्यते	दत्ताम्
दिव् (४ प	चमकना आदि)	दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु
दिव् (१ आ	,रुलाना)	देवयते	देवयांचक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्
दिश् (६ उ	देना कहना)	दिशति–ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु
दीक्ष् (१ आ	दीक्षा देना)	दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्
दीप् (४ आ	चमकना)	दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्
दु (५ प	,दुःखित होना)	दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु
दुष् (४ प	बिगड़ना)	दुष्यति	दुदोष	दोष्टा	दोक्ष्यति	दुष्यतु
दुह् (२ उ	,दुहना) प० —	दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु
	आ० —	दुग्धे	दुदुहे		—ते	दुग्धाम्
दू (४ आ	दुःखित होना)	दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्
दृ (६ आ	,आदर करना) आ +	आद्रियते	आदद्रे	आदर्ता	आदरिष्यते	आद्रियताम्
दृप् (४ प	गर्व करना)	दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु
दृश् (१ प	, देखना)	पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु
दॄ (९ प	, फाड़ना)	दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु
दो (४ प	, काटना)	द्यति	ददौ	दाता	दास्यति	द्यतु
द्युत् (१ आ	चमकना)	द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म॰
अभासत	भासेत	भासीष्ट	अभास्त	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अत्वक्षत्	त्वक्षेत्	त्वक्ष्यात्	अत्वक्षीत्	अत्वक्षिष्यत्	त्वक्षयति	त्वक्ष्यते
अत्वरत	त्वरेत	त्वरिषीष्ट	अत्वरिष्ट	अत्वरिष्यत	त्वरयति	त्वर्यते
अत्वेषत्	त्वेषेत्	त्विष्यात्	अत्विक्षत्	अत्वेक्ष्यत्	त्वेषयति	त्विष्यते
अदण्डयत्	दण्डयेत्	दण्ड्यात्	अददण्डत्	अदण्डयिष्यत्	दण्डयति	दण्ड्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदभ्नोत्	दभ्नुयात्	दभ्यात्	अदम्भीत्	अदम्भिष्यत्	दम्भयति	दभ्यते
अदयत	दयेत	दयिषीष्ट	अदयिष्ट	अदयिष्यत	दाययति	दय्यते
अदशत्	दशेत्	दश्यात्	अदांक्षीत्	अदंक्ष्यत्	दंशयति	दश्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दायात्	दायात्	अदासीत्	,,	,,	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	,,	,,	दीयते
अदत्त	ददीत	दासीष्ट	अदित	अदास्यत	,,	,,
अदीव्यत्	दीव्येत्	दीव्यात्	अदेवीत्	अदेविष्यत्	देवयति	दीव्यते
अदेवयत	देवयेत	देवयिषीष्ट	अदीदिवत	अदेवयिष्यत	देवयति	देव्यते
अदिशत्	दिशेत्	दिश्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देशयति	दिश्यते
अदीक्षत	दीक्षेत	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत	दीप्येत	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अधोक्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	—क्ष्यत	,	,
अदूयत	दूयेत	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत	दावयति	दूयते
आद्रियत	आद्रियेत	आदृषीष्ट	आदृत	आदरिष्यत	आदारयति	आद्रियते
अदृप्यत्	दृप्येत्	दृप्यात्	अदृपत्	अदर्पिष्यत्	दर्पयति	दृप्यते
अपश्यत्	पश्येत्	दृश्यात्	अद्राक्षीत्	अद्रक्ष्यत्	दर्शयति	दृश्यते
अदृणात्	दृणीयात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अद्यत्	द्येत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अद्योतत	द्योतेत	द्योतिषीष्ट	अद्योतिष्ट	अद्योतिष्यत	द्योतयति	द्युत्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
द्रा (२ प, सोना) नि +	निद्राति	निदद्रौ	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु (१ प, पिघलना)	द्रवति	दुद्राव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह् (४ प, द्रोह करना)	द्रुह्यति	दुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष् (२ उ, द्वेष करना)	द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा (३ उ, धारण करना) प० —	दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
आ० —	धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव् (१ उ, दौड़ना, धोना)	धावति-ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु (५ उ० हिलाना)	धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुक्ष् (१ आ०, जलना)	धुक्षते	दुधुक्षे	धुक्षिता	धुक्षिष्यते	धुक्षताम्
धू (५ उ, हिलाना)	धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु
धूप् (१ प तपाना)	धूपायति	धूपायांचकार	धूपायिता	धूपायिष्यति	धूपायतु
धृ (१ उ, रखना)	धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१० उ, रखना)	धारयति-ते	धारयांचकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धृष् (१० उ०, दबाना)	धर्षयति-ते	धर्षयांचकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प पीना, चूसना)	धयति	दधौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प, फूँकना)	धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प, सोचना)	ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प शब्द करना)	ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वंस् (१ आ, नष्ट होना)	ध्वंसते	दध्वंसे	ध्वंसिता	ध्वंसिष्यते	ध्वंसताम्
नद् (१ प, नाद करना)	नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द् (१ प, प्रसन्न होना)	नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प, झुकना) प्र +	नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प, नष्ट होना)	नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ, बाँधना)	नह्यति-ते	ननाह	नद्धा	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (३ उ, धोना)	नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प निन्दा)	निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ, ले जाना) प —	नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
आ०—	नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति)	नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ, प्रेरणा देना)	नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेट्	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	"	"
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनुयात्	धूयात्	अधौषीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	अधोक्ष्यत	दोहयति	दुह्यते
अधूनोत्	धूनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधार्षीत्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	"	धार्यते
अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदधर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धृष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वनीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वंसत	ध्वंसेत	ध्वंसिषीष्ट	अध्वंसिष्ट	अध्वंसिष्यत	ध्वंसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनंसीत्	अनंस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनैष्ट	अनेष्यत		"
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट
नृत्	(४ प, नाचना)	नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु
पच्	(१ उ, पकाना) प० —	पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
	आ —	पचते	पेचे	"	पक्ष्यते	पचताम्
पठ्	(१ प, पढ़ना)	पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु
पण्	(१ आ०, खरीदना)	पणते	पेणे	पणिता	पणिष्यते	पणताम्
पत्	(१ प, गिरना)	पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु
पद्	(४ आ, जाना)	पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्
पश्	(१ उ०, बाँधना)	पाशयति-ते	पाशयांचकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु
पा	(१ प पीना)	पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु
पा	(२ प, रक्षा करना)	पाति	पपौ	"	"	पातु
पाल्	(१० उ, पालना)	पालयति-ते	पालयांचकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु
पिष्	(७ प०, पीसना)	पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु
पीड्	(१ उ, दुःख देना)	पीडयति-ते	पीडयांचकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु
पुष्	(४ प, पुष्ट करना)	पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु
पुष्	(९ प, ")	पुष्णाति	"	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु
पुष	(१ उ०, पालना)	पोषयति-ते	पोषयांचकार	पोषयिता	पोषयिष्यति	पोषयतु
पू	(१ आ, पवित्र)	पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्
पू	(९ उ, पवित्र)	पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु
पूज्	(१ उ०, पूजना)	पूजयति-ते	पूजयांचकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु
पूर्	(१ उ, भरना)	पूरयति-ते	पूरयांचकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु
पॄ	(१ प पालना)	पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु
पॄ	(१० उ, पालना)	पारयति-ते	पारयांचकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु
प्यै	(१ आ, बढ़ना) आ +	प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्
प्रच्छ्	(६ प०, पूछना)	पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु
प्रथ्	(१ आ, फैलना)	प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्
प्री	(४ आ, प्रसन्न होना)	प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्
प्री	(९ उ, प्रसन्न करना)	प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु
प्री	(१ उ, ")	प्रीणयति	प्रीणयांचकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणयतु
प्लु	(१ आ, कूदना)	प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्
प्लुष्	(१ प, जलाना)	प्लोषति	पुप्लोष	प्लोषिता	प्लोषिष्यति	प्लोषतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयते	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपचत	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	,	,,
अपठत्	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पणेत	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतेत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपद्यत	पद्येत	पत्सीष्ट	अपादि	अपत्स्यत	पादयति	पद्यते
अपाययत्	पाययेत्	पाय्यात्	अपीप्यत्	अपाययिष्यत्	पाययति	पाय्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात्	पायात्	अपासीत्	,,	पालयति	पायते
अपालयत्	पालयेत्	पाल्यात्	अपीपलत्	अपालयिष्यत्	,	पाल्यते
अपिनट्	पिंष्यात्	पिष्यात्	अपिषत्	अपेक्ष्यत्	पेषयति	पिष्यते
अपीडयत्	पीडयेत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्यत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्णात्	पुष्णीयात्	,,	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	,	,,
अपोषयत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	,,	पोष्यते
अपवत	पवेत	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत	पावयति	पूयते
अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	,,	[illegible]
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूपुजत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिपः	पिपूर्यात्	पूर्यात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूर्यते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अप्यायत	प्यायेत	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत	प्याययति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छ्यात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छ्यते
अप्रथत	प्रथेत	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत	प्राथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत	प्रेषीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत	प्राययति	प्रीयते
अप्रीणात्	प्रीणीयात्	प्रीयात्	अप्रैषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	,
अप्रीणयत्	प्रीणयेत्	प्रीण्यात्	अपिप्रिणत्	अप्रीणयिष्यत्	,,	प्रीण्यते
अप्लवत	प्लवेत	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लोषीत्	अप्लोषिष्यत्	प्लोषयति	प्लुष्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
फल्	(१ प०, फलना)	फलति	पफाल	फलिता	फलिष्यति	फलतु
बध्	(१ आ , बीभत्स होना)	बीभत्सते	बीभत्सांचक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बध्	(१ उ , बाँधना)	बाधयति	बाधयांचकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध्	(९ प०, बाँधना)	बध्नाति	बबन्ध	बन्धा	भन्त्स्यति	बध्नातु
बाध्	(१ आ०, पीडा देना)	बाधते	बबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्
बुध्	(१ उ , समझना)	बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु
बुध्	(४ आ , जानना)	बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्
ब्रू	(२ उ , बोलना) प	ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु
	आ —	ब्रूते	ऊचे	,,	वक्ष्यते	ब्रूताम्
भक्ष्	(१० उ , खाना) प	भक्षयति	भक्षयाञ्चकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु
	आ —	भक्षयते	भक्षयाञ्चक्रे	,,	—ते	—ताम्
भज्	(१ उ , सेवा करना)	भजति-ते	बभाज	भक्ता	भक्ष्यति	भजतु
भञ्ज्	(७ प , तोड़ना)	भनक्ति	बभञ्ज	भङ्क्ता	भङ्क्ष्यति	भनक्तु
भण्	(१ प , कहना)	भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु
भर्त्स्	(१ आ०, डाँटना)	भर्त्सयते	भर्त्सयाञ्चक्रे	भर्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्
भा	(२ प०, चमकना)	भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु
भाष्	(१ आ , कहना)	भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्
भास्	(१ आ , चमकना)	भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्
भिक्ष्	(१ आ , माँगना)	भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्
भिद्	(७ उ , तोड़ना)	भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु
भी	(३ प , डरना)	बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु
भुज्	(७ प , पालना)	भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनक्तु
	(७ आ , खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	,,	—ते	भुङ्क्ताम्
भू	(१ प , होना)	भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु
भूष्	(१ उ , सजाना)	भूषयति-ते	भूषयाञ्चकार	भूषयिता	भूषयिष्यति	भूषयतु
भृ	(१ उ पालना)	भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु
भृ	(३ उ , पालना)	बिभर्ति	,,	,,	,,	बिभर्तु
भ्रम्	(१ प , घूमना)	भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्रमतु
भ्रम्	(४ प , घूमना)	भ्राम्यति	,,	,,	,,	भ्राम्यतु
भ्रंश्	(१ आ , गिरना)	भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अफलत्	फलेत्	फल्यात्	अफालीत्	अफलिष्यत्	फालयति	फल्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधयत्	बाधयेत्	बाध्यात्	अबीबधत्	अबाधयिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत	,,	,,
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यते
अब्रूत	ब्रुवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत	,,	,,
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अबभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यते
—यत	—येत	भक्षयिषीष्ट	—यत	—ष्यत	,,	,,
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्	भञ्ज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभङ्क्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यते
अभणत्	भणेत्	भण्यात्	अभाणीत्	अभणिष्यत्	भाणयति	भण्यते
अभर्त्सयत	भर्त्सयेत	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत	अभर्त्सयिष्यत	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभात्	भायात्	भायात्	अभासीत्	अभास्यत्	भापयति	भायते
अभाषत	भाषेत	भाषिषीष्ट	अभाषिष्ट	अभाषिष्यत	भाषयति	भाष्यते
अभासत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अभिक्षत	भिक्षेत	भिक्षिषीष्ट	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिष्यत	भिक्षयति	भिक्ष्यते
अभिनत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अबिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भाययति	भीयते
अभुनक्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	—त	,,	,
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूषयत्	भूषयेत्	भूष्यात्	अबुभूषत्	अभूषयिष्यत्	भूषयति	भूष्यते
अभरत्	भरेत्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रियते
अबिभः	बिभृयात्	,,	,	,,	,,	,
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	,,	अभ्रमत्	,	,,	,,
अभ्रंशत	भ्रंशेत	भ्रंशिषीष्ट	अभ्रंशिष्ट	अभ्रंशिष्यत	भ्रंशयति	भ्रंश्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भ्रस्ज् (६ उ, भूनना)	भृज्जति-ते	बभ्रज्ज	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	भृज्जतु
भ्राज् (१ आ, चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्
मण्ड् (१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयांचकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु
मथ् (१ प, मथना)	मथति	ममाथ	मथिता	मथिष्यति	मथतु
मद् (४ प, प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु
मन् (४ आ, मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्
मन् (८ आ, मानना)	मनुते	,,	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्
मन्त्र् (१ आ, मंत्रणा)	मन्त्रयते	मन्त्रयांचक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्
मन्थ् (९ प, मथना)	मथ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मथ्नातु
मस्ज् (६ प, डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	मज्जतु
मा (२ प, नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु
मा (३ आ, मापना)	मिमीते	ममे	माता	मास्यते	मिमीताम्
मान् (१ आ, जिज्ञासा)	मीमांसते	मीमांसांचक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्
मान् (१० उ०, आदर)	मानयति-ते	मानयांचकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु
मार्ग् (१० उ, ढूँढना)	मार्गयति-ते	मार्गयांचकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु
मार्ज् (१ उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मिल् (६ उ, मिलना)	मिलति-ते	मिमेल	मेलिता	मेलिष्यति	मिलतु
मिश्र् (१० उ, मिलाना)	मिश्रयति-ते	मिश्रयांचकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु
मिह् (१ प, गीला करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्ष्यति	मेहतु
मील् (१ प, आँख मींचना)	मीलति	मिमील	मीलिता	मीलिष्यति	मीलतु
मुच् (६ उ, छोड़ना) प० —	मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्ष्यति	मुञ्चतु
आ —	मुञ्चते	मुमुचे	,,	मोक्ष्यते	मुञ्चताम्
मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति-ते	मोचयांचकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु
मुद् (१ आ, प्रसन्न होना)	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्
मुर्च्छ् (१ प, मूर्छित होना)	मूर्च्छति	मुमूर्च्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूर्च्छतु
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोषिता	मोषिष्यति	मुष्णातु
मुह् (४ प, मोह में पड़ना)	मुह्यति	मुमोह	मोहिता	मोहिष्यति	मुह्यतु
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्
मृग् (१० आ०, ढूँढना)	मृगयते	मृगयांचक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्
मृज् (२ प, साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मार्जिता	मार्जिष्यति	मार्ष्टु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अभ्रज्जत्	भृज्जेत्	भृज्ज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्रज्जयति	भृज्ज्यते
अभ्राशत	भ्राशेत	भ्राशिषीष्ट	अभ्राशिष्ट	अभ्राशिष्यत	भ्राशयति	भ्राश्यते
अमण्डत्	मण्डेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	मण्ड्यते
अमथत्	मथेत्	मथ्यात्	अमथीत्	अमथिष्यत्	माथयति	मथ्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदीत्	अमदिष्यत्	मदयति	मद्यते
अमन्यत	मन्येत	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत	मानयति	मन्यते
अमनुत	मन्वीत	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत	,,	,,
अमन्त्रयत	मन्त्रयेत	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत	अमन्त्रयिष्यत	मन्त्रयति	मन्त्र्यते
अमथ्नात्	मथ्नीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्ज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत	मिमीत	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत	,,	,,
अमीमांसत	मीमांसेत	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिलत्	मिलेत्	मिल्यात्	अमेलीत्	अमेलिष्यत्	मेलयति	मिल्यते
अमिश्रयत्	मिश्रयेत्	मिश्र्यात्	अमिमिश्रत्	अमिश्रयिष्यत्	मिश्रयति	मिश्र्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमीलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुच्यात्	अमुचत्	अमोक्ष्यत्	मोचयति	मुच्यते
अमुञ्चत	मुञ्चेत	मुक्षीष्ट	अमुक्त	अमोक्ष्यत	,,	,,
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत	मोदेत	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत	मोदयति	मुद्यते
अमूर्छत्	मूर्छेत्	मूर्छ्यात्	अमूर्छीत्	अमूर्छिष्यत्	मूर्छयति	मूर्छ्यते
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोषीत्	अमोषिष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुह्यत्	मुह्येत्	मुह्यात्	अमुहत्	अमोहिष्यत्	मोहयति	मुह्यते
अम्रियत	म्रियेत	मृषीष्ट	अमृत	मरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमृगयत	मृगयेत	मृगयिषीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत	मृगयति	मृग्यते
अमार्ट्	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्जीत्	अमार्जिष्यत्	मार्जयति	मृज्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मृज् (१ उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष् (१ उ, क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयांचकार	मर्षयिता	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्ना (१ प, मानना) आ+	मनति	मम्नौ	म्नाता	म्नास्यति	मनतु
म्लै (१ प०, मुरझाना)	म्लायति	मम्लौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लायतु
यज् (१ उ, यज्ञ करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु
यत् (१ आ० यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्
यन्त्र् (१ उ, नियमित)	यन्त्रयति	यन्त्रयांचकार	यन्त्रयिता	यन्त्रयिष्यति	यन्त्रयतु
यम् (१ प, रोकना) नि+	यच्छति	ययाम	यन्ता	यंस्यति	यच्छतु
यस् (४ प, यत्न करना) प्र+	यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु
या (२ प, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु
याच् (१ उ, माँगना) प०	याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु
आ०—	याचते	ययाचे	,,	—ते	—ताम्
यापि (या+णिच्, बिताना)	यापयति	यापयांचकार	यापयिता	यापयिष्यति	यापयतु
युज् (४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्
युज् (७ उ, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	,,	योक्ष्यति	युनक्तु
युज् (१० उ, लगाना)	योजयति-ते	योजयांचकार	योजयिता	योजयिष्यति	योजयतु
युध् (४ आ लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्
रक्ष् (१ प, रक्षा करना)	रक्षति	ररक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु
रच् (१ उ, बनाना)	रचयति-ते	रचयांचकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु
रञ्ज् (४ उ प्रसन्न होना)	रज्यति-ते	ररञ्ज	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	रज्यतु
रट् (१ प, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु
रम् (१ आ, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्
(वि+रम्, पर)	विरमति	विरराम	विरन्ता	विरंस्यति	विरमतु
रस् (१ उ, स्वाद लेना)	रसयति-ते	रसयांचकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु
राज् (१ उ, चमकना) प	राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु
आ —	राजते	रेजे	,,	—ते	—ताम्
राध् (५ प, पूरा करना) आ+	राध्नोति	रराध	राद्धा	रात्स्यति	राध्नोतु
रु (२ प, शब्द करना)	रौति	रुराव	रविता	रविष्यति	रौतु
रुच् (१ आ, अच्छा लगना)	रोचते	रुरुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्
रुद् (२ प, रोना)	रोदिति	रुरोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अमनत्	मनेत्	म्नायात्	अम्नासीत्	अम्नास्यत्	म्नापयति	म्नायते
अम्लायत्	म्लायेत्	म्लायात्	अम्लासीत्	अम्लास्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्र्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	यम्यात्	अयंसीत्	अयंस्यत्	नियमयति	नियम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	आयासयते	यस्यते
अयात्	यायात्	यायात्	अयासीत्	अयास्यत्	यापयति	यायते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
—त	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	—त	"	"
अयापयत्	यापयेत्	याप्यात्	अयीयपत्	अयापयिष्यत्	—	याप्यते
अयुज्यत	युज्येत	युक्षीष्ट	अयुक्त	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युञ्ज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	"	"
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयूयुजत्	अयोजयिष्यत्	,	योज्यते
अयुध्यत	युध्येत	युत्सीष्ट	अयुद्ध	अयोत्स्यत	योधयति	युध्यते
अरक्षत्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरचयत्	रचयेत्	रच्यात्	अररचत्	अरचयिष्यत्	रचयति	रच्यते
अरज्यत	रज्येत्	रज्यात्	अराङ्क्षीत्	अरङ्क्ष्यत्	रञ्जयति	रज्यते
अरटत्	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
व्यरमत्	विरमेत्	विरम्यात्	व्यरंसीत्	व्यरंस्यत्	विरमयति	विरम्यते
अरसयत्	रसयेत्	रस्यात्	अररसत्	अरसयिष्यत्	रसयति	रस्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
—त	—त	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	"	,
अराध्नोत्	राध्नुयात्	राध्यात्	अरात्सीत्	अरात्स्यत्	राधयति	राध्यते
अरौत्	रुयात्	रूयात्	अरावीत्	अराविष्यत्	रावयति	रूयते
अरोचत	रोचेत	रोचिषीष्ट	अरोचिष्ट	अरोचिष्यत	रोचयते	रुच्यते
अरोदीत्	रुद्यात्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अरुष्यत्	रुष्येत्	रुष्यात्	अरुषत्	अरोषिष्यत्	रोषयति	रुष्यते
अरुन्ध	रुन्धीत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	—त	,,	,,
अरोहत्	रोहेत्	रुह्यात्	अरुक्षत्	अरोक्ष्यत्	रोहयति	रुह्यते
अरूपयत्	रूपयेत्	रूप्यात्	अरुरूपत्	अरूपयिष्यत्	रूपयति	रूप्यते
अलक्षयत्	लक्षयेत्	लक्ष्यात्	अललक्षत्	अलक्षयिष्यत्	लक्षयति	लक्ष्यते
अलगत्	लगेत्	लग्यात्	अलगीत्	अलगिष्यत्	लागयति	लग्यते
अलङ्घत	लङ्घेत	लङ्घिषीष्ट	अलङ्घिष्ट	अलङ्घिष्यत	लङ्घयति	लङ्घ्यते
अलङ्घयत्	लङ्घयेत्	लङ्घ्यात्	अललङ्घत्	अलङ्घयिष्यत्	,,	,,
अलाञ्छत्	लाञ्छेत्	लाञ्छ्यात्	अलाञ्छीत्	अलाञ्छ विष्यत्	लाञ्छयति	लाञ्छ्यते
अलपत्	लपेत्	लप्यात्	अलपीत्	अलपिष्यत्	लापयति	लप्यते
अलभत	लभेत	लप्सीष्ट	अलब्ध	अलप्स्यत	लम्भयति	लभ्यते
अलम्बत	लम्बेत	लम्बिषीष्ट	अलम्बिष्ट	अलम्बिष्यत	लम्बयति	लम्ब्यते
अलषत्	लषेत्	लष्यात्	अलषीत्	अलषिष्यत्	लाषयति	लष्यते
अलसत्	लसेत्	लस्यात्	अलसीत्	अलसिष्यत्	लासयति	लस्यते
अलज्जत	लज्जेत	लज्जिषीष्ट	अलज्जिष्ट	अलज्जिष्यत	लज्जयति	लज्ज्यते
अलिखत्	लिखेत्	लिख्यात्	अलेखीत्	अलेखिष्यत्	लेखयति	लिख्यते
आलिङ्गत्	आलिङ्गेत्	आलिङ्ग्यात्	आलिङ्गीत्	आलिङ्गिष्यत्	आलिङ्गयति	आलिङ्ग्यते
अलिम्पत्	लिम्पेत्	लिप्यात्	अलिपत्	अलेप्स्यत्	लेपयति	लिप्यते
अलेट्	लिह्यात्	लिह्यात्	अलिक्षत्	अलेक्ष्यत्	लेहयति	लिह्यते
अलीयत	लीयेत	लेषीष्ट	अलेष्ट	अलेष्यत्	लापयति	लीयते
अलुण्ठत्	लुण्ठेत्	लुण्ठ्यात्	अलुण्ठीत्	अलुण्ठिष्यत्	लुण्ठयति	लुण्ठ्यते
अलोटत्	लोटेत्	लुट्यात्	अलोटीत्	अलोटिष्यत्	लोटयति	लुट्यते
अलुभ्यत्	लुभ्येत्	लुभ्यात्	अलुभत्	अलोभिष्यत्	लोभयति	लुभ्यते
अलुम्पत्	लुम्पेत्	,,	,,	अलोप्स्यत्	,,	,,
अलुम्पत्	लुम्पेत्	लुप्यात्	अलोपीत्	अलोपिष्यत्	लोपयति	लुप्यते
अलुनात्	लुनीयात्	लूयात्	अलावीत्	अलविष्यत्	लावयति	लूयते
अलोकयत्	लोकयेत्	लोक्यात्	अलुलोकत्	अलोकयिष्यत्	लोकयति	लोक्यते
अलोचयत्	लोचयेत्	लोच्यात्	अलुलोचत्	अलोचयिष्यत्	लोचयति	लोच्यते
अवाचयत्	वाचयेत्	वाच्यात्	अवीवचत्	अवाचयिष्यत्	वाचयति	वाच्यते
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवदत्	वदेत्	उद्यात्	अवादीत्	अवदिष्यत्	वादयति	उद्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द् (१ आ, प्रणाम)	वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप् (१ उ० बोना)	वपति-ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम् (१ प, उगलना)	वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस् (१ प, रहना)	वसति	उवास	वस्ता	वत्स्यति	वसतु
वह् (१ उ, ढोना)	वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा (२ प, हवा चलना)	वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ् (१ प चाहना)	वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छतु
विद् (२ प जानना)	वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेत्तु
विद् (४ आ, होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद् (६ उ पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद् (१० आ, कहना) नि+	वेदयते	वेदयांचक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम्
विश् (६ प, घुसना) प्र+	विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज् (१ उ पंखा झलना)	वीजयति-ते	वीजयांचकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ (५ उ चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणोतु
वृ (९ आ, छाँटना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ (१० उ, हटाना, रोकना)	वारयति-ते	वारयांचकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वर्ज् (१ उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते	वर्जयांचकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत् (१ आ होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध् (१ आ, बढ़ना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष् (१ प, बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे (१ उ बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप् (१ आ, काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट् (१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्यथ् (१ आ, दुःखित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध् (४ प, बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज् (१ प जाना) परि+	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक् (५ प, सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नोतु
शङ्क् (१ आ, शंका करना)	शङ्कते	शशङ्के	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप् (१ उ शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम् (४ प, शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस् (१ प प्रशंसा करना) प्र+	शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान् (१ उ, तेज करना)	शीशांसति	शीशांसांचकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांसतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छ्यात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छ्यते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	वित्सीष्ट	अवित्त	अवेत्स्यत		,,
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत्		,,
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अवीविदत	अवेदयिष्यत	'	वेद्यते
अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत		,,
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्		वार्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत	वर्धेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत	वेपेत	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत	वेष्टेत	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्ययत	व्ययेत	व्ययिषीष्ट	अव्ययिष्ट	अव्ययिष्यत	व्यययति	व्यय्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्याधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशङ्कत	शङ्केत	शङ्किषीष्ट	अशङ्किष्ट	अशङ्किष्यत	शङ्कयति	शङ्क्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशंसत्	शंसेत्	शंस्यात्	अशंसीत्	अशंसिष्यत्	शंसयति	शस्यते
अशीशांसत्	शीशांसेत्	शीशांस्यात्	अशीशांसीत्	अशीशांसिष्यत्	शीशांसयति	शीशांस्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शास्	(२ प, शिक्षा देना)	शास्ति	शशास	शासिता	शासिष्यति	शास्तु
शिक्ष्	(१ आ, सीखना)	शिक्षते	शिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी	(२ आ० सोना)	शेते	शिश्ये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच्	(१ प, शोक करना)	शोचति	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुध्	(४ प शुद्ध होना)	शुध्यति	शुशोध	शोद्धा	शोत्स्यति	शुध्यतु
शुभ्	(१ आ, चमकना)	शोभते	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष्	(४ प०, सूखना)	शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शॄ	(९ प नष्ट करना)	शृणाति	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
शो	(४ प, छीलना)	श्यति	शशौ	शाता	शास्यति	श्यतु
श्चुत्	(१ प, चूना)	श्चोतति	चुश्चोत	श्चोतिता	श्चोतिष्यति	श्चोततु
श्रम्	(४ प, श्रम करना)	श्राम्यति	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि	(१ उ, आश्रय लेना) आ+	श्रयति-ते	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु
श्रु	(१ प, सुनना)	शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ्	(१ आ, प्रशंसा करना)	श्लाघते	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष्	(४ प, आलिंगन)	श्लिष्यति	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस्	(२ प, साँस लेना)	श्वसिति	शश्वास	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
ष्ठिव्	(१ प, थूकना) नि+	ष्ठीवति	तिष्ठेव	ष्ठेविता	ष्ठेविष्यति	ष्ठीवतु
सञ्ज्	(१ प, मिलना)	सजति	ससञ्ज	सङ्क्ता	सङ्क्ष्यति	सजतु
सद्	(१ प बैठना) नि+	सीदति	ससाद	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
सह्	(१ आ सहना)	सहते	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
साध्	(५ प, पूरा करना)	साध्नोति	ससाध	साद्धा	सात्स्यति	साध्नोतु
सान्त्व्	(१० उ, धैर्य बँधाना)	सान्त्वयति	सान्त्वयाञ्चकार	सान्त्वयिता	सान्त्वयिष्यति	सान्त्वयतु
सि	(५ उ बाँधना)	सिनोति	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच्	(६ उ०, सींचना)	सिञ्चति-ते	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिञ्चतु
सिध्	(४ प, पूरा होना)	सिध्यति	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिव्	(४ प, सीना)	सीव्यति	सिषेव	सेविता	सेविष्यति	सीव्यतु
सु	(५ उ, निचोड़ना)	सुनोति	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू	(२ आ, जन्म देना)	सूते	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्
सूच्	(१० उ, सूचना देना)	सूचयति	सूचयाञ्चकार	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सूत्र्	(१० उ संक्षिप्त करना)	सूत्रयति	सूत्रयाञ्चकार	सूत्रयिता	सूत्रयिष्यति	सूत्रयतु
सृ	(१ प, सरकना)	सरति	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
सृज्	(६ प, बनाना)	सृजति	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशासिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षत	शिक्षेत	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुध्यत्	शुध्येत्	शुध्यात्	अशुधत्	अशोत्स्यत्	शोधयति	शुध्यते
अशोभत	शोभेत	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशुष्यत्	शुष्येत्	शुष्यात्	अशुषत्	अशोक्ष्यत्	शोषयति	शुष्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशरिष्यत्	शारयति	शीर्यते
अश्यत्	श्येत्	शायात्	अशासीत्	अशास्यत्	शाययति	शायते
अश्चोतत्	श्चोतेत्	श्चुत्यात्	अश्चोतीत्	अश्चोतिष्यत्	श्चोतयति	श्चुत्यते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत्	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अशिश्रियत्	अश्रयिष्यत्	श्राययति	श्रीयते
अशृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत	श्लाघेत	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत्	श्लेषयति	श्लिष्यते
अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत्	श्वासयति	श्वस्यते
अष्ठीवत्	ष्ठीवेत्	ष्ठीव्यात्	अष्ठेवीत्	अष्ठेविष्यत्	ष्ठेवयति	ष्ठीव्यते
असजत्	सजेत्	सज्यात्	असाङ्क्षीत्	असङ्क्ष्यत्	सञ्जयति	सज्यते
असीदत्	सीदेत्	सद्यात्	असदत्	असत्स्यत्	सादयति	सद्यते
असहत	सहेत	सहिषीष्ट	असहिष्ट	असहिष्यत	साहयति	सह्यते
असाध्नोत्	साध्नुयात्	साध्यात्	असात्सीत्	असात्स्यत्	साधयति	साध्यते
असान्त्वयत्	सान्त्वयेत्	सान्त्व्यात्	अससान्त्वत्	असान्त्वयिष्यत्	सान्त्वयति	सान्त्व्यते
असिनोत्	सिनुयात्	सीयात्	असैषीत्	असेष्यत्	साययति	सीयते
असिञ्चत्	सिञ्चेत्	सिच्यात्	असिचत्	असेक्ष्यत्	सेचयति	सिच्यते
असिध्यत्	सिध्येत्	सिध्यात्	असिधत्	असेत्स्यत्	साधयति	सिध्यते
असीव्यत्	सीव्येत्	सीव्यात्	असेवीत्	असेविष्यत्	सेवयति	सीव्यते
असुनोत्	सुनुयात्	सूयात्	असावीत्	असोष्यत्	सावयति	सूयते
असूत	सुवीत	सविषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत	,,	
असूचयत्	सूचयेत्	सूच्यात्	असुसूचत्	असूचयिष्यत्	सूचयति	सूच्यते
असूत्रयत्	सूत्रयेत्	सूत्र्यात्	असुसूत्रत्	असूत्रयिष्यत्	सूत्रयति	सूत्र्यते
असरत्	सरेत्	स्रियात्	असार्षीत्	असरिष्यत्	सारयति	स्रियते
असृजत्	सृजेत्	सृज्यात्	अस्राक्षीत्	अस्रक्ष्यत्	सर्जयति	सृज्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सेव् (१ आ०, सेवा करना)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्
सो (४ प, नष्ट होना) अव +	स्यति	ससौ	साता	सास्यति	स्यतु
स्खल् (१ प, गिरना)	स्खलति	चस्खाल	स्खलिता	स्खलिष्यति	स्खलतु
स्तु (२ उ० स्तुति करना)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु
स्तॄ (९ उ, ढकना, फैलाना)	स्तृणाति	तस्तार	स्तरिता	स्तरिष्यति	स्तृणातु
स्था (१ प० रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु
स्ना (२ प०, नहाना)	स्नाति	सस्नौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु
स्निह् (४ प, स्नेह करना)	स्निह्यति	सिष्णेह	स्नेहिता	स्नेहिष्यति	स्निह्यतु
स्पन्द् (१ आ०, फड़कना)	स्पन्दते	पस्पन्दे	स्पन्दिता	स्पन्दिष्यते	स्पन्दताम्
स्पर्ध् (१ आ, स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्
स्पृश् (६ प, छूना)	स्पृशति	पस्पर्श	स्प्रष्टा	स्प्रक्ष्यति	स्पृशतु
स्पृह् (१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयांचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु
स्फुट् (६ प, खिलना)	स्फुटति	पुस्फोट	स्फुटिता	स्फुटिष्यति	स्फुटतु
स्फुर् (६ प०, फड़कना)	स्फुरति	पुस्फोर	स्फुरिता	स्फुरिष्यति	स्फुरतु
स्मि (१ आ० मुस्कराना)	स्मयते	सिस्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्
स्मृ (१ प, सोचना)	स्मरति	सस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु
स्यन्द् (१ आ० बहना)	स्यन्दते	सस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यन्दताम्
स्रंस् (१ आ०, खिसकना)	स्रंसते	सस्रंसे	स्रंसिता	स्रंसिष्यते	स्रंसताम्
स्रु (१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु
स्वद् (१० उ, स्वाद लेना) आ +	स्वादयति	स्वादयांचकार	स्वादयिता	स्वादयिष्यति	स्वादयतु
स्वप् (२ प, सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु
हन् (२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु
हस् (१ प, हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
हा (३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु
हिंस् (७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिंस	हिंसिता	हिंसिष्यति	हिनस्तु
हु (३ प, यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु
हृ (१ उ० ले जाना, चुराना)	हरति-ते	जहार	हर्ता	हरिष्यति	हरतु
हृष् (४प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु
ह्नु (२ आ० छिपाना) अप+	ह्नुते	जुह्नुवे	ह्नोता	ह्नोष्यते	ह्नुताम्
ह्रस् (१ प, कम होना)	ह्रसति	जह्रास	ह्रसिता	ह्रसिष्यति	ह्रसतु
ह्री (३ प, लजाना)	जिह्रेति	जिह्राय	ह्रेता	ह्रेष्यति	जिह्रेतु
ह्वे (१ उ, बुलाना) आ +	आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मणि
असेवत	सेवेत	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत	सेवयति	सेव्यते
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
अस्खलत्	स्खलेत्	स्खल्यात्	अस्खालीत्	अस्खलिष्यत्	स्खालयति	स्खल्यते
अस्तौत्	स्तुयात्	स्तूयात्	अस्तावीत्	अस्तोष्यत्	स्तावयति	स्तूयते
अस्तृणात्	स्तृणीयात्	स्तीर्यात्	अस्तारीत्	अस्तरिष्यत्	स्तारयति	स्तीर्यते
अतिष्ठत्	तिष्ठेत्	स्थेयात्	अस्थात्	अस्थास्यत्	स्थापयति	स्थीयते
अस्नात्	स्नायात्	स्नायात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नापयति	स्नायते
अस्निह्यत्	स्निह्येत्	स्निह्यात्	अस्निहत्	अस्नेहिष्यत्	स्नेहयति	स्निह्यते
अस्पन्दत	स्पन्देत	स्पन्दिषीष्ट	अस्पन्दिष्ट	अस्पन्दिष्यत	स्पन्दयति	स्पन्द्यते
अस्पर्धत	स्पर्धेत	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत	स्पर्धयति	स्पर्ध्यते
अस्पृशत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्प्राक्षीत्	अस्प्रक्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्पृहयत्	स्पृहयेत्	स्पृह्यात्	अपस्पृहत्	अस्पृहयिष्यत्	स्पृहयति	स्पृह्यते
अस्फुरत्	स्फुरेत्	स्फुर्यात्	अस्फुरीत्	अस्फुरिष्यत्	स्फारयति	स्फुर्यते
अस्फुटत्	स्फुटेत्	स्फुट्यात्	अस्फुटीत्	अस्फुटिष्यत्	स्फोटयति	स्फुट्यते
अस्मयत	स्मयेत	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत	स्मापयति	स्मीयते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मार्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत	स्यन्देत	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत	स्यन्दयति	स्यन्द्यते
अस्रंसत	स्रंसेत	स्रंसिषीष्ट	अस्रंसिष्ट	अस्रंसिष्यत	स्रंसयति	स्रस्यते
अस्रवत्	स्रवेत्	स्रूयात्	असुस्रुवत्	अस्रोष्यत	स्रावयति	स्रूयते
अस्वादयत्	स्वादयेत्	स्वाद्यात्	असिष्वदत्	अस्वादयिष्यत्	स्वादयति	स्वाद्यते
अस्वपीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत्	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत्	अहनिष्यत्	घातयति	हन्यते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजहात्	जह्यात्	हेयात्	अहासीत्	अहास्यत्	हापयति	हीयते
अहिनत्	हिंस्यात्	हिंस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत्	हिंसयति	हिंस्यते
अजुहोत्	जुहुयात्	हूयात्	अहौषीत्	अहोष्यत्	हावयति	हूयते
अहरत्	हरेत्	ह्रियात्	अहार्षीत्	अहरिष्यत्	हारयति	ह्रियते
अहृष्यत्	हृष्येत्	हृष्यात्	अहृषत्	अहर्षिष्यत्	हर्षयति	हृष्यते
अह्नुत	ह्नुवीत	ह्नोषीष्ट	अह्नोष्ट	अह्नोष्यत	ह्नावयति	ह्नूयते
अह्वयत्	ह्वयेत्	हूयात्	[illegible]	अह्वयिष्यत्	ह्वाययति	हूयते
अजिह्रेत्	जिह्रीयात्	ह्रीयात्	अह्रैषीत्	अह्रेष्यत्	ह्रेपयति	
आह्वयत्	आह्वयेत्	आहूयात्	आह्वत्	आह्वास्यत्		

(१) अकर्मक धातुएँ

लज्जासत्तास्थितिजागरणं, वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम् ।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः ॥

इन अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक (कर्म-रहित) होती हैं:—लज्जा, होना रुकना या बैठना, जागना, बढ़ना, घटना, डरना, जीना मरना सोना, खेलना, चाहना, चमकना ।

(२) अनिट् धातुएँ (जिनमें बीच में इ नहीं लगता)

ऊ ऋदन्त औ' यौ श्रि डी को छोड़कर एकाच् सब ।
शक् पच् वच मुच् रिच् प्रच्छ सिच् भज् भुज् त्यज यज् मस्ज युज ॥
अद् पद खिद् छिद् भिद नुद् तुद, भिद् स्कद क्रुध् क्षुध् बुध ।
बन्ध् युध् रुध् राध् व्यध् शुध् , सिध् मन्य हन् क्षिप् आप् तप ॥१॥
तृप्य दृप् लिप् लुप् वप स्वप्, शप् सृप रभ् लभ् गम ।
नम् यम् रम क्रुश् दंश् दिश् दृश् मृश लिश स्पृश् पुष्य तुष ॥
कृष् तुष् द्विष शिष् पुष्य पिष् वस्, दह् दिह् लिह औ' रुह वह ।
धातु ये सब अनिट् हैं, परिगणन इनका है यह ॥२॥

सूचना—अन्ताक्षरों के क्रम से ये धातुएँ गिनाई हैं । दिवादिगणी धातुओं में, इस प्रकार की अन्य धातुओं से अन्तर के लिए, अन्त में य लगा है । पहले क् अन्तवाली शक् धातु, बाद में च् अन्तवाली, इसी प्रकार क्रमशः धातुएँ हैं । अजन्त धातुओं में ऊकारान्त और दीर्घ ऋकारान्त तथा यौ श्रि डी धातु सेट् हैं, शेष अनिट् हैं । जैसे चि, जि, ह्रु, दु, ह, म आदि । केवल विशेष प्रचलित धातुओं का ही संग्रह है । अप्रचलित धातुओं का संग्रह नहीं है । सेट् धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है । इट् का अर्थ है 'इ' । सेट् का अर्थ है, स+इट् अर्थात् 'इ वाला' । इसी प्रकार अनिट् का अर्थ है अन्+इट् अर्थात् 'इ नहीं' वाली धातुएँ ।

(५) प्रत्यय-विचार

(१) क्त (२) क्तवतु प्रत्यय (देखो अभ्यास १७,१८,१९)

सूचना—क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, क्तवतु कर्तृवाच्य में। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती है। संप्रसारण होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास १७-१९। क्त प्रत्ययान्त के रूप पुंलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिंग में गृहवत् चलेंगे। यहाँ केवल पुंलिंग के रूप ही दिए गए हैं। क्त प्रत्ययान्त का क्तवतु प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दो। अभ्यास १९ में दिए नियमानुसार तीनों लिंगों में रूप चलाओ। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	जग्ध (अन्नम्)	कृष्	कृष्टः	घ्रा	घ्रातः, घ्राणः	त्यज्	त्यक्तः
		कॄ	कीर्णः			त्रै	त्रातः
अधि + इ	अधीतः	क्रन्द्	क्रन्दितः	चर्	चरितः	दंश्	दष्टः
अर्च्	अर्चितः	क्रम्	क्रान्तः	चल्	चलितः	दण्ड्	दण्डितः
अस्	भूतः	क्री	क्रीतः	चि	चितः	दम्	दान्तः
आप्	आप्तः	क्रीड्	क्रीडितः	चिन्त्	चिन्तितः	दय्	दयितः
आ + रभ्	आरब्धः	क्रुध्	क्रुद्धः	चुर्	चोरितः	दह्	दग्धः
आक्रम्	आक्रान्तः	क्षि	क्षीणः	चेष्ट्	चेष्टितः	दा	दत्तः
आ + ह्वे	आहूतः	क्षिप्	क्षिप्तः	छिद्	छिन्नः	दिव्	द्यूनः, द्यूतः
इ	इतः	क्षुभ्	क्षुब्धः	जन्	जातः	दिश्	दिष्टः
इष्	इष्टः	खन्	खातः	जि	जितः	दीप्	दीप्तः
ईक्ष्	ईक्षितः	खाद्	खादितः	जीव्	जीवितः	दुह्	दुग्धः
उद् + डी	उड्डीनः	गण्	गणितः	जॄ	जीर्णः	दृश्	दृष्टः
कथ्	कथितः	गम्	गतः	ज्ञा	ज्ञातः	दो (दा)	दितः
कम्	कान्तः	गर्ज्	गर्जितः	ज्वल्	ज्वलितः	धृ	धारितः
कम्प्	कम्पितः	गॄ	गीर्णः	तन्	ततः	धा	हितः
कुप्	कुपितः	गै (गा)	गीतः	तप्	तप्तः	धाव्	धावितः
कूर्द्	कूर्दितः	ग्रस्	ग्रस्तः	तुष्	तुष्टः	धू	धूतः
कृ	कृतः	ग्रह्	गृहीतः	तृप्	तृप्तः	ध्मा	ध्मातः

ध्यै	ध्यातः	भुज्	भुक्तः	लिख्	लिखितः	श्रु	श्रुतः
ध्वंस्	ध्वस्तः	भू	भूतः	लिह्	लीढः	श्लिष्	श्लिष्टः
नम्	नतः	भृ	भृतः	लुभ्	लुब्धः	सद्	सन्नः
नश्	नष्टः	भ्रम्	भ्रान्तः	वच्	उक्तः	सन्	सातः
निन्द्	निन्दितः	मद्	मत्तः	वद्	उदितः	सह्	सोढः
नी	नीतः	मन्	मतः	वन्द्	वन्दितः	साध्	साधितः
नृत्	नृत्तः	मन्थ्	मन्थितः	वप्	उप्तः	सिच्	सिक्तः
पच्	पक्वः	मा	मितः	वस्	उषितः	सिध्	सिद्धः
पठ्	पठितः	मिल्	मिलितः	वह्	ऊढः	सिव्	स्यूतः
पत्	पतितः	मुच्	मुक्तः	वा	वातः	सृज्	सृष्टः
पद्	पन्नः	मुद्	मुदितः	वि+कस्	विकसितः	सेव्	सेवितः
पलाय्	पलायितः	मुह्	मुग्धः, मूढः	विद्(२प)	विदितः	सो (स्य)	सितः
पा	पीतः	मूर्छ्	मूर्छितः	विद् (१)	वेदितः	स्तु	स्तुतः
पाल्	पालितः	मृज्	मृष्टः	विश्	विष्टः	स्था	स्थितः
पुष्	पुष्टः	मृ	मृतः	वृत्	वृत्तः	स्ना	स्नातः
पूज्	पूजितः	यत्	यतितः	वृध्	वृद्धः	स्निह्	स्निग्धः
पू	पूतः	यम्	यतः	वे	उतः	स्पृश्	स्पृष्टः
प्रच्छ्	पृष्टः	या	यातः	व्यथ्	व्यथितः	स्वप्	सुप्तः
प्रथ्	प्रथितः	याच्	याचितः	व्यध्	विद्धः	स्वाद्	स्वादितः
प्र+हि	प्रहितः	युज्	युक्तः	शंक्	शंकितः	स्विद्	स्विन्नः
प्रेर्	प्रेरितः	युध्	युद्धः	शक्	शक्तः	हन्	हतः
बन्ध्	बद्धः	रक्ष्	रक्षितः	शप्	शप्तः	हस्	हसितः
बुध्	बुद्धः	रच्	रचितः	शम्	शान्तः	हा (३प)	हीनः
ब्रू	उक्तः	रञ्ज्	रक्तः	शास्	शिष्टः	हा (३आ)	हानः
भक्ष्	भक्षितः	रम्	रतः	शिक्ष्	शिक्षितः	हिंस्	हिंसितः
भज्	भक्तः	रुच्	रुचितः	शी	शयितः	हु	हुतः
भञ्ज्	भग्नः	रुद्	रुदितः	शुच्	शोचितः	हृ	हृतः
भष्	भषितः	रुध्	रुद्धः	शुभ्	शोभितः	हृष्	हृष्टः
भाष्	भाषितः	रुह्	रूढः	शुष्	शुष्कः	हृष्	हर्षितः
भिद्	भिन्नः	लभ्	लब्धः	शृ	शीर्णः	ह्री	ह्रीतः, ह्रीणः
भी	भीतः	लप्	लपितः	श्रि	श्रितः	ह्वे	हूतः

(३) शतृ प्रत्यय (देखो अभ्यास ४०)

सूचना—परस्मैपदी धातुओं को लट् के स्थान पर शतृ होता है। शतृ का अत् शेष रहता है। पुंलिंग में पठत् के तुल्य, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसकलिंग में जगत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ पर केवल पुंलिंग के रूप दिए हैं। रूप बनाने के नियमों के लिए देखो अभ्यास ४० । धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदन्	चल्	चलन्	पत्	पतन्	व्यध्	विध्यन्
अर्च्	अर्चन्	चि	चिन्वन्	पा (१प)	पिबन्	शक्	शक्नुवन्
अस्	सन्	छिद्	छिन्दन्	पाल्	पालयन्	शप्	शपन्
आप्	आप्नुवन्	जप्	जपन्	पूज्	पूजयन्	शम्	शाम्यन्
आ+रुह्	आरोहन्	जि	जयन्	प्रच्छ्	पृच्छन्	शुष्	शुष्यन्
आ+ह्वे	आह्वयन्	जीव्	जीवन्	प्रेर्	प्रेरयन्	श्रि	श्रयन्
इ	यन्	ज्वल्	ज्वलन्	बन्ध्	बध्नन्	श्रु	शृण्वन्
इष्	इच्छन्	तप्	तपन्	भक्ष्	भक्षयन्	सद्	सीदन्
कुप्	कुप्यन्	तुद्	तुदन्	भज्	भजन्	सिच्	सिञ्चन्
क्रम्	क्रामन्	तुष्	तुष्यन्	भिद्	भिन्दन्	सिव्	सीव्यन्
कॄ	किरन्	तॄ	तरन्	भृ	भरन्	सृ	सरन्
क्रन्द्	क्रन्दन्	त्यज्	त्यजन्	भू	भवन्	सृज्	सृजन्
क्लम्	क्लाम्यन्	दण्ड्	दण्डयन्	भ्रम्	भ्रमन् }	सृप्	सर्पन्
क्रीड्	क्रीडन्	दह्	दहन्		भ्राम्यन् }	स्तु	स्तुवन्
क्रुध्	क्रुध्यन्	दिव्	दीव्यन्	मिल्	मिलन्	स्था	तिष्ठन्
क्षम्	क्षाम्यन्	दिश्	दिशन्	रक्ष्	रक्षन्	स्पृश्	स्पृशन्
क्षिप्	क्षिपन्	दुह्	दुहन्	रच्	रचयन्	स्मृ	स्मरन्
खन्	खनन्	दृश्	पश्यन्	रुद्	रुदन्	स्वप्	स्वपन्
खाद्	खादन्	धाव्	धावन्	रुध्	रुन्धन्	हन्	घ्नन्
गण्	गणयन्	धृ	धरन्	लिख्	लिखन्	हस्	हसन्
गम्	गच्छन्	ध्यै	ध्यायन्	लिह्	लिहन्	हा (३प)	जहत्
गर्ज्	गर्जन्	नम्	नमन्	वद्	वदन्	हिंस्	हिंसन्
गॄ	गिरन्	नश्	नश्यन्	वस्	वसन्	हु	जुह्वत्
गै	गायन्	निन्द्	निन्दन्	वह्	वहन्	हृ	हरन्
घ्रा	जिघ्रन्	नृत्	नृत्यन्	विश्	विशन्	हृष्	हृष्यन्
चर्	चरन्	पठ्	पठन्	वृष्	वर्षन्	ह्वे	ह्वयन्

(४) शानच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४१)

सूचना—आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् होता है। उभयपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शानच् का आन शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त के रूप पुं॰ में रामवत्, स्त्री॰ में आ लगाकर रमावत् और नपुं॰ में ज्ञानवत् चलेंगे। यहाँ पर पुंलिंग के ही रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

आत्मनेपदी धातुएँ				उभयपदी धातुएँ		
अधि+इ	अधीयानः	मन्	मन्यमानः	कथ्	कथयन्	कथयमानः
आ+रभ्	आरभमाणः	मुद्	मोदमानः	कृ	कुर्वन्	कुर्वाणः
आ+क्रम्	आक्रममाणः	मृ	म्रियमाणः	क्री	क्रीणन्	क्रीणानः
आस्	आसीनः	यत्	यतमानः	ग्रह्	गृह्णन्	गृह्णानः
ईक्ष्	ईक्षमाणः	याच्	याचमानः	चि	चिन्वन्	चिन्वानः
ईह्	ईहमानः	युध्	युध्यमानः	चिन्त्	चिन्तयन्	चिन्तयमानः
उद्+डी	उड्डयमानः	रुच्	रोचमानः	चुर्	चोरयन्	चोरयमाणः
कम्प्	कम्पमानः	लभ्	लभमानः	ज्ञा	जानन्	जानानः
कूर्द्	कूर्दमानः	वन्द्	वन्दमानः	तन्	तन्वन्	तन्वानः
गाह्	गाहमानः	वि+राज्	विराजमानः	दा	ददत्	ददानः
ग्रस्	ग्रसमानः	वृत्	वर्तमानः	धा	दधत्	दधानः
चेष्ट्	चेष्टमानः	वृध्	वर्धमानः	नी	नयन्	नयमानः
जन्	जायमानः	व्यथ्	व्यथमानः	पच्	पचन्	पचमानः
त्रै	त्रायमाणः	शङ्क्	शङ्कमानः	ब्रू	ब्रुवन्	ब्रुवाणः
त्वर्	त्वरमाणः	शिक्ष्	शिक्षमाणः	भुज्	भुञ्जन्	भुञ्जानः
दय्	दयमानः	शी	शयानः	मुच्	मुञ्चन्	मुञ्चमानः
द्युत्	द्योतमानः	शुभ्	शोभमानः	यज्	यजन्	यजमानः
ध्वंस्	ध्वंसमानः	[illegible]	[illegible]	युज्	युञ्जन्	युञ्जानः
पलाय्	पलायमानः	श्लाघ्	श्लाघमानः	रुध्	रुन्धन्	रुन्धानः
प्रथ्	प्रथमानः	सम्+पद्	संपद्यमानः	वह्	वहन्	वहमानः
बाध्	बाधमानः	सह्	सहमानः	श्रि	श्रयन्	श्रयमाणः
भास्	भासमानः	सेव्	सेवमानः	सु	सुन्वन्	सुन्वानः
भिक्ष्	भिक्षमाणः	स्मि	स्मयमानः	हृ	हरन्	हरमाणः

(५) तुमुन्, (६) तव्यत्, (७) तृच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४२, ४५, ४८)

सूचना—(क) तुमुन् प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ में होता है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। तुमुन् प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रूप नहीं चलते। धातु को गुण होता है। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४२। (ख) तव्यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। तव्यत् प्रत्यय 'चाहिये' अर्थ में होता है। तव्यत् का तव्य शेष रहता है। पुं॰ में तव्य प्रत्ययान्त के रूप रामवत्, स्त्री॰ में आ लगाकर रमावत्, नपुं॰ में गृहवत् चलेंगे। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४५। (ग) तृच् प्रत्यय कर्ता या 'वाला' अर्थ में होता है। तृच् का तृ शेष रहता है। तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तृ लगा दो। तृच् प्रत्ययान्त के रूप पुं॰ में कर्तृ के तुल्य, स्त्री॰ में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुं॰ में कर्तृ नपुं॰ के तुल्य चलेंगे। तृच् प्रत्यय के विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४८। उदाहरणार्थ—तुम्, तव्य, तृ लगाकर इन धातुओं के ये रूप होंगे। कृ—कर्तुम्, कर्तव्य, कर्तृ। हृ—हर्तुम्, हर्तव्य, हर्तृ। लिख्—लेखितुम्, लेखितव्य, लेखितृ। तव्य और तृच् में तुम् के तुल्य ही सन्धि के कार्य होंगे। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अत्तुम्	ईक्ष्	ईक्षितुम्	क्री	क्रेतुम्	ग्रस्	ग्रसितुम्
अधि+इ	अध्येतुम्	कथ्	कथयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्
अर्च्	अर्चितुम्	कम्	कमितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	घ्रा	घ्रातुम्
अस्	भवितुम्	कम्प्	कम्पितुम्	क्षम्	क्षमितुम्	चर्	चरितुम्
आप्	आप्तुम्	कुप्	कोपितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्	चल्	चलितुम्
आ+रभ्	आरब्धुम्	कूर्द्	कूर्दितुम्	खन्	खनितुम्	चि	चेतुम्
आ+रुह्	आरोढुम्	कृ	कर्तुम्	खाद्	खादितुम्	चिन्त्	चिन्तयितुम्
आ+लप्	आलपितुम्	कृप्	कल्पितुम्	गण्	गणयितुम्	चुर्	चोरयितुम्
आस्	आसितुम्	कृष्	क्रष्टुम्	गम्	गन्तुम्	चेष्ट्	चेष्टितुम्
आ+ह्वे	आह्वातुम्	कॄ	करितुम्	गर्ज्	गर्जितुम्	छिद्	छेत्तुम्
इ	एतुम्	क्रन्द्	क्रन्दितुम्	गॄ	गरितुम्	जन्	जनितुम्
इष्	एषितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	गै	गातुम्	जप्	जपितुम्

जि	जेतुम्	पद्	पत्तुम्	याच्	याचितुम्	शप्	शप्तुम्
जीव्	जीवितुम्	पलाय्	पलायितुम्	युज्	योक्तुम्	शम्	शमितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	पा	पातुम्	युध्	योद्धुम्	शिक्ष्	शिक्षितुम्
ज्वल्	ज्वलितुम्	पाल्	पालयितुम्	रक्ष्	रक्षितुम्	शी	शयितुम्
डी	डयितुम्	पुष्	पोषितुम्	रच्	रचयितुम्	शुच्	शोचितुम्
तप्	तप्तुम्	पूज्	पूजयितुम्	रम्	रन्तुम्	शुभ्	शोभितुम्
तृप्	तर्पितुम्	प्रच्छ्	प्रष्टुम्	राज्	राजितुम्	श्रि	श्रयितुम्
तॄ	तरितुम्	प्रेर्	प्रेरयितुम्	रुच्	रोचितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	बन्ध्	बन्धुम्	रुद्	रोदितुम्	श्लिष्	श्लेष्टुम्
त्रै	त्रातुम्	बाध्	बाधितुम्	रुध्	रोद्धुम्	सद्	सत्तुम्
दंश्	दंष्टुम्	बुध्	बोद्धुम्	लभ्	लब्धुम्	सिच्	सेक्तुम्
दह्	दग्धुम्	ब्रू	वक्तुम्	लम्ब्	लम्बितुम्	सिध्	सेद्धुम्
दा	दातुम्	भक्ष्	भक्षयितुम्	लष्	लषितुम्	सिव्	सेवितुम्
दिश्	देष्टुम्	भज्	भक्तुम्	लिख्	लेखितुम्	सु	सोतुम्
दीप्	दीपितुम्	भाष्	भाषितुम्	लिह्	लेढुम्	सृ	सर्तुम्
दुह्	दोग्धुम्	भिद्	भेत्तुम्	लुभ्	लोभितुम्	सृज्	स्रष्टुम्
द्युत्	द्योतितुम्	भी	भेतुम्	वच्	वक्तुम्	सृप्	सर्प्तुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	भुज्	भोक्तुम्	वद्	वदितुम्	सेव्	सेवितुम्
धा	धातुम्	भू	भवितुम्	वन्द्	वन्दितुम्	स्तु	स्तोतुम्
धाव्	धावितुम्	भृ	भर्तुम्	वप्	वप्तुम्	स्था	स्थातुम्
धृ	धर्तुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्	वस्	वस्तुम्	स्ना	स्नातुम्
ध्यै	ध्यातुम्	मन्	मन्तुम्	वह्	वोढुम्	स्पर्ध्	स्पर्धितुम्
ध्वंस्	ध्वंसितुम्	मा	मातुम्	विद्(४ ६ ७)	वेत्तुम्	स्पृश्	स्प्रष्टुम्
नम्	नन्तुम्	मिल्	मेलितुम्	विश्	वेष्टुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
नश्	नष्टुम्	मुच्	मोक्तुम्	वृ (१)	वारयितुम्	हन्	हन्तुम्
निन्द्	निन्दितुम्	मुद्	मोदितुम्	वृत्	वर्तितुम्	हस्	हसितुम्
नी	नेतुम्	मृ	मर्तुम्	वृध्	वर्धितुम्	हा	हातुम्
नृत्	नर्तितुम्	यज्	यष्टुम्	वृष्	वर्षितुम्	हिंस्	हिंसितुम्
पच्	पक्तुम्	यत्	यतितुम्	वे	वातुम्	हु	होतुम्
पठ्	पठितुम्	यम्	यन्तुम्	शंस्	शंसितुम्	हृ	हर्तुम्
पत्	पतितुम्	या	यातुम्	शक्	शक्तुम्	हृष्	हर्षितुम्

(८) क्त्वा, (९) ल्यप् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४१, ४४)

सूचना—'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। क्त्वा का त्वा और ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले उपसर्ग नहीं होगा तो क्त्वा होगा। यदि उपसर्ग पहले होगा तो ल्यप् होगा। दोनों प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते। दोनों प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखो अभ्यास ४१, ४४। जिन उपसर्गों के साथ ल्यप् वाले रूप अधिक प्रचलित हैं, वही यहाँ दिए गए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य	क्षम्	क्षमित्वा	संक्षम्य
अधि+इ	—	अधीत्य	क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य	क्षुभ्	क्षुभित्वा	प्रक्षुभ्य
अस् (२ प)	भूत्वा	सम्भूय	खन्	खनित्वा } खात्वा }	उत्खन्य उत्खाय
अस् (४ प)	असित्वा	प्रास्य	गण्	गणयित्वा	विगणय्य
आ+दृ—	—	आदृत्य	गम्	गत्वा	{ आगम्य { आगत्य
आप्	आप्त्वा	प्राप्य	गॄ	गीर्त्वा	उद्गीर्य
आस्	आसित्वा	उपास्य	गै	गीत्वा	प्रगाय
इ	इत्वा	प्रेत्य	ग्रस्	ग्रसित्वा	संग्रस्य
इष्	इष्ट्वा	अभीष्य	ग्रह्	गृहीत्वा	संगृह्य
ईक्ष्	ईक्षित्वा	समीक्ष्य	घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
उद्+डी	—	उड्डीय	चर्	चरित्वा	आचर्य
कम्	कमित्वा	संकम्य	चल्	चलित्वा	प्रचल्य
कूर्द्	कूर्दित्वा	प्रकूर्द्य	चि	चित्वा	संचित्य
कृ	कृत्वा	उपकृत्य	चिन्त्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य
कृष्	कृष्ट्वा	आकृष्य	चुर्	चोरयित्वा	संचोर्य
कॄ	कीर्त्वा	विकीर्य	छिद्	छित्त्वा	उच्छिद्य
क्रन्द्	क्रन्दित्वा	आक्रन्द्य	जन्	जनित्वा	संजाय
क्रम्	क्रमित्वा } क्रान्त्वा }	संक्रम्य	जप्	जपित्वा	संजप्य
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय	जि	जित्वा	विजित्य
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य	जीव्	जीवित्वा	संजीव्य
क्रुध्	क्रुद्ध्वा	संक्रुध्य			

ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय	पलाय्	—	पलाय्य
ज्वल्	ज्वलित्वा	प्रज्वल्य	पा	पीत्वा	निपाय
तन्	तनित्वा	वितत्य	पाल्	पालयित्वा	संपाल्य
तप्	तप्त्वा	संतप्य	पुष्	पुष्ट्वा	संपुष्य
तुष्	तुष्ट्वा	संतुष्य	पूज्	पूजयित्वा	संपूज्य
तॄ	तीर्त्वा	उत्तीर्य	पॄ	पूर्त्वा	आपूर्य
त्यज्	त्यक्त्वा	परित्यज्य	प्रच्छ्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य
दंश्	दंष्ट्वा	संदश्य	बन्ध्	बद्ध्वा	आबध्य
दह्	दग्ध्वा	संदह्य	बुध्	बुद्ध्वा	प्रबुध्य
दा	दत्त्वा	आदाय	ब्रू	उक्त्वा	प्रोच्य
दिव्	देवित्वा	संदीव्य	भक्ष्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य
दिश्	दिष्ट्वा	उपदिश्य	भज्	भक्त्वा	विभज्य
दीप्	दीपित्वा	संदीप्य	भञ्ज्	भङ्क्त्वा	विभज्य
दुह्	दुग्ध्वा	संदुह्य	भाष्	भाषित्वा	संभाष्य
दृश्	दृष्ट्वा	संदृश्य	भिद्	भित्त्वा	प्रभिद्य
द्युत्	द्योतित्वा	विद्युत्य	भी	भीत्वा	संभीय
धा	हित्वा	विधाय	भुज्	भुक्त्वा	उपभुज्य
धाव्	धावित्वा	प्रधाव्य	भू	भूत्वा	संभूय
धृ	धृत्वा	आधृत्य	भृ	भृत्वा	संभृत्य
ध्मा	ध्मात्वा	आध्माय	भ्रंश्	भ्रष्ट्वा	प्रभ्रश्य
ध्यै	ध्यात्वा	संध्याय	भ्रम्	भ्रमित्वा } भ्रान्त्वा }	संभ्रम्य
नम्	नत्वा	प्रणम्य	मथ्	मथित्वा	विमथ्य
नश्	नष्ट्वा	विनश्य	मन्	मत्वा	अनुमत्य
नि + हृ	—	निहृत्य	मा	मित्वा	प्रमाय
नी	नीत्वा	आनीय	मिल्	मिलित्वा	संमिल्य
नुद्	नुत्त्वा	प्रणुद्य	मुच्	मुक्त्वा	विमुच्य
नृत्	नर्तित्वा	प्रनृत्य	मुह्	मुग्ध्वा	संमुह्य
पच्	पक्त्वा	संपच्य	यज्	इष्ट्वा	समिज्य
पठ्	पठित्वा	संपठ्य	यम्	यत्वा	संयम्य
पत्	पतित्वा	निपत्य	या	यात्वा	प्रयाय
पद्	पत्त्वा	संपद्य			

याच्	याचित्वा	अनुयाच्य
युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य
युध्	युद्ध्वा	प्रयुध्य
रक्ष्	रक्षित्वा	संरक्ष्य
रच्	रचयित्वा	विरचय्य
रभ्	रब्ध्वा	आरभ्य
रम्	रत्वा	विरम्य
रुद्	रुदित्वा	विरुद्य
रुध्	रुद्ध्वा	विरुध्य
रुह्	रूढ्वा	आरुह्य
लप्	लपित्वा	विलप्य
लभ्	लब्ध्वा	उपलभ्य
लम्ब्	लम्बित्वा	आलम्ब्य
लष्	लषित्वा	अभिलष्य
लिख्	लिखित्वा	आलिख्य
लिह्	लीढ्वा	आलिह्य
ली	लीत्वा	निलीय
लुभ्	लुब्ध्वा	प्रलुभ्य
वद्	उदित्वा	अनूद्य
वन्द्	वन्दित्वा	अभिवन्द्य
वप्	उप्त्वा	समुप्य
वस	उषित्वा	उपोष्य
वह्	ऊढ्वा	प्रोह्य
विद् (२ प)	विदित्वा	संविद्य
विद् (१)	वेदयित्वा	निवेद्य
विश्	विष्ट्वा	प्रविश्य
वृत्	वर्तित्वा	निवृत्य
वृध्	वर्धित्वा	संवृध्य
वृष्	वर्षित्वा	प्रवृष्य
व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य
शप्	शप्त्वा	अभिशप्य

शम्	शान्त्वा	निशम्य
शास्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
शी	शयित्वा	संशय्य
शुष्	शुष्ट्वा	परिशुष्य
श्रि	श्रित्वा	आश्रित्य
श्रु	श्रुत्वा	संश्रुत्य
श्लिष्	श्लिष्ट्वा	आश्लिष्य
श्वस्	श्वसित्वा	विश्वस्य
सद्	सत्वा	निषद्य
सह्	सहित्वा	संसह्य
साध्	साद्ध्वा	प्रसाध्य
सिच्	सिक्त्वा	अभिषिच्य
सिध्	सिद्ध्वा	निषिध्य
सिव्	सेवित्वा	संसीव्य
सृज्	सृष्ट्वा	विसृज्य
सेव	सेवित्वा	निषेव्य
सो	सित्वा	अवसाय
स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
स्था	स्थित्वा	प्रस्थाय
स्ना	स्नात्वा	प्रस्नाय
स्निह्	स्निग्ध्वा	उपस्निह्य
स्पृश्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
स्वप्	सुप्त्वा	संसुप्य
हन्	हत्वा	निहत्य
हस्	हसित्वा	विहस्य
हा	हित्वा	विहाय
हु	हुत्वा	आहुत्य
हृ	हृत्वा	प्रहृत्य
हृष्	हर्षित्वा	प्रहृष्य
ह्वे	हूत्वा	आहूय

(१०) ल्युट्, (११) अनीयर् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४५, ४९)

सूचना—(क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास ४। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दो। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास ४५। जैसे—कृ का करण करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै	त्राणम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दंश्	दंशनम्
अन्विष्	अन्वेषणम्	कृत्	कर्तनम्	घ्रा	घ्राणम्	दम्भ्	दम्भनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कॄ	करणम्	चल्	चलनम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रम्	आरमणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रुह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+श्वस्	आश्वसनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहणम्
आ+ह्वे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वंस्	ध्वंसनम्
कथ्	कथनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गॄ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै	गानम्	तॄ	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+गृ	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	लभ्	लम्भनम्	शम्	शमनम्
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	लम्ब्	लम्बनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	भृ	भरणम्	लप्	लपनम्	शिक्ष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रंश्	भ्रंशनम्	लस्	लसनम्	शी	शयनम्
नि+षिध्	निषेधनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	लिख्	लेखनम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	लिह्	लेहनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	ली	लयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	लुट्	लोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	लुप्	लोपनम्	सं+मिल्	संमेलनम्
पत्	पतनम्	मिल्	मेलनम्	लुभ्	लोभनम्	सद्	सदनम्
प्याय्	प्यायनम्	मुच्	मोचनम्	लोक्	लोकनम्	सह्	सहनम्
पा	पानम्	मुद्	मोदनम्	लोच्	लोचनम्	साध्	साधनम्
पाल्	पालनम्	मुष्	मोषणम्	वच्	वचनम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह्	मोहनम्	वञ्च्	वञ्चनम्	सिव्	सीवनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	वद्	वदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	वन्द्	वन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	वप्	वपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र+आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	वर्ण्	वर्णनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र+विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	वह्	वहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र+हस्	प्रहसनम्	याच्	याचनम्	वि+कस्	विकसनम्	स्तु	स्तवनम्
प्रेर्	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि+धा	विधानम्	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रञ्ज्	रञ्जनम्	वि+नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि+लप्	विलपनम्	स्पृश्	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि+रच्	विरचनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्रंस्	स्रंसनम्
भक्ष्	भक्षणम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भञ्ज्	भञ्जनम्	रुच्	रोचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भज्	भजनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम्	हु	हवनम्
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	हृ	हरणम्
भिद्	भेदनम्	रूप्	रूपणम्	व्रज्	व्रजनम्	हृष्	हर्षणम्

(१२) घञ् प्रत्यय

(देखो अभ्यास ४७)

सूचना—भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का 'अ' शेष रहता है। घञन्त शब्द पुंलिंग होता है। घञ् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखो अभ्यास ४७। घञ् प्रत्ययान्त शब्द उपसर्गों के साथ बहुत प्रचलित हैं। स्वयं उपसर्ग लगाकर अन्य रूप बनावें। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अधि+इ	अध्यायः	चर्	चारः	प्र+भू	प्रभावः	वि+लप्	विलापः
अभि+लष्	अभिलाषः	चल्	चालः	प्र+विश्	प्रवेशः	वि+वह्	विवाहः
अव+तॄ	अवतारः	चि	चायः	प्र+मद्	प्रमादः	वि+भ्रम्	विभ्रमः
अव+लिह्	अवलेहः	चुर्	चोरः	प्र+सृ	प्रसारः	वि+नश्	विनाशः
आस्	आसः	छिद्	छेदः	प्र+स्तु	प्रस्तावः	वि+सृज्	विसर्गः
आ+क्षिप्	आक्षेपः	जप्	जापः	प्र+हृ	प्रहारः	वप्	वपः
आ+गम्	आगमः	तप्	तापः	बुध्	बोधः	शप्	शापः
आ+चर्	आचारः	त्यज्	त्यागः	भज्	भागः	शम्	शमः
[illegible]	[illegible]	दह्	दाहः	भिद्	भेदः	शुच्	शोकः
आ+धृ	आधारः	दा	दायः	भुज्	भोगः	शुष्	शोषः
आ+मुद्	आमोदः	दिश्	देशः	मिल्	मेलः	श्रि	श्रायः
आ+रुह्	आरोहः	दुह्	दोहः	मुह्	मोहः	श्रु	श्रावः
आ+वृत्	आवर्तः	द्रुह्	द्रोहः	मृज्	मार्गः	श्लिष्	श्लेषः
आ+हन्	आघातः	धा	धायः	यज्	यागः	सं+कृ	संस्कारः
उत्+पद्	उत्पादः	नश्	नाशः	युज्	योगः	सं+तन्	सन्तानः
उत्+सह्	उत्साहः	नि+इ	न्यायः	युध्	योधः	सं+तुष्	सन्तोषः
उप+विश्	उपवेशः	नि+वस्	निवासः	रञ्ज्	रागः	सं+मन्	संमानः
कम्	कामः	नि+षिध्	निषेधः	रम्	रामः	सं+यम्	संयमः
क्रुध्	क्रोधः	पच्	पाकः	रुध्	रोधः	सिच्	सेकः
कृ	कारः	पठ्	पाठः	लभ्	लाभः	सृज्	सर्गः
कृष्	कर्षः	पत्	पातः	लिख्	लेखः	स्निह्	स्नेहः
क्षिप्	क्षेपः	पुष्	पोषः	लुभ्	लोभः	स्पृश्	स्पर्शः
क्षुभ्	क्षोभः	प्र+काश्	प्रकाशः	वद्	वादः	स्वप्	स्वापः
गम्	गमः	प्र+कृ	प्रकारः	वि+कस्	विकासः	हस्	हासः
ग्रस्	ग्रासः	प्र+कृष्	प्रकर्षः	वि+कृष्	विकर्षः	हृ	हारः
ग्रह्	ग्राहः	प्र+नम्	प्रणामः	विद्	वेदः	हृष्	हर्षः

(१२) ण्वुल् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९)

सूचना—कर्ता या 'वाला' अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के स्थान पर 'अक' शेष रहता है। धातु को गुण या वृद्धि होगी। कर्ता के अनुसार तीनों लिंग होते हैं। विशेष नियम के लिए देखो अभ्यास ४९। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अध्यापि	अध्यापकः	द्विष्	द्वेषकः	प्र+विश्	प्रवेशकः	रुह्	रोहकः
अन्विष्	अन्वेषकः	धा	धायकः	प्र+सृ	प्रसारकः	लिख्	लेखकः
उत्+पद्	उत्पादकः	धाव्	धावकः	प्र+स्तु	प्रस्तावकः	वच्	वाचकः
उद्+धृ	उद्धारकः	धृ	धारकः	प्रेर्	प्रेरकः	वह्	वाहकः
उद्+मद्	उन्मादकः	ध्यै	ध्यायकः	बन्ध्	बन्धकः	वि+कस्	विकासकः
उप+दिश्	उपदेशकः	ध्वंस्	ध्वंसकः	बाध	बाधकः	वि+आप्	व्यापकः
उप+आस्	उपासकः	नश्	नाशकः	बुध्	बोधकः	वि+धा	विधायकः
कृ	कारकः	निन्द्	निन्दकः	ब्रू	वाचकः	वि+भज्	विभाजकः
कृष्	कर्षकः	नि+विद्	निवेदकः	भक्ष्	भक्षकः	वि+स्कम्भ	विष्कम्भकः
क्रीड्	क्रीडकः	नि+वृ	निवारकः	भज्	भाजकः	वृष्	वर्षकः
खाद्	खादकः	नि+षिध्	निषेधकः	भाष्	भाषकः	वृध्	वर्धकः
गण्	गणकः	नी	नायकः	भिद्	भेदकः	शास्	शासकः
गम्	गमकः	नृत्	नर्तकः	भुज्	भोजकः	शिक्ष्	शिक्षकः
गै	गायकः	पच्	पाचकः	भू	भावकः	शुष्	शोषकः
ग्रह्	ग्राहकः	पठ्	पाठकः	मुच्	मोचकः	श्रु	श्रावकः
चि	चायकः	पत्	पातकः	मुद्	मोदकः	सं+चल्	संचालकः
चिन्त्	चिन्तकः	परि+ईक्ष्	परीक्षकः	मुह्	मोहकः	सं+तप्	संतापकः
छिद्	छेदकः	पा	पायकः	मृ	मारकः	सं+युज्	संयोजकः
जन्	जनकः	पाल्	पालकः	यज्	याजकः	सं+हृ	संहारकः
तृ	तारकः	पुष्	पोषकः	यम्	यमकः	साध्	साधकः
दह्	दाहकः	पूज्	पूजकः	याच्	याचकः	सिच्	सेचकः
दीप्	दीपकः	प्र+काश्	प्रकाशकः	युज्	योजकः	सेव्	सेवकः
दुह्	दोहकः	प्र+क्षिप्	प्रक्षेपकः	युध्	योधकः	स्था	स्थापकः
दृश्	दर्शकः	प्र+चर्	प्रचारकः	रञ्ज्	रञ्जकः	स्मृ	स्मारकः
द्युत्	द्योतकः	प्रच्छ्	प्रच्छकः	रक्ष्	रक्षकः	हन्	घातकः
द्रुह्	द्रोहकः	प्र+दा	प्रदायकः	रुध्	रोधकः	हृष्	हर्षकः

(१४) क्तिन्, (१५) यत् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९, ५१)

सूचना—(क) भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिङ्गों में रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४९। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

क्तिन् प्रत्यय						यत् प्रत्यय	
अधि+इ	अधीतिः	तुष्	तुष्टिः	यम्	यतिः	अधि+इ	अध्येयम्
अव् (रक्ष.)	ऊतिः	दीप्	दीप्तिः	युज्	युक्तिः	आ+ख्या	आख्येयम्
आप्	आप्तिः	दृश्	दृष्टिः	रम्	रतिः	उप+मा	उपमेयम्
आ+सञ्ज्	आसक्तिः	धृ	धृतिः	रुह्	रूढिः	क्री	क्रेयम्
आ+सद्	आसत्तिः	नम्	नतिः	वि+आप्	व्याप्तिः	क्षि	क्षेयम्
आ+हु	आहुतिः	नी	नीतिः	वि+नश्	विनष्टिः	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टिः	पच्	पक्तिः	वि+श्रम्	विश्रान्तिः	घ्रा	घ्रेयम्
उप+लभ्	उपलब्धिः	पा	पीतिः	वृत्	वृत्तिः	चि	चेयम्
ऋध्	ऋद्धिः	पुष्	पुष्टिः	वृध्	वृद्धिः	जि	जेयम्
कम्	कान्तिः	पू	पूर्तिः	वृष्	वृष्टिः	ज्ञा	ज्ञेयम्
कृ	कृतिः	प्र+आप्	प्राप्तिः	शक्	शक्तिः	दा	देयम्
कृष्	कृष्टिः	प्री	प्रीतिः	शम्	शान्तिः	धा	धेयम्
कॄ	कीर्तिः	बुध्	बुद्धिः	शुध्	शुद्धिः	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
कृत्	कीर्तिः	ब्रू	उक्तिः	श्रु	श्रुतिः	नी	नेयम्
क्रम्	क्रान्तिः	भज्	भक्तिः	सम्+पद्	सम्पत्तिः	पा	पेयम्
क्षम्	क्षान्तिः	भी	भीतिः	सं+सृ	संसृतिः	भू	भव्यम्
गम्	गतिः	भुज्	भुक्तिः	सं+हृ	संहृतिः	मा	मेयम्
गै	गीतिः	भू	भूतिः	सिध्	सिद्धिः	वि+धा	विधेयम्
चि	चितिः	भ्रम्	भ्रान्तिः	सृज्	सृष्टिः	श्रु	श्रव्यम्
छिद्	छित्तिः	मन्	मतिः	स्तु	स्तुतिः	स्तु	स्तव्यम्
जन्	जातिः	मा	मितिः	स्था	स्थितिः	स्था	स्थेयम्
ज्ञा	ज्ञातिः	मुच्	मुक्तिः	स्मृ	स्मृतिः	हा	हेयम्
तुष्	तुष्टिः	यज्	इष्टिः	स्वप्	सुप्तिः	हु	हव्यम्

(६) सन्धि विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, लृ को ल् हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति+एक = प्रत्येक	(२) पठतु+एकः=पठत्वेकः	(३) पितृ+आ = पित्रा
इति+अत्र = इत्यत्र	अनु+अयः=अन्वयः	मातृ+ए = मात्रे
इति+आह = इत्याह	मधु+अरिः=मध्वरिः	धातृ+अंशः=धात्रंशः
यदि+अपि = यद्यपि	गुरु+आज्ञा=गुर्वाज्ञा	कर्तृ+आ =कर्त्रा
सुधी+उपास्य= सुध्युपास्य	पठतु+अत्र =पठत्वत्र	कर्तृ+ई = कर्त्री
	वधू+औ = वध्वौ	(४) लृ+आकृतिः=लाकृतिः

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय्, औ को आव् हो जाता है बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे+ए=हरये	(२) भो+अति=भवति	(३) नै+अकः = नायकः
कवे+ए=कवये	पो+अनः=पवनः	गै+अकः = गायकः
ने+अनम्=नयनम्	विष्णो+ए=विष्णवे	गै+अति = गायति
जे+अः = जयः	भानो+ए=भानवे	(४) पौ+अकः = पावकः
संचे+अः=संचयः	भो+अनम्=भवनम्	द्वौ+एतौ=द्वावेतौ

(३) (क) (वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद में य से प्रारम्भ होने वाला कोई प्रत्यय हो तो। (ख) (गोर्यूतौ अध्वपरिमाणे च) गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो मार्ग की लम्बाई के अर्थ में। (ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) धातु के ओ को अव् और औ को आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद में हो तो। यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो+यम्=गव्यम्	(ख) गो+यूतिः=गव्यूतिः	(ग) लो+यम्=लव्यम्
नौ+यम्=नाव्यम्		भौ+यम्=भाव्यम्

(४) (आद्गुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद लृ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा। जैसे—

(१) महा+ईशः = महेशः	(२) पर+उपकारः=परोपकारः	(३) महा+ऋषिः=महर्षिः
गण+ईशः=गणेशः	महा+उत्सवः=महोत्सवः	राज+ऋषिः=राजर्षिः
उप+इन्द्रः=उपेन्द्रः	गंगा+उदकम्=गंगोदकम्	ग्रीष्म+ऋतुः=ग्रीष्मर्तुः
रमा+ईशः=रमेशः	हित+उपदेशः = हितोपदेशः	(४) तव+लृकारः=तवल्कारः

(५) (वृद्धिरेचि) (१) अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनों को 'औ' होगा।

(१) अत्र + एकः = अत्रैकः	(२) तण्डुल + ओदनम् = तण्डुलौदनम्
कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्	गंगा + ओघः = गंगौघः
सा + एषा = सैषा	देव + औदार्यम् = देवौदार्यम्
देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्	कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्

(६) (क) (एत्येधत्यूठ्सु) अ या आ के बाद एकारादि इ धातु या एध् धातु हो या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनों को मिलकर एक वृद्धि अक्षर (ऐ या औ) होता है। अ या आ+ए=ऐ। अ या आ+ओ या ऊ=औ। उप + एति = उपैति। अव+एति=अवैति। उप+एधते=उपैधते। प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः। विश्व + ऊहः = विश्वौहः। (ख) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्ष + ऊहिनी में वृद्धि होकर 'अक्षौहिणी' रूप बनता है। (ग) (स्वादीरेरिणोः) स्व के बाद ईर या ईरिन् होगा तो वृद्धि होगी। स्व + ईरः = स्वैरः। स्व+ईरिन् = स्वैरिन्, स्वैरी। स्व + ईरिणी = स्वैरिणी। (घ) (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु) प्र के बाद ऊह, ऊढ ऊढि, एष और एष्य हों तो वृद्धि होती है। प्र+ऊहः = प्रौहः। प्र + ऊढः = प्रौढः। प्र + ऊढिः = प्रौढिः। प्र+एषः = प्रैषः। प्र + एष्यः = प्रैष्यः।

(७) (एङः पदान्तादति) पद (अर्थात् सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ ऽ (अवग्रहचिह्न) लगा दिया जाता है। जैसे—

(१) हरे + अव = हरेऽव	(२) विष्णो + अव = विष्णोऽव
लोके + अस्मिन् = लोकेऽस्मिन्	रामो + अधुना = रामोऽधुना
विद्यालये+अस्मिन् = विद्यालयेऽस्मिन्	लोको + अयम् = लोकोऽयम्

(८) (एङि पररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर पररूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अर्थात् (१) अ+ ए=ए, (२) अ + ओ=ओ। जैसे—

(१) प्र+एजते=प्रेजते	(२) उप+ओषति=उपोषति

(९) (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्धु आदि शब्दों में टि (अर्थात् अन्तिम स्वर-सहित अगला अंश) को पररूप हो जाता है। शक + अन्धुः=शकन्धुः। कर्क + अन्धुः=कर्कन्धुः। मनस् + ईषा=मनीषा। कुल + अटा=कुलटा। पतत्+अञ्जलिः= पतञ्जलिः। मार्त + अण्ड = मार्तण्डः। (क) (सीमन्तः केशवेशे) सीम+अन्तः = सीमन्तः (बालों में माँग)। अन्यत्र सीमान्तः (हद)। (ख) (सारङ्गः पशुपक्षिणोः) सार + अङ्गः = सारङ्गः (पशु पक्षी)। अन्यत्र साराङ्गः। (ग) (ओत्वोष्ठयोः समासे वा) समास में विकल्प से ओतु ओष्ठ को पररूप। स्थूल+ओतुः=स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। बिम्ब+ओष्ठः=बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः।

(१०) (उपसर्गादृति धातौ) अकारान्त उपसर्ग के बाद कोई ऋ से प्रारम्भ होनेवाली धातु हो तो दोनों का आर् वृद्धि हो जायगी। अ+ऋ=आर्। उप+ऋच्छति=उपार्च्छति। प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति।

(११) (अचो रहाभ्यां द्वे) किसी स्वर के बाद र् या ह् हों और उनके बाद कोई यर् (ह् को छोड़कर कोई व्यंजन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे—आर्+य=आर्य्य, आर्य। कर्+तव्य=कर्त्तव्य कर्तव्य। कर्+म=कर्म्म, कर्म।

(१२) (ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् दोनों को ओम् या आ होता है। शिवाय+ओं नमः=शिवायों नमः। शिव+एहि (आ+इहि)=शिवेहि।

(१३) (अकः सवर्णे दीर्घः) अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है। अर्थात् (१) अ या आ+अ या आ=आ। (२) इ या ई+इ या ई=ई। (३) उ या ऊ+उ या ऊ=ऊ। (४) ऋ+ऋ=ॠ।

(१)हिम+आलयः=हिमालयः	(२) गिरि+ईशः=गिरीशः	(३)गुरु+उपदेशः=गुरूपदेशः
विद्या+आलयः=विद्यालयः	श्री+ईशः=श्रीशः	विष्णु+उदयः=विष्णूदयः
दैत्य+अरिः=दैत्यारिः	हरि+इदम्=हरीदम्	(४)होतृ+ऋकारः=होतॄकारः

(१४) (सर्वत्र विभाषा गोः) गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव (वैसा ही रहना) होता है। गो+अग्रम्=गोअग्रम्, गोऽग्रम्।

(१५) (अवङ् स्फोटायनस्य) स्वर बाद में हो तो गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है विकल्प से। गो+अग्रम्=गवाग्रम्। गो+अक्षः=गवाक्षः।

(१६) (इन्द्रे च) गो के ओ को अवङ् (अव) होगा, इन्द्र बाद में हो तो। गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः।

(१७) (ऋत्यकः) ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ के बाद ऋ हो तो विकल्प से प्रकृति भाव होगा। जहाँ सन्धि नहीं होगी वहाँ यदि शब्द का अन्तिम अक्षर दीर्घ होगा तो वह ह्रस्व हो जाएगा। ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्मऋषिः, ब्रह्मर्षिः। सप्त+ऋषीणाम्=सप्तर्षीणाम्, सप्तऋषीणाम्।

(१८) (प्रत्यभिवादेऽशूद्रे) अभिवादन के प्रत्युत्तर में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत (३) हो जाता है और वह उदात्त होता है। आयुष्मानेधि देवदत्त३।

(१९) (दूराद्धूते च) दूर से सम्बोधन में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत होगा। आगच्छ देवदत्त३।

(२०) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्) शब्द या धातु के द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होती। हरी+एतौ=हरी एतौ। विष्णू+इमौ=विष्णू इमौ। गङ्गे+अमू=गङ्गे अमू। पचेते+इमौ=पचेते इमौ।

(२१) (अदसो मात्) अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उनके साथ कोई सन्धि नहीं होती। अमी+ईशाः=अमी ईशाः। अमू+आसाते=अमू आसाते।

(ख) हल्-सन्धि (व्यञ्जन-सन्धि)

(२२) (स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बादमें श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्गको चवर्ग होगा। त्>च्, द्>ज्, न्>ञ्, स्>श। जैसे—

रामस् + च = रामश्च	सत् + चित् = सच्चित्	सद् + जनः = सज्जनः
कस् + चित् = कश्चित्	सत् + चरित्रः = सच्चरित्रः	उद् + ज्वलः = उज्ज्वलः
हरिस् + शेते = हरिश्शेते	उद्+चारणम्=उच्चारणम्	शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय

(२३) (शात्) श् के बाद तवर्ग का चवर्ग नहीं होगा। (नियम २२ का अपवाद सूत्र)। प्रश् + नः = प्रश्नः। विश् + नः = विश्नः।

(२४) (ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग होगा। त् > ट्, द्>ड्, न् > ण्, स् >ष्। जैसे—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः	इष् + तः = इष्टः	उद् + डीनः = उड्डीनः
रामस्+टीकते=रामष्टीकते	दुष् + तः = दुष्टः	विष् + नुः = विष्णुः
पेष् + ता = पेष्टा	तत् + टीका = तट्टीका	कृष् + नः = कृष्णः

(२५) (क) (न पदान्ताट्टोरनाम्) पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग का ष् और टवर्ग नहीं होगा, नाम् को छोड़कर। (नियम २४ का अपवाद)। षट् + सन्तः = षट् सन्तः। षट् + ते = षट् ते।

(ख) (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो नियम २४ के अनुसार इनके न को ण होगा। (बाद में नियम ११ के अनुसार ड् को ण् होगा)। षड् + नाम् = षण्णाम्। षड् + नवतिः = षण्णवतिः। षड् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(२६) (तोः षि) तवर्ग के बाद ष हो तो तवर्ग का टवर्ग नहीं होगा। सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

(२७) (झलां जशोऽन्ते) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। (पद का अर्थ है सुबन्त शब्द या तिङन्त धातुएँ)। जैसे—

दिक्+अम्बरः = दिगम्बरः	चित्+आनन्दः=चिदानन्दः	षट्+ एव = षडेव
दिक्+गजः = दिग्गजः	जगत्+ईशः = जगदीशः	षट्+ आननः = षडाननः
अच्+अन्तः = अजन्तः	उत्+देश्यम् = उद्देश्यम्	सुप्+ अन्तः = सुबन्तः

(२८) (झलां जश् झशि) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। (विशेष—यह नियम पद के बीच में लगता है और नियम २७ पद के अन्त में। यही दोनों में भेद है।) जैसे—

दघ् + धः = दग्धः	बुध् + धिः = बुद्धिः	लभ् + धा = लब्धा
दुघ् + धम् = दुग्धम्	सिध् + धिः = सिद्धिः	क्षुभ् + धः = क्षुब्धः
दोघ् + धा = दोग्धा	वृध् + धिः = वृद्धिः	आरभ् + धम् = आरब्धम्

(२९) (क) (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह के अतिरिक्त सभी व्यंजन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जाएगा। यह नियम ऐच्छिक है। (ख) (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) यदि प्रत्यय का म आदि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा अपितु नित्य लगेगा।

दिक् + नाग = दिङ्नाग	सद् + मतिः = सन्मतिः	तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्
तत् + म = तन्म	षड् + नगाः = षण्णगाः	चित् + मयम् = चिन्मयम्
एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः	षड् + मुखाः = षण्मुखाः	वाक् + मयम् = वाङ्मयम्

(३०) (तोर्लि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ँल्ल। जैसे—

तत् + लयः = तल्लय	उद् + लेख = उल्लेख
तत् + लीनः = तल्लीन	विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति

(३१) (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स का थ् होगा। बाद में नियम ३२ के अनुसार थ् का लोप हो जाएगा। उद् + स्थानम् = उत्थानम्। उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। द् को नियम ३४ से त्।

(३२) (झरो झरि सवर्णे) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स) का विकल्प से लोप होता है बाद में सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो। उद् + स्थानम् = उत्थानम्। रुन्ध् + ध = रुन्ध। कृष्णर्द् + धिः = कृष्णर्धिः।

(३३) (झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद ह् हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। क् या ग् + ह = ग्घ, त् या द् + ह = द्ध। वाग् + हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः। तद् + हितः = तद्धितः।

(३४) (खरि च) झलों (१, २, ३, ४ अक्षर) को चर् (१ उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २ श, ष, स) हों तो। ग् > क्, ब् > प्, द् > त्।

सद् + कारः = सत्कारः	सद् + परः = सत्परः	तद् + क्रिया = तत्क्रिया
उद् + पन्नः = उत्पन्नः	उद् + साहः = उत्साहः	दिग् + पाल = दिक्पाल

(३५) (क) (शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श हो तो उसको छ हो जाता है यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्) हो। श् को छ होने पर पूर्ववर्ती त् को नियम ११ से च् और ज को नियम ३४ से च्। पूर्ववर्ती द् हो तो नियम ११ से ज। यह नियम विकल्प से लगता है।

तद् (तत्) + शिवः = तच्छिवः, तच्शिवः	तत् + शीलः = तच्छील
,, + शिष्य = तच्छिष्य, तच्शिष्य	उद् + श्वास = उच्छ्वास

(ख) (छत्वममीति वाच्यम्) श् के बाद अम् (स्वर, ह्, अन्तःस्थ, ङ, ण, न्, म्) हो तो भी श् को विकल्प से छ् होगा। तत् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन।

(३६) (मोऽनुस्वारः) पदान्त म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। बाद में स्वर होगा तो अनुस्वार कदापि नहीं होगा। जैसे—

हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे	सत्यम्+वद = सत्यं वद
कार्यम्+कुरु = कार्यं कुरु	धर्मम्+चर = धर्मं चर

(३७) (नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १,२,३,४, ऊष्म) हो तो। जैसे—यशान्+सि = यशांसि। पयान्+सि = पयांसि। नम्+स्यति = नंस्यति। आक्रम्+स्यते = आक्रंस्यते। यह नियम पद के बीच में लगता है।

(३८) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

अं+कः = अङ्कः	अं+चितः = अञ्चितः	शां+तः = शान्तः
शं+का = शङ्का	कुं+ठितः = कुण्ठितः	गुं+फितः = गुम्फितः

(३९) (वा पदान्तस्य) पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। यह नियम पदान्त में लगता है। त्वं+करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। सम्+गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, संगच्छध्वम्।

(४०) (मो राजि समः क्वौ) सम् के बाद राज् धातु हो तो सम् के म् को म् ही रहता है। उसको अनुस्वार नहीं होगा। सम्+राट् = सम्राट्। सम्राजौ, सम्राजः।

(४१) (ङ्णोः कुक्टुक् शरि) ङ् या ण् के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट्। प्राङ्+षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः। सुगण्+षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः।

(४२) (डः सि धुट्) ड् के बाद स हो तो बीच में ध् विकल्प से जुड़ जाता है। नियम १४ से ध् को त् और पूर्ववर्ती ड् को ट्। षड्+सन्तः = षट्त्सन्तः, षट्सन्तः।

(४३) (नश्च) न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से ध् जुड़ जाता है। नियम १४ से ध् को त्। सन्+सः = सन्त्सः, सन्सः।

(४४) (शि तुक्) पदान्त न् के बाद श हो तो विकल्प से बीच में त् जुड़ जाता है। नियम १९ से श् को छ्। सन्+शम्भुः = सञ्च्छम्भुः, सञ्छम्भुः।

(४५) (ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ्, ण्, न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ्, ण्, न् और जुड़ जाता है। जैसे—प्रत्यङ्+आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्+ईशः = सुगण्णीशः। सन्+अच्युतः = सन्नच्युतः।

(४६) (क) (रषाभ्यां नो णः समानपदे) र्, ष् या ऋ ॠ के बाद न् को ण् हो जाता है। जैसे—शीर्+नः = शीर्णः, पूर्+नः = पूर्णः। पूष्+ना = पूष्णा। पितृ+नाम् = पितॄणाम्। (ख) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न् को ण् होगा बीच में स्वर, ह्, अन्तःस्थ, कवर्ग, पवर्ग या म् हों तो भी। रामेन = रामेण। (ग) (पदान्तस्य) पद के अन्तिम न् को ण् नहीं होगा। रामान् का रामान् ही रहेगा।

(४७) (क) (अपदान्तस्य मूर्धन्यः, इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ आ को छोड़कर सभी स्वर, ह, अन्तःस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि वह किसी के स्थान पर आदेश हुआ हो या प्रत्यय का स् हो। पद के अन्तिम स् को ष नहीं होगा। जैसे—रामे + सु = रामेषु, हरि + सु = हरिषु। अधुक् + सत् = अधुक्षत्। (ख) (नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि) इण् (अ आ से भिन्न स्वर, ह अन्तःस्थ) और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि बीच में नुम् (न्) विसर्ग (ः) और श् ष् स् में से कोई एक हो तो भी। धनूंस् + सि = धनूंषि। पिपठीष् + सु = पिपठीष्षु। पिपठीः + सु = पिपठीःषु।

(४८) (समः सुटि संपुंकानां सो वक्तव्यः) सम् + स्कर्ता में म् के स्थान पर र् होकर स हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक ँ लग जाता है। बीच के एक स् का लोप भी हो जाएगा। सम् + कृ धातु होने पर इसी प्रकार ंस् लगाकर सन्धि होगी। सम् + स्कर्ता = सँस्कर्ता संस्कर्ता। संस्करोति संस्कृतम्, संस्कारः आदि।

(४९) (पुमः खय्यम्परे) पुम् के म् को र् होकर नियम ४८ के अनुसार स् हो जाएगा, बाद में कोकिलः पुत्रः आदि शब्द हों तो। स् से पहले ं या ँ लग जाएगी। पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः। पुम् + पुत्रः = पुंस्पुत्रः।

(५०) (नश्छव्यप्रशान्) पद के अन्तिम न् को रु (ं स्) होता है, यदि छव् (च् छ्, ट् ठ्, त् थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह अन्तःस्थ वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। न् को स् होने पर उससे पहले ं या ँ लग जाएँगे। इस नियम का रूप होगा—न् + छव् = ँ स् + छव् या ं स् + छव्। श्चुत्व नियम २१ के अनुसार प्राप्त होगा तो होगा।

कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्	शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि
धीमान् + च = धीमांश्च	चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व
तस्मिन् + तरौ = तस्मिंस्तरौ	तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा

(५१) (कानाम्रेडिते) कान् + कान् में पहले कान् के न् को रु होकर स् होगा और उससे पहले ँ या ं होगा। कान् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान्।

(५२) (क) (छे च) ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् लग जाता है। नियम २१ से त् को च् हो जाएगा। स्व + छाया = स्वच्छाया। शिव + छाया = शिवच्छाया। स्व + छन्दः = स्वच्छन्दः। (ख) (दीर्घात्) दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। चे + छिद्यते = चेच्छिद्यते। (ग) (पदान्ताद् वा) पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। (घ) (आङ्माङोश्च) आ और मा के बाद छ होगा तो नित्य त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। आ + छादयति = आच्छादयति। मा + छिदत् = माच्छिदत्।

(ग) विसर्ग-सन्धि (सादि-सन्धि)

(५३) (ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र्) होता है। सजुष् शब्द के ष् को भी रु होता है। (सूचना—इस रु को साधारणतया नियम ५४ से विसर्ग होकर विसर्ग : ही शेष रहता है। जैसे—राम + स् = रामः, कृष्ण + स् = कृष्णः। इसको ही नियम ६६, ६७, ६८ से उ या य् होता है। जहाँ उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहता है। अतः अ या आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र् शेष रहता है, बाद में कोई स्वर या व्यञ्जन (वर्ग के ३, ४, ५) हो तो)। जैसे—

हरिः + अवदत् = हरिरवदत्	वधूः + एषा = वधूरेषा
पितुः + आयच्छत् = पितुरायच्छत्	गुरोः + भाषणम् = गुरोर्भाषणम्
पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा	हरेः + द्रव्यम् = हरेर्द्रव्यम्

(५४) (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो या कुछ न हो तो। पुनर् + पृच्छति = पुनः पृच्छति। राम + स् (र्) = रामः। (सूचना—पुं० शब्दों के प्रथमा एक० में जो विसर्ग दीखता है, वह स् का ही विसर्ग है। उसको नियम ५३ से रु (र्) होता है और नियम ५४ से र् को विसर्ग (:)।)

(५५) (विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग के बाद खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है। (श् या चवर्ग बाद में हो तो नियम २२ से श्चुत्व सन्धि भी)। जैसे—

हरिः + त्रायते = हरिस्त्रायते	विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता
रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति	बालः + चलति = बालश्चलति
कः + चित् = कश्चित्	जनाः + तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति।

(५६) (वा शरि) विसर्ग के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते हैं। श्चुत्व या ष्टुत्व (नियम २२, २४) यदि प्राप्त होंगे तो लगेंगे। जैसे—

हरिः + शेते = हरिश्शेते, हरिःशेते	रामः + षष्ठः = रामष्षष्ठः
रामः + शेते = रामश्शेते, रामःशेते	बालः + स्वपिति = बालस्स्वपिति

(५७) (कस्कादिषु च) कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पहले अ या आ होगा तो विसर्ग को स् होगा, यदि इण् (इ, उ) होगा तो ष् होगा। कः + कः = कस्कः। कौतः + कुतः = कौतस्कुतः। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका। धनुः + कपालम् = धनुष्कपालम्। भाः + करः = भास्करः।

(५८) (सोऽपदादौ पाशकल्पककाम्येष्विति०) पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाएगा। पयः + पाशम् = पयस्पाशम्। यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम्। यशः + कम् = यशस्कम्। यशस्काम्यति।

(५९) (इणः षः) पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को ष् हो जाएगा, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद होगा तो। सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्।

(५०) (नमस्पुरसोर्गत्योः) गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को स् होता है बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। (कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं)। नमः + करोति = नमस्करोति। पुरः + करोति = पुरस्करोति।

(५१) (इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य) उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) में इ या उ हो तो उसके विसर्ग को ष् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए। निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्। निः + क्रान्तः = निष्क्रान्तः। आविः + कृतम् = आविष्कृतम्। दुः + कृतम् = दुष्कृतम्।

(५२) (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरस् के विसर्ग को स् विकल्प से होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। तिरः + करोति = तिरस्करोति, तिरःकरोति। तिरः + कृतम् = तिरस्कृतम्।

(५३) (इसुसोः सामर्थ्ये) इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य होनी चाहिए, तभी ष् होगा। सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिःकरोति। धनुः + करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति।

(५४) (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य) समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष् होगा, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद (बाद के पद) में नहीं होना चाहिए। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(५५) (अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य) अ के बाद विसर्ग को स् नित्य होता है, समास में, बाद में कृ, कम् आदि हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए और उत्तर पद में न हो। अयः + कारः = अयस्कारः। अयः + कामः = अयस्कामः। इसी प्रकार अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी।

(५६) (अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। (सूचना—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धि-नियम ४ से गुण करके ओ हो जाता है और बाद के अ को सन्धि-नियम ७ से पूर्वरूप संधि होती है। अतएव अः + अ = ओऽ होता है।) जैसे—

शिवः + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः	कः + अयम् = कोऽयम्
रामः + अस्ति = रामोऽस्ति	रामः + अवदत् = रामोऽवदत्
कः + अपि = कोऽपि	देवः + अधुना = देवोऽधुना

(५७) (हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (वर्ग के ३, ४, ५, ह, अन्तःस्थ) हो तो। (सूचना—सन्धिनियम ५६ बाद में अ हो तब लगता है, यह बाद में हश् हो तो। उ करने के बाद सन्धिनियम ४ से अ + उ को गुण होकर ओ होगा। अतः अः + हश् = ओ + हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।)

शिवः + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः	देवः + गच्छति = देवो गच्छति
रामः + वदति = रामो वदति	बालः + हसति = बालो हसति

(६८) (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि) भो, भगो, अघो शब्द और अ या आ के बाद रु (स् का र् या :) को य् होता है यदि बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(६९) (हलि सर्वेषाम्) भो, भगो, अघो और अ या आ के बाद य् का लोप अवश्य हो जाता है, बाद में व्यंजन हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(७०) (लोपः शाकल्यस्य) अ या आ पहले हो तो पदान्त य् और व् का लोप विकल्प से होता है, बाद में अश् (स्वर, ह अन्तःस्थ, वर्ग के ३ ४, ५) हो तो। (सूचना—नियम ६८ के य् के बाद व्यंजन होगा तो नियम ६९ से य् का लोप अवश्य होगा। य् के बाद यदि कोई स्वर आदि होगा तो नियम ७० से य् का लोप वैकल्पिक होगा। य् का लोप होने पर कोई दीर्घ गुण वृद्धि आदि सन्धि नहीं होगी। अः अः या आः + अश् = अ या आ + अश्।)

भोः + देवाः = भो देवाः
देवाः + नम्याः = देवा नम्याः
देवाः + यान्ति = देवा यान्ति

नराः + हसन्ति = नरा हसन्ति
देवाः + इह = देवा इह, देवायिह
पुत्राः + आगच्छन्ति = पुत्रा आगच्छन्ति

(७१) (क) (रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है बाद में कोई सु (विभक्ति) न हो तो। अहन् + अहः = अहरहः। अहन् + गणः = अहर्गणः। (ख) (रूप त्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्) रूप, रात्रि रथन्तर बाद में हो तो अहन् के न् ो रु होगा। उसको नियम ६७ से उ होगा और नियम ४ से गुण होकर ओ होगा। न् + रूपम् = अहोरूपम्, अहन् + रात्रः = अहोरात्रः। इसी प्रकार अहोरथन्तरम्।) (अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः) अहर् आदि के र् के बाद पति आदि हों र् को र् विकल्प से रहता है। अहर् + पतिः = अहर्पतिः। इसी प्रकार गीर्पतिः, तिः। अन्यत्र विसर्ग।

(७२) (रो रि) र् के बाद र् हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

(७३) (ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) ढ् या र् का लोप हुआ हो तो उससे ो अ, इ उ को दीर्घ हो जाता है। ऊढ + ढः = ऊढः। लिढ् + ढः = लीढः।

पुनर् + रमते = पुना रमते
हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः

शम्भुर् + राजते = शम्भू राजते
अन्तर् + राष्ट्रिय = अन्ताराष्ट्रिय

(७४) (एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) सः और एषः के विसर्ग का लोप होता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। (सकः एषकः असः, अनेषः के विसर्ग का लोप नहीं होगा।)(सूचना—सः, एषः के बाद अ होगा तो सन्धिनियम ६६ से 'ओऽ' होगा। अन्य स्वर बाद में होंगे तो सन्धिनियम ६८ और ७० से विसर्ग का लोप होगा।)

(१) सः + पठति = स पठति
एषः + विष्णुः = एष विष्णुः

(२) सः + अयम् = सोऽयम्
सः + इच्छति = स इच्छति

(७५) (सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्) सः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में स्वर हो और लोप करने से श्लोक के पाद की पूर्ति हो। सः + एषः = ष दाशरथी रामः।

(७) पत्रादि-लेखन-प्रकार

आवश्यक-निर्देश

पत्रों के लेखन में निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखें :—

(१) पत्र-लेखन बहुत सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए। इसमें प्रायः पत्रसंवाद में व्यवहृत भाषा का ही रूप अपनाया जाता है, जिससे पत्र का भाव सरलता से हृदयंगम हो सके।

(२) पत्रों में अनावश्यक विशेषणों का परित्याग करना चाहिए। पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयत्न पत्र में अनुचित है, यह निबन्ध आदि में कुछ अंश तक ठीक-सम्मत है।

(३) जिस उद्देश्य से पत्र लिखा गया है, उसका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

(४) पत्र यथासम्भव संक्षिप्त होना चाहिए। उसमें आवश्यक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। अनावश्यक बातों का उल्लेख और विस्तार उचित नहीं है।

(५) साधारणतया पत्रों को ४ श्रेणी में बाँट सकते हैं। तदनुसार ही उनका लेखन होता है। (क) अतिपरिचित व्यक्तियों को। (ख) सामान्य-परिचित व्यक्तियों को। (ग) अपरिचित व्यक्तियों को। (घ) केवल व्यावहारिक पत्र।

(क) (१) पिता, पुत्र, माता, मित्र, पत्नी, पति आदि के लिए ऐसे पत्र होते हैं। इसमें प्रारम्भ में ऊपर दाहिनी ओर स्व-स्थान-नाम तथा तिथि या दिनांक देना चाहिए। (२) उसके नीचे सम्बोधनपूर्वक अपने से बड़ों को प्रणाम, नमस्कार, नमस्ते आदि लिखें। समान आयुवालों को नमस्ते, छोटों को स्नेहाशीष, आशीर्वाद आदि। (३) पत्र के अन्त में बड़ों के लिए 'आपकाआज्ञाकारी', 'भवत्कृपाकांक्षी' आदि, समान आयुवालों को 'भवदीय', 'भावत्क' आदि, छोटों को 'शुभाकांक्षी', शुभचिन्तक आदि लिखना चाहिए। (४) पत्र का पता लिखने में पहली पंक्ति में व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए। उसके नीचे उपाधि आदि। दूसरी पंक्ति में ग्राम-नाम, मुहल्ला या सड़क आदि का नाम। तीसरी पंक्ति में पोस्ट आफिस (डाकखाना) का नाम। चौथी पंक्ति में जिले का नाम। यदि दूसरे प्रान्त या देश के लिए हो तो अन्त में प्रान्त या देश का नाम लिखें।

(ख) सामान्य-परिचित में सम्बोधन में व्यक्ति का नाम-निर्देश करें। शेष पूर्ववत्।

(ग) अपरिचितों को सम्बोधन में 'श्रीमन्', 'महोदय' आदि लिखें। अन्त में 'भवदीय' या 'भावत्क'। शेष पूर्ववत्। इसमें काम की बात ही मुख्यरूप से लिखें।

(घ) केवल व्यावहारिक पत्रों में—(१) प्रारम्भ में अधिकारी, व्यक्ति या कम्पनी आदि का नाम एवं कार्यालय-सम्बन्धी पता लिखें। (२) तदनन्तर सम्बोधन में 'श्रीमन्' या 'महोदय'। (३) प्रणाम, नमस्ते आदि न लिखें। (४) अन्त में 'भवदीय'। (५) केवल कार्य-सम्बन्धी बात लिखें। पारिवारिक या वैयक्तिक नहीं।

(१) पित्रे पत्रम्

प्रयाग-विश्वविद्यालयतः
तिथि—श्रावण-शुक्ला १, २०११ वि०

श्रीमतां माननीयानां पितृचरणानां चरणारविन्दयोः । सादरं प्रणतिततयः ।

अत्र शं तत्रास्तु । समधिगतं मया भवदीयं कृपापत्रम् । अवगतं च निखिलं वृत्तम् । यत्नवेऽध्ययनकर्मण्येव नितरां व्यापृतोऽस्मि । एम० ए० संस्कृतविषये प्रवेशमवाप्याधिकतरां मुदमावहे । वेदानां गुणगरिमा उपनिषदां तत्त्वज्ञानम्, कालिदासादिमहाकवीनां काव्यसौष्ठवम्, भारतीयदर्शनसूत्रैः सार्धम् भाषाविज्ञानस्य वैज्ञानिकी दर्शनमनोहरता च स्वान्तं मे प्रतिपलं प्रसादयति । अत्रत्यो गुरुभूरिपरिश्रमः सत्य एव अन्येष्वपि विषयेषु वाक्पटुतामासादयितास्मि । मान्यायां मातृचरणयोः प्रणतिर्वाच्या ।

भवदाज्ञाकारी सुतः—रमेशचन्द्रः

(२) सुहृदे पत्रम्

नैनीतालतः
दिनाङ्क २१।६ ईसवीय

प्रियमित्र श्यामसुन्दर शर्मन् ! सप्रणयं नमस्ते ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । भवत्प्रेमपत्रं प्राप्य मानसं मेऽतीव मोदमावहति । परिवारे सर्वेषामपि कुशलक्षेमसमाचारं ज्ञात्वा हृष्टोऽस्मि । ऐषमस्तने संवत्सरे ग्रीष्मर्तौ सपरिवारं नैनीतालनगरमागत्य सन्निविष्टोऽस्मि । नगरमेतत् प्राकृतिकसुषमायाः सर्वस्वम्, पर्वतमालापरिवृतम्, शीतलमन्दसुगन्धपवनस्फुरणेन अनायासम्, रम्यवृक्षावलीपरिराजितम्, कृत्रिमाकृत्रिमसरोवरसंकुलम्, सततशीतलमन्दवायुविमनोहरं रमणीयं च । भवतोऽत्रागमनेनानुगृहीष्यामि । कुशलमन्यत् । ज्येष्ठेभ्यो नमः, कनिष्ठेभ्यश्च स्वस्ति । पत्रोत्तरप्रदानेनानुग्राह्योऽहम् ।

भवद्बन्धुः—सुरेन्द्रनाथो दीक्षितः

(३) भ्रात्रे पत्रम्

गुरुकुल-महाविद्यालय—ज्वालापुरतः
दिनाङ्कः २-८-५ ई०

प्रिय बन्धुवर विजयकुमार ! सस्नेहं नमस्ते ।

अत्र शं तत्रास्तु । एतच्छ्रुत्वा भवान्नूनं हर्षमनुभविष्यति यदहं संवत्सरेऽस्मिन् वार्षिकपरीक्षायामुत्तीर्णः । तत्र च प्रथमा श्रेणिः लब्धा । साम्प्रतमहं संस्कृतविषये एम० ए० परीक्षां दित्सामि । आशासे येन प्रकारेण तथापि साफल्यमाप्स्यामि । सर्वेऽपि गुरवो मयि कृपापराः । शिवं विधेयं स्यात् । परिचितेभ्यो नमः ।

भवद्बन्धुः—रामचन्द्रः शर्मा

(४) अवकाशार्थं प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,

राजकीय-महाविद्यालयः, नैनीतालः ।

मान्यवर !

अहमद्य दिनद्वयात् शीतज्वरेण पीडितोऽस्मि । ज्वरप्रतापेन अहं शय्यामुपगतोऽस्मि । अतो विद्यालयमागन्तुं न प्रभवामि । कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः ।

भवदाज्ञाकारी शिष्यः—हरगोविन्दो जोशी

(५) पुस्तकप्रेषणार्थं प्रकाशकाय आदेशः

श्रीप्रकाशकमहोदयाः

विश्वविद्यालय प्रकाशनम्, गोरखपुरम् (गोरखपुर)

श्रीमन्तः,

दृष्टिपथमुपागतं मे भवत्प्रकाशितं "प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी" नामकं पुस्तकम् । ग्रन्थस्यास्योपयोगित्वं समीक्ष्य नितरां हृष्टहृदयोऽस्मि । कृपया पुस्तकमेककम् अधोनिर्दिष्टस्थाने वी० पी० पी० द्वारा शीघ्रं संप्रेष्यानुग्रहीतव्यम् ।

दिनांकः—१-७-६ ई०

भवदीयः—सुरेन्द्रनाथ-दीक्षितो व्याकरणाचार्यः, एम० ए०,

हिन्दी-प्राध्यापकः एस० एस० कालेजः, मुजफ्फरपुरम् ।

(६) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय !

एतद् विज्ञाय नूनं भवन्तो हर्षमनुभविष्यन्ति यत् परमेशस्य महत्यानुकम्पया मम ज्येष्ठाया पुत्र्याः विमलादेव्याः शुभपाणिग्रहणसंस्कारो वाराणसी-वास्तव्यस्य श्रीमतो रामचन्द्रप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्रेण एम० ए० इत्युपाधिविभूषितेन श्रीसुरेन्द्रप्रसादगुप्तेन सह दिनांके ११-१-६ ईशवीये रात्रौ दशवादने सम्पत्स्यते । सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत् सपरिवारं निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेन प्रीणयन्त्वस्मान् ।

६, ६ मुट्ठीगंजः, प्रयागः — भवद्दर्शनाभिलाषी—

वैद्यनाथप्रसादगुप्तः

दिनांकः—५-११-६ ई०

(स्वीकृति-सूचनयानुगृह्णन्तु)

(७) परिषदः सूचना

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् अस्माकीनायाः महाविद्यालयीयसंस्कृतपरिषदः वार्षिकमधिवेशनम् आगामिनि शुक्रवासरे (दिनाङ्कः—२१-७-६० ई०) सायंकाले चतुर्वादने महाविद्यालयस्य महाकक्षे भविष्यति । सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायानां चोपस्थितिः सादरं सविनयं प्रार्थ्यते ।

दिनाङ्कः—१८-७-६० ई०

निवेदिका—
(कु०) माया त्रिपाठी (मन्त्रिणी)

(८) प्रस्तावस्य अनुमोदनम्, समर्थनं च ।

(१) (क) आदरणीयाः सभासदः, प्रियाः विद्यार्थिनश्च !

सौभाग्यमेतदस्माकं यदत्र "(कानपुरस्थ डी० ए० वी० कॉलेज-संस्थायाः संस्कृत-विभागस्याध्यक्षचराः श्रीमन्तो हरिदत्तशास्त्रिणः, सप्ततीर्थाः, व्याकरणवेदान्ताचार्याः, एम० ए०, पी-एच० डी० आदि—विविधोपाधिविभूषिताः) अत्र समायाताः सन्ति । अतः प्रस्तौमि यत् श्रीमन्तो मान्या विद्वद्रेण्या आचार्यवर्याः अद्यतन्याः सभायाः अध्यक्षपदं स्वीकृत्यास्मान् अनुग्रहीष्यन्तीति । आशासे एतेषां सभापतित्वे सत्सङ्गेऽस्य सर्वमपि कार्यकलापं सुचारुतया सम्पत्स्यते इति । आशासे अन्येऽपि सभासदः प्रस्तावस्यास्य अनुमोदनं समर्थनं च करिष्यन्ति ।

(२) (क) मान्याः सभासदः !

अद्यैतस्याः सभायाः सभापत्यार्थं (सभापतिपदाय, उपसभापतिपदार्थम्, कोषाध्यक्षपदार्थम्) श्रीमतः " " नाम प्रस्तौमि ।

(ख) अहं प्रस्तावस्यास्य हृदयेनानुमोदनं करोमि ।

(ग) अहं प्रस्तावस्यास्य हार्दिकं समर्थनं करोमि ।

(९) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीकुमाराय "(रामचन्द्रशर्मणे) (एम० ए०) कक्षायाः (द्वितीय)" वर्षस्थाय" (व्याख्यान-प्रतियोगितायां सर्वप्रथमस्थानप्राप्त्यर्थं) निमित्तं " "(प्रथमं) पारितोषिकमिदं ई प्रदीयते ।

मन्त्री

सभासंचालकः (सभाध्यक्षः, प्रधानः)

(१०) जयन्ती-समारोहः

एतत् संसूचयता मया भृशान् महर्षोऽनुभूयते यदागामिनि शुक्रवासरे गुरुपूर्णिमा दिवसे (आषाढ पूर्णिमा वि० २ १७) दिनाङ्के ८-७-६ इस्वीये महाविद्यालयस्य महाकक्षे सायंकाले चतुर्वादने व्यास-जयन्ती-समारोहः संयोजयिष्यते। सर्वेषामपि संस्कृत प्रेमिणां संस्कृतप्रेमिणां च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते। आशासे यत् सर्वेऽपि यथासमयं समागत्य महाकवये श्रीमते व्यासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्गुणग्रामं समाकर्ण्य, तद्विरचितानि हृद्यानि पद्यानि निशम्य, गूढभावाभिविभूषितां तदीयामाध्यात्मिककवितां च भावं भावं स्वान्तःसुखमनुभविष्यत इति।

दिनाङ्क ६-७-६ ई (कु) रश्मि-कोचरः

सभा-संयोजिका

(११) वर्षाणार्थं समय-याचना

श्रीमन्तो मुख्यमन्त्रिमहोदयाः डा० सम्पूर्णानन्दमहाभागाः,

उत्तर प्रदेशः, लक्ष्मणपुरम् (लखनऊ)

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अहं कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्य भवद्भिः सह किञ्चिद्वक्तुं कामोऽस्मि। आशासे भवन्तो दशकलामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति। भवन्निर्दिष्टे समये भवतां सविधे समागत्य भवद्दर्शनेन भवत्समर्थेन चात्मानं कृतकृत्यं मंस्ये।

दिनाङ्क ९-७-६ ई भवद्दर्शनाभिलाषी—

प्रेमनाथः

(१२) व्याख्यानम्

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः परिषत्सदस्याः! आदरणीयाः सभासदश्च!

अद्याहं भवतां समक्षे (विद्या अहिंसा देश-सेवा समाज-सुधार) विषयमधिकृत्य किञ्चिद् वक्तुकामोऽस्मि। संस्कृतभाषाभाषणाभ्यासाभावाद् न शक्नोमि साधीयसा प्रकारेण भावान् व्यक्तीकर्तुम्। पदे पदे स्खलनमपि च संभाव्यते। 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः'। अतः प्रमाद प्रभूतास्त्रुटयो मे भवद्भिः सज्जनैः परिमार्जनीयाः। (तदनन्तरं व्याख्यानस्य प्रारम्भः)।

(८) निबन्ध-माला

आवश्यक-निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, सुगठित, सुबोध एवं क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है —१ निबन्ध की सामग्री। २ निबन्ध की शैली।

निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के ३ साधन हैं:—१ निरीक्षण अर्थात् प्रकृति को स्वयं देखना और ज्ञान एकत्र करना। २. अध्ययन अर्थात् पुस्तकों आदि से उस विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ३. मनन अर्थात् स्वयं उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में इन बातों का ध्यान रखें—(क) प्रस्तावना या आरम्भ—प्रारम्भ में विषय का निर्देश, उसका लक्षण आदि रखें। (ख) विवेचन—बीच में विषय का विस्तृत विवेचन करें। उस वस्तु के लाभ, हानि, गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विस्तृत विचार करें। अपने कथन की पुष्टि में सूक्ति, पद्य या श्लोक उदाहरणरूप में दे सकते हैं। (ग) उपसंहार—अन्त में अपने कथन का सारांश संक्षेप में दें। प्रस्तावना और उपसंहार एक या दो सन्दर्भ (पैराग्राफ) में ही हों। अधिक स्थान विवेचन में दें।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रखें —१ भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो। २ भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी हो। ३ भाषा में प्रवाह हो। स्वाभाविकता हो। ४ उपयुक्त और अर्थाभिव्यञ्जक शब्दों का प्रयोग करें। ५. भाषा सरल सरस, सुबोध और आकर्षक हो। ६ लोकोक्ति और अलंकारों को भी स्थान दें। ७ अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, अधिक पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा क्लिष्टता का त्याग करें।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं:—

(क) वर्णनात्मक निबन्ध—इसमें पशु, पक्षी, नदी ग्राम, नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु-वर्णन यात्रा, पर्व, रेल, तार, विमान आदि का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन होता है।

(ख) विवरणात्मक निबन्ध—इनमें घटित घटनाओं, युद्धों प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक वर्णनों, जीवन-चरितों आदि का संग्रह होता है।

(ग) विचारात्मक निबन्ध—इनमें आध्यात्मिक मनोविज्ञान-सम्बन्धी सामाजिक, राजनीतिक तथा अमूर्त विषयों जैसे क्रोध अहिंसा, सत्य, परोपकार आदि का संग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

उदाहरण के लिए २० निबन्ध सार्वकालिक विषयों पर प्रौढ संस्कृत में दिए हैं।

१ वेदानां महत्त्वम्

ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि वेद इति रूपं निष्पद्यते । सत्तार्थकाद् विचारणार्थकात् प्राप्त्यर्थकाद् विद् धातोरपि रूपमेतद् निष्पद्यते । ज्ञानराशिर्वेद इति सुकरं वक्तुम् । किं वेदस्य वेदत्वम् ? कति वेदाः ? किं तेषां महत्त्वम् ? किं तत्र विशिष्टं ज्ञानमित्यादयो बहवोऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते । एतदेवात्र समासत उपस्थाप्यते । वेदा हि विविधज्ञानविज्ञानराशयः, संस्कृतेराधारस्तम्भाः, कर्तव्याकर्तव्यावबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, सत्प्रथाः रूपयाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहितसम्पादकाः, आचारसंचारकाः, सुखशान्तिस्थापकाः, ज्ञानालोकप्रसारकाः, कर्तव्यकर्मप्रेरकाः नैराश्यनाशकाः, आशाया आश्रयाः, चतुर्वर्गप्राप्तिसोपानस्वरूपाश्च । चतुष्टयी वेदानाम् ऋग्यजुःसामाथर्वभेदेन ।

वेदानां महत्त्वं, तत्र प्रतिपादितं विशिष्टं ज्ञानं च समासतोऽत्रोपस्थाप्यते । विस्तरस्तु तस्य स्वयमेवान्वेष्यः । (१) भाषायाः प्राचीनतमत्वम्—विश्वस्मिन् प्राचीनतमा ग्रन्था वेदा इत्यत्र न कस्यापि विपश्चितो विप्रतिपत्तिः । वैदिकसाहित्यस्य प्राचीनतमं रूपमत्रोपलभ्यते । भाषाविज्ञानदृष्ट्या वेदानामतीव महत्त्वम् । वैदिकलौकिकसंस्कृतयोस्तुलनया तुलनात्मकभाषाशास्त्रस्य जनिरभूत् । भाषा कथं परिवर्तते प्रचलति, प्रचरति वेत्यादिप्रमाणानामुपलब्धिरत्राप्यते । (२) प्रथमा संस्कृतिः—प्राचीनतमायाः संस्कृतेः स्वरूपमिहोपलभ्यते । काऽऽसीत्तदा समाजव्यवस्था ? आसीत् जनानामार्थिकी धार्मिकी राजनीतिकी सामाजिकी च स्थितिः ? कीदृशमासीत्तेषां जीवनम् ? किं क्रियाकलापमन्वतिष्ठन् जना इति सर्वं वेदाध्ययनेन वेदेषु प्राप्यते । वैदिकी संस्कृतिः प्रथमा संस्कृतिरासीत् (यजु ७-१४)। धार्मिककृत्येषु यज्ञस्य विशिष्टं महत्त्वमासीत् (यजु १ १, १-२ १ १ १, अथर्व ७ ९७ १९ १)। यज्ञस्य सत्यस्य च विशेषेणत्वम्, ऋतं च सत्यं च (ऋग् १०-१९० १) । सत्यमेवपालनेयमित्याम्नायादिषु वचनम् । यमाक्रमणोऽपि वे वचनम्, दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् (यजु॰ १९-७७) । (३) समाजचित्रणम्—प्राचीनसमाजस्य वास्तविकं चित्रणं वेदेष्वेवोपलभ्यते । यथा—आश्रमादिवर्णने तत्कालस्थितिवर्णनं च । अथर्ववेदेऽनेकसूक्तेषु गृहस्थविषयकं विवरणमुपलभ्यते । ब्रह्मचर्यम्(अ ११-५), मेधा (अ १९ ४), वाक् (अ ७-४१), वेदमाता (अ १९-७१), अतिथिसत्कारः (अ ९ ६) नामाकामना (अ १-८१) दम्पतिसुखप्रार्थना (अ १-७८) ग्राम्य निर्माणम् (अ ७-६ ११) विवाहः (अ १४ १-२), अन्नरक्षणम् (अ १५ १-८) । तथाविवाहः (ऋग् १ ८५-१ १६), सुखशोभनमुपलब्धानम् (ऋग् १ २८ ५ ८)। यजुर्वेदस्य त्रिंशेऽध्याये विविधानां व्यवसायिनां शास्त्राणां वृत्तीनां च विस्तरशो वर्णनमुपलभ्यते । (यजु॰ ३ ५ २२) । (४) अध्यात्मवर्णनम्—आत्मतत्त्वादिविचारोऽत्र प्राप्यते । तद्यथा—अध्यात्मम् (अथर्व ११-८, ११ २ १), आत्मा (अ ५ १, ७-१ १०-२१), ब्रह्मविद्या (अ ४ १), मनः (अ ७-६६), ब्रह्मविद्या (अ ४ १, ५-६), विराट् (अ ८ ११) । (५) दार्शनिक-विचाराः—तत्त्वज्ञानमीमांसामाश्रित्य विषयविवेचनम् । तद्यथा—सत्सुरतिः (ऋग् १ १२१ ११), काल-मीमांसा (अ १९ ५३ ५४, ऋग् १ १६४ ४८), अमावास्या (अ ७-७९) पूर्णिमा (अ ७-८), रात्रिः (अ १९ ४७) अद्वैतवेदान्तप्रतिपादितो भावः 'एकम्'

दधि (यजु० २-२८,४० १७), वाग्देवतावर्णनम् (ऋग् १० १२५ १-८), श्रद्धा(ऋग्० १० १५१ १-५)। (६) राजनीतिः—राज्ञो वरणं तत्कर्तव्यादिकं चात्र वर्ण्यते। राष्ट्रम् (यजु ९ २३, १० २४), प्रजातन्त्रशासनम्, महते ज्ञान-राज्याय० (यजु० ९ ४), साम्राज्यम् (यजु १०-२७), राष्ट्रम् (अथर्व १९-२४), राष्ट्रसभा (अ ७-१२), राजा राजकर्तव्यम् (अ ३-५), राज्ञो वरणम् (अ ३ ८७), राज्याभिषेकः (अ ४-८), प्रजाः (अ ७-११), राष्ट्ररक्षा (अ २ १६ ११ १७), विजयः (अ ७-५०, १०-५), शत्रुसेनानाशनम् (अ ७-९), शत्रुनाशनम् (ऋग् १० १६६ १—५), सेनानिरीक्षणम् (अ० ४ ११) सेनासंयोजनम् (अ० ४ १२), आसुरी माया (यजु ११-६९, ११-७४), हस्तास्पोषा (यजु ५ २३, २५)। (७) विविधविद्याभिधानम्—(क) आयुर्वेदः—आयुर्वर्धनम् (अ १९-६१), कुष्ठौषधिः (अ० ६ ९५), वाजीकरणम् (अ ४ ४), विषनाशनम् (अ ४-७), व्रणचिकित्सा (अ० ६-५७, यजु० ६ १२, ९-३, ११ ३८), ज्वरनाशनम् (अ १-२५, ७-११६), यक्ष्मनाशनम् (अ ३ ११, १-७)। (ख) कामशास्त्रम्—कामः (अ० ९-२ १९-५२), रतिः (ऋग् १ १७९ १-६)। (ग) गणितविज्ञानम्—संख्याः (यजु १७-२, १८ २४ २५)। (घ) मनोविज्ञानम् (यजु ३४ १-६)। (ङ) निर्वचनशास्त्रम्—इन्द्रं हनति वृत्रम् (यजु ३३ ९६)। (८) कलातत्त्वम्—सामवेदो गीतात्मकः संगीतस्य च तत्र पूर्णरूपं प्राप्यते। उदात्तादिस्वरसत्त्वं वेदेषु संगीतमेव द्योतयति। 'नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषम्' (यजु ३०-६), महते वीणावादं 'पाणिघ्नं तूणवध्मं' शङ्खध्मम् (यजु० ३० २०) इत्यादिभ्यो नृत्त-गीतवाद्यादीनां प्रचारो द्योतते। शिल्पवर्णनम् (यजु० ४ ९)। (९) आर्थिकी स्थितिः—कृष्यादीनामनेकानामार्थिकी स्थितिरिहापि प्राप्यते। आदान-प्रदानस्य महत्त्वम्, देहि मे ददामि ते० (यजु० ३-५०), अन्नम् (अ ६-७१, ७-५८), अन्नसमृद्धिः (अ० ६-१४२), पाकः (अ ७-१७), कृषिः (अ ३-१७, ऋग्०४-५७ १-८), (यजु ४ १०, १२-६८ ७१) वाणिज्यम् (अ० ३-१५) पशवः (अ० २ १४), धनम् (अ ६ ४), गावः (ऋग् ६ २८ १-८, अ ४ २१), मृत्पात्राणि (यजु० ११-५९)। (१०) नाट्यशास्त्रम्—नाट्यशास्त्रस्य मूलं संवाद ऋग्वेदे गीतं सामवेदेऽभिनयो यजुर्वेदे रसा अथर्ववेदे च प्राप्यन्ते। ऋग्वेदे संवादसूक्तानि यथा—यमयमीसूक्तम् (ऋ० १० १०), पुरूरव-उर्वशीसंवाद (ऋ १०-९५), सरमा-पणि-संवादः (ऋ० १०-१०८)। (११) ऐतिहासिकी भौगोलिकी सामग्री—यथा—नदीनामानि (ऋ ३-३३, १०-७५), समुद्रः (ऋ० १०-१४), पर्वतस्तुतिः (ऋ० १०-७६, १०-९४), पशु-पक्षि-नामानि (यजु २४ २ ४), वृक्षनामानि (यजु० १० ५-२४)। (१२) काव्यशास्त्रम्—वेदेष्वनेकेऽलंकाराः छन्दोवर्णनं च प्राप्यते। यथा—अनुप्रासः (ऋ १० १४५. ३, १० १५९-५)। उपमाः (ऋ १ १ १ १, १ १८ १; अथर्व० १ १ ३, १ १ ७-५, १ १४ १, १-२४-४, २ ५९. १-२, २ ०१ १), छन्दोनामानि (यजु १ २७- १४ ९, १० १८), पर्यायवाचिनः—यथा गोनामानि (यजु० ८-४३), जलपर्यायाः (यजु० २२ १९)। एवं ज्ञायते यद् वेदेषु प्राचीनसंस्कृतिपरिज्ञानाय सर्वमावश्यकं वस्तु प्राप्यते। ऐतिहासिक दृष्ट्या वेदानां महत्त्वं सर्वातिशायि वर्तते।

२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता

वेदार्थबोधाय सत्स्वपि ग्रन्थेषु तद्विनियोगज्ञानाय चासीद् महत्यावश्यकता कैश्चित् सहायकग्रन्थानाम्। एतदभावपूर्तये एव आविरभवद् वेदाङ्गानाम्। षडिमानि वेदाङ्गानि। १ शिक्षा, २ व्याकरणम्, ३ छन्दः, ४ निरुक्तम्, ५ ज्योतिषम्, ६ कल्पः। तथा चोच्यते—'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः। ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु'। षडिमान्यङ्गानि वेदार्थबोधादिविधौ उपकुर्वन्तीति निरूप्यतेऽत्र। एषामेतेषां महत्त्वं निर्दिश्यैव प्रतिपाद्यते पाणिनीयशिक्षायाम् —"छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते" ॥ (श्लो० ४१-४२)।

वेदाङ्गानामेतेषां विवरणं तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता च समासतोऽत्र प्रस्तूयते। (१) शिक्षा—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधिं विशेषतो वर्णयन्ति। कथं वर्णा उच्चारणीयाः, किं तेषां स्थानम्, कस्य तत्र प्रयत्नः, कण्ठताल्वादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम्, कति वर्णाः, कथं कायमारुतो वर्णत्वेन विपरिणमते, कति स्थानानि, कति स्वराः, कथं च ते प्रयोज्या इत्यादयो विषयाः शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते। वर्णोच्चारणादिविधिज्ञानमन्तरेण न शक्यो वेदानां विशुद्धः पाठोऽध्ययनमध्येति शिक्षाग्रन्थानां विशिष्टं महत्त्वम्। साम्प्रतं केचन शिक्षाग्रन्था उपलभ्यन्ते। तेषां सम्बन्धः कैश्चिद् विशिष्टेन वेदेन वर्तते। तद्यथा—ऋग्वेदस्य पाणिनीयशिक्षा, शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, कृष्णयजुर्वेदस्य व्यासशिक्षा, सामवेदस्य नारदशिक्षा, अथर्ववेदस्य च माण्डूकीशिक्षा। अन्येऽपि केचन शिक्षाग्रन्थाः सन्ति। यथा—भरद्वाजशिक्षा, वसिष्ठशिक्षादयः। (२) व्याकरणम्—व्याकरणे प्रकृति-प्रत्ययस्य विचारः, उदात्तादिस्वरविचारः, उदात्तादिस्वरसञ्चारनियमाः, सन्धि-नियमाः, शब्दरूपधातुरूपादिनिर्माणनियमाः, प्रकृतेः प्रत्ययस्य च स्वरूपावधारणे तदर्थनिर्धारणे चेति विविधा विषया विविच्यन्ते। वेदेषु प्रकृति-प्रत्ययविचारस्य स्वरस्य च महत्त्वादर्थमपि तत्र व्याकरणमेव ज्ञानमनुतिष्ठतीति षडङ्गेषु व्याकरणमेव प्रधानम्। वैदिकव्याकरणं प्रातिशाख्यमूलकमेव। वेदानां प्रतिशाखामाश्रित्य व्याकरणग्रन्था आसन्, ते च प्रातिशाख्यग्रन्था इति पप्रथिरे। केचन एव प्रातिशाख्यग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते। ते एकैकवेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तद्यथा—ऋग्वेदस्य शाकलशाखायाः शौनकप्रणीतम् ऋक्प्रातिशाख्यम्। एतदेव पार्षदसूत्रमित्यप्यभिधीयते। शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिन-शाखायाः कात्यायनविरचितं शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम्। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीय शाखायाः तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्। सामवेदस्य सामप्रातिशाख्यं (पुष्पसूत्रं वा), पञ्च विधसूत्रं च। अथर्ववेदस्य अथर्वप्रातिशाख्यं (चातुरध्यायिका वा)। ऐन्द्रसम्प्रदाय

बोधाय च पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा । अन्ये प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव । (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव । अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रस्य निर्माणम् । छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिङ्गलप्रणीतं छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते । प्रातिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते । (४) निरुक्तम्—निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते । विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः । अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलिका व्याख्याया प्रथमः प्रयासः समारभ्यते । वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते । तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत् । यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनः चतुर्दश निरुक्तकारान् परिगणयति । निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति । (५) ज्योतिषम्—यज्ञे मुहूर्तमाश्रित्यैव विधिविधानं प्रवर्तते इति शुभमुहूर्तज्ञानाय ज्योतिषस्योपयोगोऽभूत् । अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च । सौरमासचान्द्रमासयोरपि परिगण्यतेऽत्र । मुहूर्तनिर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्वं परिलक्ष्यते । विषयेऽस्मिन् लगधाचार्यप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव समुपलभ्यते । (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधयागानां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते । मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगस्तत्र प्रतिपाद्यते । कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते—(क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्वसूत्रं च । (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविःसंस्थानां सप्त सोमसंस्थानामेवं पशुयागानां विधानं विधिविनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते । तत्र प्रमुखानि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शाङ्खायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन, आपस्तम्ब॰, कात्यायन, मानव, हिरण्यकेशी, लाट्यायन, द्राह्यायण, वैतानश्रौतसूत्रं च । श्रौतसूत्राणीमानि कल्पस्यैव वैशिष्ट्यमिव वर्तन्ते । (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां सविशेषं वर्णनमुपलभ्यते । गृह्यसूत्राण्यपि कल्पस्यैव वैशिष्ट्यमिव वर्तन्ते । तत्र प्रमुखानि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर॰, शाङ्खायन, बौधायन, आपस्तम्ब॰, मानव, हिरण्यकेशी॰, भारद्वाज, वाराह॰, काठक, वैखानस, गोभिल, द्राह्यायण, जैमिनीय॰, खादिरगृह्यसूत्रं च । (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कर्तव्यं नीतिधर्मो चतुर्वर्णाश्रमाणां कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिकनियमादिकं वर्ण्यते । तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी॰, वसिष्ठ, मानव, गौतमधर्मसूत्रं च । (घ) शुल्वसूत्रम्—शुल्वसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते । तत्र मुख्याः ग्रन्था सन्ति—बौधायनशुल्वसूत्रम्, आपस्तम्ब, कात्यायन॰, मानवशुल्वसूत्रं च । एवं षडिमानि वेदाङ्गानि वेदाध्ययने सविशेषमुपयोगे चोपयुक्तानि सन्ति ।

२ सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम् । गीतेयं न केवलं प्रस्तौति सर्वासामुपनिषदां सारभागम्, अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौतितराम् । सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वैशद्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनशास्त्रग्रन्थोऽप्ययमुपकल्प्यते । वेदान्तदर्शनप्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपलम्भात् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य स्फुरते । सेयं सरलया भाषाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठयाऽर्थगाम्भीर्यया प्रौढया प्रसन्नया, श्रेष्ठया विशुद्धिरम्यया साधिकया योगसाधनावीथ्यया चरित्रमाऽऽत्मविशुद्धिविधया सर्वानपि लोकस्यार्थानुभवति । प्रत्येवात्र समासत उपस्थाप्यन्ते विविच्यन्ते च ।

(१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विस्तृत्या समुपलभ्यते गीतायाम् । तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । (गीता २ ४७) । विहायासक्तिं फलप्रेप्सामना सक्त कर्मणि प्रवर्तितव्यम् । निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केवलं श्लोका अत्र दिङ्मात्रं निर्दिश्यन्ते । योगस्थः कुरु कर्माणि (२ ४८) कर्मयोगेन योगिनाम् (३ ३), न कर्मणामनारम्भात् (३ ४), कार्यते ह्यवशः कर्म (३ ५) यस्त्विन्द्रियाणि मनसा० (३-७) नियतं कुरु कर्म त्वं (३-८) तस्मादसक्तः सततं (३ १९) कर्मणैव हि संसिद्धिम् (३ २०), सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो (३ २५), कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं (४ १५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं (४ १७), कर्मण्यकर्म (४ १८) त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं (४ २०), कर्मयोगो विशिष्यते (५ २) । निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समाप्यते । तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु ४०-२, ईश २) ।

(२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तस्यावश्यकर्तव्यता च निरूप्यते । तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः (३ १०), देवान् भावयतानेन (३ ११) इष्टान् भोगान् (३ १२), यज्ञशिष्टाशिनः (३ १३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि (३ १४, १५), एवं प्रवर्तितं चक्रं (३ १६), दैवमेवापरे यज्ञं (४ २५-२७), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा (४ २८), यज्ञशिष्टामृतभुजो (४ ३१-३३) । यज्ञेनाऽपि नोज्झितव्यो यागः । यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (१८-५) । यज्ञस्य महत्त्वं तदुपयोगिता तत्सम्बन्धिनश्च प्रतत्त्वो मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते । तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं (यजु० २ ६), हविष्मानसि दुवस्वत (यजु १ १-५), देवान् दिवमगन् यज्ञः (यजु ८-६), आयुर्यज्ञेन कल्पतां (यजु ९ २१), यज्ञो नो अभिपातु (१५ १८ १९) उद्बुध्यस्वाग्ने (यजु १५ ५४-५६) अग्नीषोमा० (यजु २१-५८) अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु २३-६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः (३१ ६ ९), यज्ञेनायज्ञमयजन्त (३१ १४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त (३१ १६) । यज्ञमहत्त्वप्रतिपादकानि मन्त्रस्थानानि—(यजु ६ २५, ८-६१, ९ १, ११-८, १२ ४४ १७-५२ १७-७६, १८ २९, १९ ११, २२ ३३) ।

(३) कर्मकाण्डस्य ज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम् । यामिमां पुष्पितां वाचं० (२ ४२ ४३) । विषयोऽयं विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि । तद्यथा—प्लवा ह्येते अदृढा

११

बोधाय च पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा । अन्ये प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव । (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायश्छन्दोबद्धा एव । अतो वृत्तज्ञानाय छन्दोज्ञानमनिवार्यम् । छन्दोज्ञानविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिङ्गलप्रणीतं छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते । प्रातिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते । (४) निरुक्तम्—निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते । विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः । अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलिकाया व्याख्यायाः प्रथमः प्रयासः समासाद्यते । वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते । तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत् । यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनां चतुर्दश निरुक्तकारान् परिगणयति । निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति । (५) ज्योतिषम्—शुभे मुहूर्ते यागादिकस्यैव विधिर्वेदेऽस्ति । यागविधिशुभमुहूर्तज्ञानाय ज्योतिषस्योपयोगोऽभूत् । अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च । सौरमासस्य चान्द्रमासस्योभयं परिगण्यतेऽत्र । यज्ञमुहूर्तनिर्धारणे चान्द्रमासस्य प्राधान्यं परिलक्ष्यते । विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते । (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधयज्ञानां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते । मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगस्तत्र प्रतिपाद्यते । कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते—(क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्बसूत्रं च । (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविर्यज्ञानां सप्त सोमयज्ञानामेवं चतुर्दशयज्ञानां विधानं विधिविनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते । तत्र प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शांखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन , आपस्तम्ब , कात्यायन , मानव , हिरण्यकेशी , लाट्यायन , द्राह्यायण , वैतान श्रौतसूत्रं च । श्रौतसूत्राणीमानि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते । (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां सविधि वर्णनमाप्यते । गृह्यसूत्राण्यपि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते । तत्र प्रमुखाणि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर , शांखायन , बौधायन , आपस्तम्ब , मानव , हिरण्यकेशी , भारद्वाज , वाराह , काठक , कौषीतकि , गोभिल , द्राह्यायण , जैमिनीय• खादिरगृह्यसूत्रं च । (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कर्तव्यं नीतिर्धर्मो रीतयश्च वर्णाश्रमाणां कर्तव्याकर्तव्यं सामाजिकनियमादिकं वर्ण्यते । तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब , हिरण्यकेशी• वसिष्ठ , मानव , गौतमधर्मसूत्रं च । (घ) शुल्बसूत्रम्—शुल्बसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते । तत्र मुख्या ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनशुल्बसूत्रम्, आपस्तम्ब , कात्यायन , मानवशुल्बसूत्रं च । एवं षडिमानि वेदाङ्गानि वेदार्थज्ञाने तत्प्रयोगावगमने चोपयुक्तानि सन्ति ।

३ सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम्। गीतेयं न केवलं प्रस्तौति तासामप्युपनिषदां सारभागम्, अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौतितराम्। सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वैशद्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपलभ्यते। वेदान्तदर्शनप्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपलम्भाद् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य लक्ष्यते। सेयं सरलया भाषाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठयाऽर्थगम्भीरतया, प्रेयसा पदतया, श्रेयसा विद्वद्विमर्शनया, साधिष्ठया योगसाधनाबोधनया, वरिष्ठयाऽऽत्मविशुद्धिशिक्षया सर्वस्यापि लोकस्यादरमनुभवति। एतदेवात्र समासत उपस्थाप्यते विविच्यते च।

(१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विस्तरेण समुपलभ्यते गीतायाम्। तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। (गीता २ ४७)। विहायासक्तिं फलप्रेप्सामना सदा कर्मणि प्रवर्तितव्यम्। निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रं निर्दिश्यन्ते। योगस्थः कुरु कर्माणि (२ ४८) कर्मयोगेन योगिनाम् (३ ३), न कर्मणामनारम्भात्० (३ ४) कार्यते ह्यवशः कर्म (३ ५) यस्त्विन्द्रियाणि मनसा (३-७), नियतं कुरु कर्म त्वं (३-८), तस्मादसक्तः सततं (३ १९) कर्मणैव हि संसिद्धिम् (३-२०) सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो (३ २५) कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं (४ १५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं (४ १७), कर्मण्यकर्म (४ १८), त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं (४ २०), कर्मयोगो विशिष्यते (५ २)। निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समाम्नायते। तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु ४० २, ईश० २)।

(२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तस्यावश्यकर्तव्यता च निरूप्यते। तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः (३ १०), देवान् भावयतानेन (३ ११) इष्टान् भोगान् (३ १२), यज्ञशिष्टाशिनः (३ १३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि (३ १४, १५) एवं प्रवर्तितं चक्रं (३ १६), दैवमेवापरे यज्ञं (४ २५ २७), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा (४ २८), यज्ञशिष्टामृतभुजो (४ ३१-३३)। यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (१८-५)। यज्ञस्य महत्त्वं समुपयोगिता तत्स्वरूपादिकं च बहुधा मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते। तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं (यजु १-२) समिधाग्निं दुवस्यत (यजु ३ १-५), देवान् दिवमगन् यज्ञः (यजु ८-६०), आयुर्यज्ञेन कल्पतां (यजु ९ २१) भद्रो नो अग्निराहुतो (१५ ३८ ३९) उद्बुध्यस्वाग्ने (यजु १५ ५४-५५), अग्नीषोमाः (यजु २१-५८), अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु २३-६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः (३१ ६ ७), वसन्तोऽस्यासीदाज्यं (३१ १४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त (३१ १६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादकानि मन्त्रान्तराणि—(यजु ९-२५, ८-३१, ३ ३, १९-८, १९ ४४, १७-५२ १७-७०, १८ २९, १९ १२, २२ ३३)।

(३) कर्मकाण्डस्य ब्रह्मज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम्। यामिमां पुष्पितां वाचं (२ ४२ ४४)। विषयोऽयं विस्तरतो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि। तद्यथा—प्लवा ह्येते अदृढा

यथास्या० (मुण्डक० १-७-१०)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च महता विस्तरेण गीतायां समुपलभ्यते। तद्यथा—अन्तवन्त इमे देहा (२.१८), य एनं वेत्ति० (२.१९), न जायते म्रियते० (२.२०) वासांसि जीर्णानि० (२-२२), नैनं छिन्दन्ति० (२.२३), अच्छेद्यो० (२.२४), वही नित्य (२.१)। आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिषदि कठे च विस्तरतो वर्णितमस्ति। तद्यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्० (ईश ८), अनेजदेकं० (ईश० ४), तदेजति तन्नैजति० (ईश ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे (कठ १.२.१८ २१)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्याये ज्ञानयोगस्य विस्तरतो वर्णनमाप्यते। मुण्डकेशोपनिषदि लभ्यते—विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। (ईश ११)। अन्यत्रापि अस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्या मार्गेण च कर्ममार्गो गृह्यते। तत्रत्याभिव्यक्तिरपि यत्र सांख्यदर्शने विशेषतो विभिद्यते। (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनानिम्यादिकं च तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् वैराग्यदर्शनं योगदर्शनं चाश्रित्य भवति। मुण्डकोपनिषदि माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। तद्यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं (मु० २.२.३), प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा० (मु २.२.४), मा यथा०(मु० १-७) अन्येन अन्यत्रापि आत्मा० (मु० १-५), यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते (मा ५)। (७) अक्षर ब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षप्रतिपादनमष्टमाध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि छान्दोग्ये, बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं प्रणवानुध्यानेन मोक्षप्राप्तेश्च वर्णनं विस्तरेण उपलभ्यते।(८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वरप्राप्तिसाधनत्वेनोपदिश्यते। भावोऽयं मुण्डकोपनिषदि मुण्डकेनोपलभ्यते। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् (मु ३-२-३)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभूतिर्विभूतीनां वर्णनमापद्यते। कठोपनिषदि विस्तरतो विभूतिविभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। तद्यथा—रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव (कठ २.५ ९ ११), तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ २.५.१५) भयादस्याग्निस्तपति (कठ २.६.३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभूतिविराड्रूपस्य० वर्णनं यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ३१ अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्०। (यजु० ३१ १-२१)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। श्वेताश्वतरोपनिषदि भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्यते। तद्यथा—ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं० (श्वे १.१४)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं सांख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। सांख्याभिमत प्रकृतिपुरुषवर्णनमत्र वर्ण्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसारमेव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषदपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेता० ४-५), स विश्वरूपस्त्रिगुणः (श्वेता ५-७)। सप्तदशेऽष्टादशे चाध्याये श्रद्धा ज्ञानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि सांख्यानुसारमेवावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्याये अश्वत्थवर्णनं कठोपनिषदमाश्रित्य भवति। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः (कठ २.६.१)। तत्र वर्णिता क्षराक्षरपुरुषौ श्वेताश्वतरे प्राप्यते। तद्यथा—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः (श्वेता० १.१०)। विषयोऽयमस्मिन्नेव गीतैव सर्वासामुपनिषदां सर्वेषां दर्शनानां श्रुतीनां च सारं सरलया सरस्या भाषया प्रस्तौतीति।

४ भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश नाटकरत्नानि समुपलभ्यन्ते। 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरसूक्तिमाश्रित्य भासनाटकचक्रमिति समस्तनाटकानां नाम व्यवह्रियते। नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते। (१) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—चतुरङ्कमयम्। उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रणयः परिणयश्चेह वर्ण्यते। यौगन्धरायणप्रयत्नात् प्रद्योतकारागारादुदयनस्य मोक्षः। (२) स्वप्नवासवदत्तम्—षडङ्कमयम्। लावाणके वासवदत्ताऽग्निना दग्धेति प्रवादं प्रचार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽपहृतराज्यप्राप्तिश्च वर्ण्यते। (३) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेतदेकाङ्कि। पाण्डवसैन्यपरिसमाप्तिनिमित्ताय भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते। निर्दिष्टेऽपि संस्कृतसाहित्ये दुःखान्तमेतदेव नाटकम्। (४) दूतवाक्यम्—एकाङ्कि नाटकम्। महाभारतयुद्धात् प्राक् पाण्डवार्थं दुर्योधनसंसदि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रवृत्तवैफल्यं चात्र वर्ण्यते। (५) पञ्चरात्रम्—त्र्यङ्कमयम्। यज्ञान्ते द्रोणो दक्षिणारूपेण पाण्डवेभ्यो राज्याय याचते दुर्योधनम्। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानां वृत्तम् उपलभ्यते चेद्राज्यार्धं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानां प्राप्तिर्दुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदानं च। (६) बालचरितम्—पञ्चाङ्कमयम्। बालस्य श्रीकृष्णस्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते। (७) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कि नाटकमदः। अभिमन्युनिधनानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य कौरवसभायां दूतत्वेनागमनम्। दुर्योधनकृततस्यापमानः। दुर्योधनोक्तिश्च—'प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैरिति'। (८) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कि। ब्राह्मणवेषधारिणे इन्द्राय कर्णस्य कवचकुण्डलदानम्। (९) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कि। मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यमनामानं ब्राह्मणकुमारं घटोत्कचात् त्रायते। अन्यपदानेन भीमस्यात्मस्यानवयाति पत्न्या हिडिम्बया च समागमः। (१०) प्रतिमानाटकम्—सप्ताङ्कमिदम्। रामवनवासादारभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता। दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति। (११) अभिषेकनाटकम्—षडङ्कमयम्। किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता। रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः। (१२) अविमारकम्—षडङ्कमयम्। राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञः कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्ग्या सह प्रणयपरिणयोऽत्र वर्णितः। (१३) चारुदत्तम्—चतुरङ्कमयमिदं। विशीर्णविपुलविभवेनो दरिद्रेण चारुदत्तेन सह वसन्तसेनानामधेयाया गणिकायाः प्रणयवृत्तान्तोऽत्र वर्णितः।

नाटकनाम्नोऽस्य प्रणेता भास एवास्ति येषु विविधा विप्रतिपत्तिर्विद्यतेऽस्मिन्। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति निश्चितधियो स्वीकुर्वते। एषु एतेषां प्रणेतृत्वसम्बन्धेऽन्तःसाक्ष्यादिना। (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रवेशादारभ्यन्ते। 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति वाक्येन प्रस्तावना सर्वत्र। (२) नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना'शब्दप्रयोगः। (३) प्ररोचनाभावोऽर्थात् नाटककृतस्य नाम्नश्चानुल्लेखः। (४) नाटकारम्भे (स्वप्न० प्रतिज्ञा० प्रतिमा० पञ्च० ऊरु०) मुद्रालङ्कारप्रयोगेण प्रथमश्लोके प्रमुखनाटकीयपात्राणां नामोल्लेखः। (५) भरतवाक्ये प्रायः साम्यमेव सर्वत्र। 'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' (६) भूमिका संक्षिप्ततमा। तस्या आरम्भेऽपि प्रायः साम्यमेव। यथा—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि।'

यथास्मात्० (मुण्डक० १-७-१)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च मा विस्तरेण गीतायां समाप्यते। यथा—अन्तवन्त इमे देहा (२ १८), य एनं वेत्ति (२ १९), न जायते म्रियते (२ २०) वासांसि जीर्णानि (२ २२), नैनं छिन्दन्ति (२-२३), अच्छेद्यो (२ २४), देही नित्य (२ ३०)। आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिष कठे च विस्तरशो वर्णितमस्ति। यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण (ईश ८ अनेजदेकं (ईश ४), तदेजति तन्नैजति० (ईश० ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुरा न हन्यते हन्यमाने शरीरे (कठ १ २ १८ २१)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्या ज्ञानयोगस्य विस्तरशो वर्णनमाप्यते। मुण्डकेशोपनिषदि लभ्यते—विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभयं सह। (ईश ११)। अत्रापरेऽस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्या मार्गेण च कर्ममार्गो ग्राह्यः। सांख्याभिमतोऽयं पन्थाः सांख्यदर्शने विशेषतो विविच्यते (६) षष्ठाध्याये पञ्चमाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनादिकं तत्र प्राप्यते। ध्यानमेतद् योगदर्शने योगवर्णनं चाभिन्नं वर्तते। मुण्डकोपनिष माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं० (मु० २ २ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा० (मु २ ४), यः सर्वज्ञः०(मु २-७), तस्येन तन्मयत्वस्य वे आत्मा (मु० ३-२) यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते (मा ५)। (७) अक्ष ब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षप्राप्तिश्चाष्टमाध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि छान्दोग्ये, बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं ब्रह्मानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णनं विस्तर उपलभ्यते। (८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वराराधनत्वेनोपदिश्यते। भावोऽ मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् (मु ३ ३)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीनां वर्णनमवाप्यते कठोपनिषदि विस्तरशो विभोर्विभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। यथा—रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव (कठ २ ५ ८ ११), तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ २ ५ १५) भयादस्याग्निस्तपति (कठ २.६ ३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराड्रूपस्य वर्णनं यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ३१ अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। (यजु ३१ १-२१)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। श्वेताश्वतरोपनिषदि भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्यते। तद्यथा—अथाभिध्यानयोगाद्वै (श्वेत १ ३)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं सांख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। सांख्याभिमतं प्रकृतिपुरुषस्वरूपमिहाप लभ्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसारमेव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्यपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेता ४-५), स विश्वरूपस्त्रिगुणः (श्वेता ५-७)। सप्तदशेऽध्याये श्रद्धाया ज्ञानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि सांख्यानुसारमेवावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्यायेऽश्वत्थवर्णनं कठोपनिषदमाश्रित्य वर्तते। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः (कठ २.६ १)। तत्र वर्णितौ क्षराक्षरौ श्वेताश्वतरे प्राप्यते। तद्यथा—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः (श्वेता १ १०)। विचारेणानेनेदं सिद्ध्यति यत् गीतेयं सर्वासामुपनिषदां सर्वेषां दर्शनानां श्रुतीनां च सारं तत्त्वतः तत्त्वा प्रस्तौतीति।

४ भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश नाटकरत्नानि समुपलभ्यन्ते। 'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरसूक्तिमभिलक्ष्यैव भासनाटकचक्रमिति समुद्घनाटकानां नाम व्यवह्रियते। नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते। (१) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—चतुरङ्कमिदम्। उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रणयपरिणयश्चैव वर्ण्यते। यौगन्धरायणप्रयत्नतः प्रद्योतकारागारादुदयनस्य मोक्षः। (२) स्वप्नवासवदत्तम्—षडङ्कमिदम्। वासवदत्ताग्निदाहव्याजेन दर्शकेन प्रसादं प्रसार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽप्रकाशप्रणयातिशयश्च वर्ण्यते। (३) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेतदेकाङ्कम्। पाण्डवार्थपरिभवप्रतिक्रियार्थं भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते। निष्फलेऽपि सन्धिप्रयत्ने दुःखान्तमेतदेव नाटकम्। (४) दूतवाक्यम्—एकाङ्कं नाटकम्। महाभारतयुद्धात् प्राक् पाण्डवार्थं दुर्योधनसदसि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रस्तावश्चात्र वर्ण्यते। (५) पञ्चरात्रम्—त्र्यङ्कमिदम्। यज्ञान्ते द्रोणो दक्षिणात्वेन पाण्डवेभ्यो राज्यार्धं याचते दुर्योधनम्। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवाना मुपलम्भे चेद्राज्यार्धं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानां प्राप्तिर्दुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदानं च। (६) बालचरितम्—पञ्चाङ्कमिदम्। बालस्य श्रीकृष्णस्य जन्मारभ्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते। (७) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कं नाटकमिदम्। अभिमन्युनिधनानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य कौरवसमितिं दूतत्वेन गमनम्। दुर्योधनकृतस्तस्यापमानः। दुर्योधनोक्तिश्च—'प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैरिति'। (८) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कम्। ब्राह्मणवेषधारिणे इन्द्राय कर्णस्य कवचकुण्डलदानम्। (९) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कम्। मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यमनामानं ब्राह्मणकुमारं घटोत्कचात् त्रायते। अस्मिन्प्रसङ्गेन भीमस्यानन्तरमात्मपत्न्या हिडिम्बया च समागमः। (१०) प्रतिमानाटकम्—सप्ताङ्कमिदम्। रामवनवासादारभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता। दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति। (११) अभिषेकनाटकम्—षडङ्कमिदम्। किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता। रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः। (१२) अविमारकम्—षडङ्कमिदम्। राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञः कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्ग्या सह प्रणयपरिणयोऽत्र वर्णितः। (१३) चारुदत्तम्—चतुरङ्कमिदम्। विलासिनी वसन्तसेना दारिद्र्येण चारुदत्तेन सह वसन्तसेनानामगणिकायाः प्रणयप्रसङ्गोऽत्र वर्णितः।

नाटकानामेतेषां प्रणेता भास एवास्ति इति विषये विदुषां विप्रतिपत्तिरस्मिन्। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति निम्नलिखितैस्तर्कैर्निर्णीयते। एक एवैतेषां प्रणेतेत्यत्र नाटकान्तरेऽन्यासाधारणसाम्यादिना। (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रवेशादारभ्यन्ते। 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति वाक्येन प्रारम्भः सर्वत्र। (२) नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना' शब्दप्रयोगः। (३) प्रयोजनाभावोऽर्थात् नाटककृत्परिचयाभावः स्वनामाभावात्। (४) नाटकपात्रैः (स्वप्न०, प्रतिज्ञा, प्रतिमा०, पञ्च, ऊरु) मुद्रालङ्कारप्रयोगेण प्रथमश्लोके प्रमुखनाटकीयपात्राणां नामसङ्केतः। (५) भरतवाक्यं प्रायः समानमेव सर्वत्र। 'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' (६) भूमिका दीर्घतमा। संवादारम्भेऽपि प्रायः साम्यमेव। यथा—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि।'

(७) पात्रनामसाम्यमपि । यथा—कांचुकीयो बादरायणः, प्रतीहारी विजया च कतिपयेषु नाटकेषु । (८) अप्रचलितपदानां प्रयोगो यथा—सुमहता खल्वकालेन । (९) बहुषु नाटकेषु पताकास्थानकप्रयोगः । (१०) नाटकेषु सर्वेषु भाषासाम्यं शैलीसाम्यं च । (११) अपाणिनीयप्रयोगाश्च सर्वेष्वेव नाटकेषु । (१२) अन्योन्यसंबद्धानि नाटकानि । यथा—स्वप्न प्रतिज्ञायौगन्धरायणयोः कथाभाग एव । प्रतिमाऽभिषेकनाटके च तथा ।

बाणो हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतारम्भैः०' इति भासनाटकवैशिष्ट्यमाचष्टे । तस्य सर्वमिदमाप्यते । राजशेखरोऽभिधत्ते—'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् । स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।' एतस्मात् भासकृतनाटकचक्रस्य स्वप्नवासवदत्तस्य च भासकृतित्वेनावगतिर्भवति । मोक्षीयो गणपतिशास्त्री च स्वप्नवासवदत्तं भासकृतिमभ्यनन्दत् । अतो भास एव सर्वेषां प्रणेतेत्यवगम्यते ।

भासस्य स्थितिकालश्च ४५ ई० पूर्वतनन्तरं १७ ई० पूर्वात्प्राक् च स्वीक्रियते ।

समस्तकार्ये भासकृतत्वं संस्कृतभाषायां परीक्ष्यते चेद् भास एव नाटककृतामग्रणीरिति शक्यं वक्तुम् । प्रयोगबहुलनाटकानां प्रणेता स इति प्रतिपादितमेव । नाट्यकलाचातुर्येण विषयवैविध्येनाभिनयोपयोगित्वेन च तस्य नाट्यनैपुण्यं नाटकनिर्मितौ वैभवं चावगम्यते । नाटकेषु तस्य मुख्या विशेषताः सन्त्येताः—भाषायां सरलता, स्वाभाविका शैली, वस्तुषु यथार्थता, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकता, कथोपकथने सौष्ठवं, कथाप्रवाहस्य विच्छिन्नत्वम् प्रवाहः । सर्वाण्येव नाटकान्यभिनयोपयोगीनीति तस्य महनीयत्वमभिवर्धयन्ति । नाटकेषु मौलिकता कथानकवैविध्यं च विशेषत उपलभ्यते । स एव सर्वप्रथमी-रेकाङ्किनाटककारो मन्यते । नाट्यभाषायामस्त्यैक्यादि । पताकास्थानकमपि मधुरं प्रयुङ्क्ते । शैली चेद् विविच्यते तत्र तर्हि प्रसादमाधुर्यौजसां यथायथमपि गुणानां समन्वयस्तत्र वीक्ष्यते । भाषा तस्य सरला, सुबोधा, सरसा, नैसर्गिकी, अल्पसमासा च । उपमारूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासादीनामलङ्काराणां प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य कृतिषु । अनुप्रासादिकं विशेषतः प्रियं तस्य । यथा—हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम (प्रतिमा १ ४) । मनोवैज्ञानिकविवेचने नितरां निपुणः सः । यथा—दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः० (स्वप्न० ४-६), प्रद्वेषो बहुमानो वा० (स्वप्न १ ७), शरीरेऽरिः प्रहरति० (प्रतिमा १ ११)। भारतीया भावाः सविशेषं रोचन्ते तस्मै । यथा—पितृभक्तिः पातिव्रत्यं भ्रातृप्रेमादिकम् । 'भर्तृनाथा हि नार्यः' (प्रतिमा १ २५), गुरु कोपो विनीतानाम् (प्रतिमा १ १), अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् (स्वप्न अंक ६) । भाषायां सरलता रम्यता च लोकप्रियतायाः कारणं तस्य । रसभावानुकूलं शैल्याः परिवर्तनमपि प्राप्यते । यथा—मत्तमातङ्ग (प्रतिमा ५-२२), पश्चात्पा परिभूय (प्रतिमा ९-१) । विलापमनस्य समस्तं सर्वोपायानुकुर्वते । प्रकृतिवर्णने 'अनुसृत्यैव वने गताः' (प्रतिमा ९-१०) । चित्रवत् तथा भावान् यथा मूर्तवत् उपतिष्ठन्ति । भावप्रयोगस्तस्याभावात्मको मार्मिकश्च । यथा—वनवास्या० (प्रतिमा १ ८) । उपमाप्रयोगोऽपि चारुः । यथा—सूर्य इव गतो रामः (प्रतिमा २-७), विवसमागते (प्रतिमा ६-२) । आकारणादिवैलक्षण्यमपि प्रदर्शयति यथावसरम् । यथा—स्वरयत्न० (प्रतिमा ५-७) अतः स्त्रो वीरः० (प्रतिमा ४-७) । विविधरसध्वनि, छन्दःप्रयोगे, अर्थान्तरन्यासप्रयोगे च प्रभूतं प्राविण्यमुपलभ्यते तस्य ।

५ कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्

महाकवेः कालिदासस्य स्थितिकालमनुरुध्य कतिपयानि मतान्युपलभ्यन्ते मतिमद्भिः वर्णिते । मतद्वयं च मुख्यतः प्रचरितम् । (१) विक्रमसंवत्सरसंस्थापकस्य विक्रमादित्यस्य राज्यकाले ख्रिस्ताब्दात्पूर्वं प्रथमशताब्द्याम्, (२) ईसवीयचतुर्थशताब्द्यां गुप्तकाले । प्रथमं मतं भारतीयैरधिकं स्वीक्रियते द्वितीयं च पाश्चात्त्यैः । कृतित्वस्य प्राधान्यतः सप्तैव स्वीक्रियन्ते । (क) नाट्यग्रन्थाः—(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (२) विक्रमोर्वशीयम्, (३) मालविकाग्निमित्रम् । (ख) काव्यद्वयम्—(४) रघुवंशम् (५) कुमारसम्भवम् । (ग) गीतिकाव्यद्वयम्—(६) मेघदूतम्, (७) ऋतुसंहारम् । कृतिष्वेतासु शाकुन्तलमेव कवेः प्रतिभायाः परिपाकेन रचनाकौशलेन प्रकृतिचित्रणे पाटवेन, रसपरिपाकेन, नीरसस्थाने सरसताऽऽधानेन, मूलकथापरिवर्तने वैशारद्येन, करुणादिरससंचारेण च सर्वोत्कृष्टमिति तदेव कालिदासस्य सर्वस्वमभिमन्यते । अतो निगदितं केनापि—'काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला । तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्' । एतदेवात्र विविच्यते विविच्यते च । विषयोऽयं मया विस्तरेण वर्णितो विशदीकृतश्च मत्कृतशाकुन्तलभूमिकायाम् । विस्तरस्तत्र द्रष्टव्यः । श्लोकाङ्कादिकं मत्सम्पादितशाकुन्तलसंस्करणानुसारि ।

कालिदासस्य नाटककलाकौशले सन्त्येता विशेषताः । घटनासंयोजने सौष्ठवं, वर्णनानां स्वाभाविकता व्यञ्जनात्मकता च, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, कवित्वं, रसपरिपाकश्चेति । अभिनयार्हतया चैतेषां नाटकानां महत्त्वं निरुपममभिमन्यते । घटनासंयोजने सौष्ठवं यथा—द्वितीयेऽङ्के आश्रमे प्रवेष्टुकामे सति दुष्यन्ते ऋषिकुमारद्वयस्य नृपाह्वानार्थं प्रवेशः । पञ्चमे हंसपदिकागीतम्, षष्ठेऽङ्गुलीयकोपलब्धिः, सप्तमे पुत्रदर्शनं शकुन्तलाप्राप्तिश्च । वर्णनेषु स्वाभाविकता यथा—प्रथमेऽङ्के मृगप्लुतिवर्णनं, द्वितीये विदूषकसंलापः चतुर्थे शकुन्तलाविप्रयोगवर्णनं पञ्चमे शकुन्तलाप्रत्याख्यानं सप्तमेऽपत्यक्रीडावर्णनं च । वर्णनानां व्यञ्जनात्मकता यथा—'दिवसाः परिणामरमणीयाः' (१ ३) नाटकस्य सुखान्तत्वं सूचयति । सूत्रधारकथनम्—'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया' (पृष्ठ १५) नाटके विस्मरणस्य महिमानं द्योतयति । 'यात्येकतोऽस्त' (४ २) सुखदुःखक्रमस्यानिवार्यताम्, हंसपदिकागीतम्—'अभिनवमधु' (५ १) राज्ञो विस्मरणम् । चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं यथा—ऋषिषु कण्वः साधुमहर्षिर्विनयः शकुन्तलायाः पितृवत्सुहृदयः, मारीचो वीतरागः दुर्वासाश्च कोपप्रकृतिः ।

रसनिरूपणेऽपि महती विदग्धता प्राप्यते । शान्तरसं विहाय प्रायः सर्वेऽप्यन्ये रसाः समुपलभ्यन्तेऽत्र । शृङ्गारश्चात्र सर्वातिशायी । (क) संयोगशृङ्गारो यथा—शकुन्तलां समीक्ष्य नृपोक्तिः—अहो मधुरमासां दर्शनम् (पृष्ठ ४५), शुद्धान्तदुर्लभमिदम् (१ १७) । शकुन्तलालावण्यवर्णनम्—इदं किलाव्याज (१ १८) सरसिजमनुविद्धं (१ २०), अधरः किसलयरागः (१-२१), चलापाङ्गां दृष्टिम् (१ २४) । शकुन्तलामुखेन नृपोक्तिः—इदमनन्यपरायणम् (३ १६), किं शीतलैः (३ १८) अपरिक्षत (३-२१) उपरागान्ते (७-२२) । (ख) विप्रलम्भशृङ्गारो यथा—द्वितीयेऽङ्के शकुन्तलास्मरणं तच्चेष्टावर्णनं च—कामं प्रिया न (२ १), स्निग्धं वीक्षितम् (२-२), चित्ते निवेश्य० (२ ९) अनाघ्रातं पुष्पं (२ १०), अभिमुखे मयि (२ ११), दर्भाङ्कुरेण (२ १२) । चन्द्रादीनां वर्णने—तव कुसुमशरत्वम् (३ ३) । विप्रलम्भगाथायाः

शकुन्तलाया वर्णनम्—स्तनन्यस्तोशीरं० (३ ६), क्षामक्षामकपोल० (३-७)। यतो विरहावस्थावर्णनम्—इदमशिशिरै (३ ११)। (ग) करुणरसो यथा—शकुन्तलाप्रस्थान-समये काश्यपस्य—यास्यत्यद्य० (४-६) पातुं न (४ ९), उद्गलितदर्भ (४ १२), यस्य त्वया (४ १४), अभिजनवतो (४ १९), शममेष्यति (४-२१)। (घ) वीररसो यथा—अध्याक्रान्ता (२ १४), नैतच्चित्रं० (२ १५), का कथा (३ १), कुसुमाम्येव (५-२८)।(ङ) अद्भुतरसो यथा—दुष्यन्तेनाहितं (४-४), क्षौमं केनचिद् (४-५), पीडनाम् (७-४), चलीकार्यं (७-११), शैलानाम् (७-१२)। (च) हास्यरसो यथा—अत्र पयोधर (पृ० ५२), किं मोदक (पृ ११), मया कस्यापि० (पृ १२४), विषांकुरिव (पृ १४२), एष मां कोऽपि (पृ ४१), विदाक्षगृहीतो (पृ ४११)। (छ)शान्तरसो यथा—स्वर्गादधिक (पृ ४४), शान्तानाम् (७-११)।

काव्यसौन्दर्यविवेचनायां दृश्यते चतुर्थोऽङ्कः शाकुन्तले सौन्दर्यपरीतम्। (क) करुणरसस्यापरमत्यानुपूर्व्योऽत्रोपविष्टायाती। तत्र च श्लोकचतुष्टयं मन्यमाना वर्तते—यास्यत्यद्य (४-६), शुश्रूषस्व (४-१८), पातुं न (४ ९), अस्मान् साधु० (४ १७)। (ख) मनःप्रकृतेर्मानवप्रकृत्या समन्वयो दृश्यते। शिथिला शकुन्तला कुमुदिनी च भर्तृवियोगेन। अन्तर्हिते (४ ३), पातुं न प्रथमं० (४ ९), उद्गलितदर्भ (४ १२)। (ग) वात्सल्यस्याऽऽभिव्यञ्जनम्—अस्ति मे सोदर (पृ ४८), व्याप्तनाथ (पृ ५६), न नमयितुम्० (२ ३), क्षौमं (४-५) उद्गलित० (४ १२)। (घ) प्रेमविवृतं लावण्य वर्णनं च। सत्यमेतन्महाकवेर्वैत् सौन्दर्यं नाटकं गुणमपेक्षते। अतस्तेनोच्यते—इदं किल व्याज (१ १८), तदपि सकलमनुविदं० (१ २०) अहो सर्वास्ववस्थासु (पृ १५७)। नैसर्गिकमस्त्येव निर्दोषत्वं शकुन्तलालावण्यस्य। इदमुपनत (५ १९)। पुष्पित इवोच्यते अवधानमती शकुन्तला। अधरः किसलय (१ २१)। तस्य मतमेतद् 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। सुन्दरसौन्दर्यं सर्वत्र, नान्यथा। अतो व्याहियते तेन—चित्रे न निवसति (१ ३१), अभिमुखे मयि० (२ ११)। शीलसौन्दर्यं सच्चारित्र्येण तपसा च। यथा—शुश्रूषस्व (४ १८) इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः (कुमार ५-२)। तप-पूतमेव प्रेम प्रतीयते प्रशस्यते च। तप-पूतैव शकुन्तला प्रियमनुविन्दति।

कालिदासस्य शैली—वैदर्भीरीत्याः सर्वाग्रणीः कविरित्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः। (क) तस्य शैल्यां प्रसादमाधुर्यौजसां त्रयाणामपि गुणानां समन्वयः समीक्ष्यते। यथा—मम हृदय (१-२८), क वयं (२ १८) अयं स ते (३ ११), यतो हि कन्या (४-२२), मा कुरु सहजम् (५ ४)। (ख) शब्दकोषेऽप्याधारोऽधिकारस्तस्य। यथा—अनवरत (२ ४), मनाकर्ण (२ १०) अस्मान् साधु (४ १७), विस्तोत्व० (७-६)। (ग) ध्वनि व्यञ्जनात्मकता। यथा—धन्ये अस्य नेत्रनिर्वाणम् (पृ १५१), तव न जाने (३ १६), किं शीतलैः (३ १८)। (घ) भावनाशैल्यम्। यथा—चिर-विस्मृतयोर्दुष्यन्तशकुन्तलयोर्वर्णनम्। चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलावियोगखिन्नस्याश्रमस्य वर्णनम्। (ङ) संवादे सर्वत्र संक्षेपे रम्यता चोपलभ्यते। (च) अलंकारप्रयोगाः। भावमयतादिपरं पंक्तापस्तेन प्रयुक्ताः। (छ) उपमा कालिदासस्य। वर्णितमेतत्पूर्वम्। (ज) चतुर्विधानि छन्दांसि प्रयुक्तानि तेन शाकुन्तले।

६. उपमा कालिदासस्य

कविताकामिनीकान्तः कालिदासः कस्य नाकर्षति चेतः सचेतसः । तस्य काव्यसौन्दर्यं पदे-पदे प्रकटयन्ति सहृदयाः सुविमलस्य कलाकौशलम् । कालिदासोऽतिशेते सर्वानपि महाकवीनौपम्ये । अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य' । एतदेवात्र विविच्यते ।

का नामोपमा ? कथं चैषोपकरोति काव्यस्य ? विश्वनाथानुसारं 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः' (सा० दर्पण १०-१४) । वस्तुद्वयस्य वैधर्म्यं विहाय साम्यमात्रं यदुच्यते वाक्यैक्ये तर्हि सोपमा । उपमेयं चोपमानेन विशदयते विभुत्वे वाच्यत्वे । काव्यशरीरे समादधाति महतीं सम्पुष्टताम् । कालिदासस्योपमाप्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम् । उपमासु न केवलं रम्यता, मधुरता, पूर्णता, विविधता चैवापि तु सर्वत्रैव सिद्धतात्म्यमौचित्यं च । विषयानुरूपमौचित्यस्य च समावेशेन कालिदासस्य समस्ते काव्योपमासु । ततः शतशः उपमाप्रयोगाः सन्ति तस्य काव्यादिषु । रघुवंशे तृतीयसर्गे स्वातिशयी ।

एतासां उपमानां प्राक् निर्दिश्यन्ते । (१) शास्त्रीया उपमा—(क) वेदविषयकाः—मनुस्तथैव नृपाणामभिषेकोऽस्य मन्त्राणामोंकारः । 'आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव' (रघुवंश १ ११) । सुदक्षिणा नन्दिन्या मार्गे तथैवान्वगच्छत् यथा स्मृतिः श्रुतेरर्थम् । 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' (रघु० २ २) । (ख) दर्शनविषयकाः—यथा बुद्धेः कारणमव्यक्तं मूलप्रकृतिर्वा तथा तस्या नद्याः कारणं मानसं सरः । 'ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति' (रघु० १३-६) । दिलीपस्य इन्द्रियविषयाः भावना संस्कारा इव फलानुमेया आसन् । 'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' (र० १-२०) । गम्भीरतया नद्याः पयो निर्मलं मानसमिव वर्तते, मेघश्च छायात्मेव । 'चेतसीव प्रसन्ने, छायात्मापि०' (मेघ १ ४१) । यतिर्यथेन्द्रियाणि जयति तथा रघुः पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे । 'इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी' (रघु० ४-६) । (ग) यज्ञविषयकाः—यथो दुष्यन्तः शकुन्तला भरतश्च यज्ञस्य श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति यथायथा समन्वयो वर्तते । 'श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्' (शा० ७-२९) । शकुन्तलायाः पत्युः समीपं गता यथा धूमाकुलदृष्टेरपि यजमानस्य पावकाहुतिः । 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता' । (शा० अंक ४) । यज्ञस्य दक्षिणेव सुदक्षिणा दिलीपस्य भार्याऽभूत् । 'अध्वरस्येव दक्षिणा' (र० १ ३१) । स्वाहया हुताशन इव दक्षिणोऽपत्न्या समेतोऽभूत् । 'स्वाहयेव हविर्भुजम्' (र० १-५६) । दिलीपानुगता नन्दिनी विधियुक्ता श्रद्धेव बभौ । 'श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना' (र० २ १६) । रामादिभ्रातृचतुष्टयस्य विनीतत्वं तथैवावर्तत यथा हविरग्नौ 'हविषेव हविर्भुजाम्' (र० १० ७९) । (घ) शिक्षाविषयकाः—शिष्यः स्वाधीनं यथा कराति तथा नन्दिनी सेवया प्रसादनीया । 'विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि' (र० १-८८) । दुष्यन्तकरीर्पिता शकुन्तला सुशिष्यप्रदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽभूत् । 'सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता' (शा० अंक ४) । (ङ) व्याकरणविषयकाः—अपवादैरुत्सर्गो यथा बाध्यते तथा शत्रुघ्नो लवणासुरं बाधते । 'अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः' (र० १५ ७) । अध्ययनाध्यापनादिरूपयो धातोरर्थपरिणामवत् सर्वत्र तथा रघुणा रूपे सेना । 'पथारम्भवनार्थेन धातोरर्थपरिणामवत्'-

(र० १५ १)। (च) राजनीतिविषयका—प्रभावप्रसिद्धेर्मन्त्रसिद्धेरुत्साहशक्तिमिवेति यथं यथाऽर्थमस्यं सूते तथा मुदक्षिणा पुत्रं रघुमसूत। 'निसर्गेण शक्तित्रिभिरक्षयम्' (र० ३ १३)। (छ) ज्योतिषविषयका—चन्द्रग्रहणानन्तरं यथा रोहिणी शशिनमुपैति तथा शकुन्तला दुष्यन्तमुपगता। 'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्'(शा० ७-२२)।

(२) मूर्तस्यामूर्तरूपेण—दिलीपः क्षात्रधर्म इवासीत्। 'क्षात्रो धर्म इवाश्रितः' (र० १ १३)। धवलं क्षीरं यशसोपमिमीते—'शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः' (र० २-६९)। रथं मनोरथेनोपमिमीते—'सोमेव पूर्णेन मनोरथेन' (र० १-७२)। रामायणस्य मत्वाऽऽपतुर्वर्गं इवाशोभन्त। 'धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाश्रमाः'(र० १०-८४)। (३) प्रकृतिविषयकाः—रचनामात्रापेक्षया संक्षिप्तमात्रं निर्दिश्यन्त उपमाः, ता यथायथं विवेच्याः। (क) सूर्यविषयका—सूर्यमिव तेजोमयं सुतं जनय। 'जनयमविरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्' (शा० ४ १९)। दमयन्तीव्युतमौ शशिदिवाकराविव शोभेताम्। 'पार्वती शशिदिवाकराविव' (र० ११-८२)। (ख) चन्द्रविषयकाः—शोकविकला चक्षुषी विधुरमेवाभ्यसत। 'प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः' (मे० २ २९)। पार्वती दिवा विधुरेखेवाम्लायत्। 'प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी दिवा' (कुमार० ५ ४८)। सन्ध्या शशिनमिव नन्दिनी धेनुर्योगाद् दधे। 'सन्ध्येव शशिनं नवम्' (र० १-८३)। अन्यायन्यविषयका उपमा यथा—'इन्दुः क्षीरनिधाविव' (र० १ १२), 'हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव' (र० १ ४६)। चन्द्रविषयका अन्याः—रघु० २ २९, २-७३ १-२२, १४-८। (ग) लताविषयकाः—शकुन्तलाया कमनीयं कलेवरं लतामिवानुचकार। अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। 'कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्' (शा० १-२१)। लताकामुका शकुन्तला दीर्घकायं कामदेवमिव करसाध्यिका पुष्पाधरिका शोभते। 'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्' (शा० १-२०)। लताविषयकाऽन्या उपमा—शाकुन्तले १-७ ४ ४, ५ ११ र० १४-५४। (घ) पुष्पविषयका—छिन्ना मालती यथा दिवसे म्लानकमलिनीव म्लाना अभूत्। 'यान्त्येवाहीन। सकलकमलिनी न प्रबुद्धां न सुप्ताम्' (मे० २ ३)। मृगा पुष्पराजि विनाशये न च कर्म। 'न खलु न खलु मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः' (शा० १ १)। पुष्पविषयका अन्या उपमा—कुमार० ५ ४, ५ ९, ५-२७ रघु० ४ ९; शाकु० १-१५, २-८, २ १०, ७-२४। स्थानाभावादन्या उपमाः संक्षिप्तरूपेणोपस्थाप्यन्ते। (ङ) पशुविषयका—मेघ० १ १६, २ ११ रघु० १-७१ २ १, २-७, १ -८१; शा० १-५। (च) नद्यादिविषयका—मेघ० १-५४; रघु० १ १६, १-७१ ४ २८, ४ ३२ १०-८९। (छ) पर्वतादिविषयका—र० १ १४, १-५८, २ २९; मे० २-८। (ज) वृक्षविषयका—र० १-३६; शा० १ २४। (झ) भूविषयका—र० १-७५। (ञ) वायुविषयका—र० ४-८ १०-८२। (ट) अग्निविषयका—र० ११-८१; शा० ५-२। (ठ) मार्तण्डनादिविषयका—र० ११-७ १ -८३ २२। (ड) वर्षादिविषयका—कु० ४ १३, ५ ११; र० १ १६ ४ ११; शा० १ ९, १-२४। (ढ) लतादिविषयका—र० ७-११, १४-१८। (४) विविधविषयका—(क) देवविषयका—रघु० २ १७ २ ४१। (ख) पुरुषविषयका—मेघ० १ १५ १ १२, १-५१, १-६९; रघु० १ १। (ग) स्त्रीविषयका—मेघ० १-३६; रघु० २१।

७ भारवेरर्थगौरवम्

महाकविर्भारविः षष्ठ्यां शताब्द्यामासीदथोपाब्दस्य अनिमापेति ६३४ ईस्वीये लिखितेन 'ऐहोल' शिलालेखेन निर्विवादं निर्णीयते। भारविर्नाम कविवरोऽयं गीर्वाणगिरो गगने भा रवेरिव चकास्ति। समधिगतमनेनानुपमं यशः स्वकीयेनार्थगौरवसमन्वितेन किरातार्जुनीयनामधेयेन महाकाव्येन। महाकाव्यमेतस्य गुणगणेन माधुर्येण प्रसादेनौजसा च परिपूर्णम्। कविवरोऽयं न केवलमासीद् व्याकरणपारङ्गतोऽपि तु नीतिशास्त्रेऽप्युदार धर्मेऽपि महद् वैदुष्यं समासादयत्। कृतिरियं तस्यार्थभारभरितेति दर्शं-दर्शं विपश्चितः 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सादरमाघोषयन्ते। महाकाव्यस्यैतस्य टीकाकृत् श्रीमल्लिनाथः काव्यमेतद् नारिकेलफलेनोपमिमीते। अभिधत्ते च—'नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते। स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्'।

किं नामार्थगौरवम्? कथं चैतदुपलभ्यते महाकाव्यस्य? कथं च गुणेनैतेनानुपमो भारविः? इत्येतदत्र विविच्यते। अर्थगौरवं नाम भावगाम्भीर्यं सद्भावभूयाभूयस्त्वं च। भावभूकत्वाद् महाकाव्यस्य भावभूयता च काव्यगौरवस्य समभिवृद्धर्थगौरवं महदुपकारि महाकाव्यस्य। पदे-पदे समुपलभ्यन्ते महाकाव्येऽस्मिन् अर्थभारभरिता विविधविषयकाः सूक्तयः। अनुमीयते चैतेन भारवेर्वैदुष्यम्। सूक्तयो न सुक्तिमुक्ता समुपलभ्यन्ते। तासां दिङ्मात्रमिह प्रस्तूयते।

अर्थगौरवस्य महत्त्वमुरीकृत्य भारविनैव सम्यक् प्रतिपाद्यते यदस्य काव्ये सर्वत्र स्फुटता अर्थगौरवं भावगाम्भीर्यं सामर्थ्यं च प्राप्यते। यथोच्यते—'स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्'। (किरात० २ २७)। सा चैतादृशी भावगाम्भीर्यभरिता भारती सततकृतपुण्यकर्मभिरेव भवति, नान्यथा। 'प्रभवते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती' (कि० १४ ३)। किं नाम वाग्मित्वम्, कथं च सभ्येषु ते विशेषतः आद्रियन्ते, इति विशेषतया तेन साधु प्रतिपाद्यते यन्मनोगतस्य गभीरस्याशयस्य परिपूततया यथावच्च भाषा प्रकाशनेन वाग्मित्वं समासाद्यते। 'भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गम्भीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम्'। (कि० १४ ४)। भावपक्षेऽपि च केवलार्थगौरवमाद्रियन्ते केचन भाषासौष्ठवमपरे माधुर्यमन्ये भावप्रकाशनशैलीम्, इति भवति विरोधे वर्तमाने सर्वमनःप्रसादिनी गीः सुदुर्लभा। अतस्तेनोक्तम्—'सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः' (१४ ५)। विदुषां कीदृशः स्वभाव इति विशेषयन्नाह विद्वांसो गुणग्रहणे पक्षपातिनो भवन्ति। 'गुणवत्ता वचने विनाश्रिताः' (२ ५)। विद्वांसो हि पक्षेप्रियता भवन्ति। हीनित्वाय न विनीयति काले। 'न हीनितासामनोऽनु सीदति' (४ २)।

प्रेम्णो गौरवं प्रतिपादयता तेनोच्यते—'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि' (८ ३७)। स्नेहमाधुर्यमेव गुणानां निधानं न वस्तुतोऽन्यत्समानम्। प्रेमी सदैव प्रियस्य निष्कारणाय यतते चिन्तयति च। तथाह—'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि' (९-७०)।

मित्रलाभस्य महत्त्वमोऽपूर्वः। तदाचष्टे—'मित्रलाभमस्तु आमन्त्रयन्तः' (११-५२)। वनिताः सुधीभ्यश्च विभिन्नपुरीकरणीयेति प्रतिपादयन्नाह वनितयैव योगिनो मुक्तिं समधिगच्छन्ति। 'योगिनो परिभ्रमन् विमुक्तये, केन भास्तु वनिता कृता प्रिया' (११-४४), दीप्यन्ति यत्नं सुधीभ्याम् (११-४१)। मनोविज्ञानतत्त्वमपि सूक्ष्मनिरीक्षणं कुर्वता तेनोच्यते चेतीस्यायं एव हितैषिणं रिपुं वा प्रकटयन्ति। 'विमर्श कस्तुरीभवाय चेतः, कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा' (१२-६)। अविज्ञातमपि प्रियमिदं वा प्रेम्णः जनस्य हृदयं प्रद्योतति। 'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः' (११-८)।

मौक्तिकभिक्षायां स्वरूपविचारे साधु तेन प्रतिपाद्यते यद् विस्माः परिणामे दुःखदाः। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (१२ १२)। अतएव कामानां हेयत्वं प्रतिपादयति। तेषां स्वरूपं च विवृणोति। 'कष्टेयं मिष्टमुपाया, प्रिया विप्रियकारिका। दुःखस्वभावस्वाद्योऽपि कायाः कथं हि कामकः' (११ १५)। भोगाः दुःखहृदयवन्तः, भोगप्रवृत्तस्य च विपत्तयोऽपि सुनिश्चिता। 'भोगान् भोगानिवाहेयान्, अध्यास्यापत्र दुर्लभम्' (११-२१)। अतो विषयान् विहाय गुणार्जने मनो निवेशय। 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११ ११)। गुणैरेव गौरवं प्राप्यते। 'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (१२ १)। गुणैरेव प्रियत्वं प्राप्यते, न तु परिचयमात्रेण। 'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः' (४-२५)। गुणैरेव सर्वं जगद् वशीकर्तुं पार्यते। 'कामिनेयस्ते रम्यमिदं न गुणाः' (६-२४)।

स्वाभिमानस्य महत्त्वं प्रतिपादयता तापाभिनीयते तेन स्वस्वाभिमानपरिरक्षणं वरदायमा। 'अभिमनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः' (११-५९)। नहि तेजस्विनं कृपामुपद् मान्दं कश्चिदवाप्नुमर्हति। 'ज्वलति न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनाः' (२ २)। पुरुषाः च एव वा मानेन जीवति। 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते' (१०-६१)। मनस्विना पदैश्चैव्यते तदेवाधिगम्यते। 'किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः' (१२-६)। नीतिविषयकान्यनेकानि सुभाषितान्युपलभ्यन्ते। तान्यपि सूक्ष्म मनोविज्ञानन्ते। तानि च यथायथं विवेकस्थानि। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१ ४)। उद्रिक्तेन मैत्री विरोधं च कुर्वीत मानसितः। 'समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' (१-८)। न कदाचिदपि कुप्येत। 'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१ २१)। अकारणकोप उद्धारतत्त्वम् स्यात्। 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः' (१ ३३)। आविकार्यं कस्मिन्नपि कर्मणि प्रवर्तेत। 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (२ ३)। एवं राजनीतिविषयका बहवोऽत्र सूक्तयः। यथा — 'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (३ १७) परमं लाभमरातिभङ्गुरा' (११ १२), 'प्रार्थना ऽधिकबले विपत्फला' (११ ५१), न सूपिताः शत्रुमती स्वयंभूः (१४-२), 'नयहीना रसमायते जनः' (२-४१), 'तथाऽनुकूल्येषु हि कुर्वते रतिं नृपोत्तमात्येषु च सर्वसम्पदः' (१-५) 'भवन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः' (१ ३०)।

८ दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो कविकालविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तयः । समासतः षष्ठशत-मुपन्यस्तेनाङ्गीक्रियते । कैश्चनेस्वीयाब्दस्य षष्ठशताब्द्या अन्तिमे चरणेऽस्य कविमुखीकुर्वन्त्यन्ये च सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धे । राजशेखरेण कविरसौ प्रबन्धत्रयस्य प्रणेतेति प्रतिपाद्यते । विषयेऽस्मिन्नपि प्रचुरो विवादः । काव्यादर्शो दशकुमारचरितं चेति ग्रन्थद्वयं तु सर्वैरेव स्वीक्रियते दण्डिनः कृतित्वेन । अवन्तिसुन्दरीकथेति सम्प्रति उपलब्धा कृतिस्तृतीयेति मन्यते मनीषिभिः कैश्चित् ।

दशकुमारचरितनामधेयस्यास्य महती महनीयतेति नात्र विप्रतिपत्तिर्विदुषाम् । गद्यकाव्यस्यैतस्य गौरवं पदलालित्यं च प्रेयं प्रेयं प्रेक्षावतां प्राप्यन्ते प्रभूतानि प्रभूतप्रशंसापूर्णानि पद्यानि । 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः' । केचन वाल्मीकिव्यासयोरानन्तरं दण्डिनमेव महाकवित्वेनाकल्पयन्ति । 'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् । कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि' । मधुरमधुरमहाकाव्यस्य रचयित्री गङ्गादेवी (११८ ई) तु दण्डिनो वाचं सरस्वत्या मणिदर्पणमेव मनुते । आचार्य दण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम् । विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम् ।

किं नाम पदलालित्यम् ? कथं चैतेन काव्यस्य महत्त्वमभिवर्धते ? सुप्तिङन्तं पदमिति सुबन्तं तिङन्तं वा पदमित्यभिधीयते । ललितस्य भावो लालित्यं माधुर्यमिति । यत्र पदेषु वाक्येषु शब्दसंघटनायां वा माधुर्यं श्रुतिसुखत्वं वा समुपलभ्यते, तत्र पदलालित्यमिति मन्यते । पदलालित्यं शब्दसौष्ठवं चावर्जयति सचेतसां चेतांसीति गुणोऽयं गरिमाणं तनुते काव्यस्य । दशकुमारचरिते दृश्यते गुणस्यैतस्य गौरवम् । तदेव समासतो नातिविस्तराल्लिख्यते ।

शब्दालङ्कारभारभरितेव भारती दण्डिन आभाति । सुधीभिरास्वादनीयं समीक्षणीयं चैतस्य माधुर्यम् । राजहंसस्यैव यशो राजहंसस्य सुषमा समवलोकयन्तु सन्तः । "अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव" (पूर्वपीठिका उच्छ्वास १) । राजहंसस्य महिषी वसुमती कस्याञ्चित्कुसुमसममूर्तिरभूत् । 'तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव (पू उ १) । मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनं कुर्वताऽभिधीयते तेन—'मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम' (पू उ १) । राजहंसस्य मालवराजचमूं सरोषमभितोऽवारयत् । 'राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतोऽसोढाभियोगतया निर्गत्याधिकरुषं रिपुं रुरोध' (पू उ १) ।

विजयार्थं प्रस्थातुकामानां कुमाराणां यमकालङ्कारमण्डितं वचनमतो दण्डिना गौरवमेवाभिमांसयति । 'कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः ।' (पू उ २) । दयादिकृतेन्द्रबन्धदर्शनहर्षेण दण्डिना वचनमेतत्—'तस्य तु विपदं विरतुष्यर्थं बभूव.

पयार्द्रकरणा रक्ताक्षिनीराजिताननाभिरामभोगा भोगिनो मम जनयन्तो निर्भेदः' (पू उ ५)।

व्यालरूपमभिध्यायमानाया राजकन्याया वर्णनमेतत् दण्डिनः सूक्ष्मेक्षिकयैतत् वर्णनं वैदग्ध्यं प्राविष्करोति। 'मन्मथाय कन्यान्तःपुरं प्रकाशसु मणिप्रदीपेषु' 'कुसुमतल्पपुलिन पर्यन्ते पर्यङ्कतले' 'ईषद्विवृतमुखारविन्दम् आभुग्नभ्रूविभ्रमम्, अतिविस्रस्तनीवीषु कान्तरीयम्, अनतिविषक्तमुक्तोत्तरम् कर्णकलापावतंसकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविभ्रान्तभ्रूपताकम्' 'निरपेक्षजनलोचननिषक्तं शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामिनीं राजकन्यामपश्यत्।' (उत्तर उ २)

यतो धर्मवर्धनस्य दुहितृरूपवर्णनमाह। 'तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका।' (उ उ ६)। गिरिवरं च वर्णयन्नाह— अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्तस्तेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरशिलाश्मश्रीकरपरिष्वक्तचन्द्रकान्तबिन्दु चन्द्रकोदरं शीत वारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरीभरतरुवनाभोगः।

उपरपीठिकायां क्रमशः धर्मोष्मणाश्व शोभाजनयति। यथार्थं निसर्गजनमपूर्वमद्भुतं च विचारेऽपि विस्मयायते। शोभनवर्णपरिहारेऽपि न परिहीयतेऽत्र शब्दसौष्ठवं प्रसादश्च च। यथा—'आर्य, कथमस्यास्य क्वचिन्नाम कदाचिदिदानीं नेत्रे। 'अये केन कारणाद्यदि कथि, मदनीयति कारणेऽनवीयानात्परः वैदग्ध्यं'। 'असम्येन नास्मास्वं संसृज्यते'। 'चिरं चारित्र्यं श्रीः'। 'न तस्य दास्यं चकोरीवपायाननम्'। 'दिष्ट्या दृष्टोऽसि'। इह क्वापि हि न निरीहं दोहिनं भिक्षा संचयन्ते। श्रेयांसि च चक्रकान्तानां हस्ते संनिहितानि। 'अतिशिरेषा शिरः, परवचिविशिष्टपर्यायाम्। कथं चैव निःसङ्गता या निःपराधं धाम्नं स्थापयति। न च निपेयनीया मदीयता गिरः।' 'उपरुन्धीर्नं चिरं निषाय नीरधिरसाकिम्'। 'दयता यक्षिरणीं ब्रह्मस्य महेशलेखनस्थेन्द्रपाणी संस्कारेण नीरजगा नीरजधानिम्मयापिनि छायोऽभिरेति कपोले कपोलमरन्दानिकाधम्भरसाभिधरवर्णनीयस्याकारान्तरस्य शिशिरताीव्। मधुपूर्व विभुवे विकचयाचैव शतपदं दृष्टं विवेर देवो राजन्यानाम्'। (उत्तर उ ७)

'न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते न रहस्यानि विवृणोति न हस्ते स्पृशति न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति। मृगयासम्बन्धं निर्दिशति। शाकुन्तले द्वितीयाङ्के वर्णितेन मृगयाप्रसङ्गेन साम्यमेतद्भजते। 'यथा मृगया नीपकारिणी, न तथान्यत्। मेदोऽपकर्षादङ्गानां स्थैर्यं कार्कश्यातिशयमप्यायोगि शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम् सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टिताज्ञानम्। (उ उ ८)।

एवं तत्तद्रसे दण्डिना कृतौ सम्यगनलोकनमनुप्रासमाधुर्यं नामरूपोक्तं वर्णनं वैराग्यमोहवर्णपरिहाराधिष्ठितं रम्यं वर्णनं युक्तिप्रयुक्तिप्रयासं पदे पदे पदलालित्यम्। सर्वं मदस्थस्य कृतौ कमनीयतामादधाति।

९ माघे सन्ति त्रयो गुणाः

महाकवेर्माघस्य काव्यविषयेऽस्ति नैकमत्यम्। केचनैतस्य काव्यस्य समयपद्धत्या उत्कर्षमस्य समस्तमयमामनन्ति, अन्ये चापकर्षतया मध्यमाधमम्। शिशुपालवधमेव तस्य महाकवेर्महाकाव्यं केवलं प्रसूतं श्लोकाश्च चाप्यत्र समुपलभ्यन्ते। महाकाव्येनैतेन चास्य महाकवेर्महती महनीया कीर्तिः। महाकाव्यमेतद्बृहत्त्रयीमन्दिरस्यैकं पीठमिति प्रथीता प्रभूताः प्रशंसयोऽस्य काव्यस्य। काव्यस्यैतस्य कृपा माघापकि चेतसि कृत्वा केनाप्यु क्तम्—'मेघे माघे गतं वयः'। मेघदूतस्य शिशुपालवधस्य चाध्ययने मानवमायुरिति काव्येऽस्मिन् विषयं शब्दकोषमालोक्य केनाप्युच्यते—'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'। नवसर्गाध्ययनेनैव समग्रशब्दकोषावाप्तिर्भवतीति। अथ प्रसादगुणं माधुर्यगुणं च समीक्ष्य केनाप्युदीर्यते—'काव्येषु माघः' इति। अनघराघवनाटककर्तुर्मुरारेः पाण्डित्य परिपूर्ण नाटकं प्रेक्ष्य केनाप्यभिधीयते यन्मुरारिर्भिसालिसत्कविरन्यापि मन माघवम्। 'मुरारि पदचिन्तायां चेत्तदा माघे रतिं कुरु'। माघवि तदतोमायेन माघावस्थाऽभिधाने माघ प्रेक्ष्य केनापि निगद्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः'। कालिदासस्यो माहिस्य एवम्—'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः'।

गुणत्रयमेतदेवैकशोऽत्र विविच्यते। प्रथमं तावदुपमैव विचारसरणिमारोहति। समुपलभ्यन्ते समुपमानामुपमानां प्राचुर्यम्। गोपाला नारदः कृतपीतोपवीतो विपुलपीतः पयसि घन इव चकासे। 'कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चैर्घनं घनान्ते तडिता गवेरिव' (शिशु १-७)। वर्तमानोऽप्यतिशयस्य एव कृष्णाय न च चाक्षुरेष्य। 'उदितमानस्तु पदे नोऽस्य पर्यायमिन्दुना। शमी हि शिशिरोऽन्नातो वस्तुमयामये' च च' (११)। न धाम्यति दुर्जनः सामवादेन। सामवचनानि तस्य श्रोत्रपुटीरपमन्येव यथा तप्ते सर्पिषि वारिबिन्दव। 'प्रशमस्येव वचना सर्पिस्तोयमिवाब्दव' (२ ५५)। यथा स्तनैरेव सर्वैमस्ति समग्रं वाक्तत्र तथैव स्तनैरेव सर्वोर्पितं समस्तं संगीतशास्त्रम्। 'धर्मैः कविरवेरेव प्रथितस्य स्तनैरिव'। अन्यत्र वाक्यस्यास्तो गेयस्येव विचित्रता' (१-७१)। यथा कस्यचित् मन्द मर्त्यमुपचयमादधे तथैव विपत्तिरपि दैवं पुरुषायत्तोमयमासभवति। 'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे। शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते' (२-८६)। यथा स्वामिनाव संचारिणावाः पौरुषमिव, तथैव शिशिरांशुं भूषयन्त्ये सहायकाः। 'स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा। रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः' (२-८७)। अस्तमयस्ता यान्ते यथा मातरमन्वेति तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या रजनिमनुगच्छति। 'अनुपति विरपेः पदिमा व्याहरन्ती, रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव' (११-४०)। रम्यं मदाक्रम। 'विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः। कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः' (११ ४४)। 'वदनार्धकमुद्रणादिकमदा-विवरहस्तमितैर्गुणगणम्' (११ १५)। करपद्मयोन यथा करोऽभिमतो तथा सुपिहितपद्मकन्दलनर्मदा सिद्धमाला नामुरुतो

प्रतापश्चेदे । 'मन्दुरमरुपथावदातं धमनोपकाष्ठ इव दीप्तिं जगर' (१५ २) । यथा यथाऽग्निं प्राप्य विनश्यन्ति तथैव कुपितो महतामभिमुखमागत्य क्षयं याति । 'महत स्तरसा विकत्थयन् निजदोषेण कुधीर्विनश्यति' (११ १५) । अन्यानि च प्रभुत्वान्युपमा स्वकाव्ये समासतो निर्दिश्यन्ते, तानि यथावसरं व्याख्येयानि । (शिशु० १-५, २ २८, २ २६, २ ५६, ३ ४, ४ ११, ६ ४६, ९-७६, १ ३८, १५-६, १६-२१, १८ ४, १८-२ , १८ ३५, १८-४ , १८-५ , १९ १ , १९ २२ १९ ४५) ।

महती संख्याऽर्थगौरवान्वितानां श्लोकानाम् । कतिपयेऽत्र प्रस्तूयन्ते । सर्वं एव समस्तमर्थमवगमयिष्ये । 'ततो रवेः शाश्वतिकं तमेव कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः' (१ ३८) । यद् भाति तद् भवतु, परं नोपयान्ति स्वमानं मानिनः । 'सदाभिमानैकधना हि मानिनः' (१-६७)। स्वभावो दुरतिक्रमो जन्मान्तरेऽप्यनैति न कथम् । 'स्त्री च योषित्प्रकृतिस्थिता निसर्गजं पुमांसमन्येति भवान्तरेष्वपि' (१-७२) । स्थितमास्थितं महतां गुणाः । 'महिमानं प्रकृत्या स्थितमाचिन्वानः' (२ ११) । मानिनो न सहन्तेऽपमानं जातु । 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः' (२ ४६) । स्वार्थसिद्धिरेव सर्वेषां समीहितम् । 'सर्वः स्वार्थं समीहते' (२-६५)। व्यवस्थस्य को गुणः ? 'अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः' (२-७३) । रसविद् गुणत्रयमेव काव्ये प्रयुङ्क्ते । 'नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः' (२-८३) । सामर्थ्यमेव प्रधानीति सर्वांसदां । 'मृदु व्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते' (२-८५) । महतां साहाय्येन क्षुद्रोऽपि सिद्धिं विन्दते । 'बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति' (२ १००) । किं नाम रमणीयकम् ? 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' (४ १७) । सांख्यसिद्धान्तस्थापनम्—'उदासितारं निगृहीतमानसैः' (१ ३३) । योगशास्त्रप्रतिपादनम्—'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय' (४-५५) । क्वापि स्त्रीप्रकृतिनिरूपणं कुशलाः । 'परिमलोऽरसिको हि मधुव्रतः' (६ ४५) । न कश्चिदनिर्दिष्टकत्वे । 'अनुकुरुते घनानि नहि गोमयकुस्थानि केशरी' (१६-२५) । सत्त्वात्मा परिणामेन व्यापिनी । 'परिणामेन गरीयसी महत्ता' (१६ ८) । अणुरपि मेरुर्भवति । 'अल्पमपि रोषजं निकारेऽपि मेरवत्' (१९-८३) । अन्यानि चार्थगौरवविशिष्टानि प्रभूतानि सूक्तानि संक्षेपतो निर्दिश्यन्ते । (शिशु० १ १४, १-७१ २ १६, २ २४ २ ३४ २ ८६, ३ ११ १-४२ १-७५ ४ १६, ४ १७, ११-९, १३-४२, १३-६४, १९ १६, १९-२८, १५ १, १५ १४) ।

पदलालित्यं तु पदे पदे प्राप्यते माघे । कैश्चन नमूना उदाह्रियन्ते । 'नव पलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् । मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः' (६ २) । 'नवनलिनीदलकोमलपरिमलमधुरसमधुपकुलकुसुमा । वसन्तलक्ष्मीः विरचितकमलोत्पलकोकिलावलिकलध्वनिना' (६ १४) । 'मधुरया मधुबोधितमाधवी-मधुसमृद्धिसमेधितमेधया । मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे' (६-२०) । पदलालित्यस्य पद्यान्यन्यानि । (शिशु० १ ११, ३-६ , ३ ३३, ४ १ ४ १० ४ २१, ६ ११ ६ २२,६-४७,६-५८,६ ६६,७-२६,९ १८,९ ७०,११ १६,१५ १४,२ ५) ।

तदेवं दृश्यते गुणत्रयेऽपि महनीयता माघस्य ।

१० बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये कविकुलगुरुः कालिदासो यथा रचनाचातुर्येण कल्पनावैचित्र्येण च पद्यकाव्ये गरिष्ठो वरिष्ठश्च, तथैव गद्यकाव्यनिबन्धने कविवरो बाणो प्रतिष्ठितोऽस्मात् सर्वानप्यतिशयान्। पदरचनायां वैदुष्यविशेषेण पदोक्तिवैचित्र्येण भावगाम्भीर्येण कृतिकौशलेन चाऽपूर्वो ह्ययं संजातोऽस्ति लोकेऽस्मिन् काव्ये। पदं नैतादृशैव संभाव्यते गद्यकाव्येऽपि तादृशमनुपमा कान्तिः। गद्यकाव्ये तु भूयान् श्रमोऽपेक्ष्यते। पदे पदे वाग्वैचित्र्यमर्थगाम्भीर्यं भावमौचित्यं कल्पनाकाम्यत्वं च दुर्निवारम्। अतः साधूच्यते— 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। गद्यकाव्यरचने दण्डी सुबन्धुश्चेति द्वावेतौ बाणेन सह समानमाहात्म्योल्लेख्यौ। परं बाणो गरिष्ठो वरिष्ठश्चैतेषां भूषितया भावाभिव्यक्त्या छायितया शैल्या प्रदिष्टया मनोहरतया श्रेष्ठया लालित्यया प्रेष्ठया पदपरिपूरणया च। अतः सोढ्ढलेन 'बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती' इत्युक्तम्। जयदेवेन तरुणीकाव्यमस्य कृते दत्तम्। 'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति। सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य'। गङ्गादेव्या सरस्वतीवीणावादनमिव कृतित्वमस्य निगद्यते। 'वीणापाणिपदमुक्तोपालिकामहारिणीम्। भावयामि कथं वाण्ये महाबाणस्य भारतीम्।'

महाकवेर्बाणस्य जनिकालविषये वंशादिविषये च न काचन विप्रतिपत्तिः। हर्षचरितप्रारम्भे तेन वंशविवरणं महता विस्तरेणोपस्थाप्यते। जनकोऽस्य चित्रभानुर्जननी राज्यदेवी च। सम्राजो हर्षस्य समकालीनत्वात् जनिकालोऽस्य सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धोऽङ्गीक्रियते। हर्षचरितं कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमस्य प्रधानं कृतित्वेनाङ्गीक्रियते। कृतयोऽन्या विवादविषया एव विद्युयम्।

बाणस्य वस्तुविन्यासो वर्णने चापूर्वं वैशारद्यं चास्य सर्वगुणवत्त्वमनुमन्यन्ते मनीषिणः। कस्यचन वस्तुनोऽणुतमामपि स्थितिं न विस्मरति न किञ्चिदुज्झति परमं बलेन सर्वं वर्णयितुम्। वर्णनानां व्यापकत्वात् सर्वाङ्गीणत्वात् सूक्ष्मतमनिरीक्षणसमन्वितत्वाच्च 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति भूयोभूयो व्याह्रियते। एतदेवात्र समासतः समुपस्थाप्यते।

हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुशोऽवलोक्यते। तेषु मुख्यत्वेन उल्लेख्याः प्रसङ्गाः सन्ति— मुमूर्षोर्नृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, दिवमुपयातवति राज्ञि यशोवत्याः सतीसमाश्रयस्य वर्णनम्, स्कन्दगुप्तोपदेशः, दिवाकरमित्रस्य शान्त्याश्रमवर्णनम्। कवेर्गरिमा कल्पना च कादम्बरीमेवाभिव्याप्यावतिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। यत्र तत्र सर्वतोऽपूर्वं वर्णनं महता श्रमेण बाणेनोपस्थाप्यते तेऽत्र प्रसङ्गा नामधारं निर्दिश्य प्रस्तूयन्ते। तद्यथा— शूद्रकवर्णनम्, चाण्डालकन्यावर्णनम्, विन्ध्याटवीवर्णनम्, पम्पासरोवर्णनम्, प्रभातवर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम् हारीतवर्णनम्, जाबाल्याश्रमवर्णनम्, जाबालिवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, उज्जयिनीवर्णनम्, तारापीडवर्णनम्, इन्द्रायुधवर्णनम्, राजभवनवर्णनम्, अच्छोदसरोवर्णनम्, शिवायतनवर्णनम् महाश्वेतावर्णनम्, कादम्बरीवर्णनं च। स्थानाभावादिह न संभाव्यते सर्वेषां विस्तरशो विवेचनम्। ते यथायथं विलोक्य विवेच्यन्ताम्।

पाञ्चाली रीतिर्बाणस्य। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते' इति बाणोक्तौ शब्दार्थयोर्मञ्जुलः समन्वयः समीक्ष्यते। विषयानुरूपमेव तत्र शब्दान्तर

विशेष्यते । यथा विन्ध्याटवीवर्णने ओजःसमासभूयस्त्वम् । 'उन्मदमातङ्गकपोलस्थलमलिनित-दलितशिलातलैनैवानवरतमेकापनेन मदगन्धिनाम्बकारिता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहित-मृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च' । वसन्तवर्णने च माधुर्यमिश्रितत्वम् । 'कोमलमलयमारुतावतारतरलितलतानवपल्लवेषु, मधुकरकुलकलङ्कितकालेयककुसुममुकुलसहस्रेषु, मधुमासदिवसेषु' ।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषयन्ति विविधमप्यलङ्कारैरलङ्काराः । उपमा समासोक्तिश्लेषविरोधाभासपरिसंख्योत्प्रेक्षादयोऽलंकाराः पदे पदे प्राप्यन्ते वर्णनप्रसङ्गेषु । परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता' । विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णने—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अवनतशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्' । श्लेषमूलोपमा यथा चाण्डालकन्यावर्णने—'नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, मूर्छामिव मनोहारिणीम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अमूर्तामिव स्पर्श-वर्जिताम्' । विन्ध्याटवीवर्णने उपमा यथा—'चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणा-ध्यासिता च, धनकीव मत्तकुरङ्गका निशाचरपरिगृहीता च' । विरोधाभासो यथा विन्ध्याटवीवर्णने—'सर्वदैव बहुलपक्षव्यापि सपयोधरोन्नतिर्मिता, कृशकापि मुनिजन सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा' । विरोधाभासो यथा शबरसेनापतिवर्णने—'अभिनवयौवन मपि धर्मिष्ठमुपचयम्, कृष्णमप्यदुर्दर्शनम् स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्' । उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःशीकरनिकर मिव तारागणमम्बरमधारयत्' । श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविध वर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्, नाटकमिव पताकाङ्कशोभितम्, पुराणमिव विभा गावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेश-कारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपञ्चसुस्थितम्' । श्लेषः सन्ध्यावर्णने यथा—'क्रमेण च परिणतमधुभागत इव सुररसस्तबकस्य अम्बरतलीविटिरमभिहितम्' । एकावली यथा महाश्वेता-जन्मवर्णने—'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्' ।

भाषा विरलसमस्तदीर्घवाक्यप्रयोगमनु प्रसृत्य लघुपदस्यापि वाक्यावलीम् । स यथैव दक्षो दीर्घवाक्यरचनायां तथैव लघुलघुवाक्यप्रयोगेऽपि । यत्र भावगाम्भीर्यमर्थ-गौरवं च तत्र लघ्वी लघुपदा वाक्यावली, इतरत्र च क्लिष्टा समस्ता दीर्घा च । यथा शुकनासोपदेशेऽर्थगौरवात् लघुपदप्रयोगः—'मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्' । महाश्वेताविलापे, कपिञ्जलकृताक्रन्दने बहूनि वाक्यानि । उज्ज-यिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, शुकनासोपदेशे, पुण्डरीकाय कपिञ्जलोपदेशे च समस्तदीर्घ-वाक्यसम्पूर्णा वचनचातुरी । न तथा प्रत्यक्षमिति प्रतीयते वस्तु यथा चित्रपटे स्फुटः कन्दर्प भाषा क्वचित् कथा घटना नापतिष्ठति ।

११ कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

भवभूतिः कान्यकुब्जेश्वरस्य श्रीमतो यशोवर्मण आश्रितो महाकविरित्यत्र सर्वेषां सुधियामैकमत्यम्। महाकविना बाणेन हर्षचरिते महाकविगणनाप्रसङ्गे नास्यापि नामाप्यधायीति महाकवेर्बाणात् पूर्वं जनिकालमस्य नेति निर्णीयते। एवं भवभूतेर्जनिकालः ईस्वीयस्य सप्तमी शती स्वीक्रियते। विदर्भ (बरार)-प्रदेशस्थपद्मपुरनगरवास्तव्यो ऽयं नाम्ना श्रीकण्ठोऽभवत्। पितामहोऽस्य भट्टगोपालो जनको नीलकण्ठो, जननी जातुकर्णी गुरुश्च ज्ञाननिधिनाम। नाटकत्रयमस्य समुपलभ्यते—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् उत्तररामचरितं च। व्याकरणन्यायमीमांसाशास्त्रेषु निष्णातत्वादेव 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' इत्युपाधिसमलङ्कृतोऽभूत्। वेदेष्वन्येषु च शास्त्रेष्वस्याव्याहता गतिः। वाग्देवी वश्येव समनुवर्ततेति तत्र स्वयमेवोद्घोष्यते तेन। 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते' (उत्तर १ २)।

करुणरसनिस्यन्दे नास्त्यतोऽन्यो महाकविर्महाकविममुम्। अत उच्यते—'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'। करुणरसोद्रेकमयान्येव कर्मैतस्य कृतिषु कृतिभिः कृतानि कतिपयानि प्रशंसापद्यानि। आर्यासप्तशत्यां (१ ३६) श्रीगोवर्धनाचार्यो भवभूतेर्भारतीं भूधरसुतया गौर्योपमिमीते। तत्कृतकारुण्ये ग्रावाणोऽपि रुदन्त्यन्येषां तु का कथा। 'भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा'। कारुण्ये कालिदासादप्यतिरिच्यते। अत उच्यते—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'।

करुणरसप्राधान्यपरीक्षया परीक्ष्यते चेन्नाटकत्रयमस्य तर्हि उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि। यथाऽत्र कारुण्यरसनिस्यन्दो न तथाऽन्यत्र। किं कारुण्यम्? करुणरसस्य भाव एव कारुण्यमिति। इदमत्रावधेयम्। भवभूतिः करुणरसं रसेष्वेव नातिशयेऽपि तु रसानां तन्मेयां मूलभूतत्वेन करुणमेवैकं रसं मनुते। रसा अन्येऽस्यैव विवर्तरूपेण परिणामरूपेण वा परिणमन्त इति करुणरसस्य महत्त्वमाविष्क्रियते। आह च—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्, अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम्' (उत्तर ३ ४७)। उत्तररामचरिते चोदाह्रियते अत्र नाटकेऽन्ये रसाः करुणरसमूलका इति। एतदेवात्र विविच्य उदाह्रियते च।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृवियोगविषण्णां जानकीमाश्वासयति दाशरथिः। एतस्मिन्नवसरे [illegible]। [illegible] प्रत्यवायदर्शनात् (उ १ ८)। बन्धुजनवियोगस्य सन्तापकारित्वं सीतैवाभिधत्ते। 'सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति' (अंक १)। रामश्च संसारस्यासारत्वं प्रतिपादयति। 'एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः' (अंक १)। चित्रवीथ्यां चित्रितानि वृत्तानि वीक्ष्य समुपजायते तयोः कारुण्यवृत्तिः। जानक्या अग्निपरीक्षणाभिप्रायं निरीक्ष्य खिन्नां वैदेहीमाश्वासयति— 'प्रिये मनः किं जनैरनुरञ्जनीयं' (१ १४)। जानकीपरिणयप्रसङ्गचित्रं प्रेक्ष्य दिवंगतं तातं दशरथं चिन्तयतो विषीदति चेतो रघूद्वहस्य। 'जीवत्सु तातपादेषु ...ते हि नो दिवसा गताः' (१ १९)। संभोगशृंगारमपि करुणरसभूयिष्ठं व्याचष्टे। यथा—[illegible] पुरा काननं विश्रान्ता तेषां जनस्थानमध्यगे प्रस्रवणे गिरौ यामिनीयापनं वर्णयति— 'किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगाद् ...अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्' (१ २७)। चित्रे

स्वच्छन्दजानकीहरणार्थं भीरुः निपतति चेतआकर्षणमिव रामस्य । जनस्थाने सति सोमहत्ये कथमप्यथ राम इति कश्चन कथयति तस्य कारुण्यपूर्णं स्थितिम् । तस्य प्रकर्षं विलोक्य ग्रावाणोऽप्यरुदन्, वज्रस्यापि हृदयं व्यदलत् । 'अपेदं रुद्रोमिः अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' (१ २८) । सीताहरणविमर्शनेन विषण्णस्य रामस्य दुःखरसेनरस्तो भवति माण्डव्यं च मुक्ताहारेणोपमिमीते । 'अयं रामस्य तम्बमुखि इव मुक्तामणिसरो॰ (१ २९) । प्रियवियोगजन्या दुःखाग्निः कथं पीडयति मानवमिति व्याहरति—'दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हृन्मर्मव्रण इव वेदनां करोति' (१ ३) । मास्यमभागमे पिरो सीता मोहावस्था स्मारं स्मारं सीदति रामस्य भूयोऽपि रामस्य । 'विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि प्रत्यावृत्त इव पुनरिव मे जानकीविप्रयोग' (१ ३३) । पश्चात्कुसुमावाप्तेनाभिन्न गतैव निभृतं स्वपिति सीता तावदेव समुपतिष्ठते सन्तापरुजनो विस्मो विपाकोऽर्हमिवोपाः । 'हा हा धिक् 'किमपि कर्तः प्रसक्तम्' (१ ४) । वैदेह्यं वने प्रसादनं व्यापारं पुनरुक्तमपरमिव प्रतीयते । 'दोहपात् पल्लवकुसुमिवासिव' (१ ४५) । पितृवेभ्यो वञ्चितरमिव चैतन्यं । विलम्बद् परिमिव दारुणः विपादि' (१ ४६) । सीताप्रवाहनेवात्मना व्यथामनुभवति रामभद्रः । 'दुःखसंवेद्यनामैव रामे चैतन्यमागतम्' (१ ४७) ।

सम्बूकप्रसङ्गेन दण्डकारण्यं पञ्चवटीं च प्राप्य जानकीसहवासं स्मारं स्मारं सिपरसेन्मा मन्ये मनसिजो रामस्य । रामोऽभिधत्ते—'चिराद् वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः' (२ २६) । सीताप्रत्यावर्तनं पापिनमात्मानं मन्यमानः पञ्चवटीदर्शनाय गच्छति । 'यस्यां ते दिवसास्तया सह ' (२ २८) । दुःखं विपरणति रामावस्थाम्, कथं पुटपाकम् व्यथयति रामं सीताविषाकलोकः । 'अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः । पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः' (३ १) । तमसा दुःखक्षामां जानकीं करुणस्य मूर्तिमेव गणयति । 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी' (३ ४) । दीर्घं शोकं धारयति शरीरं सीतायाः । 'किसलयमिव मुग्धं (३-५) । राम पञ्चवटीदर्शनेन भूयोऽपि मादमापद्यते । दुःखाग्निरस्यैव भवति तम् । 'अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेः॰ (३-९) । शोकाग्निपीडितो नाभिजानाति रामः स्वकार्याणि । 'नवकुवलयस्निग्धैः '(३ २२) । वासन्ती सहसैव सीतायाः उरसि कुप्यति रामम् । 'अयि कठोर यशः किल ते प्रियम् '(३-२७) । वासन्तीवचनेन रामः कष्टाग्निदग्धः भाषते । 'दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्' (३ ३१) । पञ्चवटीविरहीनेव विच्छेदः विक्लवमानसः प्रस्तूयते करुणः । 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया । शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते' (३ २९)। रामः स्वावस्थां वर्णयति—कष्टमन्तस्तापस्तापयति तनुं, न तु दहति कीदृशम् । 'दलति हृदयं शोकोद्वेगात्॰' (३ ३१) । अन्ये च करुणरसोपयुक्ताः प्रसङ्गाः श्लोकाः दिङ्मात्रमत्र निर्दिश्यन्ते । ते यथायथं विवेच्याः । न किल (३ १२) यथा विरस्थीन (३ १५), पैलोस्कोन (३ १६) हा हा देवि (३ १८) उपायानां (३ ३४), धन्यै॰ (४ १), सन्तान॰(४-८), मदस्याः (४ १४), कन्यायास्य॰(४-२२), मर्त्यं तथा (४-२३), विना सीतादेव्या॰(६ ३०) चिरं ध्यात्वा (६ ३८) तमन्त॰(६ ४) अनुध्याय॰ (६-४१), मनस्वना॰ (६ ४२), विलम्बमाप्य (७-२), तीव्रविद्व (७-४), समयानेन (७-७) ।

१२ नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीश्रीहर्षमहाकवेः कृतिर्नैषधचरितं कस्य न कृतिनो मानसमावर्जयति। बृहत्त्रय्यामन्यतमैषा कृतिः। भारवेः किरातार्जुनीयं माघस्य शिशुपालवधं श्रीहर्षस्य नैषधचरितं चेति क्रममेतद् बृहत्त्रय्यां गण्यते। उत्तरोत्तरमेषामुत्कर्षस्योररीक्रियते। एतद्माघात्मकमेवं समुद्गीतमिति—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः'। उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो जननी मामल्लदेवी च (नैषध १ १४५)। कान्यकुब्जेश्वरस्य जयचन्द्रस्यास्थानमाधिभिषत् कविरयम्, तत्रादृतिमविन्दत च। 'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' (नै २२ १५१)। अतोऽस्य कनिष्ठो द्वारपालाभ्यां उत्तरपक्षोऽङ्गीक्रियते। श्रीहर्षो महाकविर्महायोगी च। उभयत्रापि परमोत्कर्षं लेभे। 'यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्। यत्काव्यं मधुवर्षि' (नै २२ १५१)। खण्डनखण्डेषु प्रभावकस्यान्यस्य नाममात्रं श्रूयते तेन। तत्र चाद्वैतवेदान्त प्रतिपादकः खण्डनखण्डखाद्यमेकैको ग्रन्थः साम्प्रतमुपलभ्यतेऽन्ये च लुप्तप्राया एव। साधारणमेतत् यस्य महाकाव्यं ग्रथयता च विन्यस्तास्तेन महता श्रमेण। अतः श्रमसाध्य एव महाकाव्यस्यैतस्यावगमोऽपि। 'ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया। प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु। श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादयत्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः'। (नै २२ १५२)। रमणीरत्नमिव हरति चेतः सचेतसो यून एव न तु किशोराणाम्। सुधीभिरेवास्वादनीया न तु प्राकृतैः। 'यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः'। (नै २२ १५)।

श्रीहर्षो महाकविर्महादार्शनिको महावैयाकरणश्चेत्यादिविविधविषयविज्ञगुणगणभूषणः स्वपादर्विशेते सर्वानन्यान् महाकवीन् पाण्डित्यप्रदर्शने वाग्वैभवे कविरचनायां भाषाभिव्यक्तौ धातुशब्दसङ्कलने विचारगौरवे वक्रोक्तिव्यवहारे च। अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात् पाण्डित्यपूर्णपरिपाकप्रतीकाय प्रतीयते प्रबन्धोऽस्य। नैकशास्त्रनिष्णाततयानुभवता शक्तिरनेन 'नैषधं विद्वदौषधम्' इति लोकोक्तिरुद्भाव्यते यतोऽस्य सुधीभिः। प्रतिपदं पदस्य क्लिष्टतोषणात् 'नैषधे पदलालित्यम्' इत्यप्यभिधीयते। विरचितश्च विद्वद्भिः स्तवमेतदनूपम्।

एतस्मादितरस्तः कैश्चन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते। अपारि पयोधि तरद् भिया पुरा (नैषध १ १), मनोरथेन स्वपतीकृतं नलम् (नै १ ३९) अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे (नै १ ४१) अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन् (नै १ ५४) वसन्ततेऽस्य महारवं हृदि (नै १-६६) दिने दिने स तनुतेऽपि वैदर्भिक (नै १), मरेभपुत्रा जननी जराज्ञा (नै १ ११५) मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दया (नै १ ११६) नलिनं मलिनं विवृण्वती (२-२१) कपोलमया कलया किल दृशा (४-७२) अन्याभि वैदर्भि गुणैरुदारैः (३ ११६) सौन्दर्यदर्शनानि परम्परा (११ १५) कुसुमेषु समेत्य नीममोक्षा (२१ १४६), शृङ्गारभङ्ग्यानुभावकेन (२१-५७)।

विविधविद्यापारदृश्वा श्रीहर्षः । विविधदर्शनसिद्धान्तानां व्याकरणादिशास्त्रसिद्धान्तानां चात्रोल्लेखात् संजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम् । अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते । एतदेवाधारीकृत्य संक्षेपतो निरूप्यते विविधं च । (१) श्लेषप्रयोगाः—देवो नलं कामयते मदीयम् (१३-१७) श्लेषमूलकमर्थत्रयमेतस्य । त्रयोदशसर्गे पञ्चनली वर्णने (१३ २-३४) सर्वेऽपि श्लोकाः द्व्यर्थकाः पञ्चार्थका वा । 'देवः पतिर्विदुषि नैषध राजगत्या ' (१३-३४) पञ्चार्थकमेतत्पद्यम् । अन्ये च केचन श्लेषमूलाः श्लोकाः—१-१२, १-७७, १-८१ १-१११, १-११५, त्वादृशा नलदं विना न दहने तापस्य कोऽपि शमः (४-११६) । (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता (३-२३) इत्यत्र 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम् । किं स्थानिवद्भावमगात् (१०-११६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो (१-१-५६) इति सूत्रस्य । अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि (१७-७) इत्यत्र अपवर्गे तृतीया' (२-३-६) इति सूत्रस्य । 'द्यावः स्थानिनी कौ (११-६) इत्यत्र द्युयोर्लोपायम्० (७-१-८५) इति सूत्रस्य । अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः (१-४) इत्यनेन 'चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति (महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य । एकशेषः (१-८२, ७-५९), आदेशः (८-२१ १०-११६), अपादानम् (१७-११८), घु-संज्ञा (१९-२१), लप् (२१-१५२), आम्रेडितम् (२१-१५६) । (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवादः—नास्ति जन्यजनकव्यति-भेदः (५-९४) । (४) योग०—सम्प्रज्ञातसमाधि—सम्प्रज्ञातवासिततमः समाधिः (२१-११८) । (५) न्याय-वैशेषिक०—परमाणुवादः—आद्यापित द्व्यणुकत्वपरमाणु-युग्मम् (३-१२५), मनसोऽणुत्वम्—मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः (१-१७), न्यायस्य षोडशपदार्थत्वम्—द्विषोडशोदितैः षोडशभिः पदार्थैः (१ -८२), प्रत्यक्षलक्षणम् (१७-२४५), न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहासः—मुक्तये यः शिलात्वाय (१७-७५) वैशेषिकाभिमत-तमःस्वरूपपरिहासः—औलूक्यमाहुः खलु दर्शनं तत् (२२-३५) । (६) मीमांसा०—देवतानामरूपित्वं मन्त्ररूपित्वं च—विग्रहम् (५-३९), मन्त्रमयत्वाम् (१४-७१) । स्वतःप्रामाण्यम्—स्वत एव सतां परार्थता (२-६१) मानवस्य कर्माधीनत्वमीश्वराधीनत्वं च—अनादिधाविवपरम्परया (१-१ २), श्रुतीनां प्रामाण्यम्—श्रुतिं श्रद्दधत विविक्षिताः (१७-६१) । (७) वेदान्त०—ब्रह्मसाक्षात्कारः—अथेव वेदाचि स्वमता नाम् (३-३), मुक्तदशा—या मुखश्चारि० (८ १५) विज्ञानशरीरम्—न तं मनस्तच्च न कायवायवः (९- ४), अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—अद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकाः (१३-३६) । (८) बौद्ध०—बौद्धाभिमतः धर्मवादो विज्ञानवादः साकारतावादश्च—धर्म्यात्मतावादमयोदरेण (१ -८८) । (९) जैन०—जैनाभिमतरत्नत्रयम्—त्रयीत्रि रत्नत्रितयी जिनेन (९-७१) । (१०) चार्वाकदर्शनम्—वर्णनमेतस्य सप्तदशे सर्गे (१७-३६-८३) विस्तरशः प्राप्यते । एवमेव वेदानां वेदाङ्गानामन्येषां च विषयाणामपि प्रतिपदं वर्णनं प्राप्यते । विविधशास्त्रादिप्रतिपादितसिद्धान्तवर्णनादेवास्य महाकाव्यस्य प्रतिपदं क्लिष्टत्वमापद्यते । अतः उच्यते—नैषधं विद्वदौषधम् ।

१३ भारतीया संस्कृतिः

भारतीयसंस्कृतेर्विशिष्टिविचारे बहवोऽनुयोगाः समापतन्ति चेतसि । तेषां समासतोऽत्र विवरणमुपस्थाप्यते । का नाम संस्कृतिः ? कथमियमुपकरोत्यात्मनो मनसो जनस्य देशस्य संसृतेर्वा ? हेयोपादेयापेक्षया चैषा ? उपादेया चेदियं किं स्यात् स्वरूपमस्याः साम्प्रतिक्यां लोकसंस्थितौ ? कास्तावत् प्रातिस्विक्यो भारतीयसंस्कृतेः ? किमिव हि साम्यं क्षेममिह लोकस्य संस्कृत्याऽनया ? कानि च सन्ति कारणानि विश्वसंस्कृत्यापादनेऽस्याः ? इत्यादयः । संस्करणं परिष्करणं चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते । सा नाम संस्कृतिरेषा व्यपनयति सर्वं मनस्तमाछन्नं चेतसोऽज्ञानावरणमात्मनश्च । पापापनयपूर्वकमेषा प्रसादयति स्वान्तं, दुर्भावदमनपूर्वकं संस्थापयति स्वैर्यं चेतसि मनःशुद्धिपुरःसरं पावयत्यात्मानमपहरति च चित्तभ्रमम् । संस्कृतिरेषैषा चेतः प्रसादयति, मनोऽमलीकुरुते दुर्भावान् दमयते दुर्गुणान् वारयति, पापान्यपाकुरुते, दुःखान्यानि दहति, ज्ञानज्योतिर्विस्फारयति, अविद्यातमोऽपहन्ति, भूतिं भावयति, सुखं साधयति धृतिं धारयति गुणानागमयति, सत्यं स्थापयति, शान्तिं समादधाति च । न केवलमेषोपकर्त्री व्यष्टेरेवापि तु समष्टेरपि जीवनभूता । उपकरोति चैषाऽऽत्मनो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्च । अतस्तमेषोपादेया सर्वैरेव स्वसुखममीप्सुभिः । स्वोन्नतिममीप्सता न यस्या केनाप्येषा हातुमुपेक्षितुं वा । उपेक्षितोपेक्षिता चैषा परिणमते स्वात्मविनाशाय लोकाहिताय च । अङ्गीकृतेऽस्या उपादेयत्वे तथैव स्यादस्याः स्वरूपं यत् साम्प्रतिक्यां लोकसंस्थित्यां नाहितं संभाव्यते । विविधाचारविचारव्यवहारात्मके विश्वेऽस्मिन् सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषां स्वान्तेषु सद्भावाभिमानपुरःसरं विश्वहितं विश्वबन्धुत्वं विश्वोपकारत्वं चादर्शत्वेनोररीकुर्यात् । अतः निष्पक्षतया यद् विभजनीया संस्कृतिरेव साम्प्रतमुपादानमर्हति, सैव च तापत्रयसन्तप्तं जगत् तापापनयनेन सुखनिधानं सम्पादयितुं प्रभवति ।

भारतीयसंस्कृतेः काश्चन प्रातिस्विक्यो मुख्या विशेषता अत्र प्रस्तूयन्ते । (१) धर्मप्राधान्यम्—मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान् व्यवच्छेदयति पशुभ्यः । अत उक्तम्—'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः' । नहि धर्मपदेन कश्चन सम्प्रदायविशेषोऽत्र विवक्षितः । कर्तव्यकार्याणि मूल्यवत्तानि मानवस्य व्याख्यातानि शास्त्रेषु धर्मरूपाण्याख्यातानि । तदेवाभ्यन्त—'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः । यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः' । यमाश्च व्याख्याता योगदर्शने—'अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (योग २ १)। एत एव सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् (योग २ ११)। शास्त्रविहितमनुष्ठितं लोकस्य क्षेमावहं च धर्म इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' । (२) आध्यात्मिकी भावना—निखिलस्यापि संस्कृतस्याधारं भवति भावनाऽन्तरा । भावनैषा चेतः प्रसादयति आत्मानं मोक्षाभिमुखं प्रति प्रेरयति । उपनिषत्सु गीतायां चास्या भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम् । अध्यात्मभावना प्रभवति मनसि सद्भावना तदनुभूतिर्वैराग्यादिकं च । (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी । भौतिका विषया इमे आपातरम्याः परिणामविरसाश्च । एषामाश्रयेण पतनं मुख्यं, दुःखमाधाति दुःखम्, दुःखे नित्यं

दुर्लभम् । एतस्मादेव हेतोर्भारतीया वीराः युद्धविजयं धर्मस्य प्रमुखं मन्वाना विषयसुखानि विहाय स्वप्राणान् तृणवत् गणयन्तः समराङ्गणेषु वीरगतिं लेभिरे । (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति च पालनीयः । अत उक्तं महाभारते—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च । अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः' । अशनपानविहारादिष्वपि नियमितो मनसो दमश्च पालनीयः । (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वार इमे वर्णाः । यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमवाप्नोति । सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म कुर्वीरन् । इदमिहावधेयम्—भारतीयसंस्कृतौ कर्मव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा । जन्मना जातिरिति कर्मणा वर्ण इति । वर्णो वृणोतेः । यो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः । जातिप्रथा सदोषा हेयाऽस्ति च, परं वर्णव्यवस्था निर्दोषोपादेया च । (६) आश्रमव्यवस्था—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाख्याश्चत्वार एते आश्रमाः । स्ववयोऽनुरूपमाश्रमपालनमपेक्षितम्, तदाश्रमनिर्दिष्टनियमान् पालयेच्च । (७) कर्मवादः—मनुष्येण फलाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति । 'कुरुष्व कर्मैव तस्मात्त्वम्' इति गीतोपदेशः । सत्कर्मणा पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति । 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' । 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनैवेति' (बृहदारण्यकम्) । (८) पुनर्जन्मवादः—कर्मानुरूपं सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति । 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता २-२७) । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः केवलं जन्मनो निर्भयत्वमधिगच्छन्ति । (९) मोक्षः—मोक्षप्राप्तिः परमः पुरुषार्थः । मोक्षमधिगम्य न च पुनरावर्तन्ते । केषाञ्चित् मतेन निश्चितकालं निःश्रेयसमुपभुज्य तेऽप्यावर्तन्त इति । ज्ञानाग्निना सर्वकर्मक्षयात् मोक्षप्राप्तिर्भवतीति । (१०) श्रुतीनां प्रामाण्यम्—वेदाश्चत्वारः स्वतःप्रमाणस्वरूपाः, अन्ये ग्रन्थाः तु तन्मूलकं प्रामाण्यं लभन्तेऽतस्ते परतःप्रमाणरूपाः । मुमुक्षुभिः कर्मानुष्ठानेन श्रेयोऽवाप्तिस्तदन्यथाऽऽचरणेन दुःखाभिगमश्च । (११) यज्ञस्य महत्त्वम्—सर्वैरेव जनैः पञ्च महा दैनिकयज्ञकर्माण्यनुष्ठेयानि । यज्ञसम्पादनेनात्मप्रसादनं देवप्रसादनं शोभनं क्रियते । (१२) सत्यपरिपालनम्—मनसा वाचा कर्मणा सत्यमनुतिष्ठेत्तदनुतिष्ठेच्च । कर्मणा सत्यं व्यवहरेन्नानृतम् । सत्यमेव धर्मस्य विजयं लभतेऽनानृतम् । तथोक्तम्—सत्यमेव जयते नानृतम् । (१३) अहिंसापालनम्—'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यहिंसैव श्रेष्ठधर्मत्वेनाङ्गीक्रियते । अहिंसयैव सम्भवा विश्वशान्तिः । (१४) त्यागमहत्त्वम्—अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत् । न परस्वमभीप्सेत् । पुरुषार्थोपार्जितमेवोपभुञ्जीत । यथा चोक्तं वेदे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' (यजु ४०-१) । (१५) तपोमयं जीवनम्—तपसैव शुध्यति जीवनं मनश्च प्रसीदति । भोगवासनाभिर्विनश्यति स्वास्थ्यम् । (१६) मातृपितृगुरुभक्तिः—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव इत्येषां देववत्पूज्यत्वमाख्यायते । एभ्य एव येषां तिष्ठति सकलमिह संसृतौ ।

निर्धारितस्य विषयोपस्थापनस्य सर्वा एव मूलभूता भावनाः संस्कृतावस्यामनुभूयन्ते । एतदध्ययनेन सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा राष्ट्रस्य विश्वस्य च । गुणवैशिष्ट्यमेवैतस्याः सर्वत्र समाद्रियते विश्वसंस्कृतिषु ।

१४ संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसाराय चोपायाः

सुविदितमेतत् सर्वेषामपि शेमुषीमतां यत् भारतीया संस्कृतिर्नाधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा । संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीविनः । संस्कृतिरियं स्वान्तस्य संस्कर्त्री सद्भावानां भावयित्री गुणगणस्य ग्राहयित्री प्रेम्णः धारयित्री, दमस्य दात्री, सदाचारस्य संचारयित्री दुर्गुणगणस्य शमयित्री अविद्यान्धतमसस्यापनोदयित्री, आत्मावबोधस्यावगमयित्री मुक्तेः साधयित्री शान्तेः सम्पात्री च काचिदनुपमा शक्तिः । इयं संस्कृतिरस्माभिः रक्षणीया पालनीया परिवर्धनीयेति भारतीयसंस्कृतेः समुचितभावबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम् । समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यावतिष्ठते इति सुविदितम् । न केवलं भारतीयसंस्कृतिसंरक्षणार्थमेवावश्यकं संस्कृतमपि तु संस्कृतमेतत् विविधसंस्कृतिसमन्वयसाधनम्, भारतीयभाषाणामभिवृद्धिहेतुः, राष्ट्रभाषायाः समुन्नतेः साधकम्, आर्यभाषाया गौरवस्य मानभूतम्, विश्वबन्धुत्वस्य पथप्रदर्शकम्, जीवनदर्शनस्य द्योतकम्, आचारशास्त्रस्य शिक्षकम्, पुरुषार्थस्य प्रकाशकम्, विविधविरुद्धसंस्कृतिसमाहारसाधकम्, प्रान्तीयानां प्रादेशिकानां च विकृतीनां विवादानां संघर्षाणां च प्रशमनम्, राष्ट्रियभावनायाः अखण्डताया अभिवृद्धेर्मूलम्, वैदिकवाङ्मयावबोधस्य प्रधानहेतुः, आध्यात्मिकता भौतिकतायाश्च समुन्नतेः साधनमिति सुतरामवधेया । संस्कृतस्य वाङ्मयेन च विहीनस्य देशस्य आत्मनाशपतनमनिवार्यम् । द्वयोरेवैतयोः संरक्षणेन संवर्धनेन च समेधते श्रीः सकला अपि संवृतेः । इत्येतदेवावधार्य संस्कृतस्य संरक्षणस्य प्रचारस्य प्रसारस्य च भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते साम्प्रतम् । तदर्थमप्रचारप्रसारोपायास्तत्र समासतोऽत्र विविच्यन्ते समुपस्थाप्यन्ते च ।

(१) संस्कृतकाठिन्यापनोदनम्—क्लिष्टा दुरूहा दुर्बोधा चेयं गीर्वाणगीरिति लोकानां विचारः प्रथमं हेयः । सरला सुबोधा प्रसादगुणोपेता चेयं प्रकाश्या व्यवहार्या च । सरला सुबोधैव च भाषा प्रचरति प्रसरति चेत्यवगन्तव्यम् । (२) संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्—संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च संस्कृतव्याकरणस्य काठिन्यं महद् बाधकम् । व्याकरणं सरलं कार्यम् । सूत्राणां कण्ठस्थीकरणे न बलमाधेयम् । व्याकरणनियमा अनुवादद्वारा प्रयोगशैल्या च शिक्षणीयाः । प्रयोगशैल्याऽवगता नियमास्तथा बद्धमूला भवन्ति यथा नान्येनोपायेन । (३) नवशब्दानामात्मसात्करणम्—विविधासु भाषासु प्रयुज्यमाना नवभावबोधका नव्याः शब्दाः संस्कृतशब्दावल्यां संस्कृतस्य रूपप्रदानद्वारा आत्मसात्करणीयाः । तद्वत् व्यवह्रियमाणाः सर्वा एव नूतना भाषाः शैलीभिमामाश्रयन्ते । प्रकारेणैतेन सरलां भाषाणां प्रगतिरनुगतिरागतिश्च सम्पद्यते । समादृताऽऽसीत् शैलीयं प्राक् संस्कृतेऽपि । (४) सभाभाषायाः साधनम्—दिवसचारित्रे

प्रयुज्यमानाः सर्वेऽपि भावाः सहर्षमङ्गीकरणीया प्रयोक्तव्याश्च । नवभावावबोधनार्थं नूतना शब्दावली प्रयोक्तव्या निर्मातव्या वा । विदेशीयशब्दग्रहणेऽपि न संकोचप्रवृत्तिरास्थेया । (५) संस्कृतभाषाव्यवहारः—बोलिता भाषा च सैव भाषा या लोके व्यवह्रियते प्रयुज्यते च । संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिवार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः । भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादिव्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन् । (६) नवग्रन्थरचना—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात् । साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतमाध्यमेन सुलभाः स्युः । एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तरदायित्वं भजन्ते । तेषां चैतत्पावनं कर्म । (७) नवविषयाध्ययनम्—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिवार्यमेतद् यत् संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिह्यं विज्ञानादिविषयान् विदेशीया भाषाश्चाधीयीरन् । विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणापूर्णं विद्यो विद्वत्त्वम् । (८) अन्वेषणकार्यम्—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्यावश्यकता । अन्वेषणकार्यमेव गौरवायापि । अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षश्चावगम्यते । एतदर्थं महान् प्रयासोऽपेक्ष्यते । (९) संस्कृतग्रन्थानामनुवादः—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसाराय चावश्यकमेतद् यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिको ऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात् । कार्यं चैतत् सरकारप्रयत्नेन जनसहयोगेन च सम्भवति । (१०) सुलभग्रन्थमालाप्रकाशनम्—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकं संस्करणं प्रकाशितं स्यात् । महाकाव्यानां नाटकग्रन्थानां सारांशरूपं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रकाशितं स्यात् । (११) वैज्ञानिकदृष्टीसमाश्रयणम्—वैज्ञानिकीं दृष्टिं समाश्रित्य संस्कृतं प्रारिप्सूनां बालानां संस्कृतबोधिनां च कृते सुबोधा रुचिकराश्च ग्रन्था प्रणेयाः । (१२) संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्—आर्य(हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात् । संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति सर्वेषां सुधियामैकमत्यम् । (१३) पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत् । तत्र च स्यादावश्यकः परिष्कारः । (१४) विलुप्तग्रन्थोद्धारः—संस्कृतस्यानेके महान्तो ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्राया जीर्णा शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते । तेषामुद्धार आवश्यकः । (१५) सर्वकारस्य सहयोगः—सर्वमुपरिनिर्दिष्टं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति । सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानाद्रियेत, संस्कृतप्रचारप्रसारे साहाय्यमाचरेत् राजकीयवृत्तिषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतविद्योद्धारे प्रयतेत च ।

१५ कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । (मेघ० उत्तर ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशालि । प्रतिक्षणं प्रतिपलं कणोऽपि भूतग्रामः स्वात्मनि परिवृत्तिमनुभवति । परिवृत्तिधर्मत्वमेवास्य भुवनस्य विलोक्य विलोक्य विपश्चिद्भिः 'गच्छतीति जगत्' इति निर्वचनमाश्रित्य जगदिति नामधेयं विहितम् । 'संसरति गच्छति चलति वेति संसारः संसृतिर्वा' इति व्युत्पत्तिनिमित्तकं संसारः संसृतिरिति नामद्वयं प्रवर्तितं कोविदैश्च जगत्, संसारः संसृतिरित्यादयः शब्दाः समुद्घोषयन्ति संसारस्य परिवर्तनशीलत्वम् । नेह किञ्चिद् वस्तु शाश्वतं स्थिरमपरिवर्तनशालि वा । यदा सर्वस्य लोकस्येदृश्यवस्था, तदा न संभवति मानवजीवनस्यापरिवृत्तित्वम् । तथापि च सुखस्य दुःखस्य वा सम्भवत्यपि समवसानम् ।

याति चक्रवत् परिवर्तनं यथा समयमिति कवेरिति विपुलमतिः, निशाकरस्योदयं याति प्रभाकरस्यास्तमुपगच्छति यथा रात्र्यनन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च विभावरी, तथैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम् । सम्पदनन्तरं विपद् विपदनन्तरं च सम्पदिति । एवमेतत् परिवर्तनस्य क्रमचक्रम् । एतदेव तथ्यं समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः । 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम् आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः । तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ (शाकु० ४ २)। उत्थाने पतनम्, उत्कर्षेऽपकर्षः, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्तिः सुखं दुःखमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तरमेव नान्यत् । यथा शैशवं तदनु यौवनं तदनु वार्धक्यं तदनु देहावसानं तदनु जन्मान्तरं तदनु पुनः शैशवम्, एवमेव जीवने सुखदुःखे परिवर्तेते, परिवृत्तेरस्य भावित्वादनिवार्यत्वाच्च ।

संभवति परिवर्तनेऽस्मिन् वैराग्यमप्यापतितनिशापतितं । यदि विपुलं विचार्यते यदि प्रतीयते परिवृत्तेः सुखदुःखयोः लोकोपयोगिता च । सुखमकृत्वा नास्तित्वम् परिवर्तनं येनास्तित्वम् प्रगतिरुन्नतिरभ्युन्नतिश्च क्षणानाम् । ऋतूनां परिवृत्तिमन्तरेण नाम्भविष्यद् वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा वा । न चेदभविष्यत् सुखं दुःखमिश्रम् सुखमिश्रम् । नाभविष्यच्चेद् दुःखं नानुभूतमभविष्यत् सुखम् । दुःखस्य सत्त्वेव सुखमनुभावयति, सुखस्य सत्ता च दुःखम् । सुखदुःखे परस्परं सम्बन्धानमानवम् । यदि को यावज्जीवं सुखं सम्पत्तिमेवानुभवेदन्यश्च दुःखं विपत्तिमेव वा तर्हि न प्रसरिष्यति लोकस्थितिः । कल्पनामात्रस्यलोकोपयोगिता चानुभूयते सर्वैरेव । कर्मविपाकोऽपि नियतोऽतः कर्मानुरूपं फलितम् सत्कृत्यदुष्कृत्यपरिपाककारणम् सुखमर्थमश्नुते तदिह परदेश च दुःखम् । सुखदुःखे परिवर्तमानमेतत् सुखदं शिक्षयति निखिलं जगत् सुखस्यापि अपरिणामित्वं दुःखस्य च दुष्परिणामित्वम् ।

परिवृत्तिरेतस्या महत्त्वमाकर्ण्यैव महाकविभिर्विविधाः सूक्तयो विरचिता अस्मिन् वर्णिताः । यथा च—(क) कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । (मेघ० २४९) । (ख) अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्

सुगमतमाः सर्वेऽपि भावाः सरलमाश्रयणीयाः प्रयोक्तव्याश्च । नवभावावबोधनार्थं नूतना शब्दावली प्रयोज्या निर्मातव्या वा । विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न संकोचवृत्तिरास्थेया । (५) संस्कृतभाषाव्यवहारः—जीविता जागृता च सैव भाषा या लोके व्यवह्रियते प्रयुज्यते च । संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिवार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः । भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादिव्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन् । (६) नवग्रन्थरचना—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात् । साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतमाध्यमेन सुलभाः स्युः । एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तरदायित्वं भजन्ते । तेषां चैतत्पावनं कर्म । (७) नवविषयाध्ययनम्—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिवार्यमेतद् यत् संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलभौतिकविज्ञानादिविषयान् वैदेशिकीं भाषां चाधीयीरन् । विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणाध्ययनस्य विधौ विस्तृतम् । (८) अन्वेषणकार्यम्—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्त्वावश्यकता । अन्वेषणकार्येण पौरस्त्याप्यपि । अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षं चावगम्यते । एतदर्थं महान् प्रयासोऽपेक्ष्यते । (९) संस्कृतग्रन्थानामनुवादः—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमेतद् यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिकोऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात् । कार्यं चैतत् सर्वकारप्रयत्नेन तत्सहयोगेन च संभवति । (१०) सुलभग्रन्थमालाप्रकाशनम्—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकं संस्करणं प्रकाशितं स्यात् । महार्घाणां चाकरग्रन्थानां सारभूतं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रकाशितं स्यात् । (११) वैज्ञानिकशैलीसमाश्रयणम्—वैज्ञानिकीं शैलीं समाश्रित्य संस्कृतं प्रारिप्सूनां बालानां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा व्याकरणग्रन्थाः प्रणेयाः । (१२) संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्—आर्य(हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात् । संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति सर्वेषां सुधियां मतैकमत्यम । (१३) पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत् । तत्र च स्यादावश्यकः परिष्कारः । (१४) विलुप्तग्रन्थोद्धारः—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्राया जीर्णाः शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते । तेषामुद्धार आवश्यकः । (१५) सर्वकारसहयोगः—सर्वमुपरिनिर्दिष्टं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति । सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानाश्रियेत, संस्कृतवाङ्मयप्रसारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीयपदेषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतविद्योद्धारे प्रयतेत च ।

१५ कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। (मेघ उत्तर० ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशीलमस्ति। प्रतिक्षणं प्रतिवस्तु रूपान्तरं भजमानं स्वात्मनि परिवर्तनमनुभवति। परिवर्तनशीलत्वादेवास्य भुवनस्य विदुषोक्तं निरुक्ते निरुक्तिकारैः 'गच्छतीति जगत्' इति निर्वचनमाश्रित्य जगदिति नामधेयं विहितम्। 'संसरति गच्छति चलति इति संसारः' इति व्युत्पत्तिनिमित्तं संसारः संसृतिरिति नामद्वयं प्रवर्तितं कविभिः। जगत्, संसारः, संसृतिरित्यादयः शब्दाः वस्तुतोऽस्य जगतः परिवर्तनशीलत्वम्। नेह किञ्चिद् वस्तु शाश्वतं स्थिरमपरिवर्तनशीलं वा। यदा समस्तं लोकमेवेदमस्थिरं तदा न सम्भवति मानवजीवनस्यापि स्थिरत्वम्। तथापि च सुखस्य दुःखस्य वा स्थायित्वस्य प्रश्नस्थानम्।

सर्वत्र चक्रवत् परिवर्तन्ते, यथा चन्द्रो निवर्तते शुक्लपक्षान्ते निशाकरस्य क्षयः पुनश्च प्रकाशत्वं गच्छति, यथा रात्रेरनन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च निशागमः तथैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम्। सम्पदनन्तरं विपद् विपदनन्तरं च सम्पदिति। अनेन क्रमेण परिवर्तनस्य क्रमः। एतदेव तथ्यं महाकविः अभिज्ञानशाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः। 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः। तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥ (शाकु० ४-२)। उत्थानं पतनम्, उन्नत्यवनती, जन्म मृत्युः, सम्पद्विपदौ, सुखं दुःखमिति च परं पर्यायेणागच्छन्त्येव नाम्ना। यथा शैशवं ततः यौवनं ततः वार्धक्यं ततः देहपातः ततः जन्मान्तरं ततः पुनः शैशवम्, एवमेव जगत् सुखदुःखे परिवर्तेते परिवर्तनचक्रमचिरात्।

संसारेऽपि परिवर्तनेऽस्मिन् दैन्यमप्यपरिहार्यमेव। परं निपुणं विचार्यते यदि मनुष्यस्य परिवर्तनं सुखदुःखयोरपि च। सुखमप्यस्मिन् नामस्थितम् परिवर्तनशीलत्वात् न कस्यचित् स्थिरम्। सुखानां परिवर्तनं नाम कस्यचिद् कदाचिद् भवति वा। न केवलं सुखं दुःखमपि स्थिरम्। नामास्ति दुःखं नास्ति सुखम्। दुःखस्य तथैव सुखस्य च, सुखस्य तथा च दुःखम्। सुखदुःखयोः परिवर्तनमावश्यकम्। यथा मानवस्य सुखं दुःखं चानुभवति दुःखं निश्चितमेव वा यदि न प्रवर्तयति लोकस्थितिः। कस्यापि स्थायित्वं नास्ति सर्वे अनुभवन्ति सर्वेऽपि। कर्मफलानुसारं निपतति दुःखं कदाचित् सुखं सुखानन्तरं दुःखं च दुःखान्ते च सुखम्। सुखदुःखे परिवर्तमानत्वेन सुखं विश्वसिति निखिलं जगत् सुखस्य दुःखस्य च परिवर्तनम्।

परिवर्तनस्यास्य महत्त्वमवबोध्यैव महाकविभिर्विविधाः सूक्तयो निबद्धाः वर्तन्ते। यथा च—(क) कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। (मेघ २-४९)। (ख) अवतीर्य नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्-

कान्तदुःखः सुखः पृथिव्याम् । (बुद्धचरितम् ११.४९) । (ग) कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः । (स्वप्न० १-४) । (घ) भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति । (मृच्छ० १.१३) । (ङ) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च । (हितो० १.१७३)

किं नाम सुखं, किञ्च दुःखमिति । सुखदुःखयोः बहूनि लक्षणानि धर्मग्रन्थे विहितानि शास्त्रकारैः । भगवान् मनुरत्र निर्दिशति यत् स्वात्मायत्तमाधीनं सुखम्, आत्मायत्तं वा सुखमिति, पराधीनत्वं च दुःखमिति । तथाह—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः' । केचन चान्ये सुखदुःखयोर्लक्षणं निगदन्ति । सु सुष्ठु सुखकरं वा खेभ्य इन्द्रियेभ्य इति सुखम् । ज्ञानेन्द्रियेभ्यः सुखकरं यत् तत्सुखमिति । एवमेव ज्ञानेन्द्रियेभ्यो दुःखकरं यत् तद् दुःखमिति । अन्यथा तु व्युत्पत्त्यन्तरमपि शब्दयोरनयोः सम्भवति । सुष्ठु खानि सुखानि, दुष्टानि खानि दुःखानीति । इन्द्रियाणि चेत् स्वस्थानि तर्हि सर्वमपि विषयजातं सुखत्वमापद्यते । दुष्टानि चेदिन्द्रियाणि तर्हि सर्वोऽपि विषयग्रामो दुःखत्वेनापतति । एवं सुखदुःखयोरिन्द्रियसम्बन्धमस्य महत्त्वमुपदिशति ।

सुखवद् दुःखस्यापि जीवनेऽस्मिन् महत्त्वम् । दुःखनिशीथिन्यां पुण्योदयेनैव धीराः कौमुदीमाप्नुवन्ति । अननुभूय दुःखं न सुखं साधूपभुज्यते । अतः उच्यते—सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते (मृच्छ० १.१०) यदैवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम् (विक्रमो० ३.२१) । स्पष्टीक्रियते चैतत्सत्यं यत्र सुखं सुखम् दुःखानुभूतिमन्तरा सत्त्वावगममन्तरेण च । दुःखमनुभूय प्रभूतान् निरस्य च श्रेयः सुखम् । अत एवाभिधीयते—भवन्ति बन्धुम सुखानि दिनान्तरायते (किरात० ४१) विपत्तयः मार्गितार्थसिद्धये (धातु० अङ्क २) ।

धर्मनिश्चयकस्य सर्वसत्त्वात् समापतति चेद् दुःखं तर्हि किं नु विधेयं धैर्येण विपद्ग्रस्तेन । दुःखोदधौ निमज्जनेन धैर्यमेवावलम्बनीयम् । धैर्यमाश्रित्यैव धीरा विपत्पारावारमुत्तरन्ति । घनान्धकारे पातमाप्तेऽपि सांयात्रिको धृतिमवलम्ब्य तितीर्षत्येव । उक्तं च—त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् सः । यथा समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥ धीरे दुःखेऽपि नरः आत्मशक्तिमाश्रयते चेत्तु दुःखसागरमपि तर्तुं प्रभवति । नहि किञ्चिदसाध्यमात्मशक्त्या । आत्मशक्तिर्हि सर्वोदयस्य मूलम् । सा दुःखविभावरीं स्वप्रकाशेनापि सद्य संहरति । अत उच्यते—उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ धैर्यधना हि साधवः । ते सम्पदि न हृष्यन्ति न च विपदि विषीदन्ति । अतः सुखदुःखे समे कृत्वा प्रवर्तेत । सम्पदि विपदि च महतामेकरूपतैव लक्ष्यते । यथा चोच्यते—उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च । सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ अतः सम्पदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत् । विपदि धैर्यमाश्रय पश्यति स्वीयं कर्तव्यमतिवाहयेत् ।

१६ नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ (शिशु० २-८६)

दैवस्योद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निरीक्षमाणानां विपश्चितामस्ति महीयसी विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन् । केचन दिष्ट्या दैवस्य वा माहात्म्यमुद्घोषयन्ति, ते दैष्टिका इत्यभिधीयन्ते । अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाख्याय पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति । एतयो मतयो विरोधे वर्तमाने केचन मनीषिणो द्वयोरेव समन्वयं श्रेयस्करमामनन्ते । विचारणीयं तावदेतद् यत्कतमा तयोरिह ज्यायसी । मानवजन्म सफलं लोका भुवनेऽस्मिन् मर्त्यो भुवि समासाद्य चिरसञ्चितपुण्यपरिपाकलभ्यमासाद्य मानवजीवनस्यास्य परिणामं तस्मादवन् ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति ।

विमृश्यते तावद् दिष्ट्या एव स्वरूपं प्राक् । का नाम दिष्टिः, कथं च प्रभवेदा पौरुषैकस्योद्यमसमस्योत्कर्षापकर्षस्य पारतन्त्र्यस्य वा । यदि विचारदृष्ट्या निपुणं परीक्ष्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः । प्राक्तनस्य कर्मण एव नामान्तरं दिष्टिरिति दैवमिति भाग्यमिति वा । अत आभाष्यते—'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते' । दिष्टिरेव साधकत्वेन बाधकत्वेन चोपतिष्ठते निखिलेषु क्रियमाणेषु कर्मसु । अतः कर्मणां सिद्धिरसिद्धिर्वा दैवाधीनेति मन्यते । प्राक्कृतकर्मफलपरिपाको नियतोऽस्य नियतिरिति च दैवस्य नामान्तरं भवति । न च नियतिः साम्प्रतिकैः कर्मभिरन्यथा भवितुमर्हतीति नियतेर्नियोगोऽनुल्लङ्घ्य इति गम्यते । अत्र दैष्टिका उदाहरन्ति—सूर्याचन्द्रमसौ तेजसा वरिष्ठौ नियतिपीडनादेवास्तं समुपगच्छतः । विद्या पौरुषं बलानुरूपं लोको दैवानुरूपमेव फलमश्नुते । सुरासुरकृतसमुद्रमन्थने समेऽपि भागे प्राप्तव्ये हरिर्लक्ष्मीं लेभे, हरस्तु हालाहलमेव । उक्तं च— "दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् । समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥"

प्रतिकूलतामुपगते हि दैवे न मनागपि सिध्यति साध्यम् । अतएवाह माघः— "प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता । अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।" ईदृशं दैवस्य प्राबल्यं पश्यतश्चेतस्येतदपि उदेति यद् दैवमभिलक्ष्यति । अत आह श्रीहर्षः—"अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा । तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।" विरुद्धे हि विधौ भव्यसद्धर्मपि विफलं स्यात् । भाग्येऽनुकूले दोषा अपि गुणत्वमुपयान्ति । उक्तं च— 'गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि । सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि च गुणायते ।' दुःखानि सुखानि च भाग्यानुसारमेव संभवन्ति । उच्यते च—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति' । दैवानुसारमेव मनुष्यस्य बुद्धिरपि सम्पद्यते । विधिमाधिष्ठितकर्मानाप्तदुर्घटितस्य विघटने च दक्षः । 'अघटितघटितं घटयति सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते । विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ।' सिद्धिरसिद्धिश्च दिष्ट्यनुसारमेव परिणमति ।

अचिन्त्यमेतत्पद् दैवं फलति, तिष्ठति दैवाधीना। परमवगन्तव्यमेतद् यत् पूर्वकृतकर्मपरिपाक एव दैवमिति, नान्यत्। यदि सुनिश्चितमेतदवधारितं तर्हि भाग्यमनुकूलयितुं मनस्विजनमावश्यकता सुविचारितस्य कर्मणः कठिनस्य श्रमस्य च। अतएव विलपन्नाह श्रीकृष्णो गीतायाम्—'नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः'। कर्म च कर्मफलासक्तिं विहायैव कार्यम्। तदेव साफल्यं लप्स्यति। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'। सततं तपसा श्रमेण सुचरितेन च भाव्यम्। तदेव च परिणमति काले। 'भाग्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।' भाग्याद् गुरुतरं कर्म तदेव फलति तदेव चोपास्यम्। नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति।'

जगति सर्वेषामपि जनानां नैसर्गिकीयमभिलाषा यत् स्याद् दुःखात्ययः सुखाप्ति ममम। का नु वर्तिष्यते तत्सिद्धिः सौकार्या साध्यमेतत् साधयितुम्। ध्यानेन स्वान्तेन चिन्त्यते येनार्हि पुरुषार्थमन्तरा न साधनान्तरं प्रतिपद्यमुपयाति। वीरो वा धीरो वा मनीषिणा वा, धर्मज्ञस्यापि वाग्मिनो वा कविताकामिनीकान्ता कविरस्तु वा, अन्योऽपि पौरुषमाश्रित्यैवाभीष्टां सिद्धिमधिगच्छतु। अकर्मण्यताऽऽलस्य पौरुषहीनत्वं दैहिका अभीष्टसाधनमपि, विकीर्णितं चाऽत्र प्रत्यवायस्यैवापतिष्ठते। यद्यपि सार्दिकी सुखलिप्सा समीहितं समासाद्य वा तर्हि आलस्यं नाम पतितं कार्यं कुर्वीत, वाञ्छितं विधाय अपेक्ष्यम्। उद्यम उद्योगोऽप्यत्र रिपुरस्त्येवैकोऽनर्थकारी चाऽकर्मण्यताऽपरक्षायितव्यं यदभिलषितं तदधिगम्यते। तथा चोक्तम्—क्षमो वा मानवस्यानुपमो बन्धुः। परमश्च यदभिलषितं 'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति'। इति। योगवासिष्ठेऽप्यभिधीयते—'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद् धीमतां क्रमः'। मानवीयं चैव कर्मनिरतोऽप्यवलम्बनपरश्च स्यात्, कामनारहितं च परिहरेत्मनसैवं विधाय वेदाः। यथाऽऽन्नेनैवाभीप्सितमखिलं सिध्यति सताम्। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' (यजु ४०-२)। विशेष्टव्यं श्रमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते अनुगुणमेनैवेति येऽन्येतति क्रियते तर्हि न कापि सिद्धिरमीप्सा शास्त्रविकला प्रस्यते अनुगुणमेनैवेति। उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः'। अल्पमताविन एव तादात्म्यमापरति नाकर्म्यं किञ्चिदस्ति जगति। अत साधूक्तम्— विमुरति। यथा चोक्तम्—'उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः'। षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र दैवः सहायकृत्।

पञ्चदशस्य वयसस्त्वनिवेचनेन शिष्यायते यत् सुविचार्य कृतमवदातं कर्म लाप मति शाप्यमिह जगति, तदेव च संस्कारकरेणाभिधीयते दैवमिति भवति मनर्थयति च मानि कर्मजातम्। अत उभयस्याश्रयणं न्याय्यम्।

१७ सहसा विदधीत न क्रियाम् (किरात २ ३)

महाकवेर्भारवेर्महाकाव्ये किरातार्जुनीये सन्ति शतशः सूक्तिमुक्ताः । तत्रापि द्वित्राः सन्ति सूक्तयो याश्चकासति सर्वाभिभवमिव । तास्वन्यतमैषा सूक्तिः । सूक्तं तेन महाकविना यत् जनः कोऽपि सहसा किमपि विधेयं विदधीत यतो ह्यविवेकः परमापदां पदमस्ति । ये च विमृश्यकारिणो भवन्ति त एव श्रियः भजन्ते । यथोक्तं तेन—"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।"

को नाम विवेकः ? कश्चाविवेकः ? क उपयोगो विवेकस्य ? किमिह साध्यं विवेकेन ? यदि नोपादीयतेऽयं कथमिव विपदां निदानत्वेन परिणमते ? विवेचनमेव विवेक इति । सदसतोः पुण्यापुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोर्हेयोपादेययोश्च येन विधिवत् विवेचनं क्रियते स विवेक इत्यभिधीयते । इतरश्चाविवेक इत्याख्यायते । विवेकस्य महदुपयोगिता जीवनेऽस्मिन् । विवेक एव सदसतोः पापपुण्ययोः कर्माकर्मणोश्च सम्यक्त्वं गुरुलाघवं च निरूपयति । स एव किं ग्राह्यं किं हेयं किञ्चोपेक्ष्यमिति सन्दिशति । विवेक एवेह जगति ज्ञानमिति बुद्धिरिति धीरिति च व्यवह्रियते । विवेकमन्तरेण न भूयान् भेदो मनुष्येषु पशुषु च । अस्ति मानवे विवेकाधिक्यम् । यथा सोऽर्थमनर्थं च बहुधा विभाव्यार्थसाधकमुपादत्तेऽनर्थसाधकं चोज्झति । जीवने हि सर्वस्येष्टं सुखम् । सर्वो हि यतते सुखावाप्तये । नहि दुर्मेधोऽपि खलोऽपि मूढोऽपि हीनेन्द्रियोऽपि दुःखमिष्टत्वेन गणयति । सोऽपि सुखमेव कामयते, यतते च तदवाप्तये । अतीतस्यागामिनश्चावस्थायां को नु मार्गो यः सुखसाधकत्वेन प्रवर्तेत । विचारचक्षुषा चिन्त्यते चेद् विवेकस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतीयते । सर्वमपि साध्यं साध्यते विवेकेनैव । विवेकपूर्वा कृतिरेव कल्पयति श्रियम् । विवेक एव सुखस्य मूलम्, शान्तेर्निधानम्, श्रियो निधानम्, श्रिय आश्रयः, गुणानामागारम्, विनयस्य भूमिः, उन्नतेः साधनम्, सत्कर्मणामाकरः, विजयस्य कारणम्, धीरस्य लक्षणम् । विवेक उपादत्तश्चेद् न जीवनेऽवसादावसरः । अनुपादत्तश्चेदयं प्रतिपदं प्रतिपदं चोपतिष्ठन्ते विपदो दुःखानि प्रभूतानि ।

ये हि विपश्चितो विचारशीलाश्च ते प्रतिपदं सम्यगवधार्य वस्तुस्थितिं शान्तेन स्वान्तेन कर्तव्यस्याकर्तव्यस्य च गुरुलाघवं विमृश्य यद् हितावहं सुखकारकं तदेवोपाददते । नहि प्रमादं वा हिंसां वा सहसा वा किञ्चित्तेऽनुतिष्ठन्ति । यत्कर्म सुविचार्य क्रियते तत् सत्फलमावहति । अत उच्यते—सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् (हितोपदेश १ २२) । ये चाविचार्य कर्मणि प्रवर्तन्ते, तेषां प्रवृत्तिरज्ञानमूला । अज्ञानं हि सर्वासामापदामास्पदम् । अज्ञानान्धत्वात् तेषां कर्मणां दुःखावाप्तिरेव सुलभा । तादृशा जना दिङ्मूढा इव सुखं दुःखमिति मन्यन्ते, दुःखं च सुखम्, पापं सुखसाधनमिति, पुण्यं च दुःखसाधनमिति । एवं ते व्यसनपरम्परामुपगच्छन्ति, प्रत्यवमवनतिं चोपगच्छन्ति । अत उक्तं भर्तृहरिणा—'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' (नीति १)।

विपश्चितो हि विचार्य सर्वमपि क्रियाकलापं कर्मणि प्रवर्तन्ते । बुद्धिमत्ताऽनिरस्ता नैव परमो गुणो यद्विमृश्य स कर्मसु प्रवृत्तिमादधाते । भूयसां सम्भावितविचारभूमैव । कि

कार्यं कस्य तस्योपाय इति सर्वं विविच्य ते कर्तव्यं कर्म निश्चिन्वन्ति । यदा विचार्यैव निश्चीयते किञ्चित् तर्हि तत्फलं सुखावहमेव भविता । एवं विद्वांसोऽपि यद् किञ्चिदपि स्यात् कर्तव्यं तत्र परिणतिं प्रधानतोऽवधारयन्ति । नहि ते सहसा कस्यचनकर्तव्यं वा विनिश्चित्य कस्मिंश्चित् प्रवर्तन्ते । सहसा विहितं विधेयं दुःखं जनयति, चेतसि च शल्यमिव माघातं विधत्ते । अत साधूक्तं केनापि—'गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ, परिणति-रवधार्या यत्नतः पण्डितेन । अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्य-तुल्यो विपाकः' ।

एष एवाभिप्रायश्चरकसंहितायामप्युपलभ्यते—'परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति' । 'नापरीक्षितमभिनिविशेत' 'सम्यक्प्रयोगनिमित्ता हि सर्वकर्मणां सिद्धिरिष्टा । व्यापच्चासम्यक्प्रयोगनिमित्ता' । भगवता चरकेणापि कस्यचन कर्मणः परीक्षणमनिवार्यं स्वेन गण्यते । यदि सम्यग् विचार्य करणं निर्धार्यते तर्हि तस्य साफल्यमपि प्रागेवानु-मातुं पार्यते । अविचार्य कृते कर्मणि न केवलमसाफल्यमेव विपद् शरीरक्लेशः साधना-व्ययः प्रत्यवायाश्च । महाभारतेऽपि व्यासेन सुविचार्य कर्मकरणमुपदिष्टम् । विमृश्य-कारी सुखमेधते, श्रियमश्नुते, प्रत्युत्पन्नमतिः विपद् विचारयति साध्यं साधयति । उक्तं च महाभारते—'चिरकारक भद्रं ते, भद्रं ते चिरकारक' ।

अनालोच्य शुभाशुभं जनो यद् कर्मणि प्रवर्तते, तस्य मूलमज्ञानमेव । अज्ञाना-वृतचेतसो हि मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः मानिनः कर्तव्याकर्तव्यविवेचनमप्यास्थाय परिभवस्थानतामापद्यन्ते, न सम्यक् साधनामुपविश्य विपत्तिविकल्पसन्तरणोपायान्तरमव-लम्बन्ते क्षिप्रकारित्वं श्रियः साधनं गणयन्ति । एवंविधयाऽऽत्मविडम्बनया विमूढा स्वेऽविरमशकारित्वात् न केवलं विपत्सागर एव निमज्जन्ति अपितु सर्वलोकस्योपहास्य-तामवाप्य दुःखदुर्दिनेन कालमतिवाहयन्ति । केचन हठदुरितावग्रहसमञ्जसेन पीड्यमाना यथैवोपदिश्यते परैस्तथैवाचर्यन्ते ते । न ते स्वविवेकोपयोगेन साध्वसाधु वा निर्णेतुमध्यव-स्यन्ति । परिणतिश्च तस्य विपदुपताप एव । अतो निगदितं कालिदासेन—'सन्तः परी-क्ष्यान्यतरद् भजन्त । मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः' ।

विवेकमूलं सुविचारमेवाश्रीमहे आत्मसंयमेन नयव्याप्यमिह किञ्चिदवगतिः । प्रत्यहं समीक्ष्यते सर्वत्र सहसा देशेऽस्मिन् स्वार्थप्रेरणया प्रवर्तमाना विविधा यातनाः । भारतेऽपि पञ्चवर्षीया योजनाः प्रयुक्तपराः प्रयुज्यमानाः प्रयोक्ष्यमाणाश्चापेक्ष्यन्ते । विवेकमूलकारित्वेनैव साफल्यमिव समाप्यते च । विपश्चितोऽपि विवेकशीलत्वात् जीवनस्य कार्यक्रमं विमृश्यकारिणो भवन्ति । अध्यवसायावलम्बनेन मनस्वी मुहुर्मुहुरपत्रपा नाख्ये स्वामीप्सितमाश्रयन्ते ।

भारतीयेतिहासेऽवलोक्यते चेत् सम्यगविचार्यकारित्वादेव विविधा विपदो वीक्ष्यन्ते । दाशरथी रामः सुवर्णमृगं प्रेक्ष्याविचार्यकारित्वादेव तमन्वधावत् । फलं च तस्य जानकीहरणरूपेण परिणेमे । सुरक्षणमविमृश्यैव रावणोऽपि सीताहरणे प्रवृत्तो निधन-मवाप सबान्धवः । अविवेकमाश्रित्यैव दुर्योधनोऽपि सूच्यग्रमात्रभूमिदानेऽपि कार्पण्यं भेजे । तदिप्रायत्नेन महाभारतसमरे कौरवाः सपरिजनाः सेनानुगाः क्षयमवापुर्नि-धनं दिवसैरचिरैः । अतो विचार्यैव कृतिरनुष्ठेया, अतिरभसत्वं च विमृश्यकरणेन परिहरणीयम् ।

१८ ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।

(किरात० २-२०)

तुषितमुखेषकृतमर्यादे महाकविभारवेः कृतौ किरातार्जुनीये । वर्णितमर्जुनस्य तेजस्वितया मानिताभावश्च महत्त्वम् । प्रभाविकर्माभिमानमर्हं नोऽमृत पृष्ठं विकसितम्, यं भस्मनां पुञ्जं स्पृशति जनः प्रमत्तताभ्रमेणापि । कोऽत्र भेदः ? ज्वलितमग्निपुञ्जं सतेजस्कम् समन्वितश्च प्रभवति दग्धुं निर्भीकं कमपि स्वम् । तदन्ये भस्मपुञ्जं स्पृष्टोऽपि न भयावहस्य । न स्पृशन्ति पृष्ठेऽपि सम्पर्कमात्रात् दहनस्य भयात् तेजस्वतः । भस्मानि तु निस्तेजांसि । नानुभवन्ति दाहं मन्दत्वमापन्नम् । अतएव सर्वे स्वयम् । एवमेव मानिनामपि शत्रवोऽनुगच्छन्ति, न तु स्पृशन्ति । अत निगद्यते भारविना—'ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः' । अर्जुनस्य-भावस्तेजः पुनमुखान्ति न नाम मानिन (किरात० --) ।

किं नाम जीवनम् ? किं नाम पुरुषत्वम् ? के गुणाश्च ये जीवनं सार्थकं सम्पादयन्ति, पुरुषे पौरुषमावहन्ति ? तथैव जीवनं यत्र स्वत्वं गौरवं च, पुरुषत्वं पुरुषत्वं यान्ति स्थिरीभवन्ति । तदेव पुरुषत्वं यत्र यशः स्वाभिमानित्वं पौरुषं च प्रकाशन्ते समन्ते । तेजस्विनां मानिनां गुणानां अभिव्यक्तये गुणाः सर्वे नामेव जीवनानि स्पृशन्ति, पुरुषे पौरुषमभिपुष्यन्ति च । भारविमतेऽपि पुरुषत्वं मन्यमानित्वमेव प्रधानं पुरुषस्य स्वत्वम्, मानविहीनो न नरः । 'पुरुषत्वमपैत्यस्मै यावन्मानान्न हीयते' (कि० ११-६१)। विमानितं येन्यार्थं स तृणवल्लघुः निरर्थकं च तस्य जन्म । 'अभिमानवता मानहीनस्य तृणस्य न तथा गतिः' (कि० ११-६१) ।

मानस्तेजसोऽभिन्नः, भस्मवत्स्पृष्टाम ? मानविस्मरणमित्यभयमभिव्यापति तत्र इति । 'भिया तेजसि मानिता' (कि० १५-२१) । तेजस्वितागुणमेवाश्रयन्ते मानिता मस्तके प्रसरते च । तत्र तेजस्विता तेजसा यशः श्रीषु गणयन्ते । तेजस्विना हि निराकर्तुं दुर्भिक्षयमपि । ते दुर्लभमपि सुलभं दुर्गममपि सुगमं दुष्करमपि सुकरं तु गहनमपि सुगमं सम्पादयन्ति । न तेषां कश्चित् विकल्पः । अतः एव यत्र तत्र तदुपरान्तं विजयमगमन् । अत एव कालिदासः—'तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते' (रघु० ११-१) । यस्य तेजसा परीक्ष्यते परिक्षीयते तत्र मानिता । मानपरिक्षये च सर्वे गुणा अपि तत्र क्षयमेवाभयन्ते । निस्तेजे तु पौरुषे भासितोऽपि तथाभवन्ति । तदाह—'तेजोविहीनं विजहाति दर्पः शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः' (कि० १७-१६) । निस्तेजाः सर्वैरेवावमन्यते परिभूयते तिरस्क्रियते धृष्यते च । तस्य निस्तेजस्त्वमवमाननमावहति । अतो निर्गदितं माघेन—'मृदुः परिभूयते' (शिशुपाल० २-१८) । उक्तं च मृच्छकटिके शूद्रकेण—'निस्तेजाः परिभूयते' (१-१४) । तेजसा तमसोव कम्पते स्वामिमानस्य तापीयसी भावना । तेजस्विनो न प्रथमसमेयुन्ते न च परवाक्यमेव सहीयन्ते । ते स्वतेजसा जगद् व्याप्नुवन्ति । तद्उच्यते—'अवयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः' (शिशुपाल० २-१८) ।

महाकविना माघेनापि तेजस्वितया मानितायाश्च [illegible] तत् मानिनोऽनमन्तून् उपस्थितमूल्येन दाहिं भवन्ते, यथा कालिदासः

कुरुते योऽर्हति । 'समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः' । प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः । (शिशु० २.३३) । परापमानं यः सहते न स पुंस्त्वमाप्नोति । तादृशस्य तस्याजननिरेव श्रेयसी । स केवलं मातुः क्लेशकारी । 'मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति' । (शि० २.४५) । पादाहतं रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति । योऽपमानेऽपि गतत्रपः स रजसोऽपि हीनः । 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः ।' (शि० २.४६) । तिग्मता प्रतापाय म्रदिमा परिभवाय चेति स्फुटं समीक्ष्यते । राहुस्तं ग्रसते चन्द्रं भानुं च चिरेण । 'तुल्येऽपराधे' 'तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्' (शि० २.४९) ।

मनस्विना काठिन्यलेशेनापि तेजस्वितायां महिमोपलभ्यतेऽभिधीयते च । शान्ताः शान्तिसमन्विता अपि तेजोमयाः । सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् ज्वलन्ति तेजः । न ते सहन्तेऽभिभवं जातु । 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।' (शाकु० २.७) । अस्याभिभवे प्रज्वलति जातवेदाः सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वगुणं रूपं धारयन्ति । 'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते । प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।' (शा० ६.३१) ।

सन्तः सदैव श्रेयस्करमाचरन्ते यशो धनम् । विनश्वरे जगति यश एवैकं स्थास्नु । यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधवः । यश एव परमं धनं मन्यते मानिनः । उच्यते च—'यशोधनानां हि यशो गरीयः' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' । धीरतादि साहसान् मानिनो यशस्विनश्च । मानिनो गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषन्ति । तथोक्तं भारविना—'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः । अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ।' (कि० २.१९) । अवधेयमिदं चैतत् । ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतया गणयन्ति न ते स्वाभिमानमुज्झन्ति नियतम् । विपन्नावस्थायां मानमाश्रयन्ते । मनस्विनः कष्टस्यैकमावरणं मृत्युरूपम् । तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (कि० १४.११) ।

तेजोऽवाप्तये सम्यक्छ्रमावश्यकता गुणार्जनस्य । नान्तरेण गुणसंग्रहं मानिता तेजस्विता वा सम्भवति । गुणार्जनं मूलं मानितायास्तेजस्वितायाश्च । गुणैरेवाप्यते यशो महिमा च । गुणैरेव गौरवावाप्तिः पदप्राप्तिश्च । उक्तं च भारविना—'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (कि० १२.१) । गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते । 'गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्' । भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वयः आदीनाम् । 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' (उत्तर० ४.११) । गुणैरेव स्थायिनी कीर्तिः क्षणभङ्गुरं शरीरं तु नश्वरम् । यशःशिष्टा ये एव तिष्ठन्ति साधूनां सच्चरितानि । तदुच्यते—'शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ।' (हितोपदेशः १.४९) ।

तेजस्विन एव नाम्नाभिनन्द्यन्ते रिपवोऽपि । त एव सत्यं पुरुषपदाभिधेयाः । 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किरात० ११.७३) । क्षणमपि तेजःप्रदीप्तं जीवितं श्रेयो न च चिरं धूमायमानम् । तेजस्विनैव सत्यं जीवितस्य । अत एव साधूच्यते—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्' ।

१९. आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् । (वेणी० ५.२३)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विविधं सुखिनं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादेया चेत् किमिति किंचित् लभ्यते साम्प्रतमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुखमय विपन्नं दुःखमयं वा भवति ? आशाया नामग्राहेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः । ते क्रमशोऽत्र विविच्यन्ते । तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते समुचितम् । प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा ? या समन्तात् अश्नुते व्याप्नोति मानवानां चेतांसीत्याशा । आङ्पूर्वकादशूधातोरच्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते ।

वेदेष्वप्यस्ति सर्वव्यापकस्य प्रभावः । भूयो भूयो दृश्यन्ते मानव-मात्रस्याशाया समुन्नत्यै अभ्युदयै प्रगत्यै च । उच्यते च—(क) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु० १ २०), (ख) अग्ने नय सुपथा राये० (यजु० ४०.१६) (ग) कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋ० १.३६.१४) । (घ) अदीनाः स्याम शरदः शतम् (यजु० ३६.२४) । (ङ) भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् (यजु० ३०.१७) । (च) उत्क्रामत महते सौभगाय (अथर्व० १.१९.२) । (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम् (यजु० १२.१६) । (ज) भद्रा नमन्तो अरिष्टमवताः (ऋ० १.१९८.१) । आशैव जीवने भुवि स्फूर्तिं धत्ते चायत्यां । तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा ।

आशा नामेयं मानवजीवनस्यात्यन्तापेक्षितम् । मानवजीवने यः संचारः प्रगति-रभिवृद्धिरत्युन्नतिश्च दृश्यते तस्य मूलमेवाशायाः संचार एव जीवनेऽनवरतम् । यदि नाम न स्यादाशा जीवने तर्हि क्षणेन न स्याज्जीवने प्रगतिशीलत्वमुत्साहसमारम्भमभ्युदयश्च । आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिप्रदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः । सैव मुमूर्षोरपि जीवनाशां सञ्चारयति । सैव धीरे वीराभिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं त्यक्ते उद्यमं च प्रसारयति । सैव दीने हीने खिन्ने विपन्ने विपन्नेऽपि च धैर्यमावहति दुःसह दुःखजनकमपि शक्तिमादधातीति चेतसि । नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि सैवाऽऽलिम्पमाना जीवनपथिकस्य मार्गमालोकयति ज्योतिः । न ज्योतिरेतस्य यत्नेन समागच्छति । आगतवत्योऽपि निराशाः स्युरस्य साधकस्य । ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुहुर्मुहुः साध्यसिद्धये, साधकं साधनासिद्धये, कामिनं कामसंसाधनाय, क्षुधितं क्षुधाशमनाय, पिपासितं पिपासाशमनाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, वीरं धैर्याय च । अतएवाशा करोति सुखिनं सर्वलोकम् ।

आशा नामेयं निराशामाश्रयतां जीवनेऽस्मिन् । उपादेया चैषा उन्नतिमभीप्सद्भिः सुधीभिः । अस्ति चेदेतस्याः धैर्यस्याऽऽश्रितत्वं तर्हि मूलमियमाशैव । विपन्ने विपन्ने च मानवो धैर्यमादध्यात् । यदि विपत्कालचक्रे, उदयतो सुखम्, निशाकाले निपतनम्, निशानन्तरं उषा उदयोऽभिमार्गः, एवं विपदां पश्चादपि सुखम्, कालः समस्तं समुपस्थितं भवति सुनिश्चितमेतदिति विचार्य विचार्य धीरैर्धैर्यं धारयति ।

उपायस्य चेयिदं सामान्यलक्षणमपि साध्यं साधूनाम्। परहितनिरता हि साधवः पीड्यन्ते पापिष्ठैः पुरुषैः। अज्ञानसंभारसंक्षीणप्रज्ञा असाधवो न चिन्तयन्ति चारित्र्यं चरितानि। अवगते चाज्ञानमले त एव साधूनां सच्चरितानि चिन्तयन्ति, प्रशंसन्ति च तेषां परहितनिरतत्वम्। कुन्ती आशयैव साधवोऽसाधून् विजयन्ते। प्रोषिते हि भर्तरि वियोगदुःखविधुरा भार्या न कामयते आशु मरणम्। आशयैव धार्यते तासां जीवनम्। सैव सहयति गुर्वपि विरहदुःखम्। अत आह कालिदासः—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा० ४।१६)। अतिमृदुलं हि मानसं भवति मनस्विनीनाम्। आशाबन्ध-मन्तरेण न शक्यं ताभिर्वियोगदुःखं सोढुम्। अत उच्यते—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि। (मेघ० पूर्व० ९)।

आशाश्रयेणैव वीतरागभयक्रोधाः संसारपाशच्छेदेच्छया वनस्थाः मुनयश्च मुमुक्षवस्तीव्रं तपस्तप्यन्ते। आशामाश्रित्यैवान्तेवासिनो महत्कष्टमनुभूय परीक्षोदधिमुत्तीर्य जीवने साफल्यं लभन्ते। महाभारतयुद्धे गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च देवभूमिं गते आशा-माश्रित्यैव शल्यं सेनापत्येऽभ्यषेचयन् कौरवाः। अत एवोच्यते—'गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते। आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्'। देवासुरयोः समागमो-ऽप्याशाश्रयणेनैव संभवति। भारतवर्षे विविधाः पञ्चवर्षीया योजना देशाभ्युदयमाशयैव प्रवर्त्यन्ते। अवगम्यत एवमाशाया महत्त्वम्।

इदं चावधेयम्। उक्तं केनापि—अति सर्वत्र वर्जयेत्। यद्यतीवैषा तृष्णारूपेण परिणमते चेद् भवत्येव विपदां निदानम्। नहि शाम्यति तृष्णा, तदुपकरणानि तु शाम्यन्ति। तामसेच्छा क्षेमकरी सुखशान्तिसाधनं च भावयितुं नोत्सहते स्थिरां मर्यादाम्। मर्यादातिक्रमे तु जन एव दुःखसमुद्रे मज्जते इत्यत्र न कस्यापि विरोधितो विप्रतिपत्तिः। तृष्णैवेति कृतैव क्रियते कोऽपि दैवात्पापारम्भक्रिया, सन्तोषस्य च तिरस्क्रिया। उच्यते च—'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'। न स्यात्सा-शाया पराधीनः, अपि त्वाशामेव पराधीनां विदधीत। आशा चेद् वशगा तर्हि सर्वोऽपि लोको वशगो भवेत्। अत उच्यते—'आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य। आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः'। आशावशगस्य न भवति मोक्षः स्थविरस्यापि। अत एवोच्यते—'अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्'। 'कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशा-वायुः'। तदेव सिध्यत्येव यद् तृष्णाविलीनं नाशमेत्याशाम्। आशां वशगां विधाय तामाश्रित्य [illegible]

२० स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

शिक्षा नाम लोके शुभाशुभप्रबोधिनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी वस्तुतत्त्वावबोधिकाऽज्ञाननिवारिणी सदाचारनिर्माणविधिनी दुर्भावविरोधिनी आत्मोत्कर्षविधायिनी प्रज्ञावर्धिनी, धियः परिष्कर्त्री, संयमस्य साधयित्री, यमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शीलस्य शीलयित्री सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृत्तेः प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्तेः रोधयित्री, समग्रसुखनिधाना शास्त्रैः स्तुता, पौरुषस्य पावनी कापि प्रदर्शिनी धात्रीव निखिलेऽपि भुवने । तथाभिरेवैता भुवि शिक्षितैः विचारितं वेदितं समाचरितं आचरितं च विकीर्यन्ति, लोकस्य दुःखदारिद्र्याणि संहरन्ति, दीनानुपकुर्वन्ति, अज्ञानान्धकारं निवारयन्ति दुर्भावान् निवारयन्ति, सत्कर्म विकिरन्ति, दुष्कर्म निरुन्धन्ति आत्मानं सुखयन्ते च । यथेयं नराणां हितसाधिनी सुखदायिनी च, तथैव स्त्रीणामपि हितेऽनिवार्या सुखदास्ति साधिका सद्गुणविभूषा च । यथा च मानवेषु शिक्षा पुरुषैरनुसृतासीत् शुभस्य सुखस्य च, तथैव स्त्रीणां कृतेऽपि समधिगन्तव्यम् । नरश्च नारी च द्वावेतौ गृहस्थरथस्य चक्रद्वयम् । यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवति, एवं धर्मार्थसाधिनी शिक्षामन्तरेण न गृहस्थरथस्य गतिः सुकरा । यदि विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेद् अशिक्षितापरोत्पा, न दाम्पत्यं सुखावहम् । इत्येव सुयोग्येन ज्ञानेन शिक्षया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमयमतीव सम्पद्यते । यथा नरेण ज्ञानमन्तरा सद्गुणविहीनत्वं, तथैव स्त्रियाऽपि । एतदर्थं पुरुषाणामिव स्त्रीशिक्षाऽप्यनिवार्या ऽऽवश्यकी च ।

यदि विचारदृष्ट्या विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः । किन्तु एषैव मानवानां प्रत्यक्षभूता । निसर्गविवेकाद् यथाशुचरणादिकं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च गृहस्य संचालनस्य संरक्षणस्य च, गृहस्थजीवनस्य सुखस्य सन्तोषस्य, परिवारसुखे कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्र्वोः शुश्रूषायाः परिचर्यायाः, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च शिशोः सत्संस्कारप्रदानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तुः सह योगस्य सहयोगप्रदानस्य च अभ्यागतजनानां लोकातिथ्यसम्पादनस्य च । समासतश्च वैदुष्यं न संभाव्यते स्त्रीभिः स्त्रीशिक्षाविरहितत्वपरिपालनाम् । वैदुष्यमभाव च न केवलं विविधशास्त्रपरिशीलनमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तेषां कृतेऽनिवार्यम् । विविधकलाकौशलप्राप्त्यैव पार्यते दाम्पत्यजीवनं मधुरं सुखावहमानन्दरसाप्लावितं च सम्पादयितुम् । विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानवजीवनसमारम्भेऽपि नितरामावश्यकी । ज्ञानविज्ञानप्रज्ञाधिगमार्थं चेद् स्त्रियोऽपि सचेष्टाः न केवलं तासामेव जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भविष्यति अपि तु समाजस्य पारिवारिकं हितं च संभाव्यते तैः सम्पादयितुम् ।

स्वीक्रियते चेत् स्त्रीशिक्षाया आवश्यकता तर्हि बहवोऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते । तद्यथा—किं स्यात् स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम् ? कीदृशी शिक्षा तासां हितकरी भवितुमर्हति ? कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षा श्रेयस्करी न वेति ? विषयेऽस्मिन् नैकमत्यं मतिमताम् । कुमारीणां शिक्षा कुमाराणां शिक्षावदेव स्यात् । तत्र नास्ति कश्चन प्रतिबन्धः । जीवनसंग्रामे साम्यमूला स्यात् तासु व्यवहृतिरित्येके मन्यन्ते । अन्ये तु नरनार्योर्नैसर्गिको भेदोऽस्तीत्येवम्, तेषां कार्यक्षेत्रमसमम्, तेषां व्यवहारक्षेत्रं विपरीतम्, तेषां प्रवृत्तिमेव इत्यस्मात् शिक्षायामपि वैविध्यं हितकरमाकलयन्ति । उचितं चैतत् प्रतिभाति । नार्यो हि मातृपदस्य प्रतीकभूता इत्युक्तपूर्वम् । तासां कृते सैव शिक्षा श्रेयो वितनितुं प्रभवति या मातृत्वाभिमुखभूतान् गुणान् जनयेत् । तासु शीलं सौकुमार्यं लज्जां स्नेहं वात्सल्यं सन्तानेषु ममत्वमित्यादीन् गुणान् कर्तव्यनिष्ठत्वमात्मविश्वासं चोत्पादयेत् । गुणानामेतेषामभावश्चेत् तासु, तर्हि सकलकलाशिक्षाज्ञानमपि तासां निष्प्रयोजनम् । अतस्तादृशी शिक्षा हितकरी या सन्तानपालनप्रधानपूर्वकं तासु पाककलागृहकार्यादिकर्मनिष्ठतां सद्गृहिणीत्वबुद्धिमुत्पादयेत् । "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इत्यत्र न स्फुरति युक्तिः सम्यक् । वेदाध्ययनाधिकारविहीनानां केवलमुक्तिरिति तेषां मतम् ।

कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षा विषये वैमत्यमधुनाऽपि लक्ष्यते विदुषाम् । शैशवे सहशिक्षा सम्भवति । न तत्र व्यावहारिकी विषमता । यौवनेऽपि सहशिक्षा श्रेयस्करीति न वक्तुं सुकरम् । व्यवहारतया दृश्यते यत् समापतति यत् यौवने सहशिक्षा न तथा हितसाधनी यथाऽहितसाधनी । अतो यावत्कालं तावत् यौवने पृथक् शिक्षैव प्रशस्ता ।

सुशिक्षितैव स्त्री सद्गृहिणी सती साध्वी सत्कर्मपरायणा शुद्धचरित्रसम्पन्ना च भवितुमर्हति । सैव सद्गुणादिसद्गुणगणान्वितां सन्ततिं विधातुमीष्टे । स्त्रिय एव मातृभूताः सद्वंशं राष्ट्रं च निर्मातुं प्रभवन्ति । आदिकालादारभ्य मानवो न तथाऽन्येषु सत्संस्कारापादने प्रभवति, यथा मातरः । अत मातृपदं शास्त्रेषु महद् गौरवमनुभवते । उक्तं च मनुना—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' । अन्यत्र चोच्यते—'मातृदेवो भव', 'सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते' । गृहाधिष्ठातृदेवतात्वात् सा गृहिणी, गृहस्वामिनी गृहलक्ष्मीरित्यादिशब्दैः संस्तूयते । तत्स्वरूपैव गृहं गृहमित्युच्यते । उच्यते च—'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते' । ऋग्वेदेऽपि 'जायेदस्तम्' गृहिण्येव गृहमिति प्रतिपाद्यते । एवं मातरः स्त्रियश्च सर्वत्रैव समादरमर्हन्ति । देशस्य समाजस्य च समुन्नत्यै स्त्रीशिक्षा नितरामावश्यकीत्यवगन्तव्यम् ।

(९) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह

(१) चले चलो चले चलो (ऐतरेय ब्राह्मण, अ० ३३, खंड ३)

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को इन्द्र ने उपदेश दिया कि—(क) हे रोहित, हमने सुना है कि कठोर परिश्रम करने के बिना ऐश्वर्य नहीं मिलता। परावलम्बी मनुष्य पापी होता है। परमात्मा परिश्रमी का साथी होता है अतः चले चलो। (ख) बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है, उठे हुए का उठता है, सोते हुए का सोता है और चलते हुए का चलता है अतः चले चलो। (ग) सोता हुआ कलियुग होता है, अंगड़ाई लेता हुआ द्वापर होता है, उठता हुआ त्रेता होता है और चलता हुआ सतयुग होता है अतः चले चलो। (घ) चलता हुआ मधु पाता है, चलता हुआ स्वादिष्ट फलों को पाता है। सूर्य की श्रेष्ठता को देखो जो चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता, अतः चले चलो।

(२) अभिमान से पतन (शतपथ ब्राह्मण कांड ५, प्र० १, ब्रा० १)

देवता और असुर दोनों प्रजापति के पुत्र हैं। दोनों में स्पर्धा हुई। तब असुरों ने दुरभिमान से सोचा कि हम किसमें हवन करें? उन्होंने स्वार्थ-बुद्धि से अपने ही मुँह में आहुति दी और अपनी ही उदरपूर्ति करते हुए विचरण करने लगे। वे दुरभिमान के कारण ही पराजित हुए। अतएव दुरभिमान न करें। दुरभिमान पतन का कारण है। देवों ने स्वार्थ-बुद्धि को छोड़कर एक दूसरे के मुँह में आहुति दी और परोपकार करते हुए विचरण करने लगे। प्रजापति ने अपने आपको उन्हें समर्पित किया। उनको यज्ञ दिया। यज्ञ देवों का अन्न है।

संकेत—(१) (क) नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति। (ख) आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः। (ग) कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्। (घ) चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। (२) देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। कस्मिन्नु वयं जुहुयामेति। स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुः। तेऽतिमानेनैव पराबभूवुः। तस्मान्नातिमन्येत। पराभवस्य हैतन्मुखं यदभिमानः। अन्योन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुः। तेभ्यः प्रजापतिरात्मानं प्रददौ। यज्ञो हैषामास। यज्ञो हि देवानामन्नम्।

(३) याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद (बृहदारण्यक उप. अ. ४ ब्रा. ५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी सामान्य स्त्री-बुद्धिवाली। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा—यदि यह सारी पृथिवी धन से पूर्ण हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं, नहीं। जैसा अन्य सांसारिक लोगों का जीवन है, वैसा ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर क्या करूँगी। जिससे अमरत्व प्राप्त हो, वह बात मुझे बताइए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण क्षत्रिय, जनता, देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये प्रत्येक वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, अपितु अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। अतः आत्मा को देखो, सुनो, मनन और चिन्तन करो। आत्मा के देखने सुनने मनन और जानने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

(४) सत्य को जानो और अपनाओ (छान्दोग्य उप. अध्याय ७)

सत्य को जानना चाहिए। मनुष्य जब वस्तु-स्वरूप को जानता है तभी सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, जानते हुए ही सत्य बोलता है, अतः ज्ञान और विज्ञान को जानना चाहिए। मनुष्य जब मनन करता है तभी जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता, मनन करने से जानता है अतः मनन करना चाहिए। मनुष्य को जब किसी वस्तु पर श्रद्धा होती है तभी मनन करता है। बिना श्रद्धा के मनन नहीं करता, श्रद्धा होने पर मनन करता है, अतः श्रद्धा को जानना चाहिए। मनुष्य में जब निष्ठा होती है तभी किसी वस्तु पर श्रद्धा करता है। बिना निष्ठा के श्रद्धा नहीं होती। मनुष्य जब कर्म करता है, तभी किसी काम में उसकी निष्ठा होती है। बिना कर्म किए निष्ठा नहीं होती। मनुष्य को जब किसी कार्य से सुख मिलता है, तभी वह उस काम को करता है। दुःख मिलने पर उस कार्य को नहीं करता। अतः जानना चाहिए कि सुख क्या है? जो महान् है वह सुख है थोड़े में सुख नहीं होता। ब्रह्म महान् है, वह सुखरूप है उसे जानो।

संकेत—(३) प्रव्रजिष्यन् अस्मि। स्यां न्वहं तेनामृता। अमृतत्वस्य तु नाशा-स्ति वित्तेन। कामाय। आत्मनस्तु कामाय। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्। (४) सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्। यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्। यदा वै मनुतेऽथ विजानाति, नामत्वा। यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते, नाश्रद्दधन्, श्रद्दधत्। यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति। नानिस्तिष्ठन्। नाकृत्वा निस्तिष्ठति। नासुखं लब्ध्वा करोति। यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

(५) जगत्कर्ता ब्रह्म (ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य २ १ २४)

चेतन ब्रह्म एक और अद्वितीय जगत् का कारण है, यह आपका कथन ठीक नहीं है क्योंकि संसार में सर्वत्र साधन-समूह के संग्रह से कार्य की सत्ता दृष्टिगोचर होती है। घट पट आदि के बनानेवाले कुम्हार आदि मिट्टी चाक, डंडा, धागा आदि अनेक सामग्री को लेकर घटादि को बनाते हैं। ब्रह्म असहाय है, अतः वह अन्य साधनों के अभाव में कैसे संसारको बना सकता है? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। आपकी पूर्वोक्त युक्ति युक्तियुक्त नहीं है। द्रव्य के विशिष्ट स्वभाव के कारण ऐसा हो सकता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत होता है और जल बर्फ के रूप में। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने में सहायकमात्र होते हैं। दूध से ही दही बनेगी, जल से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे ज्ञात होता है कि वस्तु-विशेष से ही वस्तु-विशेष बनती है। अन्य वस्तुएँ उसमें सहायकमात्र होती हैं। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पूर्ण है, अतः विविध शक्तियों के योग से एक ब्रह्म से ही विविध परिणाम-युक्त यह जगत् उत्पन्न होता है।

(६) सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के संस्थापक कपिल मुनि माने जाते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट जगत्), अव्यक्त (मूल प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) के ज्ञान से सांसारिक दुःखों की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। इस संसार में प्रकृति और पुरुष ये दोनों स्वतन्त्र और अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्त्व रजस् और तमस्। इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इस त्रिगुण की साम्यावस्था में अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से ११ इन्द्रियाँ अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन तथा ५ तन्मात्राएँ (शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्ध) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। कार्य के विषय में इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण में सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं। कारण कार्य के रूप में प्रकट होता है। कारण का कार्यरूप में तात्त्विक विकार होता है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद कहते हैं।

संकेत—(५) इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, कस्मादुपसंहारदर्शनात्। चक्रम्। साधनान्तरानुपसंग्रहे। द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। दधिरूपेण परिणमते हिमरूपेण। योगात्। (६) व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सत्त्वादयो वर्तते। सत्त्वं रजस्तम इति पंच तन्मात्राः।

(७) महाभाष्य-नवनीत (महाभाष्य, नवाह्निक आ० १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादिविशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं। (ख) रक्षा ऊह (तर्क) आगम लघुता और असन्देह ये व्याकरण-अध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद के मन्त्रों में यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढ़ना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से धर्म-स्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अल्पतम लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थज्ञान में सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यासकाल के द्वारा स्वाध्याय काल के द्वारा प्रवचनकाल के द्वारा और व्यवहारकाल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे ज्ञात होता है? संसार में ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाड़कर घड़े आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाड़कर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है क्योंकि वस्तु की कोई न कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक गुणवाचक क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित (वाक्यपदीय काण्ड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के पृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग वियोग साहचर्य विरोध प्रयोजन, प्रकरण चिह्न-विशेष अन्य शब्दों का सांनिध्य सामर्थ्य औचित्य देश काल लिंग-विशेष स्वर आदि।

संकेत— (७) (ख) रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। आगमः खल्वपि ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्यं हि नित्यम् आकृतिरनित्या। कथं ज्ञायते? पिण्डः। उपमृद्य। क्रियन्ते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्देन। अथवा नित्याऽऽकृतिः। (ङ) चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाः। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः। सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(९) पम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारों ओर कमल खिले हैं और अनेकों वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से झुकी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त है और वृक्ष फूलों की वर्षा इसी प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर लगे हुए अनेकों वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीडा सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई सी मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेकों रसों का आस्वादन करके आनन्दित सी घूम रही है। भौंरे फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलों में ही लीन हैं। भौंरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक दूसरे को बुलाते हुए से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का पुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा वेद-ज्ञाता अस्त्रविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र-प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणों ने एक दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशंसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरी हंस देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयंवर में पहुँचे। इन्द्र अग्नि वरुण और यम भी स्वयंवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रस्ताव किया कि दमयन्ती उनमें से एक को चुन ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयंवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसकी हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेतः—(९) वैदूर्यविमलोदका। उपेता। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमानैः, पादपस्थैः। मरुत्प्रमित्र, गायतीव। उत्पन्नम् प्रकाशन्ते। पादपात् पादपं, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) वारणसम्भवम्। वृणुयात्।

(११) आचार शिक्षा (चरकसंहिता)

जो अपना हित चाहता है, वह सदाचार का पालन करे। इससे दो लाभ होते हैं—आरोग्य और जितेन्द्रियता। देवता, ब्राह्मण, गुरुओं, वृद्धों और आचार्य की पूजा करे। सुन्दर वेश रक्खे। बालों को ठीक सँवारे। प्रसन्नमुख रहे, समय पर हितकर स्वल्प और मधुर बात करे। इन्द्रियों को वश में रक्खे, धर्मात्मा निर्भीक आस्तिक बुद्धिमान् उत्साही और क्षमाशील हो। असत्य न बोले। पर धन को न ले। झगड़ा पसन्द न करे, पाप न करे। दूसरे के दोषों को न कहे। दूसरों की गुप्त बात न बतावे। अधार्मिकों के साथ न बैठे। बहुत जोर से न हँसे। नाक न खोदे। दाँत न कटकटावे। भूमि न कुरेदे, तिनका न तोड़े। न अधिक जागे, न अधिक सोवे और न अधिक खावे पीए। श्रेष्ठ लोगों से विरोध न करे। रात में दही न खावे। स्त्रियों का अपमान न करे। सज्जनों और गुरुओं की निन्दा न करे। अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़े। अपने समय को नष्ट न करे। अपने नियम को न तोड़े। लोभी और मूर्खों से मित्रता न करे। गुप्त बात प्रकट न करे। किसी का अपमान न करे। अभिमान न करे। समय को हाथ से न जाने दे। शोक के वश में न हो। धैर्य और पराक्रम को न छोड़े।

(१२) कालमृत्यु और अकालमृत्यु (चरकसंहिता)

कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है? भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि—जैसे रथ की धुरी अपनी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी चलते-चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः धीरे-धीरे उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही धुरी बहुत बोझ लदने से, ऊँचे नीचे मार्गों पर चलने से, पहिए के टूटने से, कील निकल जाने से, तेल न देने से बीच में ही टूट जाती है, उसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से, उचित रूपसे भोजन न करने से, हानिकारक भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, कुसंगति से, विषादि के खाने से और अनशन आदि से बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है। इसको अकालमृत्यु कहते हैं। इसी प्रकार रोगों की ठीक चिकित्सा न होने से भी अकालमृत्यु होती है।

संकेत—(११) आत्महितं चिकीर्षता सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। प्रसाधितवेषः स्यात्। काले हितमितमधुरार्थवादी स्यात्। न वैरं रोचयेत्। नान्यरहस्यमागमयेत्। कुष्णीयात् विघट्टयेत्, विलिखेत्, छिन्द्यात्। न विरुध्येत। न स्त्रियमवजानीत। न परिवदेत्, न गुह्यं विवृणुयात्। न कालमकालमतिपातयेत्। [illegible]। (१२) अक्षः, यथाकालम्, स्वशक्तिक्षयात्। अतिभाराधिष्ठितत्वात्, विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, तैलादानात् अन्तरा व्यसनमापद्यते। अयथाबलमारम्भात्। मिथ्योपचारात्।

(१३) सन्ध्यावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

इसके बाद सूर्य अस्ताभिमुख हुआ। वह अस्ताचलरूपी कल्पवृक्ष के फूल के गुच्छे के समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सिन्दूर-पंक्ति से शोभित ऐरावत के गण्डस्थल की शोभा धारण किए हुए था। वह आकाशरूपी लक्ष्मी के विकसित पुष्पस्तबक के तुल्य, आकाशरूपी अशोक वृक्ष के गुच्छे के तुल्य और पश्चिम दिशारूपी अंगना के स्वर्ण-दर्पण के तुल्य प्रतीत होता था। इस प्रकार विद्रुमलता-तुल्य आकृति-युक्त भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में मग्न हो गए। वृक्षों की चोटियों पर चिड़ियाँ शब्द करने लगीं, पक्षी अपने घोंसलों की ओर जाने लगे, पाकशालाओं में अगर की धूप बत्तियाँ जलने लगीं, धाएँ लोरियाँ गाकर और थपथपाकर बच्चों को सुलाने लगीं, तपस्विवृन्द सन्ध्या-वन्दन करने लगे, कपि-वृन्द उद्यान-वृक्षों पर आश्रय लेने लगे, जीर्ण वृक्षों के कोटरों से उल्लू निकलने लगे, अन्धकार को भगाने के लिए दीपशिखाएँ चमकने लगीं। उस समय पश्चिम समुद्र की विद्रुम-लता के तुल्य, आकाशरूपी सरोवर की रक्त-कमलिनी के तुल्य, कामदेव के रथ की स्वर्णपताका के तुल्य, आकाशरूपी महल की लाल पताका के तुल्य, पीले तारों से युक्त सन्ध्या दिखाई पड़ी।

(१४) वर्षावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई, उस समय आकाशरूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्न-जटित नौका की तरह, आकाशरूपी महल के मुक्ताहार की रत्न-माला के तुल्य, आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर लता के तुल्य, कामदेव की रत्न-जटित धनुर्यष्टि के तुल्य इन्द्रधनुषरूपी लता शोभित हुई। क्यारीरूपी थालों में उछलते हुए पीले हरे मेंढकरूपी मोहरों से मानों वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतरंज खेल रहा था। बादलरूपी धुनकी पर बिजलीरूपी छड़ी के चलने से गिरते हुए रुई के तुल्य बकें शोभित हो रही थीं। दिग्वधुओं के टूटे हुए हार के मोतियों के तुल्य ओले शोभित हो रहे थे।

संकेत—(१३) अस्तगिरिमन्दारस्तबकसुन्दरः, बिभ्राणः, नभःश्रियः, गगनाशोकस्य पुष्पगुच्छ इव, दिनमणिरपराम्बुधिपयसि ममज्ज, कलविङ्ककुलकलकलाकुलितशिखरेषु शिखरिषु, ध्वांक्षेषु, अगुरुधूपपरिमलोद्गारेषु, आलोलिकाभिरविरलकरताडनैः शिशु- स्वाप्यमाने शिशुजने, निर्जिगमिषति, स्फुरन्तीषु, गगनहर्म्यस्य, कपिलतारका। (१४) कनकरत्ननौकेव नभःशोभासरोवरस्य कामिनीव, रत्नमयी, इन्द्रधनुर्लता केदारिकाकोटिकासु समुत्प्लवमानैः पीतहरितैर्दर्दुरैर्मेचकैरिव विद्युता समं मनकाद्यः। जलदपटलमपि तडिल्लताकशाप्रहारपातितैः, तूलनिकरा इव, बलाकाः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव करकाः।

(१५) धर्म त्रिवर्ग का सार (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उ० २)

धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म काम और अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह धर्म ही मोक्ष-सुख की उत्पत्ति का मूल कारण है और चित्त की एकाग्रतामात्र से यह सिद्ध हो जाता है। धर्म अर्थ और काम की तरह बाह्य साधनों के अधीन नहीं रहता। तत्त्वज्ञान से उत्कर्ष को प्राप्त धर्म किसी भी प्रकार से अनुष्ठित अर्थ और काम से बाधित नहीं होता। यदि अर्थ और काम से बाधित भी हो जाए तो थोड़े से प्रयत्न से ठीक होकर उस दोष को नष्ट करके महान् कल्याण का साधन बन जाता है। धर्म से पवित्र मन में रजोगुण का समावेश उसी प्रकार नहीं होता जैसे आकाश में धूल नहीं रुकती। अतः मेरा विश्वास है कि अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं पहुँच सकते।

(१६) राजनीति के मूल-तत्त्व (दशकुमार० उत्तर० उच्छ्वास ८)

राज्य तीन शक्तियों के अधीन होता है। वे तीन शक्तियाँ हैं—मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। ये तीनों परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होकर कार्य-साधन करती हैं। मन्त्र से कर्तव्य-कर्म का ज्ञान होता है। प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति से कार्य में प्रवृत्ति होती है और उत्साह-शक्ति से कार्यसिद्धि होती है। सहाय, साधन, उपाय, देश-काल का विभाग और विपत्ति का प्रतीकार ये पाँच अंग कहे जाते हैं। ये ही पाँच अंग नीतिरूपी वृक्ष के मूल हैं। कोष और दण्ड का प्रभाव उस वृक्ष का स्कन्ध है। कर्तव्य कार्य के लिए स्थिर प्रमाण को उत्साह कहते हैं। साम, दान, दण्ड और भेद ये चारों गुण उसकी शाखाएँ हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पुरवासी, इन आठ राज्य के अंगों के भेद और प्रभेद से नीति-वृक्ष के ७२ पत्ते होते हैं। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और समाश्रय ये ही नीतिवृक्ष के किसलय हैं। मन्त्र, प्रभाव, उत्साह और इनकी सिद्धियाँ इसके पुष्प और फल हैं। यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है। इसकी रक्षा के लिए अनेकों सहायकों की आवश्यकता होती है, अतः सहायकों से हीन के द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकती।

संकेत—(१५) निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुः, आत्मसमाधानमात्रसाध्यः। तत्त्वदर्शनोपबृंहितः, न बाध्यते। अल्पप्रयत्नप्रतिसमाहितः, श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते। मन्ये, शततमीमपि कलां न स्पृशतः। (१६) राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। एते परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण विनिश्चयोऽर्थानाम्। असहायेन दुष्प्रवेक्ष्यः।

(१७) आश्रमाश्रम-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

मैंने जाबालि का पवित्र आश्रम देखा। जहाँ पर निरन्तर यज्ञ हो रहा है, बटु-वृन्द अध्ययन में लगे हुए हैं, अनेकों तोते और मैना वेद का पाठ कर रहे हैं, देवों और पितरों की पूजा की जा रही है, अतिथियों की सेवा हो रही है, यज्ञ-विद्या की व्याख्या हो रही है, धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, अनेकों धार्मिक पुस्तकें बाँची जा रही हैं, समस्त शास्त्रों के अर्थों पर विचार हो रहा है, यति-लोग ध्यान लगा रहे हैं, मन्त्रों की साधना कर रहे हैं, योग का अभ्यास कर रहे हैं। जहाँ न कलिकाल है, न असत्य है, न काम विकार है। यह त्रिलोक से वन्दित है, गायों से अधिष्ठित है, नदी स्रोत और प्रपातों से युक्त है, पवित्र है, उपद्रव-रहित है, घने वृक्षों से अन्धकारित है, ब्रह्मलोक के तुल्य अति रमणीय है। जहाँ मलिनता हवि धूम में है चरित्र में नहीं। मुख की लालिमा तोतों में है क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रों में है स्वभाव में नहीं। चंचलता कदली-दलों में है, मनों में नहीं। अग्नि प्रदक्षिणा में भ्रमण (भ्रान्ति) है, शास्त्रों के विषय में भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार वृद्धावस्था के कारण है धन के अभिमान से नहीं।

(१८) सन्ध्या-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

इस समय दिन ढलने लगा। स्नान करके निकले हुए मुनियों ने पूजा करते हुए जो लाल चन्दन का अंगराग पृथ्वी पर दिया मानों सूर्य ने वस्तुतः उसे धारण कर लिया। धूप का पान करनेवाले ऋषियों ने मानों सूर्य की उष्मता पी ली, अतएव सूर्य निस्तेज हो गया। सूर्य की किरणें और पक्षि-गण पृथ्वी और कमलवनों को छोड़कर अब पर्वतशिखरों और वृक्षशिखरों पर पहुँच गए। सूर्य के अस्त होने पर मूँगों की लता के तुल्य लाल सन्ध्या दिखाई पड़ी। दिनभर कहीं घूमकर मानों अब दिनान्त के समय लाल तारों से युक्त सन्ध्या लौटकर आई है। अब कमलिनी सूर्यरूपी पति से मिलने के लिए मानों व्रत कर रही है। पश्चिम समुद्र के जल में सूर्य के वेग से गिरने से जो छींटे ऊपर उठे हैं, वही मानों तारागण के रूप में आकाश में शोभित हो रहे हैं। सिद्ध कन्याओं के द्वारा पूजार्थ डाले हुए पुष्पों के तुल्य तारों से युक्त आकाश दिखाई पड़ने लगा। क्रमशः चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक ऐसा ही प्रतीत हुआ मानों चन्द्रमारूपी तालाब में चाँदनीरूपी जल के पान के लोभ से आया हुआ और अमृतरूपी कीचड़ में फँस जाने से निश्चल मृग हो।

संकेत—(१७) अनवरतप्रवृत्ताध्वरम्, अध्ययनमुखरबटुजनम्, अनेक शुक-शारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, पूज्यमान उपचर्यमाण, व्याख्यायमान आलोच्यमान ध्यानम्। यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। जरया न धनाभिमानेन। (१८) परिणतो दिवसः उदवहत्, ऊष्मपैः, स्थविरिमभूत्। विद्रुमलतेव पाटला। विहृत्य। लोहिततारका। परावर्तिष्ट। दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अम्भः-शीकरनिकरम्। अलक्ष्यत। हिमकरसरसि चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्ण, अम

(१९) उज्जयिनी-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

राजा तारापीड की उज्जैन नामक राजधानी थी। वह समस्त त्रिभुवन की तिलकरूपी थी। वह गहरी खाई से घिरी हुई थी, सफेदी पुते हुए परकोटे से परिवेष्टित थी, बड़ी-बड़ी बाजार की सड़कों से शोभित थी, चौराहों पर बने हुए देव मन्दिरों से अलंकृत थी, जल-ध्वनियों से निष्पाप थी, असंख्यों तालाबों से युक्त थी। वहाँ पर लोग वीर, विनयी, सत्यवादी, सुन्दर, धर्मतत्पर, महापराक्रमी, समस्त ज्ञान विज्ञान-वेत्ता, दानी, चतुर, मधुरभाषी, प्रसन्नमुख, स्वच्छवेषधारी, सभी भाषाओं के ज्ञाता, सभी लिपियों के वेत्ता, शान्त और सरल हृदय थे। उस नगरी में मणिदीपों में ही अनिर्वाण था, चकवा-चकवी के जोड़े में ही वियोग होता था, सोने की ही वर्ण परीक्षा होती थी, ध्वजाओं में ही अस्थिरता थी, कुमुदों में ही मित्रद्वेष (सूर्यद्वेष) था, अन्यत्र नहीं।

(२०) शुकनासोपदेश (कादम्बरी पूर्वभाग)

जन्मसिद्ध प्रभुत्व, नव यौवन, अनुपम सौन्दर्य और असाधारण शक्ति, ये चारों महान् अनर्थ के कारण हैं। इनमें से एक-एक भी सभी अविनयों के कारण हैं, सभी एकत्र हों तो कहना ही क्या। यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धोने से निर्मल भी बुद्धि कलुषित हो जाती है। विषय-भोगरूपी मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी मृगों को हरनेवाली है और भयंकर दुष्परिणामवाली है। निर्मल मन में उपदेश की बातें उसी प्रकार सरलता से प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें। गुरुजनों का उपदेश मनुष्यों के समस्त मलों को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है, बालों की सफेदी आदि विरूपता को न करनेवाला बुढ़ापा है, चर्बी आदि को न बढ़ानेवाला गौरव है, असाधारण तेजवाला प्रकाश है। लक्ष्मी को ही देखो। यह मिलने पर भी बड़े कष्ट से सुरक्षित होती है। गुणरूपी पाशों के बन्धन से निश्चेष्ट बनाने पर भी नष्ट हो जाती है। यह न परिचय को मानती है, न कुलीनता को देखती है, न सौन्दर्य को देखती है, न कुलपरम्परा को मानती है, न शील को देखती है, न चतुरता को कुछ गिनती है, न त्याग का आदर करती है, न विशेषज्ञता का विचार करती है, न सत्य को कुछ समझती है और न आचार का ही पालन करती है। इसको पाकर लोग सभी अविनयों के स्थान हो जाते हैं। वे न देवताओं को प्रणाम करते हैं, न माननीयों का मान करते हैं, न गुरुओं का सत्कार करते हैं।

संकेत—(१९) ललामभूता, गम्भीरेण परिखावलयेन परिवृता, सुधाधवलेन प्राकारमण्डलेन, महाविपणिपथैः, शृङ्गाटकेषु, निष्पापमा। अनिर्वाणिमणिप्रदीपानाम्, द्वन्द्ववियोगः, कनकानाम्, कुमुदानां मित्रद्वेषः। (२०) किमुत समवायः। इन्द्रियहरिणहारिणी अतिदुरन्ता। उपदेशगुणाः, सुखं विशन्ति। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्, अजलम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्, अनारोपितमेदोदोषम्, अतीतज्योतिरालोकः। लब्धापि, गुणपाशबन्धननिष्पन्दीकृताऽपि। गणयति, आद्रियते, अनुरुध्यते।

(२१) मरणासन्न पिता के समीप हर्ष (हर्षचरित)

एक बार हर्ष ने रात्रि के चौथे पहर स्वप्न में देखा कि एक महासिंह भयंकर दावाग्नि में जल रहा है और सिंहिनी भी अपने बच्चों को छोड़कर अग्नि में कूद रही है। यह देखकर उसके मन में आया कि संसार में लोहे से भी दृढ़ प्रेम का बन्धन होता है जिसके कारण पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। अगले ही दिन उसने कुरङ्गक नामक दूत से पिता की रुग्णता का समाचार सुना। समाचार पाते ही वह घुड़सवारों के साथ दौड़ पड़ा और अगले दिन राजद्वार पर पहुँचा। वहाँ उसने निःशब्द, किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की खटखट से रहित, खिड़कियाँ बन्द होने से हवा के झोंके से रहित, कुछ प्रेमी जनों से युक्त, तीव्र ज्वर से भयभीत वैद्यों से युक्त, खिन्न मन्त्रियों से अधिष्ठित महल में विद्यमान, काल की जिह्वा के अग्र भाग पर वर्तमान, क्षीण वाणीवाले, चंचल चित्त, शारीरिक व्याकुलता से युक्त, दीर्घ साँस लेते हुए और पास में बैठी हुई निरन्तर रोती हुई माता यशोवती के द्वारा बार-बार सिर और छाती पर हाथ फेरे जाते हुए पिता को देखा।

(२२) मानवचरित-समीक्षा (प्रबन्धमंजरी उद्भिज्जपरिषत्)

सभापति अश्वत्थदेव मानवचरित-समीक्षा करते हुए अपने बन्धु वृक्षों से कहते हैं कि—मनुष्यों की हिंसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशुहत्या उनके लिए खेल है। वे सिर्फ मन के विनोद के लिए महावन में जाकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार ऐहिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय की अतिनिष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं उसी प्रकार पारलौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को देवताओं के आगे बलि देकर अपनी मूर्खता का परिचय देते हैं। वस्तुतः इनके पशुघात के कार्य को देखकर हम वृक्षों का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं, स्वच्छता को छोड़ देते हैं, विश्वासघात करते हैं, पापाचरण से थोड़ा भी नहीं डरते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते, सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं।

संकेत—(२१) तुरीये यामे, दह्यमाने पतति। आसीच्चास्य चेतसि। लोके हि लोहेभ्यः कठिनतरा खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। समधिगतसेनोऽश्वम्। परिहृतकवाटरविते, पिहितगवाक्षरक्षितमरुति, खिन्नानि, दुर्मनायमानमभिमन्त्रि भवनपदे स्थितम्, विरलं वाचि चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि, सन्ततं श्वसिते वक्षसि च ताड्यमानम्। (२२) निरवधिः। आखेटनम्। प्रकटयन्ति। विदीर्यते। उपेक्षन्ते, बिभ्यति, लज्जन्ते, सिसाधयिषन्ति।

(२३) आर्यावर्त-वर्णन (नलचम्पू)

यह आर्यावर्त देवों के द्वारा भी सेव्य है, धन-धान्य से सम्पन्न है, नदी-नहरों से युक्त है, सब विषयों में संसार का अग्रणी है, समस्त संसार का सार है, पुण्यात्माओं को जन्म देता है, धर्म का धाम है, सम्पत्तियों का सदन है, गुणों का आधार है, सद्व्यवहाररूपी रत्नों की खान है, आर्यमर्यादाओं का निकेतन है। यहाँ प्रजा संसार के सभी सुखों से सम्पन्न है, सभी पूर्ण आयु तक जीते हैं, सभी धर्म-कर्म में मग्न हैं, सदा आधि-व्याधियों से मुक्त हैं। सभी ग्राम गाय घोड़े आदि पशुओं से युक्त हैं, सभी नगर गगनचुम्बी महलों से सुशोभित हैं, सभी लोग सदाचारी हैं और धन का दान और उपभोग करते हैं। वन सुन्दर और फलदायी वृक्षों से युक्त हैं, वाटिकाएँ मनोहर फल-फूलों से युक्त हैं, कुलीन स्त्रियाँ सूर्य के तुल्य तेजयुक्त और अविभक्ता हैं। यह स्वर्ग से भी बढ़कर है। घर घर में सुन्दर स्त्रियाँ हैं, सारी प्रजा समृद्ध है, सभी धनी दानी और मानी हैं।

(२४) कवित्व और राजत्व (शिवराजविजय)

भूषण कवि बादशाह औरंगजेब का दरबार छोड़कर महाराज शिवाजी का आश्रय प्राप्त करने के लिए उनकी नगरी में पहुँचे। शिवाजी से मिलने से पूर्व वे एक शिवमन्दिर में रुके और वहाँ के पुजारी से बातचीत की। मन्दिर की खिड़की से शिवाजी ने भूषण की यह बात सुनी—मैं चिरकाल तक दिल्लीश्वर की छत्र-छाया में रहा हूँ। किन्तु हम कविलोग किसी के राजत्व, वीरता, तेजस्विता और धनाढ्यता की परवाह नहीं करते हैं। हम लोग किसी के साभिमान भ्रूभंग को और कोपयुक्त गर्व की बर्बरता को नहीं सहन करते हैं। उनका पृथ्वी पर ऐसा राज्य नहीं है, जैसा कि हमारा साहित्य-जगत् पर। उनके खरीदे हुए गुलाम भी उनकी इच्छा होते ही हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े नहीं हो जाते, जैसे कि हमारे सामने इच्छा होते ही पद वाक्य छन्द अलंकार रीतियाँ गुण और रस उपस्थित हो जाते हैं। वह चक्रवर्ती देकर भी भृत्यों को उतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता जितना कि हम केवल कविता से सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमारी वीररस की कविता को सुनकर मरता हुआ भी युद्ध में खड़ा हो जाता है। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति होती है, वही हमारा आदर करता है। यह सुनकर कवि का परिचय प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने मन्दिर में प्रवेश किया।

संकेत—(२३) सरण्या आकरः, पुण्यापुरन्ध्रीभिः, अभ्रंलिहैः प्रासादैः, विराजन्ते। (२४) सम्राट्, राज्यम्, शिवराजस्य। अध्यासितम्, मन्दिरगवाक्षेण सह, गवाक्षात्, नाऽपेक्षामहे, साभिमानभ्रूभङ्गम्, कोपाविष्टगर्वबर्बरतां न सहामहे, राज्यम्, सारस्वतसृष्टौ, क्रीतदासा अपि, तदीहामात्रेणैव, नाऽवतिष्ठन्ते, छन्दांसि, रीतयः, दीनारसंभारैरपि, न तथा तोषयितुमलम्, म्रियमाणोऽपि।

(२५) वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखाओं में से केवल शाकल शाखा ही प्राप्य है। यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—काण्व और माध्यन्दिन। कृष्ण यजुर्वेद की चार संहिताएँ प्राप्य हैं—काठक कापिष्ठल मैत्रायणी और तैत्तिरीय। सामवेद गानात्मक वेद है। यह दो भागों में विभक्त है—आर्चिक, उत्तरार्चिक। अथर्ववेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—शौनक और पैप्पलाद। प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है—संहिता ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद्। प्रत्येक वेद के ब्राह्मण आदि हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं—ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है और कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद के ब्राह्मण हैं—ताण्ड्य ब्राह्मण षड्विंश ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। ऋग्वेद के दो आरण्यक हैं—ऐतरेयारण्यक कौषीतक्यारण्यक। अन्य आरण्यक ब्राह्मणग्रन्थों के साथ ही सम्बद्ध हैं। लगभग १२ उपनिषद् उपलब्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित ११ ही मुख्य और प्रामाणिक मानी जाती हैं—ईश केन कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय तैत्तिरीय छान्दोग्य, बृहदारण्यक श्वेताश्वतर।

(२६) वेदाङ्ग

वेदाङ्ग ६ हैं—१ शिक्षा (ध्वनिविज्ञान) २ व्याकरण ३ छन्द ४ निरुक्त (वेदों की निर्वचनात्मक व्याख्या), ५ ज्योतिष, ६ कल्प (कर्मकाण्ड की विधि)। इनके द्वारा वेदों के अर्थों का ज्ञान होता है और मन्त्रों का यज्ञादि में विनियोग भी ज्ञात होता है। शिक्षा और ध्वनिविज्ञान का वर्णन प्रातिशाख्यों और शिक्षा-ग्रन्थों में है। इनमें मुख्य ये हैं—ऋक्प्रातिशाख्य, शुक्लयजुःप्रातिशाख्य तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, सामप्रातिशाख्य पुष्पसूत्र अथर्वप्रातिशाख्य। माण्डूकी, व्यास याज्ञवल्क्य और पाणिनि आदि के शिक्षा-ग्रन्थ हैं। व्याकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी सबसे मुख्य है। इस पर कात्यायन ने वार्तिक और पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखा है। इसके आधार पर काशिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गए हैं। छन्द विषय पर पिंगल का छन्दःसूत्र प्राचीन ग्रन्थ है। निरुक्त में यास्क का निरुक्त ही प्राप्य है। ज्योतिष विषय पर ज्योतिष-वेदाङ्ग नामक एक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त हैं—(क) श्रौतसूत्र—इनमें विशेष यज्ञों की विधियाँ वर्णित हैं। इनमें मुख्य आश्वलायनश्रौतसूत्र कात्यायनश्रौतसूत्र, बौधायनश्रौतसूत्र आदि हैं। (ख) गृह्यसूत्र—इनमें १६ संस्कारों का वर्णन है। गृह्यसूत्र अनेक हैं। ये बौधायन आपस्तम्ब गोभिल आदि के हैं। (ग) धर्मसूत्र—इनमें नीति धर्म, कर्तव्य आदि का वर्णन है। ये भी अनेक हैं। (घ) शुल्बसूत्र—इनमें यज्ञवेदी के निर्माण और नाप आदि का वर्णन है।

(२७) भाषा और भाषण (भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है यह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, पद-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रकार भी भाषा के विशेष अङ्ग हैं। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो लिखित भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालों के मुख में ही रहती है। 'विभाषा' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते हैं। कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट-परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक से अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास (अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त में सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पड़ते हैं और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या संकोच होता है। पतंजलि ने महाभाष्य में और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस पर विस्तृत विचार किया है। अर्थविकास की तीन धाराएँ हैं—अर्थसंकोच, अर्थविस्तार और अर्थादेश। शब्द अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था परन्तु उसके अर्थों में संकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—गो, अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि में अर्थसंकोच होने से इनका निर्वचनात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है वहाँ अर्थ विस्तार होता है। जैसे—प्रवीण, कुशल, तैल, गोशाला आदि शब्दों के अर्थों में विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़ कर नए अर्थ को अपना लेता है वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—असुर शब्द वेद में जीवन अर्थ में है पर अब उसका अर्थ राक्षस हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारेषूपयुज्यमानया गिरा, भाषामाभवति। (२८) अर्थो न्यूनत्वमगमयति। अभिन्नमर्थमात्मसात् करोति। अपाये वर्तते, अर्थापाये ख्याप्यते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा (दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया है—(१) आधिकारिक—वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि-कल्पित हो। (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि में कारण होते हैं। (१) बीज—वह तत्त्व है जो आरम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—वह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या लक्ष्य होता है उसे कार्य कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विभागों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल-प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इसमें विघ्नों के हट जाने से फलप्राप्ति निश्चित जान पड़ती है। (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थप्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख-सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भसन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है :—(१) आंगिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेषभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच अश्रु आदि के द्वारा।

संकेत :—(२९) अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम्।

(२१) (ग) नाटककी संक्षिप्त रूप-रेखा

रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथा-वस्तु के दो विभाग किए गए हैं—(१) सूच्य—नीरस या अनुचित वस्तुएँ, जिनकी केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्य श्रव्य—दर्शनीय और श्रवणीय वस्तुएँ, जिनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। एक या दो मध्यम कोटि के पात्र हों तो 'शुद्ध विष्कम्भक', नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हों तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं। इसकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इसकी भाषा केवल प्राकृत ही होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे से वस्तु या घटनाकी सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक की घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

(२२) (घ) नाटककी संक्षिप्त रूप-रेखा

सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभाग किए गए हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने के योग्य है। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन-ही-मन कही जाए। (३) नियत श्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) अपवारित—मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्रकी गुप्त बात कहना। एक और भेद आकाशभाषित है ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना। नाटक में चार वृत्तियाँ या शैलियाँ होती हैं—(१) कैशिकी वृत्ति—यह शृंगारप्रधान नाटकों के उपयुक्त है। इसमें मनोहर वेषभूषा स्त्रियों की अधिकता नृत्य गीत का बाहुल्य और शृङ्गाररस की मुख्यता होती है। (२) सात्त्वती वृत्ति—यह वीररस-प्रधान नाटकों के योग्य है। इसमें सत्य शौर्य त्याग दया ऋजुता आदि गुणों का बाहुल्य होता है, शोक का अभाव और हर्ष का विस्तार होता है। (३) आरभटी वृत्ति—यह रौद्र और बीभत्स रसों के योग्य है। इसमें माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, वध, बन्धन आदि कार्य मुख्य होते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सभी रसों में उपयोग होता है। इसमें संस्कृत का प्रयोग अधिक होता है, स्त्रियाँ नहीं होती हैं, वाचिक कार्य अधिक होता है।

संकेत :—(२१) अन्तर्यवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (२२) (१) सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (२) अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्। (क) त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्।
पवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।

(१३) भाव या मनोविकार (रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि)

नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है। मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होती हैं, जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं। समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूपमें पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संघटन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक रंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

(१४) श्रद्धा-भक्ति (चिन्तामणि)

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का संचार है। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर ही निर्भर नहीं। कभी-कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है। पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापार स्थल विस्तृत है प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेम का कारण बहुत कुछ अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जाती है।

संकेताः—(१३) मूले प्रेरकत्वेनोपलभ्यन्ते अवगन्तव्यम् व्यापारः, उपस्थाप्यते। (१४) यथास्मेतदेव रोचेत कमपि विषयमवलम्ब्य समुन्नतया एकान्तम्, उद्बुध्यते।

(५५) कविता क्या है ? (चिन्तामणि)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

(५६) काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था (चिन्तामणि)

सत्, चित् और आनन्द—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्ति मार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधनावस्था और सिद्धावस्था। आनन्द की साधनावस्था प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलती है और सिद्धावस्था उपभोग-पक्ष को लेकर। साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि। सिद्धावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—आर्यासप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द आदि। लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। काव्य में सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार आनन्द-कला के विकास में ही योग देते हैं।

संकेत—(५५) समकक्षत्वेन मन्यामहे। आक्षिप्य। भूमिमेतामारूढस्य मनुजस्य, आत्मभावबोधोऽपि न जायते। विलापयति। (५६) आश्रित्य प्रवृत्ते। अनुशीलनेन अवस्थाद्वयमुपलप्स्यते। आरभ्य प्रवर्तते। प्रवृत्तानि। प्रसृताम्, अपहर्तुम्, गभीरा। संपद्यते (सम्+पद् आत्मनेपदी)। ज्योतिरिदम्, विदारयत् प्रस्फुरति। साहाय्यमावहति।

(१७) साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद (चिन्तामणि)

जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है। भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नहीं सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं वह 'व्यक्ति' सामने लाता है 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। 'बिम्ब' जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा सामान्य या जाति का नहीं।

(१८) रसात्मक-बोध के विविध स्वरूप (चिन्तामणि)

संसार-सागर की रूप-तरंगों से ही मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसी की रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता आदि की भावनाएँ बाहरी रूपों और व्यापारों से ही निष्पन्न हुई हैं। हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करुणा आदि भावों की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं। रूप-विधान तीन प्रकार के हैं—(१) प्रत्यक्ष रूप-विधान (२) स्मृत रूप-विधान (३) कल्पित रूप-विधान। (१) प्रत्यक्ष रूप-विधान भावुकता की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आधार या उपादान हैं। इन प्रत्यक्ष रूपों की मार्मिक अनुभूति जिनमें जितनी ही अधिक होती है वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त होते हैं। (२) स्मृति दो प्रकार की होती है—(क) विशुद्ध स्मृति—वह स्मृति जो हमारी मनोवृत्ति को शुद्ध मुक्त भावभूमि में ले जाती है। जैसे—प्रिय-स्मरण बाल्यकाल या यौवनकाल के अतीत जीवन का स्मरण। (ख) प्रत्यभिज्ञान—वह प्रत्यक्ष-मिश्रित स्मरण है। प्रत्यभिज्ञान में थोड़ा-सा अंश प्रत्यक्ष होता है और बहुत-सा अंश उसी के सम्बन्ध में स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। जैसे—'यह वही हैं' के द्वारा व्यक्ति को देखकर यह वही अमुक व्यक्ति है, जो उस दिन झगड़ा कर रहा था, यह स्मरण करना। (३) कल्पना—काव्य-वस्तु का सारा रूप-विधान इसी क्रिया से होता है। वचनों द्वारा भाव व्यञ्जना के क्षेत्र में कल्पना को पूरी स्वच्छन्दता रहती है।

संकेत—(१७) नैवमूपं प्राप्यते, भवेत्, न भवति। एवम्भूतां प्राप्यमेव। हृदयं परिचिनोति। [illegible]। वास्तविकी। उपस्थापयति। उपस्थापनम्, व्याहरणम्। (१८) बाह्यरूपेभ्य., निष्पन्नाः। प्रतिष्ठापकानि। बाह्यमेव। नयति। स्तोकांशः, भूयानंशः। कलहमितः। विवदमानोऽभवत्। कल्पना पूर्णस्वातन्त्र्यमनुभवति।

(४९) विराग या अनुराग (विचारलेख)

विराग मनुष्य के लिए असम्भव है, क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है गलत कहता है, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में देखा जाए तो विरागी कहलानेवाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं अपितु ईश्वरानुरागी होता है। अतः संसार से विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं।

(५०) पाप और पुण्य (विचारलेख)

संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनःप्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा!

मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते हैं और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ संग्रह में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपने इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा जिससे दुःख मिले। यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

संकेत—(४९) अनुरूपा वा, विरक्त इति मृषाऽभिधानं तत् परमार्थतः विरक्त इति, ईश्वरानुरक्तः विमुग्धमेतत् पर्यायत्वेन गणनीयम्। (५०) भवविरते अवर्तयति, स्वरूप प्रभुः, साधनमात्रं च, न भूतो न भविष्यति, यद् विचारतेन विशेषं भवति।

(१०) सुभाषित-मुक्तावली

सूचना—(१) सुभाषित विषयानुसार अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। (२) सुभाषितों के आगे ग्रन्थ-नाम संक्षेप में दिया गया है जिस ग्रन्थ से वह सुभाषित संकलित किया गया है। (३) जिन सुभाषितों का विवरण अज्ञात या संदिग्ध है उनके आगे ग्रन्थ-नाम नहीं दिया गया है। (४) सुभाषित वर्गों और उपवर्गों में विषय के आधार पर विभाजित किए गए हैं। (५) संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेत ग्रन्थों के लिए दिए गए हैं।

संकेत-सूची

अ = अनर्घराघव	च = चरकसंहिता	मृ = मृच्छकटिक
उ = उत्तररामचरित	चा = चाणक्यनीति	मे = मेघदूत
ऋग् = ऋग्वेद	चौ = चौरपञ्चाशिका	यजु = यजुर्वेद
क० = कथासरित्सागर	द = दशकुमारचरित	यो = योगवासिष्ठ
का = कादम्बरी	दृ = दृष्टान्तशतक	र = रघुवंश
का नी = कामन्दकीयनीति	नै = नैषधीयचरित	रा = रामायण(वाल्मीकीय)
काव्या = काव्यादर्श	प = पञ्चतन्त्र	वि = विक्रमोर्वशीय
कि = किरातार्जुनीय	प्र० = प्रसन्नराघव	शा = अभिज्ञानशाकुन्तल (शाकुन्तल)
कु = कुमारसम्भव	भ = भर्तृहरिशतकत्रय	शा०प = शार्ङ्गधरपद्धति
कुव = कुवलयानन्द	भा = भागवतपुराण	शि = शिशुपालवध
गी = भगवद्गीता	म = मनुस्मृति	ह = हर्षचरित
गु० = गुणरत्न	महा = महाभारत	हि = हितोपदेश
घ = घटकर्परकाव्य	मा = मालतीमाधव	

(१) भारत-प्रशंसा

(क) भारत-प्रशंसा

१ दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्।

(ख) भूमि प्रशंसा

१ बहुरत्ना वसुन्धरा। २ महाभाग्या हि मेदिनी (क)।

(ग) जन्मभूमि-प्रशंसा

१ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। २ प्राणिनां हि निकृष्टाऽपि जन्मभूमिः परा प्रिया (क)।

(२) अध्यात्म

(क) अध्यात्म

१ अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् (कि०)। २ इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः (कि०)। ३ उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत्। ४ एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते। ५ किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम् (कि०)। ६ छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा (शा०)। ७ जपतो नास्ति पातकम्। ८ ज्ञानमार्गे ह्यहंकारः परिघो दुरतिक्रमः (क०)। ९ तपःसीमा मुक्तिः। १० तपोधीनानि श्रेयांसि तु पापेभ्यो न बिभ्यते (क०)। ११ तपोधीना हि संपदः (क०)। १२ ज्ञानस्थस्य न पुनः कर्मबन्धेन बध्यते (क०)। १३ धन्यास्ते मुनयो ये निवृत्तमनसो विगुणविषयकामिनः। १४ न बुद्धेः परमा गतिः (बो०)। १५ न वैराग्यात् परं साम्यम्। १६ न शान्तेः परमं सुखम्। १७ नहि महतां सुकरः समाधिभङ्गः (कि०)। १८ निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः (कि०)। १९ निवृत्तपापकर्मा शान्तो वाञ्छति हि निर्वृतिम् (क०)। २० निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि०)। २१ निःस्पृहस्य तृणं जगत्। २२ बोधे बोधे सच्चिदानन्दभासः। २३ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (गी०)। २४ अध्यात्मविद्यारसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे (क०)। २५ ब्रह्मज्ञानं परमपदम्। २६ विरक्तस्य तृणं जगत्। २७ विरक्तस्य तृणं भार्या। २८ शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (कि०)। २९ साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः (निरुक्त)। ३० साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ०)। ३१ साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः (नै०)। ३२ सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः। ३३ स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (शा०)।

(ख) कर्मफल

१ अपि खलु विषमः पुराकृतानां, भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः। २ आत्मकृतानां हि दोषाणां नियतमनुभवितव्यं फलमात्मनैव (का०)। ३ कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (नै०)। ४ कर्मदोषाद् दरिद्रता। ५ कर्मानुगो गच्छति जीव एकः (म०)। ६ कर्मायत्तं फलं पुंसाम्। ७ गहना कर्मणो गतिः (गी०)। ८ चित्रा गतिः कर्मणाम्। ९ जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि (का०)। १० प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति (महा०)। ११ महत्कृत् प्राप्नुयाद् महद् अल्पमल्पकृत् (क०)। १२ महत्कर्म वा कृतमात्मनि बध्यते (क०)। १३ स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।

(ग) वासना

१ अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः (कि०)। २ भस्मीभूतस्य बीजस्य पुनरागमनं कुतः (नै)। ३ भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। ४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु)। ५ मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (र०)। ६ यस्यामेव वेलायां विषयप्रीतिः, सैव वेला सर्वकार्येषु (का)। ७ यदि जन्मान्तरप्रीतिः मनः स्थिरप्रत्ययकारणम् (क०)। ८ विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः (कि०)। ९ विविधा खलु वासनाः। १० विमले कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा (कि०)। ११ सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (शा०)। १२ सदा स्याद्योऽन्न भविष्यत्कल्पमयस्समुपैति सः (क०)। १३ सर्वविषयसमत्वेन तत्स्वत् पाऽभिवाञ्छति (क०)। १४ त्रिदिवं वा यदि वाऽवनिं विजेतव्या निवेदयेत् (प)।

(घ) देव-कृपा

१ अमोघो देवतानां च प्रसादः किं न साधयेत् (क०)। २ देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते (नै)। ३ दोषोऽपि गुणतां याति, प्रभोर्भवति चेत्कृपा। ४ न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम् (महा)। ५ प्रसन्ने हि किमप्राप्यमस्तीह परमेश्वरे (क)। ६ विपत्स्वपूर्वं कदाचित् सम्पदमूर्तं वा विपरीतवरेप्सया (र)। ७ सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत्।

(ङ) दैव-स्वरूप (दैवप्राबल्य, दैवनिन्दा, भाग्य, भाग्यहीन)

१ अनतिक्रमणीया हि नियतिः (का)। २ अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि। ३ अभव्ये भव्ये वा विधिविहितमुन्मूलयति कः। ४ असंभाव्या अपि नूनां भवन्तीह समागमाः (क०)। ५ अचिन्त्यं साधयत्यर्थं दैवाऽभिमुखो विधिः (क०)। ६ अहह कष्टमपण्डितता विधेः (भ)। ७ अहो दैवाभियुक्तानां भाग्योऽप्यर्थः प्रभवत (क)। ८ अहो नवनवाश्चर्यनिर्माणे रसिको विधिः (क०)। ९ अहो विचेष्टितं नैव घटितमद्भुतकर्मणाम् (क)। १० अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क)। ११ ईदृशी भवितव्यता (कि०)। १२ कल्याणवाऽप्यमभ्यानां प्रायो याति पदाग्रताम् (क)। १३ कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। १४ किं हि न भवेदीश्वरेच्छया (क)। १५ को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी। १६ को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उ)। १७ को हि स्वाभिलषितकार्यां विधेर्मोघप्रयत्नं गतिम् (क)। १८ क्रूरे विधौ भवति भिन्नमभिन्नमात्रम्। १९ दैवो दुरतिक्रमः। २० दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् (क)। २१ दैवी विचित्रा गतिः। २२ दैवे दुर्जनता

यत्ते तृणमपि प्रायेण जायते। २३ दैवे निरूपयति निष्फलतां व्रजन्ति हन्त प्रयास-पदानि न पौरुषाणि (नै०)। २४ दैवेनैव हि साध्यन्ते सदसत्कर्मणाम् (क०)। २५ न च दैवात् परं बलम्। २६ ननु दैवमेव शरणं धिग्धिगृथा पौरुषम्। २७ न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र०)। २८ न कृतमतिनिपुणो-ऽपि पुरुषो नियतिलिखितलेखामतिक्रमितुम् (क)। २९ नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः। ३ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। ३१ नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (म)। ३२ नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा। [illegible] प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि०)। ३४ प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि०)। ३५ प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०)। ३६ फलं भाग्यानुसारतः (महा)। ३७ बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम्। ३८. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा)। ३९ भवितव्यता बलवती (शा)। ४ भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा)। ४१ भवितव्यस्य नाशाय दृश्यते बत दृश्यताम् (क)। ४२ भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा)। ४३ यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हि)। ४४ यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि)। ४५ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः। ४६ वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः। ४७ वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि। ४८ विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भा)। ४९ विधिरप्यहं-कुरुते नूनम्। ५ विधिर्हि घटयत्यर्थानघितानपि संमुखम् (क)। ५१ विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति। ५२ विधौ विधिमाधि विधेयोद्यानि। ५३ विधेर्विलासाननुमेयमेव तदाह्वय को हि लङ्घयेत् (क)। ५४ सहसा हि दैवं निमेषु पुरुषा निपतेगतिः (क)। ५५ शिरसि लिखितं लङ्घयति कः। ५६ साध्यासाध्यविचारं हि नेक्षते भवितव्यता (क)।

(ख) धर्म-कथा

१ अविश्वसो यत दैवेनाप्यापातः सुलतुल्यतो (क०)। २ आचमनिमतूकस्य कथ्यते स्यादु किं फलम् (क)। ३ अनपायि निबर्हणं द्विषां, न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि०)। ४ अप्यमविहितं बाधते हि पुंसामनन्यमाशावरणमेव धर्म (कु)। ५ को धर्मः कृपया विना। ६ क्षमया किं न सिध्यति। ७ शान्तितुल्यं तपो नास्ति। ८ चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च (मो)। ९ नैष्टोनरे दीपको धर्मः। १ धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा)। ११ धर्मे सत्येन वर्धते। १२ धर्मे च मो बत न समस्ति। १३ धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (र)। १४ धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा)। १५ धनस्य त्वरिता गतिः (प०)। १६ धर्मैव

धर्मार्थे यत्ते नास्त्यनभ्युदयः कश्चित् (क)। १७ धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः (हि)। १८. धर्मो मित्रं मृतस्य च। १९ धर्मो हि सान्निध्यं कुरुते त्वयम् (क)। २० न च धर्मो दयापरः। २१ न दयासदृशं ज्ञानम्। २२ न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कु)। २३ न धर्मसदृशं मित्रम्। २४ न धर्मात् परमं मित्रम्। २५ नाधर्मश्चिरमृद्धये (क)। २६ नानृतात् पातकं परम्। २७ नास्ति सत्यसमो धर्मः (महा)। २८ निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः (द०)। २९ पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् (र)। ३० प्रमाणं परमं श्रुतिः (महा)। ३१ भवन्त्येव हि मन्त्रादि धर्मरिव पराद्दशात् (क)। ३२ महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सित सिद्धयः (क)। ३३ यतः सत्यं ततो धर्मः। ३४ यतो धर्मस्ततो जयः। ३५ योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नाऽस्तु विनयः सतां प्रियः (कि०)। ३६ यशोमूला सत्यम्। ३७ वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते (चा)। ३८ व्यक्तिमायाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया (कि)। ३९ श्रवणपुटपानं हरिकथा। ४० श्रीमंगलात् प्रभवति (महा)। ४१ श्रेयसि केन तृप्यते (शि०)। ४२ सत्यं सम्यक् स्थितोऽल्पोऽपि, धर्मो भूरिफलो भवेत् (क)। ४३ सत्यं कण्ठस्य भूषणम्। ४४ सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति। ४५ सत्यमेव जयते नानृतम्। ४६ सत्येन धार्यते पृथ्वी। ४७ स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत्। ४८ सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा)। ४९ स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः (गी)।

(३) अर्थ (धन)

(क) धन-निन्दा

१ अकाण्डपातोपनता न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् (क)। २ अभ्रच्छायेव वित्तमकस्मादेति याति च (क)। ३ अर्थे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (प०)। ४ श्रीरभिमतविकारिणी। ५ कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प)। ६ जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत् तडिल्लतेव सहसैवाभ्येति, नश्यति च (द)। ७ धनोष्मणा म्लायत्यलं मनस्विता (द०)। ८ मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा)। ९. यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र। १० परस्परबलमाक्रम्यपेक्षयैरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः (कि०)। ११ सम्पदमचिरकालमपि प्राप्य प्रायेण बहुमदविकारमापाति (द)। १२ धनुपुत्रानपि सुखा विपिपन्नस्येव सम्पदः (कि)।

(ख) धन प्रशंसा

१ अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः। २ अर्थेन बलवान् सर्वः (प)। ३ को न तृप्यति वित्तेन। ४ जात्यन्धोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्। ५ द्रव्येण सर्वे वशाः। ६ धनं व्ययप्रयोजनम्। ७ निर्गलितामनुगमे परद्धने नार्हति याचकोऽपि (र०)।

गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते । २३ दैवे निरुन्धति निष्फलतां वहन्ति हन्त प्रयास-परशतानि न पौरुषाणि (नै)। २४ दैवेनैव हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क)। २५ न च दैवात् परं बलम् । २६ ननु दैवमेव शरणं धिगधिग्वृथा पौरुषम् । २७ न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र)। २८ न कश्चिदतिनिपुणो ऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् (द)। २९ नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः । ३० नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे)। ३१ नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ)। ३२ नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा । ३३ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि)। ३४ प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि)। ३५ प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ)। ३६ फलं भाग्यानुसारतः (महा)। ३७ बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम् । ३८ बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा)। ३९ भवितव्यता बलवती (शा)। ४० भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा)। ४१ भवितव्यस्य नाशाय यतते यत्र दुःखताम् (क)। ४२ भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा)। ४३ मत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हि)। ४४ महतामपि न त्वनापि, मार्गे येन तदन्यथा (हि)। ४५ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः । ४६ वामे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः । ४७ वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि । ४८ विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भा)। ४९ विधिरनुकूले तुल्यम् । ५० विधिर्हि मदयत्यथानपि संयुता (क)। ५१ विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति । ५२ विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि । ५३ विधेर्नियोगमलङ्घ्येन तरङ्गान् को हि लङ्घयेत् (क)। ५४ यतस्ता हि दैवं निमेषु दुर्गम्ना नियतेर्गतिः (क)। ५५ शिरसि लिखितं लङ्घयति कः । ५६ साध्यासाध्यविचारं हि नेक्षते भवितव्यता (क)।

(ख) धर्म-चर्चा

१ अचिन्त्यो यत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः (क)। २ अधर्मविरतस्य पश्यते स्वादु किं फलम् (क)। ३ अनपायि निबर्हणं द्विषां न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि)। ४ अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु)। ५ को धर्मः कृपया विना । ६ क्षमया किं न सिध्यति । ७ क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति । ८ चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च (सो)। ९ चैद्योऽस्मै दीपको धर्मः । १० धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा)। ११ धर्मं सत्येन वर्धते । १२ धर्मो न नो मम न हन्तमति । १३ धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (र)। १४ धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा)। १५ धर्मस्य त्वरिता गतिः (प)। १६ धर्मेण

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१ अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। २. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र)। ३ आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प)। ४ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी)। ५ उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६ कर्तव्यं हि सतां वचः (क)। ७ कर्तव्यो महदाश्रयः (प)। ८ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। ९. गन्तव्यं राजपथे। १० न स्लेष्यं मम दुर्लभ्यमात्मनो भूतिमिच्छता (क)। ११ न्याय्यां वृत्तिं समाचरेत्। १२ परमार्थम विज्ञाय न श्रेयसे ह्यविमृश्यामि (क)। १३ भवेन्न यस्य यत्कर्म, स तत् कुर्वन् विनश्यति (क)। १४ मनःपूतं समाचरेत् (चा नी)। १५ मौनं विधेयं सततं सुधीभिः। १६. मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। १९. याचने का दरिद्रता। २० वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् (चा नी)। २१ विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत्। २२ शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३ सत्यपूतां वदेद् वाणीम्। २४ सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता (उ)। २५ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि)। २६ सहसा हि कृतं पापं कथं मा भूद् विपत्तये (क)। २७ सुलभो हि द्विषां भङ्गो, दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि)।

(ख) १ कुसंगति-निन्दा

१ असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २ असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि (कि)। ३ कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क)। ४ दशाननोऽहरत् सीतां बन्धं प्राप्तो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः। ६ पवनः परागवाही रथ्यासु वहन् रजस्वलो भवति। ७ मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८ मूर्खैर्हि संगः कस्यास्ति शर्मणे (क)। ९ हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि)।

(ग) २. सत्संगति-प्रशंसा

१ अनुसृत्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क)। ३ कस्य सत्सङ्गो न मनोरमः (क)। ४ कामं न श्रेयसे कस्य संगमः पुण्यकर्मभिः (क)। ५. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (शा)। ६ गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि)। ७ चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः। ८ ध्रुवं फलाय महते महतां सह संगमः (क)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्। १० पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११ प्रायः सज्जनसंगतो हि लभते वैशानुरूपं फलम्। १२. प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः

१ हस्तदायः कापान्तं शालीनानपि गच्छति (धि)।

(कि)। १५ संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।

८. पात्रत्वाद् धनमाप्नोति । ९. पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी । १०. पूज्यं भाजनं धनस्य । ११ श्रेयो भूयसां धनम् । १२ मातरमपि त्यजन्ति प्रसादहीनं लोका अपि स्वपुत्राः । १३ स्वर्णस्य घटे स एव भवति यावद् धनवान्स्यात् । १४ धनेन वा धार्मिकता न वा धियं विना पुरुष धनमीप्सितो भवेत् (शा०) । १५ स धनीस्तत्कुले यथा परम्परम् (कि)।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१ अकस्मादेव दारिद्र्यम् (द०) । २ उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः । ३ कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते । ४ क्षुधे कस्यास्ति सौहृदम् (प)। ५ क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प)। ६ दरिद्रता धीरतया विराजते । ७ दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् । ८. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (प०) । ९. दारिद्र्यं परमाञ्जनम् (सा०) । १० न दरिद्रसमा दुःखी ... यथा । ११ निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ) । १२ निर्धनस्य कुतः सुखम् । १३ पुनरपि पुनरेव पापी । १४ पुण्यं पर्युषितं त्यजन्ति मनुजाः । १५ बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (प) । १६ बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् । १७ बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते । १८ रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (मे०) । १९ विषं गोष्ठी दरिद्रस्य । २० वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः । २१ सर्वं शून्यं दरिद्रस्य (प०) । २२ सर्वशून्या दरिद्रता ।

(घ) काम (भोगनिन्दा)

१ अलमेव परमर्मभिदो हि गुणवन्तोऽपि रमणीभिर्जिताः (र०) । २ अहो अतीव सौभाग्यं के कामं न विडम्बयेत् (क) । ३ आतुराः कामदोषान्धास्ते को न पश्यति (क) । ४ आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (कि) । ५ कामक्रोधौ हि विघ्नानां मोक्षद्वारार्गलावुभौ (क) । ६ कामातुराणां न भयं न लज्जा (प०) । ७. कामस्य हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे) । ८ कुतः सत्यं च कामिनाम् । ९ कोऽत्र कार्ये विवेकस्य ग्रहिः कामान्धचेतसः (क) । १० को हि मार्गममार्गं वा व्यसनान्धो निरीक्षते (क०) । ११ तेऽशभिर्विषयनिग्रहो यदि भवेद् निष्पन्दतरेत् सागरम् । १२ तृष्णा हि विरसा विदुषामपि (नै) । १३ न कामसदृशो रिपुः (बो) । १४ नास्ति कामसमो व्याधिः । १५ भोगान् भोगानिवादेयान् अध्यास्यापन्न दुर्लभा (कि०) । १६ कलेऽपि दोषाः प्रभवन्ति कामिनाम् (प) । १७ विपत्पाकप्रत्यक्षमना हि स्थिरन्ति गुरवो भवम् (क०) । १८ विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः । १९ अदेया विप्रलम्भाय कामाः कस्य हि शरणम् (कि ११ ३५) । २० संगात् संजायते कामः (गी०) ।

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१ असारेऽस्मिन् भवे तावत् भावा यमन्तनीरसा (क)। २ न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः। ३ परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते। ४ मधुरपि तृतिभिः सदृशो हा विधातुः (प्र)।

(ख) नश्वरता

१ कतिपुरवासिनी यानिस्थानरी (ह)। २. अस्थिरं जीवितं लोके (हि)। ३ अस्थिरा पुत्रदाराश्च (हि)। ४ अस्थिरे धनयौवने (हि)। ५ क्षणविध्वंसिनः कायाः का चिन्ता मरणे रणे। ६ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गी)। ७ विगिमां देहसत्तामसारताम् (र)। ८ न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः (नै)। ९. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः (र)। १० सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः (महा)।

(ग) लोक-स्वभाव

१ अतिकष्टासु अवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिनो वृत्तयः (का)। २ अहो विचित्रं लोकव्यवहारस्य (मृ)। ३ आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (कि)। ४ गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्। ५ गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः। ६ जनस्य स्वाभ्यन्तरस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते (कि०)। ७ सुधाननेन कः करमर्पयिष्यति (नै)। ८ ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे सुखं न हि मायति (कु)। ९ नवा वाणी मुखे मुखे। १० न कस्येव ते येषां कथामपि कथा न विद्यन्ते नमोक्षाधीनयमका (ह)। ११ नहि सर्वविदः सर्वे। १२ नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सम्यग् बुद्धिविवेचनम्। १३ पश्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यति। उपकारोपकर्तारो मित्रोदासीनशत्रवः (महा)। १४ पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः। १५ पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। १६ प्रमादमोहितः प्रायो न विचारक्षमो जन (क)। १७ भिन्नरुचिर्हि लोकः। १८ सर्वः स्वार्थं समीहते (शि)।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रमः

१ आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया। २ उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः (शा)। ३ उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य (र)। ४ या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते। ५ शक्यो हि साधुर्योऽस्माद् स्वभावो न निवर्तते। ६ गुडाक्तमपि पानीयं छम्पमस्यैव पावकम् (प)। ७ स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभः किमु हयो भवेत् क्वचित्। ८ स्वभावो दुरतिक्रमः (प)। ९ स्वभावो नान्यथो यस्य न जहाति कदाचन (चा)।

हि विनोदरसिकं मनः (कि)। ७ प्रमदा हि राज्यं परमैश्वर्यमाहुः (र०) ८ को नाम राज्ञां प्रियः (प)। ९ क्षितिपतिः को नाम नीतिं विना। १० यथापन्ति न राज्यार्थेऽप्यनलसौ महीभुजः (क)। ११ भाग्यभाजनमिव राजानः। १२ मधवर्ग्याः प्रमत्ता हि श्रियः (कि) १३ नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः। १४ नयेन पार्थिवमरो नरे म्रवा। १५ नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके, जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः (प)। १६ महीश्वरस्याशयाः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०)। १७ नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प)। १८ नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मः (र)। १९ परमं पदमप्राप्तिमाहुः (कि०)। २० त्रिभुवनमपि खलु बिभर्ति क्षितीन्द्राः। २१ पृथिवीभूषणं राजा। २२ प्रजानामपि सीमानां राजैव सदयः पिता। २३ प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शि०)। २४ प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु)। २५ प्रभूणां हि विभूत्यन्धा मालिन्यविषयं मतिः (क०)। २६ प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु (कु)। २७ प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प)। २८ भवन्ति वैतसीं वृत्तिं राजानः कार्यवेदिनः (क)। २९ मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः (प)। ३० महीपतीनां विनयो हि भूषणम्। ३१ राज्यं राष्ट्रकृतं पापम्। ३२ राजा तलागमवान् प्रजाः सोत्साहो भवति प्रियः (क)। ३३ वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः (र)। ३४ वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०)। ३५ भवन्ति धर्मनिरपेक्ष निरङ्कुशाः, पापेन सिद्धिं मुनयो न पूरयन्ति (कि)। ३६ प्रजाक्षेमकरो राजा। ३७ सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शा०)। ३८ स्वदेशे पूज्यते राजा (चा)। ३९ हतं सैन्यमनायकम् (चा०)।

(ग) सद्भृत्य

१ अनियुक्तोऽपि च भृत्यदोषं वदेत् स्वामिनो हितम् (क०)। २ बधे हि सद्भृत्ये भृत्यैर्यहितस्य प्रमोदेन (क०)। ३ कार्यमयुक्तं खलु कर्मफलसिद्धिविज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति (कु) ४ न किंचिद कार्यमाज्ञापयन्ती स्वामिभक्तिः (र) ५ नाश्यतो स्वामिनमयानां पुत्रे चात्मनि वा स्पृहा (क)। ६ प्रायेणापि हि भृत्यानां स्वामित्वचलं मतम् (क)। ७ भृत्या अपि त एव ये संकटेष्वपि सविशेषं सेवन्ते (का)। ८ संभावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः (कि)। ९ सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (भ)। १० स्वामिन्याराध्यमाने तुष्टे कम्पमिवार्थाः तुष्टाः (क०)। ११ स्वाम्याराधना परा माया प्रत्याख्यातेन भृत्यानां धनैः (प)।

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१ अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। २. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र)। ३ आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प०)। ४ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी)। ५ उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६ कर्तव्यं हि सतां वचः (क)। ७ कर्तव्यो महदाश्रयः (प)। ८ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। ९ गन्तव्यं राजपथे। १ न स्तेयं स्यादुर्लभ्यमात्मनो मूर्तिमिच्छता (क)। ११ न्याय्या वृत्तिं समाचरेत्। १२ परमार्थमविज्ञाय न भेतव्यं कदाचनापि (क)। १३ यत्नेन यस्य यत्कर्म स तत् कुर्वन् विनश्यति (क)। १४ मनःपूतं समाचरेत् (का नी)। १५ मौनं विधेयं सततं सुधीभिः। १६ मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८ यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। १९ वचने का दरिद्रता। २ वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् (का० नी)। २१ विचार्य खलु पश्येत्। २२ शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३ सत्यपूतां वदेद् वाणीम्। २४ सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता (उ)। २५ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि)। २६ सहसा हि कृतं पापं कथं मा भूद् विपत्तये (क)। २७ सुकरो हि द्विषां महो, दुर्गमा सत्त्ववाच्यता (कि)।

(ख) १ कुसंगति-निन्दा

१ असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २ असदनुयोगा हि क्षमाण्ड यत्राः प्रमामिनीनां विपदां पदानि (कि)। ३ कार्यं व्यसनजस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क)। ४ दशाननोऽहरत् सीतां बन्धं प्राप्तो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः। ६ पवनः परागवाही रथ्यासु वहन् रजस्वलो भवति। ७ मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८ मूर्खैर्हि संगं कस्यास्ति शर्मणे (क)। ९ हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि)।

(ख) २. सत्संगति-प्रशंसा

१ अनुसृत्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क)। ३ कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क)। ४ कार्यं न भवति कस्य संगत्या पुण्यकर्मभिः (क)। ५. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (शा)। ६ गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि)। ७ चन्द्रकस्यन्मौर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः। ८. प्रभुः फलाय महते महतां सह संगमः (क)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्। १ पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११ प्रायः सज्जनसंगतो हि लभते दैवानुरूपं फलम्। १२ मायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते (म)। १३ बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति (शि)। १४ विभावसमन्याह्य सतां हि योगः (कि)। १५. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।

१६ शठः क्वापि किन्तु न महत्त्वमवाप्नोति (मा०)। १७ क्वापि सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ०)। १८ सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूयते (मा०)। १९ सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (भ०)। २० सद्भिरेव सहासीत, सद्भिः कुर्वीत संगतिम्। सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्। २१ समुभवन् मूर्खमनायसेऽप्यसत्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०)।

(ग) १ कृतघ्नता-निन्दा

१ अनुभवप्य मुखं हि सता किं नाम पौरुषम्। २ कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०)। ३ कृतघ्नानां शिवं कुतः (क०)।

(ग) २. कृतज्ञता-प्रशंसा

१ कृतज्ञे सत्यपीवारे प्रभौ सेवाऽफला कुतः (क०)। २ न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः (मे०)। ३ न तथा कृतवेदिनां करिष्यन् प्रियतामेति यथा कृतावदानः (कि०)।

(घ) १ गुण-प्रशंसा

१ अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते (र०)। २ मलयमारुतोत्कम्पा नृपगणा, न खलु मौलौ समाप्तो वसन्ति (विक्रमांक०)। ३ एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः (कु०)। ४ कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (कि०)। ५ गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०)। ६ गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः (कि०)। ७ गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः। ८ गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः। ९ गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्। १० गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्। ११ गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि०)। १२ नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि०)। १३ पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (र०)। १४ परिच्छिनत्त्यपि गुणान् अगुणानाम् (कि०)। १५ प्रायश्च स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना। १६ प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः (कु०)। १७ वसन्तीरगुणत्वं नयगुणसमृद्धिम्। १८ शुभ्रौ हि विप्लवकारिणि गुणज्ञता स्वयमेव सज्जता (कि०)। १९ सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०)। २० सुलभे हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)। २१ स्थिरा शैली गुणवताम् (कुवलया०)। २२ हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्। २३ हंसा हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा०)।

(घ) २. कुगुण-निन्दा

१ अतिरोपणमगुण्यानप्यम्ब एव जनः (द०)। २ अर्थार्थी कस्य नाम स्यात् पराभवकारणम् (क०)। ३ अर्थार्थी कस्य भूतये (क०)। ४ अर्थीकस्य हतं कुलम्। ५ आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०)। ६ गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति। ७ गुणा यदपि नाना अपि गुणच्युताः कस्य न भवाय। ८ भवपस्य कुलम्। ९ भवाः किं न जल्पन्ति।

(ख) तेजस्विता

१ अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः (कि०)। २ अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः (कि)। ३ अविभिद्य निशाकृतं तमः, प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते (कि)। ४ अधनेरमुतस्य योधयोर्विभिन्नयोगमुपयास्य योनता (कु)। ५ इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् (शि)। ६ उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः। ७ उपहितपरमप्रभावधाम्नां, न हि जयिनां तपसामलङ्घ्यमस्ति (कि)। ८ अहो कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् (कु)। ९ ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः (शि)। १० कर्मसिद्धिरिह तिग्मानां, वीर्यं भजति सोष्णताम् (र)। ११ किमिवावसादकरमात्मवताम् (कि)। १२. किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः (कि)। १३ को विहन्तुमलमास्थितोदये, वासरश्रियमशीतदीधितौ (शि)। १४ जगति बहुमताः कस्य नामर्षणीयाः। १५ ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे, न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः (कि)। १६ ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः (कि०)। १७ तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शा०)। १८ तीक्ष्णस्य न विपद् भवत्येव हि सिद्धता (क)। १९ तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (र)। २० तेजोविहीनं विजहाति दर्पः, शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः (कि०)। २१ न खलु वयस्तेजसो हेतुः (म)। २२ न दूषितः शक्तिमतां स्वयंग्रहः (कि)। २३ न येषु महौजसामपकुर्वन्ति मक्षिका इव (शि०)। २४ न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः (कि)। २५. नातिपीडयितुं भग्नानिच्छन्ति हि महौजसः (कि)। २६ निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः। २७ परैरनिन्द्यं यदि मनस्विनां पयोऽनुसारेऽपि फलमेव शोभते (क)। २८ प्रकृतिः खलु सा महीयसः, सहते नान्यसमुन्नतिं यया (कि)। २९. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् (भ)। ३० महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि)। ३१ महानुभावः प्रतिहन्ति पौरुषम् (कि०)। ३२. मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति (शि०)। ३३ वशिनो न निहन्ति धैर्यमनुभावगुणाः (कि)। ३४ विक्रमितुं न खलु सदा मनस्विनो, विधित्सवः कलहमवैमि विद्विषः (शि०)। ३५ श्रेयान् हि मानिनो मृत्युर्नैवाप्यपमानजीवनम् (क)। ३६ संकल्पैकमयाना हि तिग्मानामसिवत् क्रियाः (क)। ३७ स्थानाभिमानैकधना हि मानिनः (शि०)। ३८ कस्तु हि सुलभा मानिकोऽतः सम्पोषणम् (क०)। ३९ संसक्तमिदमुत्तानाम्यभिमानो महाभिमाः (क)। ४० सहते विपत्सहस्रं मानी नैवापमानलेशमपि (मह)। ४१ स्वपक्षसैन्ययोर्न संयतं, भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः (कि०)। ४२. सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः (शि)। ४३ सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (र०)। ४४ स्थिता तेजसि मानिता (कि०)। ४५. स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः (र)। ४६ हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा (र)।

(घ) मित्रता

१ आकृता सम्पत्तिकथानां प्रमाणं हि सुहृदः सहायाः (नै)। २ आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् (प)। ३ आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (पं०)। ४ एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। ५. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् (शि०)। ६ कुवाक्यान्तं च सौहृदम् (पं०)। ७ कृते कस्यास्ति सौहृदम्। ८ वचस्तत् किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १० नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः (महा०)। ११ परोऽपि हितवान् बन्धुः (प)। १२ भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा)। १३ मनोमूला मैत्री। १४ मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे)। १५ मित्रभवमनु कामसम्पदः (कि)। १६ मित्रार्थमपि समागमा दुःखस्य हि महोदयाः (क)। १७ मतः सतां हि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु)। १८. विदेशे बन्धुलाभो हि, मरावम्बुनिर्झरः (क)। १९ विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि)। २० त्यागवीर्यव्यसनेषु लक्षणम् (हि)। २१ समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२ स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प)। २३ स्वं जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थे (प)। २४ स्वस्त्येव हि वातोऽग्नेः, सख्यं प्रतिपद्यते (र)। २५ हितप्रयोजनं मित्रम्।

(ङ) वीरता (धीरता) (वीर, धीर)

१ अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः (वि)। २ असम्पदः शोणितकाङ्क्षया किं, पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः (र०)। ३ अजय्यता पराक्रमसमया वीरपोषणम् (उ०)। ४ व्यसनेषु धीरत्वमवलम्ब्य हि शोभते (क)। ५ अस्तुते न हि कस्मात्, व्यसने यो न मुह्यति (क)। ६ अविचार्य निमज्जन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क)। ७ आपत्काले च कष्टेऽपि, नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः (क)। ८ आसन्नु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९ आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १० आपत्स्वपि स्वार्थं न सत्त्वं सम्पद्योगिभिः (क०)। ११ आरब्धा शक्यतैव, किं धीरैस्त्यज्यते क्रिया (क)। १२. आरम्भे हि सुदुष्करेऽपि महतां मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३ उत्साहैकधने हि धीरहृदये प्राप्नोति नैवोऽन्तरम्(क)। १४ उद्यतो न सहते विपत्तिकाम्। १५ एकोऽप्यामयहीनोऽपि प्रथमं प्राप्नोति सत्त्ववान् (क)। १६ जीवन् हि धीरोऽभिमतं किं नाम न समाप्नुयात् (क०)। १७ व्यथयन्ति महतां मनांसि समये, न हि मन्दोऽन्तरं गुणाभिलाषः (कि)। १८ न व्यालपतिर्मार्गे सत्त्वधनस्थितिः (क)। १९ मनुप्रपातेऽपि निष्कम्पा गिरयः (शा)। २० न धुर्यं विरमन्ते हि धीरानिमित्तं पराक्रमम्(क)। २१ न स प्राप्नोति किं यस्य प्रज्ञा आपदि दीव्यते(क०)।

१२ नहि स्वभावसादेन स्वस्थात्यापद् विकल्प्यते (क)। १३ निसर्गः स हि धीराणां
महापथिकं हृदम् (क)। २४ न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (भ)।
२५ परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् (शि)। २६ पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्।
२७ प्रकृतिरियं सत्त्ववताम्। २८ प्रतिपक्षसुहृत्कार्यनिर्वाहे धीरसत्त्वता (क)। २९
प्राणव्ययाय धीराणां जायते हि रणोत्सवः (क)। ३ प्राणेभ्योऽपि हि धीराणां, प्रिया
शत्रुप्रतिक्रिया (नै)। ११ शुभे वीर्ये निवसति न वाचि (द)। १२ भीता इव हि
धीराणां भान्ति पूरे विपत्तय (क)। ११ महीपालाः प्रकृत्या मितभाषिण (शि)।
१४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः (कु)। १५ विनाप्यर्थै-
धीराः स्पृशन्ति बहुमानोन्नतिपदम् (हि)। १६ धनेषु जायते शूर। १७ शूरं हृदयं
हतसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः (प)। १८ शूरस्य मरणं तृणम्। १९
धुरा हि प्रकृतिप्रियाः (क)। ४ स धीरो यो न संमोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क)।

(ञ) शिष्टाचार (सदाचार)

१ आचार प्रथमो धर्मः (म)। २ आरम्भेश्वराणां नहि साधु विना समाधि-
मेवमप्रमत्तो भवन्ति (कु)। ३ उपयुक्ते हि तारुण्ये प्रथमा सम्भिरिष्यते (क)।
महाजनो येन गतः स पन्था (प)। ५ विनयाधाराणि पाण्डवाम्। ६ विनयो हि स
भवम्। ७ शीलं परं भूषणम्। ८ शीलं भूषयते कुलम्। ९ शीलं हि विदुषां धन
(क)। १० शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११ क्षमाधारस्य क कुर्वाद्युम ति
सचेतनः (क)। १२ वक्रं शीलेन दुर्भर्वे भवम्। १३ सकलगुणभूषा च विनयः।

(ट) १ सज्जनप्रशंसा

१ अयोग्यतैव महतां महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क)। २ अगाम्यं मन्यते सुगम्।
३ अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति। ४ अनुपघ्नन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम्
(क)। ५ अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि)। ६ अनुकूलत्वे पतन्ति न हि
गोमायुरुत्वानि केसरी (शि)। ७ अपयोधीरस्य किं न कुर्वन्ति सत् साधवः (क)।
८ अव्याजपूजा परिवादगोचरं, सतां हि वाणी गुणमेव भाषते (कि)। ९ अवन्तुरतर्ष
महतां प्रगोचरः (कि)। १० अहह महतां निस्सीमानश्चरित्रविभूतयः (म)। ११
आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव (र)। १२. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः
सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे)। १३ आर्जवेष्टिो महात्मैश्चतनः किं विलायते। १४
उत्तरोत्तरसुभगो हि विभूनां, कोऽपि सम्भुत्वमाः सम्पादः (नै)। १५ उत्कर्षे न
हि प्रभुगुणमाः सज्जनापदम् (क)। १६ उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्
(हि)। १७ उदारस्य तृणं वित्तम्। १८ कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्।

१९. कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति (भ) । २० कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०) । २१ करुणार्द्रा हि सर्वस्य, सन्तोऽकारण बान्धवाः (क)। २२ क्रिया न स्याद्विफलमनल्प प्रार्थना सुजनेषु (मे)। २३ क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे (भ)। २४ क्रुद्धेऽपि मूलं धारणं प्रसन्ने, मनस्वमुत्पे शिरसां सतीव (कु०)। २५ सम्पत्स्वेऽपि नैष्ठुर्यं, कल्याणप्रकृते गुणाः। २६ महीभृद्भ्यः परिचर्यया सुहृद्भिरामुखा हि नितान्तमर्थिनः (शि)। २७ भवामुना राक्षसे हि पिण्डिताने क्वचित् गुणैरपराधेन गम्यते (नै)। २८ भवाम्बुभिर्हु स्थितिनिम्नगावशेष्वंई नहि भवति विकारमभ्युपे (शि)। २९ चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता। ३० विपदन्तेषु धीराणां स्नेह पयोधिस्तोऽरिषु (क)। ३१ ते भूमण्डलमनेकविक्रमाः सन्त विनम्रो जना। ३२ स्वकार्यमुत्तमसत्त्वा हि प्राणानपि न रक्षयम् (क)। ३३ दातानकम्पेयविपत्तिमन्दोऽप्यमस्य हृदु कस्मात् प्रभुः किम् (कु)। ३४ दुष्प्रसाधिता महतां हि वृत्तिः (कि)। ३५ देवद्विजसपर्या हि, कामधेनुर्मता सताम् (क)। ३६ वेदपाठमपीच्छन्ति सन्तो नातिनयं पुनः (क)। ३७ वन्दिनामिव सतां पुनर्गुणसंनिधिरेव संनिधि (शि)। ३८ न भवति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्। ३९. न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्। ४० न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्। ४१ न भवति महतां हि क्वापि मोघ प्रसादः। ४२. नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति। ४३ निसर्गाद्धि विकल्पन्ते सन्ति सन्तः किमन्य। ४४ निर्गीतः प्रतिपक्षस्तु सतामेवं हि गोचरम्। ४५ न्यायाचारा हि साधवः (कि)। ४६ परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः। ४७ परिवर्ततोऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि)। ४८ पुष्पवन्तौ हि सन्ताने परस्परमुभौ ह्यानन्दम् (क)। ४९ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् (भ)। ५० प्रणामान्त सतां कोप। ५१ प्रतिपाद प्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् (र०)। ५२ प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं खलु हि सतां व्रतम् (क)। ५३ प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे)। ५४ प्रसन्ने नाल्पपुण्यकर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि)। ५५ प्रसन्नानां वाचा परमपरिमेयं प्रभुत्वे। ५६ प्रभावविशिष्टानि पुरुषरत्नानि (र)। ५७ प्रणिपातनिर्वर्त्यकोपो हि सन्तः (र०)। ५८ प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः। ५९ प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि (का)। ६० प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ)। ६१ प्रताभिप्रायानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क)। ६२. कुरुते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगितां (नै)। ६३ भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावाः। ६४ भव नारम्भरीतिर्हि दुर्गमोऽपि न साधवः (क)। ६५. भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः (प्रि)। ६६ भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्। ६७ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं

महात्मनाम् (हि)। ६८ महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि)। ६९. महतां हि सर्वं अथवा मनोरिथम् (शि०)। ७० महतामनुकम्पा हि विपन्नेषु प्रतिक्रिया (क)। ७१ महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः सुजनो न विस्मरति जातु किंचन (शि)। ७२ महते स्वल्पपि गुणाय महान् (कि)। ७३ महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प)। ७४ मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कृता (क)। ७५ यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः। ७६ यत्नं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ)। ७७ रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशयाः (क)। ७८ वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ)। ७९ विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः (कु)। ८० विप्रियमप्याकर्ण्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजनः। ८१ विवेक-धाराशतधौतमन्तः, सतां न कामः कलुषीकरोति (नै)। ८२ शमाभिरामा हि सतामस्त-क्रिया (कि)। ८३ संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् (भ०)। ८४ संपत्तु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क)। ८५ सदा महत्संगुणशालि पौरुषम् (नै)। ८६ सतां हि चेतः शुचितात्मसाक्षिका (नै०)। ८७ सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या (ह)। ८८ सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ८९ सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनास्तपयितुं क ईशते (कि)। ९० सदाचारः क्वापि न विरोधोपकारौ महत्सु (मे)। ९१ सन्दिग्धं नीत्वा घोरं क्षितावितरसरम्। ९२ स्व एव सुहृदां हि पन्थाः, कुसुमसुकुमाराणि कांक्षितम् (र०)। ९३ स्वयं परस्य कुर्वाणा नापेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् (महा०)। ९४ स्वत परीक्ष्यान्तरम् भजन्ते (मालविका०)। ९५ सुमहान्तः करुणा हि साधवः (कि०)। ९६ स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि)। ९७ ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे, शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः (नै)।

(ख) ५. दुर्जन-निन्दा

१ अकृत्यं मन्यते कृत्यम् (प)। २ असज्जनैर्भवति कर्मीयसी हि चापलम् (शि०)। ३ अनुकूलेऽपि कलत्रे नीचः परदारलम्पटो भवति। ४ अन्यस्य प्रकृतिसम्पदो नीचाः प्रायेण दुःसहो भवति। ५ अपि गुरुगुणरुद्धो नाभिलक्ष्यते स्वकीये, परमभिनिविष्ट दृष्टि नास्ति सन्तः किमस्य। ६ अभयं मन्यते भयम्। ७ अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् (कु)। ८ अव्यवसितविचारस्य प्रमादोऽपि भयंकरः (म)। ९ अव्यापारेषु व्यापारं, यो नरः कर्तुमिच्छति (प)। १० अपेक्षते न वा कस्य, विश्वासो दुर्जने जने (क०)। ११ असत्पथेप्यद्भुतं दुर्विभाव्यं विधेरिव (कि)। १२ असम्भवी हि दोषाय, कृष्णसर्पेण सेविता (कि)। १३ अहो विधातुः सम्पन्नो, मूर्खैरुपमितैश्वरः (क०)। १४ अहो मन्ये मन नो परीक्षणम्। १५ उग्रो ददाति चाहाराः, पीडा कृन्तयते कराम् (प)। १६ कण्ठे पतित्वा वधो वमन्ती

ननु मक्षिकाऽमेध्योत्करम् । १७ कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः (शि०) । १८ किं मर्दितोऽपि कस्तूरी कर्पूरो याति सौरभम् । १९ किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०) । २० कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति (शा०) । २१ को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् (प०) । २२ स्वभावोऽस्ति दुरात्मनाम् । २३ क्षारं पिबति पयोधेर्वर्षत्यम्भोधरो मधुरमम्भः । २४ गुणापेक्षोऽप्यनपेक्षितगुणः, प्रकृत्यमित्रा हि सता मसाधवः (कि०) । २५ नवनीतकल्प एव नीचः, कोटिशो नैव विभज्यति । २६ दुरात्मना हि पतत्येव विपद्गर्भेषु कातरः (क०) । २७. दुर्जनोऽसौ किं याति, वायसः बलाद्यत्नम् । २८ दुर्जनः परिहर्तव्यो, विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् (भ०) । २९ दुर्जनस्य कुतः क्षमा । ३० दुर्जनस्यार्जितं वित्तं भुज्यते राजतस्करैः । ३१ दूरतः पर्वता रम्याः । ३२ दोषग्राही गुणत्यागी पल्लवग्राहीव हि दुर्जनः (प०) । ३३ न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् (शि०) । ३४ नाञ्जनं क्वचिदुज्ज्वलयेत् । ३५ निसर्गतोऽन्यधर्मिणो ह्यसाधवः । ३६ नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव । ३७ परगुणविद्वेषदक्षमनसाम्, किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०) । ३८. प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् । ३९ प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०) । ४० प्रासादशिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते (प०) । ४१ बन्धुः को नाम दुष्टानाम् । ४२ मूलोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति । ४३ प्रबलस्य का वा गतिः । ४४ मणिना भूषितः सर्पः, किमसौ न भयंकरः (भ०) । ४५ अन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः । ४६ मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि०) । ४७ ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे (भ०) । ४८ विविधमाया विश्वा हृदया एव खलाः (क०) । ४९. विषवन्तः क्षितिनीलकण्ठाः (कि०) । ५० विश्वासः कुटिलेषु कः (क०) । ५१ शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (कु०) । ५२ शर्करापूर्णोऽपि काको न मधु रायते (बो०) । ५३ सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः, सर्पात् क्रूरतरः खलः (चा०) । ५४ सारसं नैरपेक्ष्यं च विद्वानाञ्च निसर्गजम् (क०) । ५५ स्पृशन्ति न दुर्जनाः, हरन्ति बन्धुतां (वि०) । ५६ स्पृशन्नपि गजो हन्ति (प०) । ५७ हिंसा बलमसाधूनाम् (महा०) । ५८ दोषाकरमपि गुरुं बन्ध्वं, स्तुतो वदति पावकः (प०) ।

(ञ) १ सत्कर्म प्रशंसा

१ कर्मायत्तं हि फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी (क०) । २. अहो शुभकर्मणां फलं, दुष्टेषु मत्सरत्वम् (क०) । ३ कृतज्ञता धीरतया विराजते । ४ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (र०) । ५. परहितेषु भवनमभीप्सवो, भवन्ति नापुण्यकृतां मनोरथाः (शि०) । ६ धर्मपरायणाना सदा समीपसञ्चारिण्यः कल्याणसंपदो भवन्ति (का०) ७ नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति । ८. रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि । ९. धर्मं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमेति च याति च (महा०) । १० धर्मो हि सत्यं परमम् । ११ धर्मो रक्षति रक्षितः (क०) । १२.स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् (गी०) ।

(ञ) २. दुष्कर्म-निन्दा

१ अनार्यः परदारव्यवहारः (शा०)। २ अनार्यजुष्टेन पथा, प्रवृत्तानां शिवं कुतः (क०)। ३ अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (शा०)। ४ अपन्थानं तु गच्छन्तं, सोदरोऽपि विमुञ्चति। ५ कष्टो ह्यविनयक्रमः (क०)। ६ पापप्रभावात् नरकं प्रयाति। ७ पापे कर्मण्यवसरविवशात्स्ये कुतः कुशलम् (क०)। ८ पूर्वावधीरितं श्रेयो, दुःखं हि परिवर्तते (शा०)। ९ प्रतिबध्नाति हि श्रेयः, पूज्यपूजाव्यतिक्रमः (र०)। १० भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः (भ०)। ११ वरं क्लैब्यं पुंसां, न च परकलत्राभिगमनम् (भ०)। १२ वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः। १३ वरं भिक्षाशित्वं न मानपरिखण्डनम्। १४ वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।

(ट) स्वावलम्बनम्

१ आत्मानमात्मनाऽनपकारैर्बोधयन्ति सन्तः (र०)। २ उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ३ गुणवद्धेतोः समर्थितमहो निजमेव सर्वमुपकारि सताम् (कि०)। ४ नास्ति आत्मसमं बलम्। ५ अवनम्न खलु तेजसा क्रमेण महानिष्पाति भूतिमन्वयः (कि०)। ६ विनिपातनिवर्तनक्षमं, मतमालम्बनमात्मपौरुषम् (कि०)।

(११) विद्या

(क) ज्ञान

१ कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। २ न ज्ञानात् परं चक्षुः। ३ न विवेकं विना ज्ञानम्। ४ नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्। ५ प्रज्ञा नाम बलं श्रेयं, निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् (क०)। ६ प्रज्ञाबलं च सर्वेषु, मुख्यं कार्येषु शस्यते (क०)। ७ बुद्धिः कर्मानुसारिणी (चा०)। ८ बुद्धिर्नाम च सर्वेषु, मुख्यं मित्रं न पौरुषम् (क०)। ९ बुद्धेः फलमनाग्रहः। १० मतिरेव बलाद् गरीयसी (हि०)। ११ न तु निरवधिरेकः सज्जनानां विवेकः। १२ बुद्धिः परिच्छिद आत्मनः, कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् (कि०)। १३ स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति।

(ख) वाक्-प्रशंसा

१ अर्थस्वरवती वाणी, भवते कामपि श्रियम्। २ क्व परः प्रियवादिनाम्। ३ क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् (भ०)। ४ गुणवत्ताऽऽश्रये हि विराजते (कि०)। ५ पयोमुचां ध्वनिः। ६ सुश्रवाः सर्वमनोरमा गिरः (कि०)। ७ हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (कि०)।

(ग) वाग्मिता

१ अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति निश्चितं स खलु वाग्मी। २ भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा, गम्भीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् (कि०)। ३ मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता (नै०)। ४ गुणवत्ताऽऽश्रये हि विराजते (कि०)। ५ वक्ता दशसहस्रेषु। ६ वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

(घ) विद्या

१ अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। २ आत्मस्योपप्रदा विद्या (हि०)। ३ सर्वे धनानाम मुखिरा। ४ क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्। ५ कामिनस्य कुतो विद्या। ६ का विद्या कविता विना। ७ किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या। ८ किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण (भ०)। ९ कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। १० जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः। ११ ज्ञानमेव शक्तिः। १२ ज्ञानस्याभरणं क्षमा। १३ यस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि। १४ यस्य संकुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवाम्भसि। १५ गुरुबीजा विगं विद्या (हि०)। १६ विभक्तीर्ष सालकमोहित तस्य। १७ न च विद्यासमो बन्धुः। १८. पठतो नास्ति मूर्खत्वम्। १९. पूर्वपुण्यतया विद्या। २० माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः (हि०)। २१ या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी। २२ विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा। २३ विद्या ददाति विनयम् (हि०)। २४ विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। २५ विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्। २६ विद्या परं दैवतम्। २७ विद्या मित्रं प्रवासे च। २८ विद्या योगेन रक्ष्यते। २९. विद्या रूपं कुरूपाणाम्। ३० विद्याविहीनः पशुः। ३१ विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्। ३२ विद्या सर्वस्य भूषणम्। ३३ विद्या स्तपस्य निष्फला। ३४ वैरायमानमपि पण्डिताः। ३५ शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति (शि०)। ३६ शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी। ३७ शोभन्ते विद्यया विद्या। ३८ श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। ३९ सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

(ङ)[1] विद्वत्प्रशंसा

१ अगाधजलसंचारी न गर्वं याति रोहितः (प०)। २ अकम्पसायमोलस्था सुपार्वा, न खलु मोघो मनसो वदन्ति (विक्रमांक०)। ३ किमस्य नहि धीमताम् (क०)। ४ सन्ति सन्ति प्रायशोऽपि हि विद्वांसः (नै०)। ५ न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम (शा०)। ६ ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (कि०)। ७ ननु विभूतय इवी कुर्वन्त्यशिवम्। ८ नातिप्रियतोऽपरोऽभिरोधीयति (कि०)। ९ परोऽपि ... पाथ हि पुरुषा। १० प्रतिभावतां पापमपि सर्वं प्रकाशते प्रिय (क०)। ११ प्रस्तु सयमित्र हि कोऽभिसम्पादयत्प्रियाः (क०)। १२. यमपदपि विशिष्टानामात्मसम्भवमवमन्यते पैव (शा०)। १३ मम विद्वत्ता नास्ति स्वाभ्यासमात्रपरीपति। १४ पुरुषं न वा मुख्यमिव चिकित्सा वदेद् विद्याभिमतोऽप्रतीपात्। १५ युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयाद् बालादपि विचक्षणः। १६ वर्धमानेन कालेन वरपश्चि विपश्चितः। १७ विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम्। १८. विद्वान् सर्वगुणन्तु पुस्तिकतनुपूर्णस्य नाम्ना गतिः। १९. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (चा०)। २० शंकन्ते हि परीक्षको माध्यमाः संसारे (क०)। २१ समरयन्ते विद्वान्। २२ शतेषु च पण्डितः। २३ सर्वं पश्यन्ति पण्डिताः। २४ स्वार्थे को वा न पण्डितः (प०)।

(ख) २. मूर्ख-निन्दा

१ अनुपस्य हतं रूपम्। २ अज्ञातशास्त्रसारस्य तस्य जन्म निरर्थकम् (प)। ३ अचक्षुः कस्य नामेह, नोपकाराय जायते (क०)। ४ अज्ञानामुरुभ्येत्यसमतिरस्या कोऽप्यर्थविस्तरार्था गुणैः। ५ अनार्यसंगमपरं, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि)। ६ अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न विद्यते। ७ अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतम्। ८ अपदो मध्ये पोपमुपैति मूढम्। ९ अल्पविद्यो महागर्वी। १० अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् (र)। ११ अवस्तुनि कृतक्लेशो मूर्खो यात्यवहास्यताम् (क)। १२ आपन्नेत्युपमयोपकृत्रमी, वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि)। १३ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (प)। १४ कमन्ते न विचारं हि, मूर्खा निश्चयमेधसः (क)। १५ कम्पन्ते बत मूढानां संकल्पा अपि दारुणाः (क)। १६ ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति (भ०)। १७ दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्। १८ न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्। १९ निग्रहो नाथवत्स्वेव प्रमोदेर्वस्त्यात्मना (क०)। २० प्रत्तोऽप्यर्थः कथमिव हार्यते मन्दबुद्धिना (क०)। २१ वरं मूर्खस्य मौनित्वम्। २२ बहुरत्नमलसारं न कथयति विपश्चितो कः। २३ भवति योऽत्यधिकं पर्ववनीपदा। २४ मन्दमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः (शि)। २५ मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविका)। २६ मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्गः। २७ मूर्खाणां बोधको रिपुः। २८ मूर्खोऽनुभवति क्लेशं, न कार्यं कुरुते पुनः (क)। २९ मोहान्धमविवेकं हि श्रीश्चिराय न सेवते (क०)। ३० लोके पशुसमं मूर्खम् निर्विवेकमतिं समं (क)। ३१ विवेकोपहतिः सम्पत् शीघ्रमेव प्रलीयते (क)। ३२ विद्या विवादाय धनं मदाय। ३३ विद्याविहीनः पशुः। ३४ विभूषणं मौनमपण्डितानाम् (भ)। ३५ शमयोऽपि बत दोषमस्तता (कि)। ३६ सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (प)। ३७ सममपि विरत्स्यत्वा चित्तं पुनोतिसहितपथ्या (शा०)। ३८ स्वर्थे दूष्यते मूढः। ३९ हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये (क)।

(१२) विषादात्मक

(क) आशा

१ आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला (भ)। २ आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि (मे)। ३ एवमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः (हि०)। ४ गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा०)। ५ निराशा सर्वदोषम्। ६ नास्ति तृष्णासमो व्याधिः।

(ख) उद्यम-प्रशंसा

१ अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति । २ अविरामश्रमिश्रसत्रस्पका, ननु श्रमी: पक्ष्मानुपयीतकम् (कि) । ३ अप्राप्य नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः (क) । ४ कर्मो हि नाप्यकार्यैर्निर्वाप्यनाभिगम्यते (प) । ५ इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते (ए) । ६ उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (प) । ७ उद्यमेन विना राजन् सिध्यन्ति मनोरथाः (प) । ८ उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प) । ९. उद्योगः पुरुषलक्षणम् । १० उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प) । ११ क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कु) । १२. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी) । १३ कि दूरं व्यवसायिनाम् (चा) । १४ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजु) । १५ कृषी न उत्तमान् चरथाम जीवसे (ऋग्) । १६ कोऽतिभारः समर्थानाम् (प) । १७ गुणवत्तरे समधिरोहयतो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि) । १८ चिन्तीविद पोषणवर्जितस्य । १९ नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (क) । २० नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः । २१ निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि) । २२ प्राप्नोतीष्टमविक्लवः (क) । २३ यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि) । २४ यदनुद्वेगमतः प्राप्य पुरुषार्थः सदा सुधीः (क) । २५. यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् । २६ सत्त्वाधीना हि सिद्धयः (क) । २७ उत्सा सुखं सर्वस्य पथा सर्वं प्रयच्छति (क) । २८ समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि रुतः । २९ सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् (भ) । ३० ... प्रतिवसति (मृ) । ३१ सिध्यन्ति कुत्र सुखानि विना श्रमेण । ३२ प्राप्ते सुभूमेव दुःखमभ्यागते सुखम् (क) । ३३ हत ज्ञानं क्रियाहीनम् ।

(ग) एकता

१ ऐकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति (क) । २. पञ्चभिर्मिलितैः कि जगतीह न साध्यते (नै) । ३ महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि) । ४ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्) । ५. संघे शक्तिः कलौ युगे । ६ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः (ऋग्) । ७ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् (ऋग्) ।

(घ) कीर्ति

१ अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता । २ अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्, यशोधनानां हि यशो गरीयः (र) । ३ काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते (प) । ४ कुकर्मान्तं यशो नृणाम् । ५. कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ।

किं जन्म कीर्तिं विना । ७ बाढं को न बिभर्ति कैतवम् । ८ निःस्नेहेष्वनास्था खलु मैत्रि केषु (र)। ९ प्राप्यते किं यशः शुभ्रमनङ्गीकृत्य साहसम् (क०)। १० माने म्लाने कुतः सुखम् । ११ यशः पुण्यैरवाप्यते (भा)। १२ यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः (र०)। १३ संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते (गी०)। १४ सर्वं रत्नगुणग्रामं ग्रसित निर्दोषमेकं यशः । १५ लभते निरवद्यं यशस्वी नान्यथा पुनः (क०)।

(क) दान

१ आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव (र)। २ उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (प)। ३ कुपात्रदानाच्च भवेद् दरिद्रः । ४ कुर्यात् को नास्ति धार्मिकः । ५ स्वायत्तमप्यति दुष्करं, पात्रापात्रपरीक्षया । ६ त्यागी भवति वा न वा । ७ दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य (प)। ८ देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् (गी)। ९ श्रद्धया देयम् (तै उप)। १० श्रद्धया न विना दानम् । ११ तरुकुसुमसमा वितरणम् । १२ अतिसृष्टिर्नहि अनुरौति रिक्तताम् (शि०)। १३ हस्तस्य भूषणं दानम् ।

(ख) परोपकार

१ अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् (शा)। २ अहृद्योऽपि हितं ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम् । ३ आपन्नत्राणविमुखैः किं प्राणैः पौरुषेण वा (क०)। ४ आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे)। ५ इष्टप्रदानपरोपकारकरणं परमासुखं फलम् । ६ उपहृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०)। ७ उपरोधपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः (शि)। ८ किमस्त्येवमुदाराणामुपकारिषु दुष्करम् (क)। ९ धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प)। १० नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः (कि०)। ११ नास्त्यदेयं महात्मनाम् । १२ परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये । १३ परार्थप्रतिपन्नस्य हि देहान्ते स्वार्थमुज्झतः (क)। १४ परोपकारस्तु पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि । १५ परोपकाराय सतां विभूतयः । १६ परोपकारार्थमिदं शरीरम् । १७ पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः, कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (र)। १८ भस्त्या कार्यधुरं वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्तादृशाः । १९ मिथ्या परोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य धर्मये (क०)। २० शुद्धानां खलु महतां परोपकारे, कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्तिः (कि)। २१ रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी (कु०)। २२ वयसि समपूर्णा वितरणम् । २३ साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः । २४ स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता (कि)। २५ स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (श)। २६ स्वायापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, पोषयन्ति सन्तो सुपकारिपक्षम् (कि०)।

(छ) लोभ

१ अपायी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते (प)। २ अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः। ३ लुब्धो हि बान्धवस्नेहं राज्यलोभोऽतिवर्तते (क)। ४ कृपणा धनलोभान्धा नोपकारेष्वक्षमाः (क)। ५ लोभो हि नापदां हेतुरतिलोभात्मुषिता (क)। ६ कोऽर्थी गतो गौरवम् (प)। ७ तृष्णैका तरुणायते (प)। ८ प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि कृपणस्य गरीयसी (क)। ९ सुखमर्थेन यद् लोभात् (प)। १० लुब्धानां याचकः शत्रुः। ११ लोभः पापस्य कारणम्। १२. लोभमूलानि पापानि।

(ज) सन्तोष

१ अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्। २ क्षमा हि सुखाय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (नै)। ३ न तोषात् परमं सुखम्। ४ न तोषो महता मृषा (क)। ५ मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। ६ सन्तोष एवं पुरुषस्य परं निधानम्। ७ सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्।

(झ) सौन्दर्य

१ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (शा)। २ शैवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः (र)। ३ क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (शि)। ४ गुणान् भूषयते रूपम्। ५ न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि)। ६ न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु)। ७ मार्गेव शुक्ला नयनाभिरामा, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र)। ८ प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु)। ९. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः (कु)। १० यतो रूपं ततः शीलम्। ११ यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। १२ यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्। १३ रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि)। १४ हेमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (द)। १५ हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि)।

(१३) मनोभाव

(क) करुण-रस

१ अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ)। २. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु (र)। ३ दुःखमूलानि शोकानि। ४ दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् (कि)। ५ माता सर्वो भवति करुणाद्रवितान्तरात्मा (मे)। ६ प्रियबन्धुविनाशोत्थः शोकाग्निः कं न तापयेत् (क)। ७ प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति (उ)। ८ सम्भवे सुखमरति हि सद्वियोगः (कि)।

(ख) क्रोध

१ क्रोधः संसारबन्धनम्। २ क्रोधो मूलमनर्थानाम् (हि)। ३ चिरक्रोधेन मम हि जनयेद् विनीवत (क)। ४ चिरक्रोधो न युक्तस्तादृशीभवेत् (क)। ५ धर्मक्षयकरः क्रोधः। ६ नास्ति क्रोधसमो वह्निः।

(ग) चिन्ता

१ चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम्। २ चिन्ता जरा मनुष्याणाम्।
३ चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्।

(घ) प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

१ अनुरागान्धमनसां विचारः सहता कुतः (क)। २ अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र)। ३ अपायो मस्तकस्थो हि विषयग्रस्तचेतसाम् (क)। ४ अभिज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः (कि)। ५ आत्मा बध्नाति हि प्रेम, प्राग्जन्मान्तरसंस्तवः (क)। ६ आशु सप्तपदी मैत्री। ७ गुणाः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः (मृ)। ८ चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम जन्मान्तरार्जितम् (क)। ९ जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः। १० तारामैत्रकं चक्षुरागः (उ)। ११ दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते (शि)। १२ दयितास्वनवस्थितं नृणां, न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने (कु)। १३ प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि (कि)। १४ भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा)। १५ लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह)। १६ वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि)। १७ व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः (उ)। १८ सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विराजते। १९ सतां संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु)। २० सर्वं स्नेहात् प्रवर्तते (महा)। २१ सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति (शा)। २२ सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः (कि)। २३ स्नेहमूलानि दुःखानि (महा)।

(ङ) रुचि

१ अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः, स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति (शि)। २ यस्य यदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

(च) शृंगार

१ इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि (शा)। २ प्रभवति मथितुं वपुरनङ्गः (कि)। ३ वाम एव सुरतेष्वपि कामः (कि)। ४ सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति। ५ सम्पद्यते प्रणयवती हि सौख्ययोगाः (कि)। ६ साधनेषु हि रतेरुपधत्ते रम्यतां प्रियसमागम एव (कि)। ७ सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् (मे)।

(छ) स्वाभिमान

१ अभिमानो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः (कि)। २ न तृणाशि पश्व-म्भ्यः पंकमग्नोऽपि कुंजरः क्वापि। ३ परभुक्ते हि कमले किमलेर्जायते रतिः (क)। ४ पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (कि)।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१ अतिथिदेवो भव (तैत्ति उ)। २. अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः। ३ गृहागतस्यातिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम् (क)।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१ अतिदानाद् बलिर्बद्धः (मा)। २ अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति। ३ अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी। ४ अतिलोभो न कर्तव्यः लोभं भवति मस्तके (प)। ५ सर्वमतिमात्रं दोषाय (उ)।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१ कस्यचित् किमपि नो हरणीयम्। २ चोराणामनृतं बलम्। ३ चौरे गते किमु सावधानम्। ४ तस्करस्य कुतो धर्मः। ५ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु)।

(घ) इष्टलाभ

१ कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति (शा)। २ कामः ... न बाह्यः। ३ भवन्ति योग्येन हि योग्यसंगमाः (नै)। ४ रुचापि दीनस्त्वा नाभिरमीश्वर एव हि (क)। ५ नीराश्च सागरवराः प्राप्नुवन्तीष्टसंगमम् (क)।

(ङ) कलह-निन्दा

१ कलहं लोकविद्विष्टम्। २ अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि)। ३ ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क)। ४ कलहान्तानि हर्म्याणि (प)। ५ वाक्पारुष्य-विवादमवैराद् को नानुतप्यते (क)।

(च) कृषि

१ अस्मदीयं इदं क्षेत्रम्। २ माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ... भूमिः (अ)। ३ नास्ति धान्यसमं प्रियम्। ४ यथा बीजं तथाङ्कुराः। ५. यथा कृषिस्तथा फलम्।

(छ) पराश्रय

१ कष्टं खलु पराश्रयः। २ कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च। ३ नैसर्गिकेषु महतां गुणदोषपरीक्षा।

(ज) याचना-निन्दा

१ अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे (कु)। २ अर्थिने स्वार्थं बिना क्लीबं वा। ३ यं यं पश्यति तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भ)। ४ याचनान्तं हि गौरवम्। ५ याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मे)। ६ वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः (क)।

(झ) विघ्न

१ छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०)। २. एकोपनिपातिनोऽनर्थाः (अ०)। ३ विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः (अ०)। ४ श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। ५ अन्यः प्रवादो यच्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् (क०)। ६ सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।

(ञ) स्वार्थ

१ आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०)। २ कृतार्थं स्वामिनं द्वेष्टि (प०)। ३ कृतार्थस्य प्रयोजकम् (महा०)। ४ परलोभकृतानां को हि स्नेहो स्थिरो जने (क०)। ५ सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः (भ०)। ६ सर्वः स्वार्थं समीहते (शि०)। ७ सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।

(ट) नीति

१ अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०)। २ अपायो यत्र प्रयोजनम् (प०)। ३ आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०)। ४ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्। ५ इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। ६ इदं च नास्ति न परं च लभ्यते। ७ एकं धर्मेण पीडयेत् (प०)। ८ तल्पूर्णे नयति परम्परयाऽपि गोमयः (क०)। ९ उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः (प०)। १० उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः (शि०)। ११ उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः (प०)। १२ ऋणकर्ता पिता शत्रुः (प०)। १३ एको वासः पत्तने वा वने वा (भ०)। १४ क उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति (शा०)। १५ कण्टकेनैव कण्टकम् (प०)। १६ के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (मे०)। १७ को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः। १८ गतं न शोचामि कृतं न मन्ये। १९ ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। २० [illegible] विजिगीषवो हि नेतारः (कि०)। २१ जलस्थानि पादेन विस्तरेणैव पण्डिताः (अ० प०)। २२ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे (प०)। २३ न कायस्य कृते यान्ति पुरुषा पुरुषाश्रयं यदि (क०)। २४ न कुसुमजननं पुष्पं प्रयाति महिला पदे (हि०)। २५ न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्छति मारुतस्य (र०)। २६ न भयं चास्ति जाग्रतः। २७ महतीनाशपरम्परो जनः (कि०)। २८ नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया। २९ नाकालेनैव भजन्ति हिंस्ररूपं यायम् (नी०)। ३० नात्मीयस्य परं स्थानं पूर्वमाच्छन्नं त्यजेत् (शा० प०)। ३१ निपातनीया हि सतामसाधवः (शि०)। ३२ नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम्। ३३ नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। ३४ पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् (प०)। ३५ पयो गते किं खलु सेतुबन्धः। ३६ परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। ३७ परच्छन्दनिविष्टः को लघुत्वं न याति (म०)।

३८ पापो पचत्य दग्धे तर्के पुरुषस्य पामरः पिबति। ३९ मकरस्तस्मा हि रणे जयश्रीः (कि०)। ४० प्रकृत्या क्षमापि श्रेयान् नालंकारस्यमुपोपकः (कि०)। ४१ मध्यम-मप्युत्तमते हि सेवा (कि०)। ४२ प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृत्यपक्षस्य वैरिणः (क०)। ४३ प्रभुत्व निर्विकारस्य नीतिभेर्न प्रकाशते (क०)। ४४ प्रायोऽप्रगल्भस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (क०)। ४५ प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फलम् (कि०)। ४६ शनैरपि मन्दकर्मा श्रेयान्। ४७ बन्धुरप्यहितः परः। ४८ बहुविधास्तु कथा कस्यापि सिद्धयः (क०)। ४९ भवन्ति भरतोपमगुणाः सर्वस्यापीह सिद्धय (क०)। ५० भवन्ति भावो ऽवसरे प्रयुक्ता सुखं प्रविश्य फलदायाः (कु०)। ५१ भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो मतः स वशकारकः (प०)। ५२ महानपि प्रसंगेन नीचं सेवितुमिच्छति। ५३ महोद्यमानामपि संगृहीता, सदाश्रयाः प्रतिष्ठन्ति सिद्धयः (कि०)। ५४ मायावादे मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः (महा०)। ५५ मुक्त्वमन्ते हि महस्य विनिपात प्रतिक्रिया (क०)। ५६ मूलस्येव हि कृपणेषु संभ्रमत्यधिकं मनः (कि०)। ५७ मौनं सर्वार्थसाधकम्। ५८ मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। ५९ मौनिनः कलहो नास्ति। ६० यथा देवस्तथा माया। ६१ यथा राजा तथा प्रजा। ६२ यदि वाऽऽत्मानमनुसृत्य न करम परि सूयते (क०)। ६३ यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। ६४ याचित्व म्याव मनुष्यस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (भ०)। ६५ येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ६६ येनेष्टं तेन गम्यताम्। ६७ रक्षणायेन पापानां को हि रक्षितुमर्हति (क०)। ६८ वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। ६९ विधीयते करोपि किमतुलो विवादः। ७० भवन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (कि०)। ७१ ग्रीष्मेऽग्ने बहिरुपैति शमिम्। ७२ श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। ७३ सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (कि०)। ७४ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (भ०)। ७५ सन्धिं कृत्वा तु हन्तव्यः संप्राप्तेऽवसरे पुनः (क०)। ७६ संभूतीनो हि भवो रम्यमहारिणाम् (र०)। ७७ सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प०)।

(१५) पुरुषस्त्री-स्वाभावादि

(क) कन्या (पुत्री)

१ अर्थो हि कन्या परकीय एव (शा०)। २. कथोभ्या हि पितुः कन्या, सत्कर्तु-प्रतिपादिता (कु०)। ३ कन्या नाम महद् दुःखं, विवादो महतामपि (क०)। ४ कन्या-पितृत्वं खलु नाम कष्टम्। ५ शोकस्थानं तु कन्या हि कामरूपा कालयान् सुता (क०)। ६ रतुगात्रं पापानां कन्यापनयोदेषु मुख्याम्।

(ख) पुत्र

१ अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः (का)। २ कः सत्पुत्रैर्विनयं विना। ३ कुपुत्रेण कुलं नष्टम्। ४ कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिकः (हि)। ५ दुर्लभो क्षेमकृत् सुतः। ६ धिक् पुत्रमविनीतं च। ७ न चापत्यसमः स्नेहः। ८ न पुत्रात् परमो लाभः। ९ पुत्रः शत्रुरपण्डितः (चा)। १० पुत्रहीनं गृहं शून्यम्। ११ पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम्। १२ पुत्रोदये माद्यति को न हर्षात्। १३ मातापितृभ्यां शप्तः सन् यातु मृत्युमसंशयम् (क)। १४ शोकस्थानं तु कन्या हि, ज्ञानस्थः कामवान् सुतः (क)। १५ सुपुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः। १६ सन्ततिः पुण्यमाहात्म्यात्। १७ सन्ततिः शुद्धवंश्या हि, परत्रेह च शर्मणे (र)।

(ग) स्त्रीचरित-निन्दा

१ अपरेऽभ्युदये हि योषितां हृदि शाठ्यक्रमेव कैतवम्। २ अनुरागमपगताः कुर्वन्ति किं न योषितः (क)। ३ अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः (प)। ४ अविनीता रिपुर्भार्या। ५ कठिनाः खलु स्त्रियः (कु)। ६ कथा हि कुटिलकर्मपरतन्त्र-वधूरियमिति(क)। ७ किं किं करोति न निरर्गलिता गता स्त्री। ८ किं न कुर्वन्ति योषितः (म)। ९ कुयोषितां प्राप्य पदे कुतः सुखम्। १० न स्त्री व्यभिचारिणी निम्नोन्नतम् वेदते (क)। ११ नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति। १२ प्रमदाः स्त्रीषु दुष्यन्ति विमर्दं विदुषामपि (क)। १३ भवे मारेभ्यस्तदपि प्रसक्ता स्त्री सती कुतः (क०)। १४ मन्यन्ते हेमैवेह कुस्त्रीभिः उपकारकाः (क)। १५ वेश्यानां च कुतः स्नेहः। १६ सन्निकृष्टे निकृष्टेऽपि यत् रमन्ति कुस्त्रियः (क)।

(घ) स्त्रीधर्म आदि

१ इहामुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः (क)। २ उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (शा)। ३ कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिपदं प्रायेण कारागृहम्। ४ प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि (कु)। ५ प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु)। ६ भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा)। ७ भर्तृमार्गानुसरणं स्त्रीणां हि परमं व्रतम् (क)।

(ङ) स्त्रीशील-प्रशंसा

१ अचिन्त्यं शीलगुप्तानां चरितं कुलयोषिताम् (क)। २ असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्त्रये (क)। ३ असारे खलु संसारे, सारं सारङ्गलोचना। ४ आपद्यपि सतीवृत्तं किं मुञ्चन्ति कुलस्त्रियः (क)। ५ का नाम कुलजा हि स्त्री भर्तृद्रोहं करिष्यति (क)। ६ किं नाम न सहन्ते हि, भर्तृभक्ताः कुलाङ्गनाः (क)। ७ कुलजस्य का स्वामिभक्तिं विना। ८ क्रियाणां खलु धर्म्याणां

सत्सम्बन्धो मूलकारणम् (कु०)। ९. तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती। १० मिम् एवं पतिप्रीतिफलम्। ११ न पर्व पतिव्रतानुवर्तिनी पापमुच्यते। १२ न पतिस्मादि दैवं कुलीनानामस्य गतिः (क०)। १३ न भार्यायाः परं सुखम्। १४ नारीणां भूषणं पतिः। १५. नारीणां भूषणं शीलम्। १६ नास्ति भर्तुः समो बन्धुः (कि०)। १७ नैष्यों भर्तुरितैर्भिन्नो गच्छन्ति हि कुस्त्रियः (क०)। १८. पुरुषप्रोषिता दारा। १९. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ०)। २० पेशलं हि स्त्रीमनः (क०)। २१ भर्तारं हि विना नान्या स्त्रीणामस्ति गम्यता (क०)। २२ अनन्यगामिमिव्यारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०)। २३ भार्या मूलं गृहस्थस्य। २४ भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणम्। २५ भार्याहीने गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम्। २६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म०)। २७ या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी। २८ शुचिर्नारी पतिव्रता। २९. स्त्रीधर्मो हि कुलीनां, विनयो न गुरुत्वतः (क०)। ३० स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०)। ३१ स्वल्पमपि सृजति विरहमिव (चि०)। ३२. स्वातन्त्र्यं नास्ति साध्वीनां, तासां भर्तृकुलं सुखम् (क०)।

(ख) स्त्री-सामान्यादि-वर्णन

१ अहो विधिना बलेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क०)। २ आदानपरमवचनं प्रमाणमपि हि कुस्त्रियः (क०)। ३ उदारसत्त्वं पश्यन्ते, सर्पं हि भीरवोऽङ्गना (क०)। ४ कान्ता रूपवती शत्रुः। ५. को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। ६ कुर्वन्ति मदनमदाद् विनापि हेतोर्विलासान् किमु सति कारणे रमण्यः (शि०)। ७ कायस्था पतिं रोति। ८ तथैव कुर्याद् स्त्रीणामिह प्रसवकालनम् (क०)। ९ निष्कलतमपुत्रकम्। १० ममाङ्गनानामेव एव पन्थाः। ११ न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (मनु०)। १२. न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीणां वाप्यकारणे (क०)। १३ नहि नार्यो विनेर्ष्यया। १४ नहि कन्यान्यमुखे कुले, यथा हि सुतपुत्रिणी। १५ निसर्गसिद्धो नारीणां, तनयेषु हि मत्सरः (क०)। १६ प्रभुत्वमत्यन्तकं स्त्रैणम् (छ०)। १७ प्रायः समभ्युद्यतयोर्न दृश्यते सौहृदं लोके। १८ प्रायः स्त्रियो भवन्तीह, निसर्गविषमाः खलाः (क०)। १९. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। २० वत स्त्रीणां चञ्चलाभिसृतता (क०)। २१ गुणविकलः खलु नाप्यते-ऽनुरूपः (कि०)। २२. स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवा न जानाति कुतो मनुष्यः। २३ स्त्रियो मधु समन्ताः। २४ स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क०)। २५ स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (कु०)। २६ स्त्रीणां मायानुरक्तं हि, विरहासहनं मनः (क०)। २७ स्त्रीणामसत्यं चतुर्गुणं हि, यतः को मन्यते मृषा (क०)। २८ स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (मे०)। २९. स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्।

१० स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का० नी०)। ११ स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः (भ०)। १२ स्त्री विनश्यति गर्वेण (चा० प०)। १३ स्त्रीषु वाक्संयमाः कुतः (क०)। १४ स्वाधीना वनिता सुतावपि।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१ कलाशीमा काव्यम्। २ कवयः किं न पश्यन्ति। ३ काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि०)। ४ कैषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय। ५ पिपासितैः काव्यरसो न पीयते। ६ पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्। ७ सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्। ८ स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् (कि०)।

(१७) विविध

(क) कलि

१ कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव। २ पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि। ३ पश्यन्तु लोकाः कलिकोपकानि। ४ साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे।

(ख) शकुन

१ मन उत्पाति हि श्रेयः, कार्यसम्पत्तिसूचकम् (क०)। २ अभ्याखेटो भविष्यत्कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् (र०)। ३ आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि (का०)। ४ आमुखापाति कल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति (क०)। ५ भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्पराः (क०)।

(ग) विविध सुभाषित

१ अधिकस्याधिकं फलम्। २ अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः। ३ अपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः। ४ अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। ५ अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते। ६ अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (प०)। ७ अभोगस्य हतं धनम् (प०)। ८ अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः। ९ अलसस्य कालो [illegible]। १० [illegible] आग्रुवश्च मौनम् (कु०)। ११ अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (का०)। १२ आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र०)। १३ इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः (प०)। १४ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। १५ क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। १६ क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वम्। १७ घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०)। १८ सगुणपूर्णं भवेत् पादप

(भा) । १९ यतो यातो नवाचारः । २० जामाता दशमो ग्रहः । २१ जीवो जीवस्य जीवनम् । २२ ज्येष्ठभ्राता पितुः समः । २३ तथा मांसाशिना कुतः (प) । २४ दिवास्वप्नं हि सत्यातिक्रमः (कि) । २५ दुर्लभः स गुरुर्लोके शिष्यचिन्तापहारकः । २६ दुर्जनः स्वजनमपि । २७ धैर्यलोपो हि दुःखम् (क) । २८ नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प) । २९ न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया । ३० ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् (र) । ३१ न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र) । ३२ न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (श) । ३३ न भूतो न भविष्यति । ३४ न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु) । ३५ नराणां नापितो धूर्तः (प) । ३६ न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते । ३७ नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य, वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदालिः (र) । ३८ नहि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरिगुहाशयः । ३९ नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि (प) । ४० नासीयान् पटुगुरुत्वं हिनस्ति दोषा (कि) । ४१ निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् । ४२ निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि) । ४३ निर्वाणदीपे किमु तैलदानम् । ४४ नैकत्र सर्वो गुणसंनिपातः । ४५ पङ्को हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि (क) । ४६ परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै । ४७ परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् । ४८ प्रकृत्या क्षमिणः श्रेयान् नालंकारस्पृहोपमः (कि) । ४९ प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते । ५० प्रमादिनो भयंकरः (प) । ५१ बालानां रोदनं बलम् । ५२ भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि) । ५३ भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः (कि) । ५४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु) । ५५ मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना । ५६ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । ५७ यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते (कु) । ५८ यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी मतिः । ५९ यद् भावि तद् भविष्यति । ६० याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते । ६१ यादृशास्तन्तवः कामं तादृशो जायते पटः (क) । ६२ योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु । ६३ यो यद् वपति बीजं हि, लभते तादृशं फलम् (क) । ६४ रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन । ६५ रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् (कु) । ६६ रिक्तपाणिर्न सेवेत राजानं दैवतं गुरुम् । ६७ लभम परं तव मुखे लघु मरमपातः । ६८ वाचा प्रधानं खलु योग्यतायाः । ६९ वाचोविहीनं विलपति लक्ष्मीः । ७० विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति । ७१ विनाशकाले विपरीतबुद्धिः । ७२ विषधिरं मनुष्यमनुतापं जनयति (शा) । ७३ विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (कु) । ७४ यथा माता न तथा सुशीलतपत्नी मादृक् । ७५ शिष्यपापं गुरुस्तथा । ७६ शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम् । ७७ स्थाणकी पतनाशाय (शा) । ७८ संपत्संपदं विपद् विपदमनुबध्नातीति (शा) । ७९ सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम् । ८० सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति (शा) । ८१ सुगमसुपदिश्यते परस्य (शा) । ८२ स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः (प) । ८३ स्वदेशवत्सलस्य नरस्य नूनं प्राणाधिकस्यापि भवत्यवज्ञा ।

(११) पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना—(१) संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके मूल-नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिए गए हैं। (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१) **अकर्मक**—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको क्या) का प्रश्न नहीं उठता। अकर्मक के लिए यह नियम स्मरण कर लें। इन अर्थोंवाली धातुएँ अकर्मक होती हैं। 'लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्। शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः'॥ फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्।

(२) **अक्षर**—(अक्षरं न क्षरं विद्यात् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) **अघोष**—खर् प्रत्याहार अर्थात् वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय ≍ क उपध्मानीय ≍ प विसर्ग और श ष स ये अघोष वर्ण हैं।

(४) **अच्**—स्वरों को अच् कहते हैं। ये हैं—अ से लेकर औ तक स्वर।

(५) **अजन्त**—(अच् + अन्त) स्वर अन्तवाले शब्द या धातु आदि।

(६) **अध्याहार**—(सूत्रे अपूर्णतायां सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो *शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार* कहते हैं।

(७) **अनिट्**—(न + इट्) जिन धातुओं में साधारणतया बीच में 'इ' नहीं लगता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण पृष्ठ २६८ पर दिया है। कृ> कर्ता कर्तुम् आदि।

(८) **अनुदात्त**—(नीचैरनुदात्तः, १।२।३०) जिस स्वर को नीची ध्वनि से बोला जाता है या जिस पर बल नहीं दिया जाता उसे अनुदात्त कहते हैं। वेद में अक्षर के नीचे आड़ी लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं लगता।

(९) **अनुनासिक**—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है उन्हें अनुनासिक कहते हैं। अनुनासिक (ँ) चिह्न से युक्त सभी वर्ण तथा वर्गों के पंचमाक्षर ङ ञ ण न म *अनुनासिक हैं।*

(१०) **अनुबन्ध**—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण वृद्धि संप्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि, या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे छोड़ने योग्य वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—क्तवतु में क् और उ। घञ् में घ् और ञ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, घञ् को ञित्।

(११) अनुवृत्ति—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। पूर्व सूत्र के इस अंश को लेने पर ही अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) अन्तरङ्ग—मुख्य कार्य। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है। (१३) अन्तःस्थ—(यरलवा अन्तःस्थाः) य र ल व को अन्तःस्थ कहते हैं।

(१४) अन्वादेश—(किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय।

(१५) अपवाद—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) अपृक्त—(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(१७) अभ्यास—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) लिट् लकार आदि में धातु को द्वित्व होने पर पहले वाले भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—पपाठ में प, ददौ में द।

(१८) अलुक्—विभक्ति आदि का लोप न होना। अलुक्समास में बीच की विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, सरसिजम्।

(१९) अल्पप्राण—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्चाल्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ।

(२०) अवग्रह—(सूत्रेषु विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न को अवग्रह कहते हैं। ऽ = अ। ऽ यह संकेत अ हटा है, इसका बोधक है।

(२१) अव्यय—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं और प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्रों के आगे निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः यह भाव है—(१) अध्याय की संख्या, (२) पाद की संख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १ पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि से किसी नियम या कार्य को न हुआ-सा समझना। जैसे—सवा सात अध्यायों की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'। (२५) आगम—शब्द या धातु के बीच में जो अक्षर या वर्ण और जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। जैसे—पयस्>पयांसि में न् का बीच में आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि), शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती हैं। जैसे—सेव् धातु। सेवते सेवेते।

(२७) आदेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय में क्त्वा को ल्यप् आदेश। रमेशः में आ + ई को ए गुण। (२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम् , २।३।४८) संबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने।

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तिवाले स्थानों पर उत्तरपद को आम्रेडित कहते हैं। जैसे—कान् + कान् = कांस्कान्, में बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुकं शेषः, ३।४।११४) तिङ् (ति त अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (शतृ आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुड़ने वाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (लिट् च ३।४।११५) लिट् के स्थान पर होनेवाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधार पर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती हैं। जिन धातुओं में साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हें सेट् (स + इट्) अर्थात् 'इ' वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता उन्हें अनिट् (न + इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोपः, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययों के आदि या अन्त में ये लगे होते हैं। बाद में ये हट जाते हैं। जैसे—घञ् में घ् और ञ्। घञ् में घ् हटा है अतः इसे घित् कहेंगे। जो अक्षर इत् होगा, उसके आधार पर प्रत्यय कित् (क् + इत्) पित् (प् + इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होने वाले अक्षर ये हैं—(१) हलन्त्यम् (१।३।३) अन्तिम व्यंजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उपदेश में अनुनासिक-संकेत वाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग। (४) लशक्वतद्धिते (१।३।८) तद्धित-प्रकरण को छोड़कर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) षः प्रत्ययस्य (१।३।६) प्रत्यय के आदि का ष। इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सर्ग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्तः १।२।२९) जिस स्वर को उच्च ध्वनि से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६) (क) उपपद विभक्ति—किसी पद (शब्द) को मानकर जो विभक्ति होती है उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नमः में नमः पद के कारण चतुर्थी है। (ख) कारक-विभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है उसे कारक विभक्ति कहते हैं। जैसे—पाठं पठति में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५) अन्तिम अल् (स्वर या व्यंजन) से पहले आने वाले वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे—भिद् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—(कुप्वोः ≍क≍पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—न≍पाहि। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गाः क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगने वाले प्र परा आदि को उपसर्ग कहते हैं। ये २२ हैं—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, तः आदि), और आत्मनेपद (ते, एते, आदि) इन दोनों पदों के चिह्नों का लगना। जिन धातुओं में ये चिह्न लगते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं। (४१) ऊष्म—(शषसहा ऊष्माणः) श ष स ह को ऊष्म वर्ण कहते हैं।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ ऊ, पवर्ग और उपध्मानीय इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है, अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ आ कवर्ग ह और विसर्ग ( ) इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है, अतः ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८३) अनु, उप प्रति परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती हैं।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३।४।६७) धातु से होने वाले क्त क्तवतु शतृ शानच् आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क्त और खल् को छोड़कर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते हैं।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, ३।४।७०) धातु से होने वाले तव्य, अनीय य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्म वाच्य में होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं। (४९) क्रिया—धातुरूपों को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्।

(५०) गण—धातुओं को १० भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं। भ्वादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दों से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण (समूह) में रक्खा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गणपाठ कहते हैं। जैसे—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)।

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति हैं।

(५३) गुण—(अदेङ् गुणः, १।१।२) अ ए, ओ को गुण कहते हैं। गुण करने पर ऋ ॠ का अर्, इ ई को ए, उ, ऊ को ओ हो जाता है।

(५४) गुरु—(संयोगे गुरु १।४।११; दीर्घं च १।४।१२) संयुक्त वर्ण बाद में हो तो ह्रस्व वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरप्तमपौ घः, १।१।२२) तरप् और तमप् प्रत्ययों का घ कहते हैं।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप्, १।१।२०) दा और धा धातु को घु कहते हैं, दाप् को नहीं। (५८) घोष—हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वोः ≍क ≍पौ च, ८।३।३७) क ख से पहले ≍अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ≍करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है। (६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम और से जहाँ स्वर मिले, वह स्वर और आगे व्यंजन यदि हो तो वह टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि है।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ। (६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। (६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई, चवर्ग, य श का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति तः आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं। (६५) तिङन्त—ति तः आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुलसानां दन्ताः) लृ, तवर्ग ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं। (६८) द्वित्व—किसी पद या पदांश को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं स्मृत्वा स्मृत्वा। (७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी, १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (ङिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी नदी कहलाते हैं, ङित् विभक्तियों में।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपुं० शब्द हैं। (७४) नाद—हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह य व र ल) नाद वर्ण हैं। (७५) नाम—संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः ये सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।११) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिङ्ग—संस्कृत में तीन लिङ्ग हैं—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है। (११०) लुप् (श्लु)—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं। (१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे-कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक, टवर्ग—ट से ण, तवर्ग—त से न, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (voice) होते हैं—१ कर्तृवाच्य, २ कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं। (११८) विकल्प—वैकल्पिक नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च १।४।१०४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा १।१।४४) किसी नियम को वैकल्पिक या विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा, अन्यतरस्याम्, शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये विवार वाले हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुणबोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा, स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२)(परार्थाभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि करने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ और ओ को औ।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप् १।१।२०) दा और धा धातु को घु कहते हैं, दाप् को नहीं। (५८) घोष—हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८।३।३७) क ख से पहले ≍अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क≍करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है। (६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम ओर से जहाँ स्वर मिले वह स्वर और बाद में व्यंजन यदि हो तो वह टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि है।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ। (६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। (६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई, चवर्ग, य, श का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति त आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं। (६५) तिङन्त—ति तः आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुलसानां दन्ताः) लृ, तवर्ग ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है, अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं। (६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं, स्मृत्वा स्मृत्वा। (७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। *(२) (ङिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त* स्त्रीलिंग शब्द भी नदी कहलाते हैं, ङित् विभक्तियों में।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि मधु आदि नपुं० शब्द हैं। (७४) नाद—हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण ह य व र ल) नाद वर्ण हैं। (७५) नाम—संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः ये सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्तं पदम्, १।४।१४) सुप् (१ औ आ
उक्त शब्दों और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते हैं
रामः, पठति । (२) स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्य
हों तो शब्द को पद कहते हैं, ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्र
सुप् यकारादि और स्वर आदि वाले प्रत्यय ।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त क

(८०) पररूप—(एङि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को
पर वाले स्वर के मुख्य रूप रह जाने को पररूप कहते हैं । जैसे—प्र+एजते = प्रे

(८१) परस्मैपद—(लः परस्मैपदम्, १।४।९९) लकारों के स्थान पर
वाले ति तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं । ये जिनके अन्त में आ
उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं । ते एते अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं ।
प्रत्यय परस्मैपद में होता है ।

(८२) परिभाषा—व्याकरण-सम्बन्धी कुछ विशेष नियमों को परिभाषा कहते

(८३) पुंलिंग—यह तीन लिंगों में से एक है । जैसे—राम, हरि ।

(८४) पूर्वरूप—(एङः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों में दो स्वरों
मिलने पर पहले स्वर के मुख्य रूप रह जाने को पूर्वरूप कहते हैं । जैसे—हरे+अव=हरेऽव

(८५) (क) प्रकृति—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है उसे प्रकृति
कहते हैं । इसका दूसरा पारिभाषिक नाम 'अंग' है । जैसे—रामः में राम प्रकृति है
और पठति में पठ् । (ख) प्रकृति-विकृति—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर
जो नया आदेश होता है उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं । जैसे—उवाच
में प्रकृति ब्रू धातु है उसको विकृति विकार या आदेश वच् हुआ है । यह पूरे शब्द या
धातु को भी होता है और कहीं पर उसके एक अंश को ।

(८६) प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है
कि यहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती । प्लुत और प्रगृह्य वाले स्थानों पर प्रकृतिभाव होता है ।

(८७) प्रगृह्य—(१) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११) प्रगृह्य वाले स्थान
पर कोई सन्धि नहीं होती । ई, ऊ, ए अन्त वाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः
सन्धि नहीं होगी । जैसे—हरी एतौ । (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के
बाद ई, ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी । जैसे—अमी ईशाः । अमू आसाते ।

(८८) प्रत्यय—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगने वाले
सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि को प्रत्यय कहते हैं । कुछ प्रत्यय पहले (बहुच् आदि)
और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं । बहुपटुः । उच्चकैः । प्रत्ययों में विशेष
कार्य के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं ।

(८९) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है
संक्षेप में कथन । अच्, हल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार हैं । अच्, हल् आदि के
लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में ढूँढें और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के
अन्तिम अक्षर में । जैसे—अच् = अइउण् के अ से लेकर ऐऔच् के च् तक, पूरे स्वर ।
सुप् = सु व सुप् के प् तक । तिङ् = तिप् से महिङ् तक ।

(९०) प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयत्न किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट आदि। बाह्य ११ प्रकार का है—विवार, संवार आदि। (देखो सिद्धान्तकौमुदी संज्ञाप्रकरण)

(९१) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं। यही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(९२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम कराना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ में णिच् होता है। (९३) प्लुत—ह्रस्व स्वर से तिगुनी मात्रा। अक्षर के आगे ३ लिखकर इसका संकेत करते हैं। देवदत्त३।

(९४) बहिरङ्ग—गौण नियम। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है, शेष बहिरङ्ग। (९५) बहुलम्—विकल्प या वैकल्पिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(९६) भ—(यचि भम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर-आदि वाला प्रत्यय बाद में हो तो उससे पहले के शब्द को भ कहते हैं, सु को आदि प्रथम पाँच सुप् बाद में हों तो नहीं। (९७) भाष्य—पतञ्जलि-रचित महाभाष्य को संक्षेप में भाष्य कहते हैं।

(९८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला या युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ में होनेवाले सभी प्रत्ययों को मत्वर्थक प्रत्यय कहते हैं। जैसे—धनवान्, धनी।

(९९) महाप्राण—(द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः) वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर तथा श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते हैं। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ।

(१००) मात्रा—स्वरों के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है दीर्घ या गुरु की दो प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पाणिनि कात्यायन, पतञ्जलि इन तीनों को मुनित्रय कहते हैं। मतभेद होने पर बाद वाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋटुरषाणां मूर्धा) ऋ ॠ, टवर्ग, र, ष का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, अतः इन्हें मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ में रूढ या प्रचलित हो गए हैं। जैसे—पङ्कज का अर्थ है—कीचड़ में होने वाला। पर यह कमल अर्थ में रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने आवश्यकतानुसार विभक्त करके एक सूत्र (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं, इस सूत्र विभाजन को योगविभाग कहते हैं।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचक:—पच्+अक:, पकाने वाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—मणि, नूपुर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु १।४।१०) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिङ्ग—संस्कृत में तीन लिङ्ग हैं—पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है। (११०) लुप् (श्लु)—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं। (१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक टवर्ग—ट से ण, तवर्ग—त से न, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (अर्थ) होते हैं—१ कर्तृवाच्य, २ कर्मवाच्य ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं। (११८) विकल्प—ऐच्छिक नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१०४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा १।१।४४) किसी नियम को ऐच्छिक या विकल्प से लगाने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा अन्यतरस्याम् शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख च छ, ट ठ, त थ, प फ) विसर्ग, श ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुणबोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा, स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२)(परार्थाभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि करने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ और ओ को औ।

(१२८) व्यंजन—क से लेकर ह तक के वर्णों को व्यंजन या हल् कहते हैं।

(१२९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होने वाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधार वाला समानाधिकरण होता है।

(१३०) शब्द—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) शिक्षा—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देने वाले ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण-ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं। (१३२) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। जुहोत्यादि में श्लु होने पर गुण होता है।

(१३३) श्वास—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग श ष स ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है। (१३४) षट्—(ष्णान्ता षट् १।१।२४) ष् और न् अन्त वाली संख्याओं को षट् कहते हैं।

(१३५) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा शब्द कहते हैं।

(१३६) संयोग—(हलोऽनन्तराः संयोगः, १।१।७) व्यंजनों के बीच में स्वर वर्ण न हों तो उन्हें संयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सप्तम में प् और त, र् और थ।

(१३७) संवार—बाह्य प्रयत्न (वर्गों के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह य व र ल) संवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार कुछ संकुचित (सिकुड़ा) रहता है।

(१३८) संवृत—ह्रस्व अ बोलचाल में संवृत (मुख-द्वार संकुचित) होता है।

(१३९) संहिता—(परः संनिकर्षः संहिता १।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। संहिता की अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समासयुक्त पद में संहिता अवश्य होगी। वाक्य में संहिता ऐच्छिक है।

(१४०) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं। (१४१) सत्—(तौ सत् ३।२।१२७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं। (१४२) सन्—(धातोः कर्मणः ३।१।७) इच्छा अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है। कृ > चिकीर्षति।

(१४३) सन्धि—स्वरों व्यंजनों या विसर्ग के परस्पर मिलने को सन्धि कहते हैं। (१४४) समानाधिकरण—एक आधार को समानाधिकरण कहते हैं।

(१४५) समास—समास का अर्थ है संक्षेप। दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है। समासयुक्त शब्द को समस्त पद कहते हैं। समस्त शब्द एक शब्द होता है। समास के ६ भेद हैं—१. अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष ३. कर्मधारय ४. द्विगु, ५. बहुव्रीहि ६. द्वन्द्व।

(१४६) समासान्त—समासयुक्त शब्द के अन्त में होने वाले कार्यों को समासान्त कहते हैं। (१४७) समाहार—समाहार का अर्थ है समूह। समाहार द्वन्द्व में प्रायः नपुं. एकवचन होता है। कभी स्त्रीलिंग भी होता है।

(१४८) सम्प्रसारण—(इग्यणः सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को लृ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं। सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे।

(१४९) सर्वनाम—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, यत्, तत्, किम्, युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। इनका सम्बोधन नहीं होता।

(१५०) सर्वनामस्थान—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४३) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पाँच सुप् (कारकचिह्न, सु औ जस्, अम् औट्) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपुं० में नहीं।

(१५१) सवर्ण—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और प्रयत्न मिलता है, उन्हें सवर्ण कहते हैं। जैसे—इ चवर्ग य श तालव्य हैं अतः सवर्ण हैं।

(१५२) सार्वधातुक—(तिङ् शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३) धातु के बाद लगने वाले तिङ् (ति तः अन्ति) और शित् प्रत्यय (शप् आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष आर्धधातुक होते हैं।

(१५३) सुप्—(स्वौजस० सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में आने वाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक-चिह्न (सु औ जः आदि) सुप् कहलाते हैं।

(१५४) सुबन्त—सुप् (सु औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं।

(१५५) सूत्र—पाणिनि-रचित नियमों को सूत्र कहते हैं। इनके बाद निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः भाव यह है—१ अध्याय-संख्या २ पाद-संख्या ३ सूत्र-संख्या।

(१५६) सेट्—जिन धातुओं में बीच में प्रत्यय से पहले इ आता है उन्हें सेट् (इट् वाली) कहते हैं। जैसे—पठ्, लिख्। (१५७) स्त्रीप्रत्यय—स्त्रीलिंग के बोधक टाप् (आ) ङीप् (ई) आदि स्त्रीप्रत्यय कहलाते हैं। (१५८) स्त्रीलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। स्त्रीत्व का बोध कराता है। जैसे—स्त्री, नदी।

(१५९) स्थान—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) उच्चारण-स्थान कण्ठ तालु आदि का संक्षिप्त नाम स्थान है। जैसे—अ कवर्ग ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है।

(१६०) स्पर्श—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ कण्ठ तालु आदि का स्पर्श करती है।

(१६१) स्वर—(अचः स्वराः) अचों (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते हैं।

(१६२) स्वरित—(समाहारः स्वरितः, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यगत स्वर को स्वरित कहते हैं। यह मध्यम ध्वनि से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८।४।६६)। वेद में उदात्त स्वर के बाद वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। साधारण नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा, अन्यथा उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) हल्—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं। इन्हें व्यंजन भी कहते हैं। (१६४) हलन्त—हल् अर्थात् व्यंजन जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दों या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) ह्रस्व—(ह्रस्वं लघु, १।४।१०) अ इ उ ऋ ऌ को ह्रस्व स्वर कहते हैं।

(१२) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का ही इस शब्दकोष में संग्रह है।

(२) जो शब्द राम, रमा, गृह के तुल्य हैं, उनके रूप राम आदि के तुल्य चलावें। अ से पुं०, आ से स्त्री०, अम् से नपुं० समझें। शेष शब्दों के आगे पुं० आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप 'शब्दरूप-संग्रह' में दिए तत्सदृश शब्दों के तुल्य चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं:—पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, न० = नपुंसक लिंग।

(३) धातुओं के आगे संकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओं के रूप चलाने के लिए 'धातुरूप-संग्रह' में दी गई प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखें तथा उस गण की निर्दिष्ट धातु को देखें। तदनुसार रूप चलावें। 'धातुरूप-कोष' में सभी धातुओं के १० लकारों के रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादिक्रम से दी गई हैं। उसी प्रकार रूप चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं:—१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। प० = परस्मैपद, आ० = आत्मनेपद, उ० = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अ० = अव्यय।

(५) विशेषणों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। जो विशेष्य का लिंग होगा वही विशेषण का लिंग होगा। वि० = विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई-सा एक शब्द चुन लें।

अ

अंगीठी—हसन्ती (स्त्री०)
अंगूठी—अंगुलीयकम्
अंगूठी नामांकित—मुद्रिका
अंगूर—द्राक्षा, मृद्वीका
अंजीर—अंजीरम्
अखरोट—अक्षोटम्
अग्नि—कृशानुः (पुं०) जातवेदस् (पुं०)
अचार—सन्धितम्
अच्छा लगना—रुच् (१ आ०), स्वद् (१ आ०)
अच्छा है...न कि—वरं...न (अ०)
अटारी—अट्टः
अण्डर-वीयर (जांघिया)—अर्धोरुकम्
अतिथि—प्राघुणः, अतिथिः, अभ्यागतः
अतिथि-सत्कर्ता—आतिथेयः
अदरक—आर्द्रकम्
अदला-बदला—विनिमयः
अधिकार होना—प्र + भू (१ प०)
अधीन—आयत्तः (वि०)
अध्यापक—अध्यापकः, उपाध्यायः
अनर्थ—[illegible]

अनार—दाडिमम्
अनुभव करना—अनु+भू (१ प)
अनुसन्धान करना—अनुसं+धा (१ उ)
अन्दर—अन्तः (अ०), अन्तरे (अ)
अन्न—अन्नम्
अन्न खेत में—सस्यम्
अपनाना—स्वी+कृ (८ उ)
अपमान करना—अव+ज्ञा (९ उ)
अप्राप्ति—अनुपलब्धि (स्त्री)
अफवाह—लोकप्रवादः, वार्ता
अभिनय करना—अभि+नी (१ उ०)
अभ्रक—अभ्रकम्
अमचूर—आम्रचूर्णम्
अमरूद—आम्रलम्, दृढबीजम्
अमावट—आम्रावर्तम्
अमावस्या—दर्शः, अमावास्या
अमृत—पीयूषम्, सुधा
अरहर—आढकी (स्त्री)
अरंडा—एरंडम्
अलग होना—वि+युज् (४ आ)
अलमारी—काष्ठमञ्जूषा
अवश्य—नूनम्, खलु, न न (अ०)
असमर्थ—अक्षम (वि)
असेम्बली हाल—आस्थानम्

आ

आँख—चक्षुस् (न), नेत्रम्
आँगन—अजिरम्
आँत—अन्त्रम्
आँधी—प्रवातः
आँवड़ा—आम्रातकम्
आँवला—आमलकी (स्त्री)
आँसू—अश्रु (न)
आक—अर्कः

आकाश—व्योमन् (न), वियत् (न)
आगा—पुरोभागः, अग्रभागः (पुं०)
आगन्तुक—आगन्तुः (पुं)
आगे—अग्रे (अ), ऊर्ध्वं (अ)
आग्रह—निर्बन्धः
आजकल—अद्यत्वे (अ०)
आज्ञा—शासनम्, नियोगः
आज्ञा देना—अनु+ज्ञा (९ उ०)
आटा—चूर्णम्
आटे का हलुआ—यवागूः (स्त्री०)
आड़ू—आरुकः (पुं०)
आकृत—अभिकरणम्
आढ़ती—अभिकर्ता (पुं)
आदर पाना—आ+दृ (६ आ०)
आधी रात—निशीथः
आना—आगम् (१ प), अभ्यागम् (१ प), आ+या (२ प)
आ पड़ना—आ+पत् (१ प०)
आपत्तिग्रस्त—आपन्नः (वि०)
आबनूस—तमालः
आभूषण—आभरणम्
आम का वृक्ष—रसालः, सहकारः, आम्रः
आम का फल—आम्रम्
आम, कलमी—राजाम्रम्
आमरसी—आम्रमध्ये (रसमी)
आम रास्ता—जनमार्गः
आयरन (लोहा)—अयस् (न)
आयात पर चुंगी—आयातशुल्कम्
आयु—आयुष् (न०), वयस् (न)
आराम कुर्सी—सुखासन्दिका
आरी—करपत्रम्
आलस्य करना—तन्द्र (णिच्)
आलू—आलुः (पुं)
आलू की टिकिया—पक्वालुः (पुं)
आलूबुखारा—आलुकम्

आशंका करना—आ + शंक् (१ आ)
आशा करना—आ + शंस् (१ आ)

इ

इकट्ठा करना—सं + चि (५ उ), चय् (१ उ)
इच्छुक—सस्पृहः (वि)
इत्र—गन्धतैलम्
इंक पेन्सिल—मसितूलिका
इन्कम टैक्स—आयकरः
इन्द्र—शतक्रतुः (पुं) मघवन् (पुं), इमरन् (पुं)
इन्द्रधनुष—इन्द्रायुधम्
इन्द्राणी—पौलोमी (स्त्री)
ईंधन—इन्धनम्
इन्फ्लुएन्ज़ा 'फ्लु—शीतज्वरः
इमरती—अमृती (स्त्री)
इमली—तिन्तिडीकम्
इम्पोर्ट—आयातः
इलायची—एला
इसलिए—अतः अतएव, ततः (अ)

ई

ईंट—इष्टका
ईंट, पक्की—पक्वेष्टका

उ

उगलना—उद् + गॄ (६ प)
उगला हुआ—उद्वान्तम् (वि)
उग्र—तीक्ष्णम्
उचित-अनुचित—सदसत् (न)
उचित है—स्थाने (अ)
उठना—उत्था (१ प) उत्पत् (१ प) उद् + नम् (१ प)
उठाना—उन्नी (उद् + नी, १ उ)
उड़द—माषः
उड़ना—उत्पत् (१ प) उद्भ्रम् (१ प)
उतरना—अव + तॄ (१ प)
उतार—अवरोहः
उत्कंठित—उत्कः
उत्तर, दिशा—उदीची (स्त्री)
उत्तर की ओर—उदच् (उद् + अञ्च्) (पुं)
उत्तरायण—उत्तरायणम्
उत्तीर्ण होना—उत्तॄ (उद् + तॄ १ प)
उत्पात-पतन—पातोत्पातः
उत्पन्न होना—सं + भू (१ प)
उधार—[illegible] (तृतीया)
उधार खाते—नाम्नि (नामन् न)
उपजाऊ—उर्वरा
उपभोग करना—उप + भुज् (७ आ)
उपयोग—विनियोगः
उपवास करना—उप + वस् (१ प)
उपेक्षा करना—उपेक्ष् (उप + ईक्ष् १ आ)
उबटन—उद्वर्तनम्
उबालना—क्वथ् (१ प)
उल्लंघन करना—उच्चर् (१ आ), क्रम् (१ उ) अति+क्रम् (१ आ०)
उल्लू—कौशिकः, उलूकः
उस्तरा—क्षुरम्

ऊ

ऊँचा—प्रांशुः (वि)
ऊँट—क्रमेलकः
ऊखल—उलूखलम्
ऊनी—राङ्कवम्
ऊपर फेंकना—उत् + क्षिप् (६ उ)
ऊसर—ऊषरः

ए

एक एक करके—एकैकशः (अ)
एक ओर से—एकतः (अ)
एक प्रकार से—एकधा (अ)

एक पास—एकपार्श्वम्
एक राय वाले—एकमतिः (स्त्री)
एक वेष—एकपरिधानम्
एकान्त में—रहसि (रहस् न)
एक्सपोर्ट—निर्यातः
एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिवः
एजेन्ट—अभिकर्ता (-कर्तृ, पुं)
एजेन्सी—अभिकरणम्
एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-शिक्षासंचालक
एरंड—एरण्डः

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपटः
ओवरकोट—बृहतिका
ओम्—उद्गीथः
ओले—करकाः

क

कंगन—कंकणम्
कंघी—प्रसाधनी (स्त्री)
कंठा—कण्ठाभरणम्
कंकाल—नारिपिः (पुं)
कंधा—स्कन्धः
कंधे की हड्डी—जत्रु (न)
ककड़ी—कर्कटिका कर्कटी (स्त्री)
कक्षा का साथी—सतीर्थ्यः
कचालू—पत्राङ्गः (पुं)
कचौड़ी—पिष्टिका
कछुआ—कच्छपः
कटहल का पेड़—पनसः
कटहल का फल—पनसम्
कटा हुआ—छिन्नम् (वि)

कटोरा—कटोरम्
कनोरी—कपोत
कठफोड़ा—दार्वाघाटः
कड़ा, सोने का—कटकः
कड़ाह—कटाहः
कड़ाही—स्वेदनी (स्त्री)
कदम्ब—नीपः
कद्दू—कूष्माण्डः
कनफूल—कर्णपूरः
कनेर—कर्णिकारः
कप—चषकः
कबाबी—मांसाशिन् (पुं)
कबूतर—पारावतः, कपोतः
कब्ज—अजीर्णं
कमर—श्रोणि (स्त्री)
कमरख—कर्मरङ्गम्
कमल—कञ्ज
कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल लाल—कोकनदम्
कमल श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कह्लारम्
कमीशन—शुल्कम्
कमीशन एजेन्ट—शुल्काजीवः
कम्बल—कम्बलः
करधन—मेखला
करना—वि+धा (३ उ) चर (१प) अनु+ष्ठा (१ प)
करील—करीरः
करेला—कारवेल्लः
करौंदा—करमर्दकः
कर्जा—ऋणम्
कर्जा देने वाला—उत्तमर्णः
कर्जा लेने वाला—अधमर्णः
कलई पुताई की—सुधा
कलफ करना—मण्ड+कृ (८ उ)

कलम—कलमः
कलमी आम—रसालम्
कलसा—कलशः
कलाई—मणिबन्धः
कलाई से कनी अंगुली तक—करभः
कलाकन्द—कलाकन्दः
कली—कलिका
कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनिवेशिन् (वि)
कवच—वर्मन् (न)
कष्ट करना—आयासः
कसकूट—कांस्यकूट
कस्बा—नगरी (स्त्री)
कहना—अभि + धा (३ उ) भाष् (१ आ) उद् + गृ (६ प) उद् + ईर् (१ उ)
कहाँ—क्व, कुत्र (अ)
काँच—काचः
काँच का गिलास—काचकंसः
काँपना—कम्प् (१ आ) वेप् (१ आ)
काँसा—कांस्यम्
कागज—कागदः
कागज की रीम—कागदरीमकः
काजल—कज्जलम्
काजू—काजवम्
काटना—कृत् (६ प), छिद् (७ उ) छ (१ उ)
कान—श्रोत्रम्
कान की बाली—कुण्डलम्
कानखजूरा—कर्णजलौका
कापी —पंजिका
काफल—श्रीपर्णिका
कॉफी—कफ्फी (स्त्री)
काम—कर्मन् (न)

काम आना—उप + युज् (४ आ)
कामदेव—पुष्पधन्वन् (पुं)
कार्टून—उपहासचित्रम्
कार्तिकेय—सेनानीः (पुं)
कार्पोरेशन—निगमः
कालेज—महाविद्यालयः
कितने—कति (वि)
किनारा—वेला
किरण—मयूखः, गभस्तिः (पुं) दीधिति (स्त्री)
किवाड़—कपाटम्
किवाड़ के पीछे का डंडा—अर्गला
किशमिश—शुष्कद्राक्षा
किसान—कृषीवलः कीनाशः
कीचड़—पङ्कः कर्दमः
कील—कीलः
कुँवर—कुमारः (पुं)
कुटिया—कुटी (स्त्री)
कुतिया—सरमा शुनी (स्त्री)
कुत्ता—श्वन् (पुं), कौलेयकः सारमेयः
कुदाल—खनित्रम्
कुनबा—कुटुम्बम्
कुप्पी—कुतूः (स्त्री)
कुबड़ा—कुब्जः
कुबेर—कुबेरः मनुष्यधर्मन् (पुं)
कुमुद की लता—कुमुदिनी (स्त्री)
कुम्हार—कुलालः, कुम्भकारः
कुर्ता—कंचुकः
कुर्सी—आसन्दिका
कुलपरम्परा—कुलक्रमम्
कुलफी—कुल्फी (स्त्री)
कुश्ती—मल्लयुद्ध
कुलीन—अभिजनः
कूटना—अवहननम्

कूड़ा—अवकरः
कूदना—कुर्द् (१ आ)
कृपाण—कौक्षेयकः
केकड़ा—कुलीरः
केतली—कन्दुः (पुं स्त्री)
केबिनेट—मन्त्रिपरिषद् (स्त्री)
कैन्सर—विद्रधिः (पुं)
केला—कदलीफलम्
केवड़ा—केतकी (स्त्री०)
कैंची—कर्तरी (स्त्री)
कै—वमथुः (पुं)
कोंपल—किसलयम्
कोट—प्राकारः
कोठरी—अपवरकः
कोतवाल—कोटपालः
कोतवाली—कोटपालिका
कोमल स्वर—मन्द्रस्वरः
कोयल—परभृतः, कोकिलः
कोल्हू—रसयन्त्रम्
कोहनी—कफोणिः (स्त्री)
कौआ—ध्वांक्षः, वायसः, काकः
क्या—किम्, किमु, ननु (अ)
क्या लाभ—किम्, को लाभः, किं प्रयोजनम्
क्योंकि—यतो हि, यतः (अ)
क्रीड़ा करना—क्रीड् (१ प), रम् (१ आ)
क्रीम—सरः
क्रोध करना—क्रुध् (४ प), कुप् (४ प)
क्रोधी—अमर्षणः
क्लर्क—करणिकः
क्षत्रिय—क्षत्रियः, द्विजातिः, द्विजन्मन् (पुं)
क्षमा करना—मृष् (१ उ), क्षम् (१ आ, ४ प)

ख

खंजन—खंजनः
खजूर—खर्जूरम्
खड्ग—खड्गः, निस्त्रिंशः
खपड़ा—खर्परः
खपड़ैल का—खर्परछदम् (वि)
खम्भा—स्तम्भः
खरबूजा—खर्बुजम्
खरीद—क्रयः
खरीदना—पण् (१ आ) क्री (९ उ)
खर्च करना—विनियोगः
खलिहान—खलम्
खस्ता पूरी—शष्कुली (स्त्री०)
खाँसी—कासः
खाजा—मधुशीर्षः
खाट—खट्वा
खाद्य—खाद्यम्
खान—खनिः (स्त्री)
खाना—भक्ष् (१० उ) खाद् (१ प), भुज् (७ आ)
खाया हुआ—जग्धम्
खिचड़ी—कृशरः
खिड़की—गवाक्षः, वातायनम्
खिन्न होना—खिद् (१ प)
खिरनी—क्षीरिका
खींचना—कृष् (१ प)
खीर—पायसम्
खील—लाजाः (पुं, बहु)
खुमानी—क्षुमानी (स्त्री)
खूँटी—नागदन्तकः
खून—रुधिरम्, असृज् (न)
खेत—क्षेत्रम्
खेती—कृषिः (स्त्री)

खेती के औज़ार—कृषियन्त्रम्
खेल का मैदान—क्रीडाक्षेत्रम्
खैर—खदिरः
खोजना—गवेष् (१ उ)
खोदना—खुद् (१ उ), खन् (१ उ)
खोपा—किरीटः

ग

गँड़ासा—तोमरः
गगरा—गर्गरः
गगरी—गर्गरी (स्त्री)
गजक—गजकः
गट्ठा—उस्वाटः
गड़रिया—अजाजीवः
गदा—गदा
गद्दा—तूलसंस्तरः
गधा—खरः
गन्धक—गन्धकः
गम बूट—अनुपदीना
गरजना—स्तनितम्
गर्दन—ग्रीवा
गर्मी (सूजाक)—उपदंशः
गला—कण्ठः
गली—वीथिका
गवेषणा करना—गवेष् (१ उ)
गाँव—ग्रामः
गाजर—गृञ्जनम्
गाय—गो (स्त्री), धेनुः (स्त्री)
गाल—कपोलः
गाहक—ग्राहकः
गिद्ध—गृध्रः
गिनना—गण् (१ उ)
गिना हुआ—संख्यातम् (वि)
गिरना—पत् (१ प) निपत् (१ प),
भ्रंश् (१ आ)

गिरहकट—ग्रन्थिभेदकः
गिलास—कंसः
गिलोय—अमृतवल्ली (स्त्री)
गीदड़—गोमायुः (पुं)
गुझिया—संयावः
गुणगान करना—कृप् (१ उ)
गुप्त—निभृतम् (वि)
गुप्ती (कटारी)—करवालिका
गुफा—गह्वरम्
गुलदस्ता—स्तबकः
गुलाब—स्थलपद्मम्
गुस्सा करना—कुप् (४ प) क्रुध्
(४ प)
गुग्गुल—गुग्गुलः
गूलर—उदुम्बरम्
गेंद—कन्दुकः
गेंदा—गन्धपुष्पम्
गेलरी—वीथिका
गेहूँ—गोधूमः
गोबर—गोमयम्
गोभी—गोभिका
गोष्ठी—गोष्ठिका गुटिका
गोह—गोधा
ग्रीष्म ऋतु—निदाघः, ग्रीष्मर्तुः (पुं)
ग्लेशियर—हिमसरित् (स्त्री)

घ

घंटा (समय)—होरा
घटना (होना)—घट् (१ आ)
घटना (कम होना)—अप+चि (५ उ)
घटिया—अनु (अ), उप (अ)
घड़ा—घटः, कुम्भः
घड़ी—घटिका
घर—सदनम्, गृहम्, भवनम्
घरेलू फर्नीचर—गृहोपस्कराः
घाटी—अद्रिद्रोणी (स्त्री)

घायल—आहतः (वि)
घी—आज्यम्, हविस् (न०)
घुँघरू—किङ्किणी (स्त्री)
घुघनी (आलू मटर)—कुल्माषः
घुटना—जानु (पुं न)
घुड़सवार—सादिन् (पुं) अश्वारोहिन् (पुं)
घूँघट काढ़ना—अवगुण्ठय (णिच्)
घूमना—भ्रम् (४ प) चर् (१ प), संचर् (१ प)
घेरा—वृतिः (स्त्री)
घेवर (मिठाई)—घृतपूरः
घोंसला—कुलायः
घोड़ा—अश्वः सप्तिः (पुं), रथ्य वाजिन् (पुं), हयः
घोषणा करना—घुष् (१ उ)

च

चकवा—चक्रवाकः
चकोतरा (फल)—मधुकर्कटी (स्त्री) मधुजम्बीरम्
चक्कर खाना—परि+घूर् (१ आ)
चचेरा भाई—पितृव्यपुत्रः
चटकनी—कीलः
चटनी—अवलेहः
चट्टान—शिला
चढ़ाव—आरोहः
चतुश्शाला—चतुःशालम्
चतुर—विदग्धः (वि)
चना—चणकः
चन्द्रमा—सुधांशुः (पुं), विधुः (पुं), सोमः
चपत—चपेटः
चपरासी—सेवाहारकः, दूतः
चप्पल—पादुका पादूः (स्त्री)
चबूतरा—स्थण्डिलम्, चत्वरम्
चबूतरा घर से बाहर का—अलिन्दः
चमकना—भास् (१ आ०), द्युत् (१ आ), दीप् (४ प)
चमचम (मिठाई)—चमनम्
चमचा—दर्वी (स्त्री)
चमार—चर्मकारः
चमेली—मालती (स्त्री)
चम्पा—चम्पकः
चम्मच—चमसः
चरना—चर् (१ प)
चर्बी—वसा
चर्बी हड्डी की—मज्जा
चलना—चल् (१ प) प्र+वृत् (१ आ), प्र+स्था (१ आ)
चलाना—चालय (णिच्)
चाँदनी—कौमुदी (स्त्री), ज्योत्स्ना
चॉक, लिखने की—कठिनी (स्त्री)
चाचा—पितृव्यः
चाची—पितृव्या
चाट—अवदंशः
चातक—चातकः
चादर—प्रच्छदः
चापलूस—चाटुपतिः (पुं)
चापलूसी—स्तोत्रमणितम्
चाबुक—तोत्त्रम्
चाय—चायम्
चारों ओर मुड़ने वाली कुर्सी—पर्यः
चारों वर्ण—चातुर्वर्ण्यम्
चावल—व्रीहिः (पुं)
चावल भूसी-रहित—तण्डुलः
चाहना—ईह् (१ आ), वाञ्छ् (१ प), कांक्ष् (१ प)
चिड़िया—पक्षिन् (पुं), चटका
चित्त—चेतस् (न), चित्तम्
चित्रकार—चित्रकारः

चिमटा—संदंशः
चिरचिटा (ओषधि)—अपामार्गः
चिरौंजी—प्रियालम्
चिलमची—हस्तधावनी (स्त्री)
पतद्ग्रहः
चिह्न—अङ्कः लक्ष्मन् (न)
चीड़ (वृक्ष)—सरलः (पुं)
चीनी—सिता
चीफ मिनिस्टर—मुख्यमन्त्रिन् (पुं)
चीरना—छिद् (७ उ)
चील—चिल्लः
चुंगी—शुल्कः, शुल्कशाला
चुंगी का अध्यक्ष—शौल्किकः
चुगना—चि (५ उ)
चुगलखोर—द्विजिह्वः
चुनना—चि (५ उ), अव+चि
(५ उ)
चुन्नी (ओढ़नी)—प्रच्छदपटः
चुन्नी (रत्न)—माणिक्यम्
चुप (चुप्पी)—जोषम् (अ)
चुराना—मुष् (९ प) चुर् (१० उ)
चूँकि—ननु (अ) यतोहि (अ)
चूड़ी—काचवलयम्
चूल्हा—चुल्लिः (स्त्री) चुल्ली (स्त्री)
चेचक—शीतला
चेष्टा करना—चेष्ट् (१ आ)
चोंच—चञ्चुः (स्त्री) चञ्चूः (स्त्री)
चोट—क्षतम्
चोट मारना—तड् (१ उ)
चोटी—शिखा सानुः (पुं, न) शृङ्गम्
चोर—तस्करः चौरः स्तेनः, पाटच्चरः
चौक—चतुष्पथः, शृंगाटकम्
चौकन्ना—प्रत्युत्पन्नमतिः (वि)
चौमंजिला—चतुर्भूमिकः
चौराहा—चतुष्पथः, शृंगाटकम्

छ

छज्जा—वलभिः (स्त्री) वलभी (स्त्री)
छत—छदिः (स्त्री)
छाता (छत्र)—आतपत्रम्
छाती—वक्षस् (न) उरस् (न)
छात्र—छात्रः, अन्तेवासिन् (पुं)
विद्यार्थिन् (पुं)
छाया—अभ्येत्री (स्त्री) छाया
छानना—चालय (णिच्)
छिपकली—गृहगोधिका
छिप जाना—तिरो+भू (१ प)
छिपना—ली (४ आ) नि+ली
(४ आ) अन्तर्+धा (३ उ)
छींटना—पो (४ प) नस् (१ प)
छीला हुआ—तष्टम् (वि)
छुट्टी—विरतिः (स्त्री) अवकाशः
छुहारा—क्षुधाहरम्
छेद करना—छिद् (१ उ)
छेनी—छेदनः
छोटा भाई—अनुजः
छोड़ना—त्यज् (१ प) मुच् (६ उ)
हा (३ प) अस् (४ प) अप+
अस् (४ प), उज्झ् (६ प)
छोड़ा हुआ—प्रत्याख्यातः, परित्यक्तः (वि)

ज

जंगली चावल—श्यामाकः (साँवा)
जंघा—ऊरुः (पुं)
जंजीर—शृंखला
जमाई—जामातृ (पुं)
जड़—मूलम्
जड़ से—मूलतः
जन्म लेना—प्रादुर्+भू (१ प)
जबतक तबतक—यावत् तावत् (अ)
जब—यदा (अ)
जर्मन सिल्वर—चन्द्रलोहम्

जल—तोयम्, अम्बु (न०), वारि (न०), नीरम्
जलकण—शीकरः
जलतरंग (बाजा)—जलतरङ्गः
जलना—ज्वल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)
जलपान—जलपानम्
जल-सेनापति—नौसेनाध्यक्षः
जलाना—दह् (१ प०)
जलूस—जनयात्रा
जलेबी—कुण्डली (स्त्री०)
जवाकुसुम (फूल)—जपाकुसुमम्, जपापुष्पम्
जस्त—यशदम्
जहाज, पानी का—पोतः
जहाज(विमान)—व्योमयानम्, विमानम्
जागना—जागृ (२ प०)
जादूगर—मायाकारः, ऐन्द्रजालिकः, मायाविन् (पुं०)
जानना—ज्ञा (९ उ०), अव+गम् (१ प०), अधि+गम् (१ प०)
जाननेवाला—अभिज्ञः
जाना—गम् (१ प०), इ (२ प०), या (२ प०)
जामुन—जम्बुः (स्त्री०), जम्बूः (स्त्री०)
जार, काँच का—काचघटी (स्त्री०)
जाल—वागुरा, जालम्
जिगर—यकृत्
जितेन्द्रिय—दान्तः
जिद्—निर्बन्धः
जिल्द—प्रावरणम्
जीजा (बहनोई)—आवुत्तः, भगिनीपतिः (पुं०)
जीतना—जि (१ प०), विजि (१ आ०)
जीभ—रसना, जिह्वा
जीरा—जीरकः
जीविका—वृत्तिः (स्त्री०), जीविका
जुकाम—प्रतिश्यायः
जुती हुई भूमि—सीता
जुलाहा—तन्तुवायः
जुआरी—द्यूतकारः
जूड़े की जाली—वेणीबन्धम्
जूता (बूट)—उपानह् (स्त्री०)
जूता सीने की सूई—चर्मप्रभेदिका
जूही (फूल)—यूथिका
जेब काटना—ग्रन्थि+भिद् (७ उ०)
जेल—कारा, कारागारम्, बन्दिगृहम्
जैसा वैसा—यथा तथा (अ०)
जोड़ना—सं+योजय (णिच्)
जोतना—कृष् (१ प०, ६ उ०)
जौ—यवः
ज्ञात—अवगतम्
ज्यों ही त्यों ही—यावत् तावत् (अ०)
ज्योति—ज्योतिस् (न०), द्योतिस् (न०)
ज्वार—यवनालः

झ

झगड़ा—कलहः
झगड़ालू—कलहप्रियः, कलहकामः
झरना—प्रपातः
झाड़ी—कुञ्जः, निकुञ्जः
झाड़ू—मार्जनी (स्त्री०)
झील—सरसी (स्त्री०)
झख, मछली—झषः
झुकना—नम् (१ प०), नमनम्, प्रणमम्
झुकाना—नमय (णिच्)
झोंपड़ी—उटजः, पर्णशाला

ट

टकसाल—टंकशालः
टकसाल का अध्यक्ष—टंकशालाध्यक्षः
टखना (पैर की हड्डी)—गुल्फः
टमाटर—रक्ताम्रः

टब (पानी का)—द्रोणिः (स्त्री०), द्रोणी (स्त्री०)
टाइप करना—टङ्क् (१ उ०)
टाइप-राइटर—टङ्कनयन्त्रम्
टाइफाइड—संनिपातज्वरः
टाइम-टेबुल—समय-सारणी (स्त्री०)
टॉफी—गुल्म
टिड्डा—चिचिटः
टिकुली (बेंदी)—ललाटाभरणम्
टिड्डी—शलभः
टीयर गैस—धूमास्त्रम्, अश्रुधूमः
टी (चाय)—चायम्
टी० बी० (तपेदिक)—राजयक्ष्मन् (पुं०), राजयक्ष्मा
टीका (मंगलार्थ)—ललाटिका
टीन—त्रपु (न०)
टीन की चद्दर—त्रपुफलकम्
टी पॉट—चायपात्रम्
टी पार्टी (चाय-पार्टी)—चपीतिः (स्त्री०)
टूटा हुआ—भुग्नम् (वि०)
टूथ पाउडर—दन्तचूर्णम्
टूथ पेस्ट—दन्तपिष्टकम्
टेनिस का खेल—प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा
टेलर (दर्जी)—सौचिकः
टेलर-शॉप—सौचिकवर्तिका
टैंक (हौज)—जलाशयः
टैक्स—करः
टोस्ट—भ्रष्टापूपः
ट्रैक्टर—खनियन्त्रम्

ठ

ठगना—वञ्च् (१ आ०), अभिसन्धा (१ उ०)
ठीक (सत्य)—परमार्थतः, परमार्थेन, सम्यक् (अ०)
ठीक घटना—उपपद् (४ आ०)
ठुकराना—निरस् (१ प०)
ठोकना (कील आदि)—कील् (१ प०)

ड

डंठल—वृन्तम्
डँसना—दंश् (१ प०)
डंडी मारना—कूटमानं+कृ (८ उ०)
डबल रोटी—अभ्यूषः
डस्टर—मार्जकः
डाँटना—भर्त्स् (१ आ०)
डाइनिंग टेबुल—भोजनफलकम्
डाइनिंग रूम—भोजनागारम्
डाइरेक्टर (एजुकेशन)—शिक्षासंचालकः
डायबिटीज—मधुमेहः, मधुप्रमेहः
डाक गाड़ी—डाक्यानम्
डाकू—पाटच्चरः, लुण्ठकः, परिपन्थिन् (पुं०)
डाक्टर—भिषग्वरः
डालना—नि+क्षिप् (६ उ०) पातय (णिच्)
डिनर पार्टी—सहभोजः, सग्धिः (स्त्री०)
डिप्टी डाइरेक्टर (शिक्षा)—उपशिक्षा संचालकः
डूबना—मस्ज् (६ प०)
डेस्क—लेखनपीठम्
ड्राइंग रूम—उपवेशगृहम्
ड्राईक्लीनर—निर्णेजकः

ढ

ढकना—आ+वृ (५ उ०)
ढका हुआ—प्रच्छन्न (वि०)
ढाक—पलाशः
ढिंढोरा—डिण्डिमः
ढीठ—धृष्टः
ढूँढना—अन्विष् (अनु+इष् ४ प०), मार्ग् (१ उ०)
ढेला—लोष्टम्
ढाल—चर्म
ढोलक—ढोलकः

त

ला (जलेबी आदि पकाने की)—पिष्ट-पचनम्

तकिया—उपधानम्, उपबर्ह

तट—तटः, कूलम्

तंतिया (भिरड़)—वरटा

तन्दूर (रोटी पकाने का)—कन्दुः (स्त्री)

तपाना—तप् (१ प)

तपेदिक—राजयक्ष्मः, राजयक्ष्मन् (पुं)

तबतक—तावत् (अ)

तबला—मुरजः

तरंग—वीचिः (स्त्री), ऊर्मिः (स्त्री), तरङ्ग

तरबूज—कालिन्दम्, तर्बुजम्

तराई—उपत्यका

तराजू—तुला

तवा—ऋजीषम्

तसला—पिठरा (स्त्री)

तहमद (लुंगी)—मध्यपम्

तश्तरी—शराव

ताँबा—ताम्रम्

ताँबे के बर्तन बनाने वाला—ताम्रिकः

ताड़—तालः

तानपूरा (बाजा)—तानपूरः

तारा—तारा, ज्योतिष् (न)

तालाब—सरस् (न)

ताहरी (पुलाव)—पुलाकः

तिजोरी—लौहमञ्जूषा

तिपाई—त्रिपादिका

तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिकः

तिरस्कार—अवज्ञा

तिरस्कार होना—तिरस्+कृ (कर्म)

तिरस्कृत—विमानितः, तिरस्कृतः

तिरस्कृत करना—परि+भू (१ प), तिरस्+कृ (८ उ)

तिल—तिलः

तिलक—तिलकम्

तिल्ली—प्लीहा

तीव्र—तीक्ष्णम् (वि)

तीव्र स्वर—तार

तीसरा पहर—अपराह्णः

तुच्छता—अकिञ्चित्करत्वम्

तुरही (बाजा)—तूर्यम्

तूणीर—तूणीर

तूतिया—तुत्थाञ्जनम्

तृप्त करना—तर्पय (णिच्)

तृप्त होना—तृप् (४ प, १ उ)

तेंदुआ—तरक्षुः (पुं)

तेज—तीव्रम्, शातम् (तीक्ष्ण)

तेज (ओज)—तेजस् (न)

तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ०)

तेली—तैलकारः

तैरना—तॄ (१ प), सं+तॄ (१ प)

तैयार—निष्पन्नम्, संपन्नम्, सज्जः

तैयार होना—सं+पद् (४ आ), सं+नह् (४ उ०)

तो—तु, तावत्, ततः (अ)

तोड़ना—त्रुट् (१ आ), भिद् (७ उ), भञ्ज् (७ प), खण्ड् (१ उ)

तोता—शुकः, कीरः

तोप—शतघ्नी (स्त्री)

तोरई—जालिनी (स्त्री)

तोल—तोलः

तोलना—तोलनम्

तोलना—तुल् (१ उ)

त्यक्त—उज्झितम्, त्यक्तम्, उत्सृष्टम्

त्वचा—त्वच् (स्त्री)

त

ाह (अंगेठी आदि पकाने की)—पिष्ट-पचनम्

क्रिया—उपधानम्, उष्मा

ा—तटः, कूलम्

ाया (मिरचा)—मरिचा

ूर (रोटी पकाने का)—कन्दुः (स्त्री)

ना—तप् (१ प०)

तपाद्वेक—यवनवस्त्र, यवनवस्त्र (पुं)

तबदफ—वाचन् (न०)

तबला—मुरजः

तरंग—वीचिः (स्त्री), ऊर्मिः (स्त्री), तरङ्गः

तरबूज—कालिन्दम्, मतुलम्

तराई—उपत्यका

तराजू—तुला

तवा—ऋजीषम्

तसला—पिपला (स्त्री)

तहमद (लुंगी)—प्रावृतम्

तश्तरी—शरावः

ताँबा—ताम्रकम्

ताँत के पदवन बनाने वाला—धानिका

ताड़—तालः

तानपूरा (बाजा)—तानपूरः

तारा—तारा, ज्योतिष् (न)

तालाब—सरस् (न)

ताहरी (पुलाव)—पुलाकः

तिजौरी—लोहमञ्जूषा

तिपाई—त्रिपादिका

तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिका

तिरस्कार—अवज्ञा

तिरस्कार करना—तिरस्+कृ (उभ)

तिरस्कृत—निरस्त, तिरस्कृता

तिरस्कृत करना—परि+भू (१ …) तिरस्+कृ (८ उ)

तिल—तिलः

तिलक—तिलकम्

तिल्ली—प्लीहा

तीव्र—तीक्ष्णम् (वि)

तीव्र स्वर—तारः

तीसरा पहर—अपराह्णः

तुच्छता—अकिंचित्करत्वम्

तुरही (बाजा)—तूर्यम्

तूणीर—तूणीरः

तूतिया—तुत्थाञ्जनम्

तृप्त करना—तर्पय (णिच्)

तृप्त होना—तृप् (४ प १० उ)

तेंदुआ—तरक्षुः (पुं)

तेज—तीव्रम्, शातम् (तीक्ष्ण)

तेज (भाला)—तेजस् (न०)

तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ)

तेली—तैलकारः

तैरना—प्लु (१ प) सं+तॄ (१ प)

तैयार—निष्पन्नम्, संपन्नम्, सज्जः

तैयार होना—सं+पद् (४ आ), सं+नह् (४ उ)

तो—तु, तावत्, तदा (अ)

तोड़ना—त्रुट् (१ आ) भिद् (७ उ०), भञ्ज् (७ प), खण्ड् (१० उ)

तोता—शुकः, कीरः

तोप—शतघ्नी (स्त्री)

तोरई—जालिनी (स्त्री०)

तोल—तोलः

तोलमा—तोलनम्

तोलना—तुल् (१ उ)

त्याग—उत्सर्जनम्, त्यागम्, उज्झनम्

त्वचा—त्वच् (स्त्री)

नागिन—नागी (स्त्री॰)
नाती—नप्तृ (पुं॰)
नाना—मातामहः
नानी—मातामही (स्त्री॰)
नापना—मा (२ प॰, ३ आ॰)
नारंगी—नारङ्गम्
नारियल—नारिकेलः(वृक्ष), नारिकेलम्(फल)
नाला—निर्झरः
नाली—प्रणालिका नाडी (स्त्री॰),
नालिः (स्त्री॰)
नाव—नौः (स्त्री॰), नौका
नाविक—कर्णधारः, नाविकः
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्तः प्रातराशः
निःसंकोच—निःशङ्कम्, निर्भयम्
निर्बाधम्
निकलना—निः+सृ (१ प॰), प्र+भू (१ प॰) उद्+भू (१ प॰), निर्+गम् (१ प॰), उद्+गम् (१ प॰)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि+गृ (६ प॰)
निचोड़ना—दुह् (२ उ॰)
निन्दा करना—निन्द् (१ प॰), अधि+क्षिप् (६ उ॰)
निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—श्वसनकज्वरः
नियम—नियमः
निरन्तर—अनारतम्, अजस्रम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पुं॰) निरपराधः
निर्णय करना—निर्+नी (१ उ॰)
निर्भय—निर्भयम्, निःशङ्कः
निर्यात (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवारः

निशान लगाना—चिह्न् (१० उ॰)
निश्चय करना—निश्चि (निस्+चि ५ उ॰)
निश्चय से—नूनम्, खलु, वै, नाम (अ॰)
नीच—निकृष्टः अधमः अपकृष्टः, अपसदः
नीबू—जम्बीरम्
नीबू, कागजी—जम्बीरकम्
नीबू, बिजौरा—बीजपूरः
नीम—निम्बः
नील—नीली (स्त्री॰)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाषः
नीलम (मणि)—इन्द्रनीलः
नील लगाना—नीली+कृ (८ उ॰)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न॰)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—ज्ञापकम्
नौकर—कर्मकरः, भृत्यः, किंकरः
नौका, छोटी—उडुपः
नौ रस—नव रसाः
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१० आ॰)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ॰)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्वटिका
परवल (साग)—पटोलः
पटरा (खेत बराबर करने का)—लोष्टभेदनः
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पढ़ना—पठ् (१ प॰), नि+पठ् (१ प॰)
पढ़ाना—पाठय(णिच्) अध्यापय(णिच्)
पतंगा—शलभः

देवरानी—यातृ (स्त्री)
देहली (द्वार की)—देहली (स्त्री)
दो-तीन—द्वित्राः (त्रि)
दोनों प्रकार से—उभयथा (अ०)
दोपहर—मध्याह्नः
दोपहर के बाद का समय (p. m.)—अपराह्णः
दोपहर से पहले का समय (a. m.)—पूर्वाह्णः
दो प्रकार से—द्विधा (अ)
दोष लगाना—दुष् (१ आ०)
द्रोह करना—द्रुह् (४ प)
द्वार—द्वारम्, प्रतीहारः
द्वारपाल—प्रतीहारः प्रतीहारी (स्त्री)

ध

धड़—कबन्धः
धतूरा—धत्तूरः
धन—धनम्, वित्तम्, द्रविणम्, संपद् (स्त्री)
धनिया—धान्यकम्
धर्मार्थ यज्ञादि—इष्टापूर्तम्
धनुर्धर—धन्विन् (पु), धनुर्धरः
धनुष—कार्मुकम्, इष्वासः, कोदण्डम्, चापम्
धमकाना—तर्ज् (१० आ)
धागा—सूत्रम्, तन्तुः (पु०)
धान (भूसीसहित)—धान्यकम्
धार रखने वाला—शस्त्रमार्जः
धारण करना—धृ (१ उ०, १ उ)
धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), शान् (१ उ)
धुर्मुस (कंकड़ आदि कूटने का)—कोटिशः
धूप—आतपः
धूल—रजस् (न), पांशुः (पु), धूलिः (स्त्री), रेणुः (पु०)
धोखा—कैतवम्
धोखा देना—वञ्च् (१ आ), विप्र+लभ् (१ आ०)
धोती—अन्तरीयम्, धौतवस्त्रम्
धोना—धाव् (१ उ), प्र+क्षल् (१ उ), निज् (३ उ०)
धोबिन—रजकी (स्त्री०)
धोबी—रजकः, निर्णेजकः
धौंकनी—भस्त्रा
ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना—अवेक्ष् (अव+ईक्ष् १ आ०)
ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ)

न

नक्शा—नक्शम्
नगद—मूल्येन (तृतीया)
नगर—पत्तनम्
नगाड़ा—दुन्दुभिः (पु, स्त्री)
नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, स्रवन्ती
ननँद—ननान्दृ (स्त्री०)
नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (—क)
नफीरी (पीप बाजा)—पीपावाद्यम्
नमक—लवणम्
नमक, साँभर—रौमकम्, पैसकम्
नमक सेंधा—सैन्धवम्, सैन्धवः
नमकीन (अन्न)—लवणान्नम्
नमकीन सेव—शूलकः
नम्र—विनीत, नम्रः (त्रि)
नराई (खेत की सफाई)—क्षेत्रपरिष्कारः
नवग्रह—नव ग्रहाः
नष्ट होना—नश् (४ प), ध्वंस् (१ आ०), उत्+सद् (१ प०)
नस—शिरा
नाइट्रोजन—नत्रजनम्
नाइलोन का (वस्त्र)—नयलोनकम्
नाई—नापितः
नाक—घ्राणम्, नासिका, नासा
नाक का फूल—नासापुष्पम्
नाचना—नृत् (४ प)
नाड़ी—नाडि (स्त्री), नाडी (स्त्री)

नातिन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ (पुं)
नाना—मातामह
नानी—मातामही (स्त्री)
नापना—मा (२ प १ आ)
नारंगी—नारंगम्
नारियल—नारिकेल (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला—निर्झरः
नाली—प्रणालिका नाली (स्त्री),
नालिः (स्त्री)
नाव—नौ (स्त्री) नौका
नाविक—कर्णधारः, नाविकः
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्तः, प्रातराश
निःसंकोच—विस्रब्धम् विश्रब्धम्
निःशङ्कम्
निकलना—निः + सृ (१ प) प्र + भू
(१ प), उद् + भू (१ प) निर् +
गम् (१ प), उद् + गम् (१ प)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि + गृ (६ प)
निचोड़ना—सु (५ उ)
निन्दा करना—निन्द् (१ प), अधि +
क्षिप् (६ उ)
निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—श्वसनकज्वरः
नियम—नियमः
निरन्तर—अभीक्ष्णम्, सततम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पुं), निरपराधः
निर्णय करना—निर् + णी (१ उ)
निर्णय—निर्णयम्, न्यायः
निपात (पक्षपोट)—निपातः
निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवारः

निशान लगाना—चिह्न् (१० उ)
निश्चय करना—निश्चि (निस् + चि ५ उ)
निश्चय से—नूनम् खलु, वै नाम (अ)
नीच—निकृष्टः, अधम अपकृष्ट अपसदः
नींबू—जम्बीरम्
नींबू कागजी—जम्बीरकम्
नींबू बिजौरा—बीजपूरः
नीम—निम्बः
नील—नीली (स्त्री)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाषः
नीलम (मणि)—इन्द्रनीलः
नीला लगाना—नीली + कृ (८ उ)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम् चक्षुष् (न)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—ज्ञापकम्
नौकर—कर्मकरः, भृत्यः, किंकरः
नौका छोटी—उडुपः
नौ रस—नव रसाः
न्योता देना—नि + मन्त्र् (१० आ)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्वटिका
पखवाड़ा (सारा)—पयोदः
पटरा (खेत बराबर करने का)—
कोटिशः
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पड़ना—पत् (१ प), नि + पत् (१ प)
पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
पतंगा—शलभः

पतला—अपचित तनु (वि), कृश
पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
पतीली—स्थाली (स्त्री)
पत्ता—पर्णम्, पत्रम्
पत्थर—ग्रावन्(पुं) अश्मन्(पुं) उपल:
पत्रलेखा (सजाना)—पत्रलेखा
पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री)
पनडुब्बी—जलान्तरितपोत
पनवाड़ी (पानवाला)—ताम्बूलिक
पन्ना (रत्न)—मरकतम्
पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री)
परकोटा—प्राकार:
परवाह करना—ईक्ष् (१ आ), प्र+ईक्ष् (१ आ)
परौंठा—पूपिका
पराग—मकरन्द:, पराग:
पराल (फूँस)—पलाल
परीक्षा करना—परीक्ष्(परि+ईक्ष् १ आ)
परोसना—परि+वेषय (णिच्)
पर्वत—अद्रि (पुं), गिरि(पुं), भूभृत्(पुं)
पलंग—पल्यङ्क:
पलक—पक्ष्मन् (न)
पवित्र—पूतम् पवित्रम् पावनम् (वि)
पश्चिम—प्रतीची (स्त्री)
पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ)
पहनना—परि+धा (३ उ)
पहलवान—मल्ल:
पहुँचना—आ+सद् (१ प), प्र+आप् (५ प०)
पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
पहुँची (गहना)—कटक:
पाँच छ:—पञ्चषा:
पाउडर—चूर्णकम्
पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्ष:
पाखण्डी—पाषण्डिन् (पुं०)

पाजेब (गहना)—नूपुरम्
पाठशाला—पाठशाला
पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
पान—ताम्बूलम्
पानदान—ताम्बूलकरङ्क:
पाना—आप् (५ प), प्र+आप् (५ प) प्रति+पद् (४ आ) विद् (६ उ) अधि+गम् (१ प)
पानी का जहाज—पोत
पापड़—पर्पट:
पायजामा—पादयाम:
पार करना—तॄ (१ प), उत्+तॄ, निस्+तॄ (१ प)
पारा—पारद:
पार्क—पुरोद्यानम्, पुरोपवनम्
पार्वती—भवानी (स्त्री), गौरी, मृडानी (स्त्री)
पालक (साग)—पालकी (स्त्री)
पालन करना—भुज् (७ प), रक्ष् (१ आ)
पालिश—पादुरंजनम्, पादुरंजक
पास आना—उप+गम् (१ प), उप+सृ (१ प)
पासा (जुए का)—अक्षा: (बहु)
पाहुन (अतिथि)—प्राघुण, अभ्यागत
पिघलना—द्रावय (णिच्)
पिघला हुआ—द्रुतम् गलितम्, द्रवीभूतम्
पिलाना—पायय (पा+णिच्)
पियानो (बाजा)—तन्त्रीवाद्यम्
पिस्ता—अंकोट्यम्
पिस्तौल—लघुभुशुण्डि: (स्त्री), गुलिकास्त्रम्
पीछा करना—अनु+सृ (१ प)
पीछे चलना—अनु+चर् (१ प), अनु+वृत् (१ आ)

पीछे आना—अनु + गम् (१ प)
पीछे पीछे—अनुपदम् (अ)
पीठ—पृष्ठम्
पीतल—पीतलम्
पीपल—अश्वत्थः
पीपर (ओषधि)—पिप्पली (स्त्री)
पीलिया (रोग)—पाण्डु (पुं)
पीसना—पिष् (७ प)
पुखराज (रत्न)—पुष्पराग, पुष्परागः
पुवाई घास—[illegible]
पुत्र—आत्मजः सुतः (पुं), तनयः, अपत्यम्
पुत्रवधू—स्नुषा
पुलाव—पुलाकः
पुष्ट करना—पुष् (४ प)
पुष्पमाला—स्रज् (स्त्री)
पूँजी—मूलधनम्
पूआ—पूपः
पूजा—अर्चा अथवा अर्हणा अपचितिः (स्त्री)
पूजा करना—अर्च् (१प) पूज्(१ उ)
पूज्य—प्रतीक्ष्य, पूज्य
पूरा करना—पृ (१ प १ उ)
पूरी—पूलिका
पूर्णिमा—राका, पूर्णिमा
पूर्व—प्राची (स्त्री)
पूर्व की ओर—प्राक् (अ)
पृथिवी—वसुधा, अवनिः (स्त्री), भूः (स्त्री)
पेचिश—प्रवाहिका आमातिसारः
पेट—कुक्षिः (पुं), उदरम् , जठरः
पेटीकोट—अन्तरीयम्
पेटू—औदरिकः, कुक्षिम्भरिः (पुं)
पेठे की मिठाई—कौष्माण्डम्
पेड़ा (मिठाई)—पिण्डः
पेन्टर—चित्रकारः
पेन्सिल—तूलिका
पेस्ट्री—पिष्टान्नम्
पैदल चलने वाला—पदातिः (पुं)
पैदल सेना—पदातिः (पुं)
पैदा होना—उत् + भू (१ प) उत् + पद् (४ आ)
पैन्ट—आप्रपदीनम्
पैर—पादः
पैरेलिसिस (लकवा०)—पक्षाघातः
पोंछना—मार्जन (णिच्)
पोतना—लिप् (६ उ)
पोता—पौत्रः
पोथी—पोथी (स्त्री)
पोर्टिको (बरामदा)—प्रकोष्ठः
पोस्ता—पौस्तिकम्
प्याऊ—प्रपा
प्याज—पलाण्डुः (पुं , न)
प्याल (फल)—प्रियालम्
प्याला—चषकः
प्रकट होना—आविर् + भू (१ प)
प्रचार होना—प्र + चर् (१ प)
प्रणाम करना—प्र + नम् (१ प), वन्द् (१ आ)
प्रतिज्ञा करना—प्रति + ज्ञा (१ आ)
प्रतीत होना—आ+पत् (१ प)
प्रतीक्षा करना—प्रतीक्ष् (१ आ), अपेक्ष् (१ आ)
प्रमेह—प्रमेहः
प्रसन्न चित्त—प्रसन्नः, सुमनसः
प्रसन्न होना—प्र+सद्(१प) मुद्(१आ)
प्रसिद्ध—ख्यातः, प्रथितः, विश्रुत
प्रस्तुत करना—प्र + स्तु (२ उ)
प्रस्थान करना—प्र + स्था (१ आ)
प्राइम मिनिस्टर—प्रधानमन्त्रिन् (पुं)
प्राण—प्राणाः असवः (असु, बहु)
प्रातः—प्रातः (अ), प्रत्यूष

प्राप्त किया—आधादितम्, प्राप्तम्, लब्धम्
प्राप्त करना—आप् (५ प०), लभ् (१ आ)
प्रारम्भ करना—आ + रभ् (१ आ०)
प्रार्थना करना—प्र + अर्थ् (१० आ)
प्रिन्सिपल—आचार्यः, आचार्या (स्त्री)
प्रेम करना—स्निह् (४ प०)
प्रेरणा देना—प्र + ईर् (१ उ)
प्रेरित—ईरितम्, प्रेरितम्
प्रोफेसर—प्राध्यापकः
प्लाट—प्रोथम्, प्रोथम् (वि)
प्लास्टर—प्रलेपः
प्लेट—पात्रम्

फ

फड़कना—स्पन्द् (१ आ०), स्फुर् (६ प)
फर्नीचर—उपस्करः
फर्श—कुट्टिमम्
फल मिलना—वि + पच् (१ उ)
फहराना—उत् + तुल् (१० उ)
फ्राक—पादचारिणी (स्त्री)
फाउन्टेन पेन—धारालेखनी (स्त्री)
फालसा (फल)—पुनागम्
फावड़ा—खनित्रम्
फासफोरस—भास्वरम्
फिटकिरी—स्फटिका
फीस—शुल्कः
फुंसी—पिटिका
फुटपाथ—पादपन्थकः,—कम्
फुफेरा भाई—पैतृष्वसीयः
फुलका (रोटी)—पूपम्
फूंकना—ध्मा (१ प)
फ्रेम—फलम्
फुआ—पितृष्वसा (स्त्री)
फूल (धातु)—कांस्यम्
फूल—प्रसूनम्, कुसुमम्, पुष्पम्, सुमनस् (स्त्री)
फेंकना—अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ)
फेफड़ा—फुफ्फुसम्
फेरना—आवर्तय (णिच्)
फैक्टरी—शिल्पशाला
फैलना—प्रथ् (१ आ)
फैलाना—स्तृ (९ प०), तन् (८ उ०)
फोड़ा—पिटकः
फौजी आदमी—सैनिकः
'फ्लु (इन्फ्लुएंजा)—शीतज्वरः

ब

बैंडबाजा (वाद्य)—तूर्यस्वनम्
बकरा—अजः
बकवाद करना—प्र + लप् (१ प)
बगुला—बकः
बच्चों का पार्क—बालोद्यानम्
बछड़ा—वत्सः
बर्तन—भाजनम्
बड़ (वृक्ष)—न्यग्रोधः
बड़हल (फल)—लकुचम्
बड़ा भाई—अग्रजः
बढ़ई—तक्षन् (पु)
बढ़कर—अति (अ)
बढ़ना—एध् (१ आ), उप+चि (५ उ०)
बतख—वर्तकः
बताशा—वातापः
बथुआ (साग)—वास्तुकम्, वास्तूकम्
बदमाश—दुरात्मा, पापः, रेफः
बदलना—परि + णम् (१ उ)
बधाई देना—दिष्ट्या वृध् (१ आ)
बना ठना—सज्जीकृतः, सुभूषितः
बनाना—सृज् (६ प), रच् (१ उ

बनावटी—कृत्रिमम्, कृतकम् (वि)
बन्द करना—अपि (पि)+धा (३ उ)
बन्दर—शाखामृगः, कपिः (पुं)
बन्दूक—भुशुण्डि (स्त्री) भुशुण्डी (स्त्री)
बबूल (वृक्ष)—करीरः
बम—आग्नेयास्त्रम्
बम फेंकना—आग्नेयास्त्रम्+क्षिप् (६ उ)
बराबर करना—समी+कृ (८ उ)
बराबरी करना—प्र+भू (१ प)
बरामदा—वरण्डः
बर्छी—भल्लम्
बर्बाद करना—हृ (१ आ)
बर्री—हैमवेपः
बर्फ—अवश्याय, हिमम्, तुषारः
बर्फी (मिठाई)—हैमी (स्त्री)
बर्मा (औजार)—आविधः
बवासीर—अर्शस् (न)
बस—अलम् (अ) कृतम् (अ), सतु (अ)
बसूला—तक्षणी (स्त्री)
बस्ता—वेष्टनम्, प्रसेवः
बस्ती—आवासस्थानम्
बहना—वह् (१ उ) स्यन्द् (१ आ)
बहाना—अपदेशः, व्यपदेशः
बहाना करना—अप+दिश् (६ उ)
बहिन—स्वसृ (स्त्री) भगिनी (स्त्री)
बही—वणिक्पञ्जिका
बहुमूत्र—मधुमेहः
बहेड़ा (औषधि)—बिभीतकः
बहेलिया—शाकुनिकः व्याधः
बाँस (वृक्ष)—किम्पूरः
बाँधना—बन्ध् (९ प) पश् (१ उ)
बाँसुरी—मुरली (स्त्री), वंशी (स्त्री)
बाँह—बाहुः (पुं), भुजः

बाज (पक्षी)—श्येनः
बाजरा (अन्न)—प्रियंगुः (पुं)
बाजार—विपणिः (स्त्री), विपणी (स्त्री
बाजूबन्द (गहना)—केयूरम्
बाट (तोलने के)—तुलामानम्
बाढ़—वृतिः (स्त्री)
बाण—विशिखः, शरः, बाणः
बाथरूम—स्नानागारम्
बाद में—पश्चात् (अ), अनु (अ)
बादाम—वातादम्
बार बार—मुहुः (अ) अभीक्ष्णम् (अ)
बारी से (बारी बारीसे)—पर्यायेण (अ)
बारूद—अग्निचूर्णम्
बारे में—अन्तरेण अधिकृत्य (अ)
बाल—शिरोरुहः, केशः
बाल (अन्न की)—कणिशः, कणिशम्
बाल काटने की मशीन—कर्तनी (स्त्री)
बाल्टी (बर्तन)—उदञ्चनम्
बालूशाही (मिठाई)—मधुमस्तः
बालों का काँटा—केशकः
बासमती चावल—अणुः (पुं)
बाहर जाना (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
बाहर से आना (इम्पोर्ट)—आयातः
बिकवाना—विक्रापय (णिच्, पर)
बिक्री—विक्रयः
बिगड़ना—दुष् (४ प)
बिगुल (बाजा)—शंखघोषः
बिच्छू—वृश्चिकः
बिजली—विद्युत् (स्त्री), सौदामिनी (स्त्री)
बिजली घर—विद्युद्गृहम्
बिताना—नी (१ उ), यापय (णिच् उ)
बिदाई लेना—आ+मन्त्र् (१ आ), आ+प्रच्छ् (६ आ)
बिना—अन्तरेण (अ) विना (अ), ऋते (अ)

बिन्दी—बिन्दुः (पु०)
बिल्ली—मार्जारी (स्त्री)
बिसकुट—पिष्टका
बिस्तर—शय्या
बींधना—व्यध् (४ प०)
बीच में—मध्ये, अन्तरे (अ०)
बीड़ी—तमाखुवीटिका
बीतना (समय)—गम् (१ प), अति + वृत् (१ आ)
बीन बाजा—वीणावाद्यम्
बुकरैक—पुस्तकाधानम्
बुखार—ज्वरः
बुनना—वे (१ उ)
बुरका—निचोलः
बुर्जी (अटारी)—अट्टः
बुलाक (गहना)—नासाभरणम्
बुलाना—आ + मन्त्र् (१ आ), आ + ह्वे (१ उ)
बूरा (चीनी)—शर्करा, सिता
बेंत—वेत्रः
बेचना—वि + क्री (९ आ)
बेचने वाला—विक्रेतृ (पु)
बेणी (गहना)—मूर्धाभरणम्
बेन्च—काष्ठासनम्
बेर—बदरीफलम्, कर्कन्धुः (स्त्री)
बेल (फल)—बिल्वम्, श्रीफलम्
बेला (फूल)—मल्लिका
बेसन—चणकचूर्णम्
बैंकिंग—कुसीदवृत्तिः (स्त्री)
बैंड—वादित्रगणः
बैंगन—भण्टाकी (स्त्री०)
बैठना—सद् (१ प०), नि + षद् (१ प), आस् (२ आ०)
बैडमिन्टन—पक्षिक्रीडा
बैना (बायन)—वायनम्

बैल—उक्षन् (पु), अनडुह् (पु०), गो (पु)
बोना—वप् (१ उ०)
बौर—मञ्जरी (स्त्री०)
ब्रह्म—उद्गीथः, ब्रह्मन् (पु, न)
ब्रह्मा—वेधस् (पु), ब्रह्मन् (पु०)
ब्राह्मण—द्विजः द्विजातिः (पु), अग्रजन्मन् (पु)
ब्रुश—वर्तिका, रोममार्जनी (स्त्री)
ब्रश, दाँतका—दन्तधावनम्
ब्रेसलेट (बाजूबन्द)—केयूरम्
ब्लड प्रेशर (रोग)—रक्तचापः
ब्लाउज—कञ्चुलिका
ब्लाटिंग पेपर—मसीशोषः
ब्लेड (बाल बनाने का)—क्षुरकम्
ब्लैक बोर्ड—श्यामपट्टकम्

भ

भंगी—संमार्जकः
भँवर—आवर्तः
भड़भूजा—भ्राष्ट्रकारः, भ्राष्ट्रमिन्धः
भतीजा—भ्रात्रीयः, भ्रातृजः, भ्रातृपुत्रः
भरना—पूर् (१ उ०)
भले ही—कामम् (अ)
भाँटा—भण्टाकी (स्त्री)
भाग्यवान्—सुकृतिन् (पु)
भाग्य से—दिष्ट्या (अ)
भाड़—भ्राष्ट्रम्
भान्जा (भानजा)—स्वस्रीयः, भागिनेयः
भाप—बाष्पम्
भाभी (भाई की स्त्री)—भ्रातृजाया
भारी—गुरु (वि)
भाला—प्रासः
भाल—मस्तकम्

भाव (बाज़ार भाव)—अर्घः
भाव गिरना—अर्घापचितिः (स्त्री०)
भाव चढ़ना—अर्घोपचितिः (स्त्री०)
भाबर (तराई)—उपत्यका
भिण्डी (साग)—भिण्डकः
भुस—तुषम्
भूख—बुभुक्षा, अशनाया
भूखा—बुभुक्षितः, अशनायितः (वि०)
भूनना—भ्रस्ज् (६ उ०)
भूलना—वि+स्मृ (१ प०)
भूसी—तुषः
भू-सेनापति—भूसेनाध्यक्षः
भेजना—प्रेषय (णिच् उ०), प्र+हि (५ प०)
भेड़—मेषः
भेड़िया—वृकः
भैंस—महिषी (स्त्री०)
भैंसा—महिषः
भोली भाली—मुग्धा
भौं—भ्रूः (स्त्री०)
भौंरा—षट्पदः, भ्रमरः, द्विरेफः, अलिः (पु०)

म

मँगाना—आनायय (आनी+णिच्)
मंजन—दन्तचूर्णम्
मँजीरा—मञ्जीरम्
मंडप—मण्डपः
मंडी—महाहट्टः
मकड़ी—तन्तुनाभः, लूता, ऊर्णनाभः
मकान—भवनम्, सौधः, प्रासादः, निलयः
मकोय (फल)—स्वर्णक्षीरी (स्त्री०)
मक्खन—नवनीतम्, हैयङ्गवीनम्
मगर—मकरः, नक्रः
मछली—मीनः, मत्स्यः, झषः
मजदूर—श्रमिकः
मटर—कलायः
मट्ठा—तक्रम्
मथना—मन्थ् (१ प०)
मधुमक्खी—सरघा, मधुमक्षिका
मध्यम स्वर—मध्यमः, मध्यस्वरः
मन—स्वान्तम्, हृद् (न०), मनस् (न०), मानसम्
मन लगना—रम् (१ आ०)
मनाना—अनु+नी (१ उ०)
मनुष्य—नरः, द्विपाद् (पु०), मर्त्यः
मनोहर—मनोज्ञम्, मंजुलम्, हृद्यम्, अभीष्टम्
मन्त्रणा करना—मन्त्र् (१० आ०)
मन्त्री—अमात्यः, सचिवः, मन्त्रिन् (पु०)
मन्दी (भाव की)—मन्दायनम्
मरना—मृ (६ आ०), उप+रम् (१ आ०)
मरम्मत करना—सं+धा (३ उ०)
मर्म—मर्मन् (न०)
मलाई—सन्तानिका
मलेरिया—विषमज्वरः
मशीन—यन्त्रम्
मसाला—व्यंजनम्, उपस्करः
मसाला डालना—उपस्कृ (८ उ०)
मसालेदार वस्तु—व्यंजनम्
मसूर—मसूरः
महँगा—महार्घम्
महल—प्रासादः, सौधः, हर्म्यम्
महावत—आधोरणः
महुआ (वृक्ष)—मधूकः
माँजना—मृज् (२ प०, १० उ०)
माँस—आमिषम्, मांसम्
माथा—ललाटम्
मानना—मन् (४ आ०, ८ आ०), आ+स्था (१ आ०)
मानसून—वर्षागमः

मामा—मातुलः
मामी—मातुलानी (स्त्री)
मारना—हन् (२ प), तड् (१० उ), घा (४ प)
मार्ग—वर्त्मन् (न), पथिन् (पुं), मार्गः, सरणिः (स्त्री)
मालपूआ—अपूपः
माली—मालाकारः
मिजराब (सितार बजाने का)—कोणः
मिट्टी—मृत्तिका, मृद् (स्त्री), मृत्स्ना
मिठाई—मिष्टान्नम्
मित्रता—सख्यम्, सौहृदम्, सौहार्दम्, संगतम्
मिनट—कला
मिर्च—मरीचम्
मिल (फैक्टरी)—मिल
मिलना—मिल् (६ उ), सं+गम् (१ आ)
मिलाना—योजय (युज् + णिच्), सं + मिश्रय (णिच्)
मिस्त्री (कारीगर)—यान्त्रिकः
मिस्सा आटा—मिश्रचूर्णम्
मीठा—मधुरम् (वि)
मीठी गोली (टॉफी)—गुलः
मुँह—आननम्, वदनम्, मुखम्, आस्यम्
मुकरना—अप + ह्नु (२ आ)
मुकुट—मुकुटम्
मुख्य द्वार—गोपुरम्
मुख्य सड़क—राजमार्गः
मुट्ठी—मुष्टि (पुं, स्त्री), मुष्टिका
मुनि—मुनिः (पुं) वाचंयमः, वाग्यतः
मुनीम—लेखकः
मुरब्बा—मिष्टपाकः
मुसम्मी (फल)—मातुलुङ्गः
मुसाफिरखाना—पथिकाश्रयः
[illegible]—मदः

मुँगरी (मिट्टी तोड़नेकी)—लोष्टभेदनः
मूँगा (रत्न)—प्रवालम्
मूँछ—श्मश्रु (न)
मूर्ख—वैधेयः बालिशः मूढः
मूर्खता—जाड्यम्
मूली—मूलकम्
मूल्य—मूल्यम्
मूसलाधार वर्षा—आसारः
मृग—कुरङ्गः, हरिणः, मृगः
मृत—हतः, मृतः, उपरतः
मृत्यु—मृत्युः (पुं), निधनम्
मेंढक—भेकः, दर्दुरः, मण्डूकः
मेंहदी—मेन्धिका
मेघ—जीमूतः, वारिदः, बलाहकः
मेज—फलकम्
मेज पढ़ाई की—लेखनफलकम्
मेयर—निगमाध्यक्षः
मेवा—शुष्कफलम्
मैड़ा (खेत बराबर करने का)—लोष्टभेदन
मैकेनिक (कारीगर)—यान्त्रिकः
मैच—क्रीडाप्रतियोगिता
मैना—सारिका
मोटा—उपचितः, पुष्टः, गुरु (वि)
मोती—मुक्ता, मौक्तिकम्
मोती की माला—मुक्तावली (स्त्री)
मोतीझरा (रोग)—मन्थरज्वरः
मोर—बर्हिन् (पुं), शिखिन् (पुं०), मयूरः
मोर्चाबन्दी करना—परिखया + वेष्टय (णिच्)
मोहनभोग (मिठाई)—मोहनभोगः
मौका—अवकाशः
मौन—वाचंयमः, मौनम् (न)
मौलसरी (वृक्ष)—बकुलः
मौसी—मातृष्वसृ (स्त्री)

मौसेरा भाई—मातृष्वस्रेयः
म्युनिसिपल चेयरमेन—नगराध्यक्षः
म्युनिसिपल्टिी—नगरपालिका

य

यज्ञ—अध्वरः, यज्ञः क्रतुः (पुं)
यज्ञ-कर्ता—यज्वन् (पुं)
यत्न करना—यत् (१ आ) व्यव+सो (४ प)
यम—कृतान्तः
यश—यशस् (न) कीर्ति (स्त्री)
याद करना—स्मृ (१ प) सं+स्मृ (१ प) अभि+ध्यै (१ प)
युद्ध—आहव आजिः (पुं स्त्री) जन्यम्
यूनानी लिपि—यवनानी (स्त्री)
यूनिफार्म—एकपरिधानम् एकवेषः
यूनिवर्सिटी—विश्वविद्यालयः
योग्य होना—अर्ह् (१ प)
योद्धा—योधः

र

रंगना—रञ्ज् (१ उ)
रंगबिरंगे—नानावर्णानि (बहु, वि)
रंगरेज—रजकः
रकम—राशिः धनराशिः (पुं)
रक्षा करना—रक्ष् (१ प), पाल् (१ उ) त्रै (१ आ), पा (२ प)
रचना—नि+धा (१ उ)
रज—रजस् (न)
रजाई—नीशारः
रजिस्टर—पंजिका
रजिस्ट्रार—पञ्जीश (पुं)
रणकुशल—सांयुगीन
रथ—स्यन्दनम्
रपट—पर्णकः
रबड़ी (मिठाई)—कूर्चिका
रसोई—रसवती (स्त्री), पाकशाला महानसम्

रहना—स्था (१ प) वस् (१ प) अधि+वस्, उप+वस् (१ प)
रांगा—त्रपु (न)
राक्षस—असुरः, दैत्यः दानवः
राज (मिस्त्री)—स्थपति (पुं)
राजदूत—राजदूतः
राजा—अवनिपतिः भूपतिः, भूभृत् (तीनों पुं)
रात—विभावरी (स्त्री) क्षपा यामिनी (स्त्री)
रात में—नक्तम् (अ)
रायता—रायतकम्
रिवाज—प्रचलनम्, संप्रचलनम्
रीठा—फेनिलः
रीढ़ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न)
रुकना—स्था (१ प), वि+रम् (१ प) अव+स्था (१ आ)
रुई—तूलः तूलम्
रूज (गालों की लाली)—कपोलरञ्जनम्
रेगिस्तान—मरुः (पुं), धन्वन् (पुं न)
रेट (भाव)—अर्घः
रेतीला किनारा—सैकतम्
रेफरी—निर्णायकः
रेशमी—कौशेयम्
रैकेट (खेलने का)—कायपरिष्करः
रोकना—रुध् (७ उ)
रोग—रुज् (स्त्री) रोगः, आमयः
रोजनामचा (कैश-बुक, रोकड़ बही)—दैनिक-पत्रिका
रोटी—रोटिका
रोना—रुद् (२ प), वि+लप् (१ प)

ल

लंच (मध्याह्न भोजन)—सहभोजः, सग्धिः (स्त्री)
लकवा मारना—पक्षाघातः
लकीर—रेखा

लक्ष्मी—लक्ष्मीः (स्त्री०), श्रीः (स्त्री), पद्मा, कमला
लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्
लगना—प्र+भू (१ आ)
लगाना—नि+युज्(१ उ), सं+धा(३उ०)
लच्छे (गहना)—पादाभरणम्
लज्जित—ह्रीणः (वि०)
लज्जित होना—त्रप् (१ आ०), लस्ज् (६ आ०), ह्री (३ प०)
लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः, युद्धकाम
लड़ाई का जहाज(पानी का)—युद्धपोत
लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदकः, मोदकम्
लता—व्रतति (स्त्री०) वीरुध् (स्त्री०) लता
लपसी(जौ का हलुआ)—यवागूः(स्त्री०)
लस्सी (दही की)—दाधिकम्
लहसुन—लशुनम्
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तकः अलक्तः
लाख (धातु)—जतु (न)
लाना—आ+नी (१ उ), हृ(१ उ), आ+हृ (१ उ)
लिए—कृते (अ०)
लिपस्टिक—ओष्ठरंजनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोड़ा (वृक्ष)—श्लेष्मातकः
लीची (फल)—लीचिका
लीपना—लिप् (६ उ)
लेखा पट्टी—नामानुक्रमणिका
ले आना—नी (१ उ), हृ (१ उ) भृ (१ उ)
लेना—ग्रह् (९ उ), आ+दा (३ आ)
लेन पावर—ग्राहकः
लोई (ऊनी)—रल्लकः
लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री)
लोटा—करकः, कमण्डलुः (पुं)

लोभिया—वनमुद्गाः
लोभी—लुब्धः, गृध्नुः (पुं)
लोमड़ी—लोमशा
लोहा—अयस् (न०), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (कपड़ों पर)—अयस्+कृ (८ उ)
लोहार—लोहकारः
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लोहपट्टकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबूः (स्त्री)
लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ), प्रत्या+गम् (१ प)
लौटना—नि+वृत्(१आ), प्रत्या+गम्(१प)

व

वंचित—विप्रलब्धः
वंश—अन्वयः अन्ववायः, वंशः
वकील—प्राड्विवाकः
वचन—वचस् (न०), वचनम्
वज्र—पविः (पुं) वज्रम् कुलिशम्, अशनिः (पुं)
वन—काननम्, विपिनम् वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस्(पुं), पाशिन् (पुं) वरुणः
वर्षा—वृष्टिः (स्त्री०), वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री)
वस्तुतः—नूनम्, किल, खलु, वै तावत्(अ)
वहाँ से—ततः (अ)
वाइस चान्सलर—उपकुलपतिः (पुं०)
वाटर प्रूफ—उदकप्रम्
वाणी—सरस्वती, वाच्(स्त्री०) भारती(स्त्री)
वायु—मातरिश्वन् (पुं०), पवनः अनिलः
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्षः
वायोलिन (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
विचरण करना—वि+चर् (१ प)
विजयी—जिष्णुः (पुं), विजयिन् (पुं०)

विद्युत्—सौदामिनी (स्त्री॰), विद्युत् (स्त्री॰)
विद्वान्—विद्वस् (पुं॰), विपश्चित् (पुं॰), सुधीः (पुं॰), कोविदः, बुधः, मनीषिन् (पुं॰), सूरिः (पुं॰), निष्णातः
विपत्ति—विपत्तिः (स्त्री॰), विपद् (स्त्री॰), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ॰), उप+यम् (१ आ॰)
विश्राम—विश्रमः, विश्रामः
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प॰)
विष्णु—हरिः, अच्युतः
विस्तृत—ततम्, विततम्, प्रततम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पुं॰), पादपः, अनोकहः, शाखिन् (पुं॰)
वृद्ध—प्रवयस् (पुं॰), वृद्धः
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिकः
वेदपाठी—श्रोत्रियः, वेदपाठिन् (पुं॰)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री॰)
वैद्य—भिषज् (पुं॰), [illegible] (पुं॰), [illegible], वैद्यः
वॉली बॉल—क्षेपकन्दुकम्
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प॰)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं॰), व्याघ्रः
व्यर्थ ही—वृथा (अ॰), मुधा (अ॰)
व्यवहार करना—व्यव+चर् (१ प॰), व्यव+हृ (१ उ॰)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापारः
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प॰), अश् (५ आ॰)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ लेना—शप् (१ उ॰)
शराबी—मद्यपः
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुस् (न॰), गात्रम्, तनुः (स्त्री॰), कायः, विग्रहः
शर्त—समयः
शलगम—श्वेतकन्दः
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वलः
शहतूत (फल)—तूदम्
शहद—मधु (न॰)
शहनाई (बाजा)—[illegible]
शहर—नगरम्, पुरम्
शान्त—शान्तः (वि॰)
शामियाना—चन्द्रातपः
शासन करना—शास् (२ प॰), [illegible] (१ आ॰)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयुः (पुं॰), आखेटकः, शाकुनिकः
शिक्षा देना—शास् (२ प॰)
शिर—शिरस् (न॰), मूर्धन् (पुं॰)
शिल्प—शिल्पम्, [illegible]
शिल्पी—कारुः (पुं॰), शिल्पिन् (पुं॰)
शिल्पी-संघ—श्रेणिः (पुं॰, स्त्री॰)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—कुलकः
शिव—त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं॰), ईशानः
शिष्य—अन्तेवासिन् (पुं॰), छात्रः, शिष्यः, बटुः (पुं॰)
शीघ्र—[illegible] (अ॰), अचिरम् (अ॰), द्रुतम्, शीघ्रम्
शीशम (वृक्ष)—शिंशपा
शीशा—दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यजः
शेर—केसरिन् (पुं॰), सिंहः, मृगेन्द्रः, हरिः (पुं॰)
शेरवानी—प्रावारकम्
शोभित होना—भ्राज् (१ आ॰), भा (२ प॰)
श्रद्धा करना—श्रत्+धा (३ उ॰)

लक्ष्मी—लक्ष्मीः (स्त्री०), श्रीः (स्त्री), पद्मा, कमला
लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्
लगना—प्र+हृ (१ आ)
लगाना—नि+युज् (१० उ), सं+धा (३ उ)
लच्छे (गहना)—पादाभरणम्
लज्जित—ह्रीणः (वि)
लज्जित होना—त्रप् (१ आ) लस्ज् (६ आ) ह्री (३ प)
लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः युद्धकामः
लड़ाई का जहाज (पानी का)—युद्धपोतः
लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदकः मोदकम्
लता—व्रतति (स्त्री) वीरुध् (स्त्री), लता
लपसी (घी का हलुआ)—यवागू (स्त्री)
लस्सी (दही की)—पायिकम्
लहसुन—लशुनम्
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तकः, लाक्षारसः
लाख (धातु)—त्रपु (न)
लाना—आ+नी (१ उ) हृ (१ उ), आ+हृ (१ उ)
लिए—कृते (अ)
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोड़ा (वृक्ष)—श्लेष्मातकः
लीची (फल)—लीचिका
लीपना—लिप् (६ उ)
लेखा बही—नामानुक्रमणिका
ले जाना—नी (१ उ) हृ (१ उ) वह् (१ उ)
लेना—ग्रह् (९ उ), आ+दा (३ आ)
लेन देन—मारकः
लोई (ऊनी)—रल्लकः
लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री)
लोटा—करकः कमण्डलुः (पुं)
लोभिया—वनमुद्गः
लोमी—लुब्धा, पण्डुः (पुं)
लोमड़ी—लोमशा
लोहा—अयस् (न), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (कपड़ों पर)—अयस्+कृ (८ उ०)
लोहार—लोहकारः
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहफलकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबूः (स्त्री)
लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ) प्रत्या+गम् (१ प)
लौटना—नि+वृत् (१ आ०), प्रत्या+गम् (१ प)

व

वंचित—विप्रलब्धः
वंश—अन्वयः, अन्ववायः, वंशः
वकील—प्राड्विवाकः
वचन—वचस् (न), वचनम्
वज्र—पविः (पुं) वज्रम् कुलिशम्, अशनिः (पुं)
वन—काननम्, विपिनम् वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस् (पुं) पाशिन् (पुं) वरुणः
वर्षा—वृष्टिः (स्त्री) वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री)
वस्तुतः—मूलम्, किल खलु, वै, तावत् (अ)
वहाँ से—ततः (अ०)
वाइस चान्सलर—उपकुलपतिः (पुं)
वाटर वर्क्स—उदयन्त्रम्
वाणी—सरस्वती वाच् (स्त्री) वाणी (स्त्री)
वायु—मातरिश्वन् (पुं), पवनः अनिलः
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्षः
वायोलिन (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
विचरण करना—वि+चर् (१ प)
विजयी—जिष्णुः (पुं) विजयिन् (पुं)

विद्युत्—सौदामिनी(स्त्री), विद्युत्(स्त्री)
विद्वान्—विद्वस् (पुं), विपश्चित् (पुं), सुधीः (पुं), कोविदः, बुधः, मनीषिन् (पुं) सूरिः (पुं), निष्णातः
विपत्ति—विपत्तिः (स्त्री), विपद्(स्त्री), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ०)
विश्राम—विश्रमः, विश्रामः
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प)
विष्णु—हरिः, अच्युतः
विस्तृत—ततम्, विततम् प्रसृतम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पुं), पादप, अनोकहः, शाखिन् (पुं)
वृद्ध—प्रवयस् (पुं), वृद्धः
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिकः
वेदपाठी—श्रोत्रियः, वेदपाठिन् (पुं)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री)
वैश्य—वणिज् (पुं), द्विजातिः (पुं) अर्यः, वैश्यः
वाली चोंच—चञ्चुकः
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं) व्याघ्रः
व्यर्थ ही—वृथा (अ) मुधा (अ)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प), व्यव+हृ (१ उ)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापारः
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प), अश् (५ आ)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ लेना—शप् (१ उ)
शराबी—मद्यपः
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुष् (न०), गात्रः (स्त्री), कायः, विग्रहः
शर्त—समयः
शलगम—श्वेतकन्दः
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वलः
शहतूत (फल)—तूदम्
शहद—मधु (न)
शहनाई (बाजा)—तूणम्
शहर—नगरम् पुरम्
शान्त—शान्तः (वि)
शामियाना—चन्द्रातपः
शासन करना—शास् (२ प) तन्त्र् (१ आ)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयुः (पुं) आखेटकः शाकुनिकः
शिक्षा देना—शास् (२ प)
सिर—शिरस् (न) मूर्धन् (पुं)
शिला—शिला शिलापट्टः
शिल्पी—कारुः (पुं), शिल्पिन् (पुं)
शिल्पी-संघ—श्रेणिः (पुं स्त्री)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—कुलकः
शिव—त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं) ईशानः
शिष्य—अन्तेवासिन् (पुं), छात्रः शिष्यः, वटुः (पुं)
शीघ्र—सद्यः (अ) सपदि (अ), द्रुतम्, शीघ्रम्
शीशम (वृक्ष)—शिंशपा
शीशा—दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यजः
शेर—केसरिन्(पुं), सिंहः, मृगेन्द्रः हरिः(पुं)
शेरवानी—प्रावारकम्
शोभित होना—शुभ्(१आ), भा(२प)
श्रद्धा करना—श्रत्+धा (३ उ)

स

संग्रहणी (पेचिश)—प्रवाहिका
संतरा—नारङ्गम्
संवाद करना—सं+वद् (१ आ)
संशय करना—सं+शी (२ आ)
सज्जन—साधुः (पुं) सुमनस् (पुं), सचेतस् (पुं)
सड़क—मार्गः पथिन् (पुं) सरणिः (स्त्री)
सड़क, कच्ची—मृन्मार्गः
सड़क, चौड़ी—रथ्या
सड़क, पक्की—दृढमार्गः
सड़क, मुख्य—राजमार्गः
सत्य रूप में—परमार्थतः, परमार्थेन, यथार्थतः (अ)
सदस्य—सभासद् (पुं), सभ्यः पारिषदः
सदाचारी—सद्वृत्तः, सदाचारः
सदृश होना—सं+वद् (१ प), अनु+हृ (१ आ)
सधवा स्त्री—पुरन्ध्रिः (स्त्री)
सन्तुष्ट होना—तुष् (४ प)
सन्दूक—मञ्जूषा
संन्यासी—मस्करिन् (पुं०), परिव्राजकः, यतिः (पुं)
सप्ताह—सप्ताहः
सफेद बाल—पलितम्
सभा—सभा समितिः (स्त्री) परिषद् (स्त्री०)
सभागृह—आस्थानम्
समधिन—सम्बन्धिनी (स्त्री)
समधी—सम्बन्धिन् (पुं)
समर्थ—प्रभविष्णुः (पुं) प्रभुः (पुं) समर्थः, शक्तः
समर्थ होना—प्र+भू (१ प)
समय—वेला कालः, समयः
समाचार—वार्ता प्रवृत्तिः (स्त्री०) उदन्तः
समास—अर्थालिङ्गः
समाप्त होना—सम्+आप् (५ प), अव+सो (४ प०)
समीक्षा करना—सम्+ईक्ष् (१ आ)
समीप—उप, अनु, अभि, आयत् (अ)
समीप आना—प्रत्या+सद् (१ प०), उप+या (२ प)
समीपता—संनिधानम्, सामीप्यम्
समुद्र—अर्णवः अब्धिः (पुं) रत्नाकरः
समुद्री व्यापारी—सांयात्रिकः
समूह—संहतिः (स्त्री), संघः
समोसा—समोषः
सम्बन्धी—ज्ञातिः (पुं), बन्धुः, बान्धवः
सरकार—सर्वकारः, शासनम्
सरसों—सर्षपः
सर्प (मूल)—सर्पः
सर्वथा—एकान्ततः, सर्वथा नितराम् (अ)
सलवार—स्यूतवरः
सलाद—शाकः
सस्ता—अल्पार्घम्
सहना—सह् (१ आ०)
सहपाठी—सतीर्थ्यः, सहाध्येतृ (पुं), सहपाठिन् (पुं)
सहमोज—सग्धिः (स्त्री), सहभोजः
सहाध्यायी—सतीर्थ्यः
सहारा देना—अव+लम्ब् (१ आ)
सहृदय—सहृदयः सचेतस् (पुं)
साग पेड़ना—मन्थानः
साँप—द्विजिह्वः, उरगः, भुजंगः
साँभर नमक—रौमकम्
साक्षी—साक्षिन् (पुं)
साग—शाकः, शाकम्
साड़ी—शाटिका
सात स्वर—सप्त स्वराः
साथ—सह साकम्, सार्धम्, समम्
साथी—सहाध्यायिन् (पुं)

साफ करना—मृज् (२ प, १ उ), प्र+मृज् (१० उ०)
साबुन—फेनिलम्
सामग्री—हविष् (न) संभारः, उपकरणम्
सामान—पण्यः
सारंगी (बाजा)—सारंगी (स्त्री)
सारस—सारसः
साल का पेड़—शालः
साँवा (जंगली धान)—श्यामाकः
सास पेन (डेगची)—उखा
साहूकार—कुसीदिकः कुसीदिन् (पुं)
साहूकारा—कुसीदवृत्ति (स्त्री), कुसीदम्
सिंगारदान—शृंगारधानम्, शृंगारपिटकम्
सिंघाड़ा—शृंगाटकम्
सिक्का—मुद्रा
सिक्का ढालना—टंकनम्, टंक् (१ उ)
सिगरेट—धूमवर्तिका
सितार—वीणा
सिद्ध होना—सिध् (४ प)
सिन्दूर—सिन्दूरम्
सिपाही—रक्षिन् (पुं)
सिफलिस (गर्मी, रोग)—उपदंशः
सिलाई—स्यूतिः (स्त्री)
सिलाई की मशीन—स्यूतियन्त्रम्
सिला हुआ—स्यूतम्
सींचना—सिच् (६ उ)
सीखना—शिक्ष् (१ आ)
सीखने वाला—शिक्षिन् (पुं), अभीक्षिन् (पुं)
सीढ़ी—सोपानम्
सीढ़ी (लकड़ी की)—निःश्रेणी (स्त्री)
सीना—सिव् (४ प)
सीमेन्ट—अश्मचूर्णम्
सीसा (धातु)—सीसम्
सुख—शर्मन् (न) सुखम्
सुनार—पश्यतोहरः, स्वर्णकारः

सुन्दर—रुचिरम्, मनोज्ञम्, मंजुलम्
सुपारी—पूगम्, पूगीफलम्
सुराविक्रेता—शौण्डिकः
सुराही—भृंगार
सूअर—शूकरः, वराहः
सूई—सूचिका
सूखना—शुष् (४ प)
सूत—सूत्रम्
सूती—कार्पासम्
सूद—कुसीदम्
सूर्य—अहर्पति (पुं), हरिदश्वः
सूर्यास्त समय—प्रदोषः, गोधूलिवेला, सायम्
सेंधा नमक—सैन्धवम्
सेंह (पशु)—शल्यः
सेकण्ड—विकला
सेक्रेटरी—सचिवः
सेना—चमू (स्त्री) पृतना वाहिनी (स्त्री)
सेनापति—सेनापतिः (पुं) सेनानीः (पुं)
सेफ (तिजोरी)—लौहमंजूषा
सेफ्टी रेज़र—उपक्षुरम्
सेम—शिम्बा
सेमर (वृक्ष)—शाल्मलिः (पुं)
सेल्स टैक्स—विक्रयकरः
सेब (फल)—सेवम्, आताफलम्
सेवई—सूत्रिका
सेवा करना—सेव् (१ आ) उप+चर् (१ प)
सोंठ—शुण्ठी (स्त्री)
सोचना—चिन्त् (१ उ), विचारय (विच
सोता (स्रोत)—उत्सः
सोना—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, चामीकरम्
सोना—स्वप् (२ प), शी (२ आ)
सोफा—पर्यङ्कः
सौंफ—मधुरा
सौदा (सामान)—पण्यः

सौ रुपये—शतम्
स्कूल—विद्यालयः
स्कूल इन्स्पेक्टर—विद्यालयनिरीक्षकः
स्टूल—संवेशः
स्टेनलेस स्टील—निष्कलंकायसम्
स्टेशन—यानावतारः
स्टोव—उद्ध्मानम्
स्त्री—योषित् (स्त्री), कलत्रम् (न), दाराः (पु)
स्थान—धामन् (न)
स्नातक—समावृत्तः, स्नातकः
स्नो—हैमम्
स्पर्धा करना—स्पर्ध् (१ आ)
स्मरण करना—स्मृ(१प०),अधि+इ(२प)
स्लेट—अश्मपट्टिका
स्वच्छ होना—प्र + सद् (१ प)
स्वभाव—सर्गः निसर्गः, प्रकृतिः (स्त्री)
स्वभाव से सुन्दर—स्वभावमनोहरम्
स्वर्ग—नाकः, त्रिदिवः, त्रिविष्टपम्
स्वर्ण—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, हिरण्यम्
स्वागतार्थ आना—प्रत्युद्+गम् (१ प)
स्वामी—प्रभविष्णु (पु),प्रभुः स्वामिन् (पु)
स्वीकार करना—ऊरी + कृ (८ उ), उररी + कृ (८ उ)
स्वेच्छाचारी—स्वैरः, स्वैरिन् (पु), कामवृत्तिः (स्त्री)
स्वेटर—ऊर्णावरकम्

ह

हंस—मरालः
हंसी—वरटा
हँसी करना—परि + हस् (१ प)
हँसुली (गहना)—ग्रैवेयकम्
हटना—अप + सृ (१ प), या (२ प), वि + रम् (१ प)
हटाना—अप + नी (१ उ), [illegible])
हथौड़ी—अयोघनः
हरताल—पीतकम्
हराना—परा+भू(१प), परा+जि(१आ)
हर्रे—हरीतकी (स्त्री)
हल—लाङ्गलम्, हलम्, सीरः
हल करना (प्रश्नादि)—साधय (णिच्)
हलवाई—कान्दविकः
हलुआ—लप्सिका
हलका—लघु (वि)
हल्दी—हरिद्रा
हवन करना—हु (३ प)
हाँ—आम्, तथा, अथ किम् (अ)
हाइड्रोजन बम—जलपरमाण्वस्त्रम्
हॉकी का खेल—यष्टिक्रीडा
हाथ का तोड़ा (गहना)—त्रोटकम्
हाथीवान—हस्तिपकः
हार, मोती का—हारः
हार, एक लड़ का—एकावली (स्त्री)
हारना—परा+जि (१ आ)
हारमोनियम (बाजा)—मनोहारिवाद्यम्
हारसिंगार (फूल)—शेफालिका
हॉल—महाकक्षः
हिंसा करना—हिंस् (७प) हन् (२प)
हिम—अवश्यायः, हिमम्
हिसाब—संख्यानम्
हींग—हिङ्गुः (पु, न)
हीरा—हीरकः
हृदय—हृदयम्, स्वान्तम्, मानसम्
हुक्का—धूम्रनालिका
हैजा—विषूचिका
होठ—ओष्ठः
होठ, नीचे का—अधरः, अधरोष्ठः
होना—भू (१ प), अस् (२ प), विद् (४ आ), वृत् (१ आ)
हौज—आहावः

(११) विषयानुक्रमणिका

सूचना—१ शब्दरूपों धातुओं और निबन्धों के विवरण के लिए प्रारम्भिक विषय सूची देखिए।

२ विषयानुक्रमणिका में दी गई संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।